महाभारत में संचार सूत्र

डॉ. श्रीकांत सिंह

महाभारत में संचार सूत्र
लेखक – डॉ. श्रीकांत सिंह

प्रकाशक – प्रकाशन विभाग, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय
पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय
बी–38, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन–1,
एम.पी. नगर, भोपाल 462011 (म.प्र.)
फोन – 0755-2554904
ईमेल– publication.mcu@gmail.com

© माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

E-ISBN: 978–81–953948–9–0

महाभारत में संचार सूत्र

डॉ. श्रीकांत सिंह

प्रकाशक

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं
संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

पूज्य पिताजी एवं पूजनीया माताजी
की स्मृति को सादर समर्पित

विषय सूची

विषय प्रवेश
1. महाभारतः परिचय एवं महात्म्य
2. संचारः अवधारणा एवं महत्व
3. आभ्यन्तर संचार
4. अंतरवैयक्तिक संचार एवं अंतरवैयक्तिक सम्बन्ध
5. पारलौकिक अंतरवैयक्तिक संचार
6. मानवेतर अंतरवैयक्तिक संचार
7. समूह संचार
8. स्वप्न संचार
9. अशाब्दिक संचार
10. दिव्य दृष्टि द्वारा संचार
11. सार्वजनिक लोक विमर्श
12. आकाशवाणी
13. महर्षि नारद का कल्याणकारी संचार
14. परम्परागत संचार
15. संचार के प्रमुख सिद्धांत
16. संवाद वाहन के साधन
17. महाभारतकालीन संचार में नैतिक मूल्य
18. उपसंहार
संदर्भ सूची

आमुख

मानव अस्तित्व से सम्बद्ध समस्त जिज्ञासाओं का समाधान यदि किसी ज्ञानपुंज में समाहित है तो उसका नाम है महाभारत। महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित इस सर्वकालिक, कालजयी कृति का सम्पूर्ण आख्यान वह पथ प्रदर्शक मार्ग है जिसका अनुगमन और अनुपालन मानव के इहलोक और परलोक में मुक्ति के द्वार खोलता है, सत-चित आनंद की अनुभूति का संचरण कराता है, मानव से महामानव की संकल्पना को परिपूर्ण और चरितार्थ करता है। दिव्यता व अलौकिकता से परिपूर्ण भारतीय मनीषा के सर्वश्रेष्ठ वांग्मय की उपमा से युक्त महाभारत वह महाग्रंथ है जिसमें सम्पूर्ण जीवन दर्शन-उसकी विधाएं, कलाएं, भूत-भविष्य और वर्तमान की चिरंतन गति का दिग्दर्शन होता है। अतः ऐसे सर्वोत्तम महान ग्रंथ पर आचार्यों व अध्येताओं ने समय-समय पर कालसापेक्ष और काल अनुरूप प्रसंगों, उद्धरणों के माध्यम से लेखन कर परत दर परत उसके मर्म को सहज-सरल भाषा में निरूपित कर जनमानस तक संचारित करने का कार्य किया है।

जनमानस में यह प्रचलित है कि जो कुछ मानव जीवन में है वह सब महाभारत में परिलक्षित हैं। यही कारण है कि यह प्राचीन ग्रंथ सदैव सर्वाधुनिक रहा है, और चिंतक, मनस्वी लेखकों के लिये नये-नये संदर्भों व पृष्ठभूमि के साथ चिंतन-मनन् एवं नवीन सर्जना दृष्टि का आकर्षण बिंदु रहा है।

महाभारत में संचार सूत्र नामक यह पुस्तक लेखक की इसी भाव दृष्टि की परिणिति है। लेखक संचार व मीडिया क्षेत्र के सुप्रतिष्ठित शिक्षाविद् हैं। अतः उनका प्रयास महाभारत में निहित उन संचार सूत्रों की विवेचना करना रहा है, जो वर्तमान में मीडिया और संचार क्षेत्र के अध्येताओं के लिये तो ग्राह्य हो ही अपितु किसी आम पाठक को भी एक नवीन दृष्टि से महाभारत के प्रसंगों को समझने में रूचिकर, पठनीय तथा बोधगम्य हो।

पुस्तक की प्रमुख विशेषता यह है कि यह, भारतीय संचार दृष्टि को सुस्थापित और प्रतिष्ठित करती है। पूर्व में कई सुविख्यात लोकप्रिय लेखकों ने महाभारत ग्रंथ के विविध आयामों व पात्रों को लेकर साहित्यिक रचनाधार्मिता प्रदर्शित की है किन्तु कदाचित्, यह ऐसी प्रथम अनूठी व मौलिक सृजनात्मक पुस्तक है जो, महाभारत के प्रसंगों व पात्रों में संचार के तत्वों, उनकी अर्न्तक्रियाओं और उसके प्रतिफलन व परिणामों को समझने की नई दृष्टि प्रदान करती है। इसमें संचार के प्राचीन एवं अर्वाचीन सिद्धांतों और व्यवस्था का विश्लेषण व विवेचन बड़े ही मनोरम ढंग से किया गया है। जैसे-जैसे आप अध्याय दर अध्याय पन्ने पलटते जाते हैं, भारतीय संचार सिद्धांतों से आपका परिचय होता जाता है। इसी परिप्रेक्ष्य में यह संचारवेत्ताओं के लिये अनिवार्य जानने योग्य उत्कंठा का विषय बन जाते हैं। पुराकालीन साहित्य में छिपे सिद्धांतों का उद्घाटन पाठकों के लिये दिलचस्पी का विषय है। यह समझ और दृष्टि का अलग आयाम है।

संचार की वर्तमान प्रचलित अवधारणाओं को महाभारत में रेखांकित व अवलोकित करने के साथ ही साथ सप्रमाण यह प्रतिपादित करना कि भारतीय संचार परंपरा की धारा इस महाग्रंथ में किस प्रकार प्रवाहित हो रही हैं, इसका उद्घाटन लेखक की भारतीय अस्मिता के प्रति सम्मान, गौरव और अपनत्व का परिचायक हैं।

महाभारत में संचार सूत्र का पाठन, मन में यह विश्वास सबल करता है कि इस पौराणिक ग्रंथ की यह प्रस्तुति और संदेश सुधी पाठकों के लिये जीवन संघर्ष की यात्र में प्रेरणा और समाधान की अर्न्तदृष्टि उत्पन्न करेगें। इससे भारतीय शास्त्रों और ग्रंथों के अध्ययन-अध्यापन के प्रति शोधार्थियों की रूचि अधिक प्रखर होगी।

प्रो. के. जी. सुरेश,
कुलपति

"मानसं सर्वभूतेषु वर्तते वै शुभाशुभम्।
अशुभेभ्यः सदाऽऽक्षिप्य शुभेष्वेवावतारयेत।।"

सभी प्राणियों के मन में शुभ और अशुभ विचार उठते रहते हैं। मनुष्य को चाहिये कि वह चित्त को सदा अशुभ विचारों की ओर से हटाकर शुभ विचारों में ही लगाये।

शान्ति पर्व, 309/19

विषय प्रवेश

संचार का अर्थ मात्र सूचनाओं का आदान-प्रदान करना ही नहीं है। इसका अर्थ मात्र हाव-भाव के द्वारा अभिव्यक्तियों का सम्प्रेषण करना भी नहीं है। इसका वास्तविक अर्थ है विचारों, भावों, संवेदनाओं और मानवीय क्रियाओं का व्यक्ति से व्यक्ति की तरफ अथवा अलौकिक शक्ति से लौकिक मानव तक संचार करना, यही संचार सम्बन्ध है। यह मानव समाज का मूलभूत आधार है। इसी के आधार पर ही मानव समाज में सम्बन्धों का ताना-बाना बनता है जिससे समाज अस्तित्व में आता है। समाज मानव में ही नहीं होता। मानवेतर प्राणियों में भी परस्पर यूथचारिता एवं समाज का भाव पाया जाता है। पशु-पक्षियों में भी संचार तो होता ही है परन्तु वह मानवीय दृष्टि से कष्टप्रद एवं विवेकरहित होता है। मानव समाज में संचार स्पष्ट एवं विवेक युक्त होता है। मानव संचार के सम्बन्धों के परस्पर ज्ञान से ही इस वास्तविक ज्ञान की अनुभूति होती है। संचार के कारण ही मनुष्य जंगली जीवन से सभ्य बना तथा उसके सभ्य बनने की प्रक्रिया से ही अर्वाचीन मानव समाज की रचना हुई। आज का मानव मात्र मनुष्य होने से ही सभ्य एवं सुसंस्कृत नहीं हो जाता इसके लिए उसे परिवेश की भी आवश्यकता पड़ती है। यह परिवेश उसे समाज से ही प्राप्त होता है किन्तु परिवेश ही उसे विकसित मानव होने के लिये पर्याप्त नहीं है। उसे तो मनुष्य से इंसान बनने के लिये चेतना एवं संज्ञान की सन्तुलित स्थिति चाहिए। यदि यह स्थिति असंतुलित रहती है तो मनुष्य में मनुष्यता का भाव विकसित नहीं हो सकता।

महाभारत कालीन समाज एक सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज था। इसमें कोई संशय नहीं है। अर्वाचीन समाज की ही भाँति सभ्य एवं सुसंस्कृत होने पर भी महाभारतकालीन समाज में जनसंचार के साधनों का अभाव था। यद्यपि संचार की अर्वाचीन उत्कृष्ट प्रणाली से भी उच्च कोटि की संचार प्रणाली का उल्लेख महाभारत में मिलता है। जैसे आकाशवाणी, पारलौकिक अंतरवैयक्तिक संचार, पारलौकिक समूह संचार एवं दिव्य दृष्टि आदि। आज जनसंचार की वह विकसित प्रणालियां हमें दृष्टिगत नहीं होती। यद्यपि

संगणक, चलभाष, सोशल मीडिया, टेलीविजन जैसे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के आविष्कार से संदेशों को सुदूर स्थानों तक पहुंचाने के लिए हमें त्वरित गति अवश्य प्राप्त हुई है। किंतु पारलौकिक शक्तियों से संचार करने का साधन आज भी आविष्कृत नहीं हो पाया है। महाभारत में संचार सम्बन्धी अनेकों ऐसे दृष्टांत मिलते हैं जहाँ मनुष्य पारलौकिक शक्तियों एवं प्रकृति से संवाद करता हुआ दिखाई देता है। जो आधुनिक जनसंचार प्रणाली में अभी तक सम्भव नहीं हो पाया है।

महाभारत के सभी पात्र महान संचारक थे। महाभारत के रचयिता भगवान व्यास तो एक उच्च कोटि के भविष्य दृष्टा हैं। तत्कालीन समाज और परिस्थितियों में उनकी दृष्टि तो उत्कृष्ट थी ही, वह दृष्टि आज भी विश्व समाज के लिए प्रेरणास्रोत है। उनकी सोच जहाँ तत्कालीन समाज को उन्नत, परिष्कृत करने की थी वहीं उसमें भविष्य के प्रति आश्वस्तमूलक संदेश निहित है। वस्तुतः महाभारत का संचार शास्त्र ऐसे संदेशों से भरा हुआ है जो पूर्णरूपेण श्रवण करने योग्य है। इसमें संदेशों को सुनने मात्र से ही मनुष्य को संतोष प्राप्त होता है। यह वेदों के समान पवित्र और उत्तम है।

महाभारत के प्रायः सभी पात्रों में एक विचारक एवं संचारक स्वरूप हमें दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि उसमें प्रमुख पात्र न केवल युद्ध कौशल में दक्ष हैं वरन संचार कौशल में भी प्रवीण हैं। संचार (विचार) केवल विचारक के मन मस्तिष्क में ही संचित करने या सीमित करने के लिए नहीं होता। उसमें निहित मानव भाव के कल्याण की भावना की सच्ची पहुँच आम लोगों तक होना आवश्यक है। संभवतः इसीलिये भगवान श्रीकृष्ण, भगवान व्यास, भगवान चिंतक विदुर, धृतराष्ट्र, धर्मराज युधिष्ठिर, महाराज जनक आदि अनेकों महान विचारकों के अतिरिक्त महारानी कुंती, द्रोपदी, शकुन्तला, गांधारी, सावित्री, सुवर्चला आदि नारियों के वैचारिक योगदान को इस ग्रंथ में सम्मिलित किया गया है। शरशैय्या पर पड़े हुए पितामह भीष्म का पांडवों को दिया गया संदेश न केवल तत्कालीन समाज के लिए मार्गदर्शक रहा है वरन आज भी सम्पूर्ण विश्व को प्रगति पथ पर अग्रसर होने का उत्कृष्ट प्रेरणास्रोत है। पितामह भीष्म का संदेश बहुआयामी है। इसमें राजधर्म अध्यात्म, पुरुषार्थ, सत्य, प्रेम, अहिंसा के साथ ही भक्ति, कर्म, ज्ञान एवं योग का भी उल्लेख

मिलता है। नीतिशास्त्र, युद्धकौशल, सैन्य संरचना, काल, मौसम, राजनीति, अर्थनीति, विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, कृषि, व्यापार, लौकिक, पारलौकिक, पर्यटन स्थल की महिमा आदि सम्बन्धित उद्देश्य से निहित है। वेद-पुराण, इतिहास, पृथ्वी की उत्पत्ति, ग्रह नक्षत्रों के सम्बन्धों के अतिरिक्त शुभ-अशुभ कर्मों के बारे में भी बड़े ही रोचक तथ्यों की प्रस्तुति दृष्टिगत होती है। इस प्रकार यह गूढ़ाधर्मज्ञ ज्ञान-विज्ञान का संचार शास्त्र है। इसमें उपनिषदों के साथ इतिहास के उन्मेष और निमेष, चातुर्वण्य विधान, ग्रह नक्षत्र, तारा आदि के परिमाण न्याय, शिक्षा, ज्ञान, तीर्थों, पुण्य देशों, नदियों, समुद्रों का भी वर्णन है। सृष्टि की संरचना एवं प्रलयकाल का उल्लेख भी इसमें समादृत है। श्लोक के अतिरिक्त अंतरिक्ष एवं पाताल लोक का भी इस महाग्रंथ में चर्चा की गई है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महाभारत एक प्रकार से सम्पूर्ण संचार शास्त्र है। इसमें सम्प्रेषण कला का पूर्ण विवरण मिलता है। सम्प्रेषक और श्रोता के लिए आवश्यक आचार शास्त्र का भी उल्लेख इस महाग्रंथ में वर्णित है। इस महाग्रंथ की तीनों लोकों में एक महान ज्ञान के रूप में प्रतिष्ठा है। यह ललित एवं मंगलमय शब्द विन्यास से अलंकृत है तथा वैदिक लौकिक या संस्कृत प्रकृति संकेतों से सुशोभित है। कोई आविष्कार हो अथवा विचार उसकी सफलता इसी में निहित है कि वह किस प्रकार से समाज तक पहुँचती है। सुप्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तु ने कहा है- 'सद्गुणी व्यक्ति ही प्रभावी संचारक हो सकता है।' उक्त कथन का आशय है कि प्रभावी संचारक वही है जो अपने कर्म, व्यवहार, विचार या चेतना से समाज में परिवर्तन ला सके। यह परिवर्तन तभी संभव होता है जब समाज में संचार तो हो परन्तु वह सद्गुण का हो, दुर्गुण का नहीं। सत् का हो असत् का नहीं। प्रकाश का हो, अंधकार का नहीं। विधा का हो, अविधा का नहीं। ज्ञान का हो, अज्ञान का नहीं। अहिंसा का हो, हिंसा का नहीं। न्याय का हो अन्याय का नहीं।

भारत वर्ष में सदियों से ही ज्ञान का प्रभाव गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से होता रहा है। इसका आधार वाचिक परम्परा ही रही। इसमें गुरु के मुख से सुनी हुई बात शिष्यों द्वारा कंठस्थ कर ली जाती थी और वह इसी अनुक्रम में अपनी अगली पीढ़ी तक संचालित होती थी। ज्ञान के संचार की यह व्यवस्था अपने आप में अप्रतिम थी। संचार की ऐसी परम्परा सम्पूर्ण विश्व

में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। हमारे ऋषि-मुनियों ने धर्म और ज्ञान को लेकर जो कुछ भी कहा वह सब वाचिक परम्परा से ही सुरक्षित रहा और अगली पीढ़ी को अग्रसित होता रहा।

परन्तु महाभारत एक ऐसा ज्ञान पर आधारित महाग्रंथ है जिसे भगवान व्यास ने बोला और विधान विनाशक गणेशजी ने लिखा। मुद्रण कला का विकास न होने के कारण इस ग्रंथ का भी मुद्रण नहीं हो पाया और यह भी वाचिक परम्परा पर ही आधारित था। महाराज जनमेजय ने सर्पयज्ञ प्रारम्भ किया तो उस यज्ञ के विभिन्न कर्मों के बीच में अवकाश मिलने पर जनमेजय कृष्ण द्वैपायन व्यास जी से प्रश्न करते और भगवान व्यास जी उन्हें विधिपूर्वक महाभारत की कथा सुनाते थे। इसी कथा को उग्रश्रवा जी ने राजा जनमेजय, सभासदगण तथा अन्य सभी भूपालों को सुनाया।

महाभारत के ऐसे अनेक पात्र हैं जिन पर अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से काव्य, महाकाव्य एवं उपन्यास लिखे हैं। महाभारत में वर्णित पात्रों को कहानीकारों एवं साहित्यकारों ने आधार बनाकर अनेकों कहानियों एवं साहित्यग्रंथों की रचना की है। भीम पर्व के अंतर्गत भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है जिसे श्रीमद भागवत गीता के नाम से धार्मिक ग्रंथ के रूप में प्रकाशित किया गया है जिसे हिंदु समाज अपने धर्म ग्रंथ के रूप में स्वीकार करता है जिस पर अनेकों विद्वानों की टीकायें उपलब्ध हैं।

इस ग्रंथ का अनेकों भाषाओं में अनुवाद भी किया गया है जिससे इसका महत्व स्वयं स्पष्ट है। इस प्रकार महाभारत को आधार बनाकर अनेकों धर्मग्रंथों की भी रचना की गई है। न्याय-अन्याय के विवेचन में आज भी महाभारत एवं गीता के उपदेशों को आधार माना जाता है। इस प्रकार महाभारत के श्लोक आप्तवचन हैं। इसीलिये इसे आधार मानकर अनेकों समाजशास्त्रियों एवं राजनीति विज्ञान विशारध थे तथा अर्थशास्त्रियों ने भी अपने धर्मग्रंथों में इसके विभिन्न श्लोकों को उद्धृत किया है। इसक प्रमुख कारण यह है कि महाभारत में उल्लिखित श्लोक आज भी विश्व समुदाय का मार्गदर्शन करने में समर्थ है। इस ग्रंथ के आदिपर्व में कहा गया है संसार में जितने भी श्रेष्ठ कवि होंगे, उनके काव्य के लिए यह मूल आश्रय होगा। जैसे मेघ सम्पूर्ण प्राणियों के लिए जीवनदाता है वैसे ही यह अक्षय भारत वृक्ष है।

सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति।
पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः।।

महाभारत पर संचार की दृष्टि से अभी तक अध्ययन का अभाव रहा है। संचार शास्त्र का अध्येता होने के कारण मैंने इस अभाव की पूर्ति करने की दिशा में एक सार्थक प्रयास किया है। आज पूरे विश्व के अनेक देशों में संचार शास्त्र को एक अनुशासन के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। भारत में आज भी संचार के पाश्चात्य सिद्धांतों को ही आधार मानकर अध्ययन-अध्यापन किया जा रहा है। संचार के पाठ्यक्रमों में भारतीय संचार दृष्टि को वह स्थान नहीं मिल पाया है जो मिलना चाहिये क्योंकि संचार की भारतीय दृष्टि पर अभी विशेष काम हुआ नहीं है। महाभारत में तत्कालीन समाज में प्रचलित अनेक संचार सिद्धांतों एवं प्रक्रियाओं का विवरण मिलता है जो आज भी विश्व के संचारशास्त्रियों के लिए प्रासंगिक है। मेरा यह शोध कार्य संचार की भारतीय दृष्टि के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है।

अध्ययन को सुविधा की दृष्टि मैंने इस शोध प्रबंध को कुल 15 अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम अध्याय महाभारतः एक परिचय है। इसमें महाभारत के सर्जक भगवान व्यास के मुख से इस ग्रंथ के बारे में बताये गये विचार की चर्चा की गई है। इसी अध्याय में महाभारत के महात्म्य का भी उल्लेख किया गया है। महाभारत के महात्मय के पूर्व इसके सभी 18 पर्वों में वर्णित दृष्टांत की तरफ संकेत किया गया है। हर पर्व में जितने अध्याय और श्लोकों की संख्या है उससे भी अवगत कराया गया है।

द्वितीय अध्याय 'संचारः अवधारणा एवं महत्व' शीर्षक से वर्णित है। इस अध्याय में संचार की अवधारणा स्पष्ट करते हुए मानव संचार के कार्यों एवं उसकी प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। महाभारत में वर्णित कुछ दृष्टान्तों के आधार पर संचार की प्रक्रिया की भारतीय अवधारणा के अनुरूप चर्चा की गई है।

तृतीय अध्याय आभ्यन्तर संचार का है। इसमें इस बात को स्पष्ट किया गया है कि हर प्रकार का संचार का बुनियादी आधार आभ्यान्तर संचार है। यह संचार मानव के अंदर उसकी सभी इन्द्रियों के माध्यम से होता है। महाभारत से कुछ प्रमुख दृष्टान्तों को लेकर इस अध्याय को स्पष्ट करने का

प्रयास किया गया है।

चतुर्थ अध्याय अंतरवैयक्तिक संचार एवं अंतरवैयक्तिक सम्बन्ध का है। इसमें अंतरवैयक्तिक संचार की परिभाषा, संचार कौशल, सम्बन्ध, सम्बन्ध के विभिन्न स्तर आदि का वर्णन किया गया है।

पांचवां अध्याय पारलौकिक अंतरवैयक्तिक संचार का है। वर्तमान समय में एनीमेशन का जो स्वरूप है उसमें काल्पनिक दृष्टि का बहुत प्रयोग किया जाता है। यह दृष्टि महाभारत में अनेक स्थलों पर वर्णित है। देव-देवताओं का मनुष्यों से संवाद, मानव का अपने पूर्वजों से संवाद, पूर्वजों का अपनी संतानों से विभिन्न रूपों में संवाद की अवधारणा महाभारत में अनेक स्थानों पर वर्णित है। कुछ प्रमुख उद्धरणों के आधार पर इस अध्याय को स्पष्ट किया गया है।

छठवां अध्याय समूह संचार से सम्बन्धित है। समूह संचार आधुनिक समय में ही नहीं वरन प्राचीन समय से ही महत्वपूर्ण रहा है। इस दृष्टि से इस अध्याय में छोटे एवं बड़े समूहों में संचार कैसे किया जाता है इस बात को इस अध्याय में स्पष्ट किया गया है।

सातवां अध्याय मानव एवं मानवेतर अंतरवैयक्तिक संचार का है। महाभारत में अनेक ऐसे उद्धरण मिलते हैं जिसमें इस बात का उल्लेख किया गया है कि मनुष्य, मनुष्य से ही नहीं, वरन पशु-पक्षियों एवं सर्पों आदि से भी संवाद करता रहा है। मानव का पशु-पक्षियों से किये जाने वाले संवाद को इस अध्याय में सम्मिलित किया गया है।

स्वप्न संचार नामक आठवें अध्याय में इस बात का उल्लेख किया गया है कि स्वप्न में प्रायः व्यक्ति को रजोगुण और तमोगुण दबा लेते हैं। वह कामना युक्त होकर दूसरे शरीर को प्राप्त हुए की भांति विचरता है। व्यक्ति में ज्ञान का अभ्यास करने से उसमें जागने की आदत होती है। तत्पश्चात विचार करने के लिए उसमें जागना अनिवार्य हो जाता है। उसी के साथ ही इस बात पर भी विशेष ध्यान दिया गया है कि स्वप्न में व्यक्ति अपने इन्द्रियों से देहधारी की भांति व्यवहार करता है। स्वप्न की अवस्थाओं को विभिन्न उद्धरणों द्वारा स्पष्ट किया गया है। इसी अध्याय में शुभ एवं अशुभ स्वप्न की स्थितियों का भी वर्णन महाभारत के आधार पर किया गया है।

नवां अध्याय अशाब्दिक संचार का है। इस अध्याय में अशाब्दिक संचार में अवाचिक संप्रेषण की अवधारणा, उसके प्रमुख आयाम, स्पर्श संचार, पराभाषा, अशाब्दिक संचार का महत्व आदि मुद्दों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

दसवां अध्याय दिव्य दृष्टि द्वारा संचार पर आधारित है। इस अध्याय में इस बात का उल्लेख किया गया है कि ऋषियों, मुनियों एवं देवताओं को दिव्य दृष्टि का वरदान देने की शक्ति प्राप्त थी। किसी भी पूर्ववर्ती घटना का विवरण एवं वर्तमान में घटित होने वाली घटनाओं का विवरण ऐसे पुरुषों को, जिनकी दृष्टि बाधित थी, को ऋषियों एवं देवताओं के वरदान से दिव्य दृष्टि द्वारा देखने का अवसर प्राप्त होता रहा है। महाभारत काल में आज की भांति जनसंचार के ऐसे साधन विकसित नहीं हुए थे जिनके द्वारा व्यक्ति दूर में घटित घटना का विवरण पा सके। यह कार्य दिव्य दृष्टि द्वारा होता था।

सार्वजनिक लोक विमर्श नामक अध्याय में इस बात का उल्लेख किया गया है कि महाभारत काल में समाज में लोक मुद्दों पर सामान्य जन कैसे विमर्श करते थे। अनेक ऐसी घटनायें थीं जो पांडव एवं कौरव से सम्बन्धित थीं, जिसका सामान्य लोगों से प्रत्यक्षतः कोई मतलब नहीं था। किंतु लोग उन घटनाओं पर भी अपने विचारों को व्यक्त करते थे।

बारहवां अध्याय आकाशवाणी विषय पर आधारित है। इसमें इस बात का विशेष उल्लेख किया गया है कि देव लोक से मर्त्य लोक में संदेशों को किस माध्यम से प्रेषित किया जाता था। महाभारत में अनेक ऐसे दृष्टांत मिलते हैं जिनमें देवता, मनुष्यों तक अपने संदेशों को आकाशवाणी के माध्यम से सम्प्रेषित करते थे।

महर्षि नारद का कल्याणकारी संचार नामक अध्याय में इस बात की चर्चा की गई है कि महर्षि नारद लोक कल्याण हेतु संदेशों को संग्रहित करते थे और उन संदेशों की व्याख्या लोक हित को ध्यान में रखते हुए करते थे तथा उसे निर्धारित लक्ष्यों तक सम्प्रेषित भी करते थे। महर्षि नारद त्रिकालदर्शी थे वे जब जहाँ चाहते थे वहाँ पहुँच जाते थे और लोकहित में अपने विचारों को अभिव्यक्त करते थे।

परम्परागत संचार नामक अध्याय में तत्कालीन समाज में प्रचलित

परंपरागत संचार माध्यमों जैसे वाद्य यंत्रों, नृत्य, गीत-संगीत आदि का विवरण प्रस्तुत किया गया है। तत्कालीन समाज में परंपरागत संचार साधनों का उपयोग किसी विशेष अवसर पर ही होता था। इन साधनों द्वारा लोगों का मनोरंजन तो होता ही था, साथ ही साथ लोग इन साधनों को देख एवं सुनकर घटनाओं के संदर्भ में संभावित जानकारी भी प्राप्त करते थे।

संचार के प्रमुख सिद्धांत नामक पंद्रहवें अध्याय में सिद्धांत क्या है इसे स्पष्ट करते हुए महाभारत कालीन संचार सूत्रों में प्रचलित प्रमुख सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है। यह अध्याय इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि संचार के विभिन्न सिद्धांत एवं अवधारणायें जिनका अध्ययन हमारे समाज में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा वर्णित आधार पर किया जाता है, को निर्मूल सिद्ध किया गया है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में स्थापित है फिर भी संचार के सिद्धांतों के लिए हम पाश्चात्य विचारों को महत्व देते हैं जिसकी वर्तमान समाज में बहुत अधिक आवश्यकता नहीं है। हमारे प्राचीन धर्मग्रंथों में संचार के अनेक सिद्धांत मौजूद हैं जिन्हें लोगों के समक्ष लाने की आवश्यकता है। इस अध्याय में किस अवस्था में किस प्रकार के सिद्धांतों का प्रयोग किया जाना चाहिए इस तथ्य को स्पष्ट किया गया है।

संवाद वाहन के साधन नामक अध्याय में संचार सूत्र (व्यवस्था) के लिए गुप्तचरों का प्रयोग किया जाता था। ये गुप्तचर सूचनायें संकलित कर लक्षित समूह/व्यक्ति तक पहुँचाने का कार्य करते थे। इसके अतिरिक्त संवादों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने के लिए देवदूत, राजदूत की भी व्यवस्था होती थी। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में दूत एवं गुप्तचर व्यवस्था का वर्णन किया गया है। इस अध्याय में भी ऐसी व्यवस्थाओं को विशेष रूप से उल्लेखित किया गया है।

महाभारतकालीन संचार में नैतिक मूल्य नामक अध्याय में संचार की दृष्टि से नैतिक मूल्यों की चर्चा की गई है। वस्तुतः संचार एक द्विधारी तलवार है जिसके एक धार पर प्रेम, परस्पर सौहार्द्र, बन्धुत्व आदि होते हैं तो दूसरी धार पर शत्रुता एवं कटुता की शक्ति भी होती है। ऐसी स्थिति में किस परिस्थिति में किस धार का प्रयोग करना चाहिए यह समझना कठिन होता है। सामान्यतया लोग दूसरी धार का उपयोग करते हैं जो परस्थितियों के अनुसार

कटुता एवं शत्रुता उत्पन्न करती है। इसलिये संचार के नैतिक मूल्यों का जानना आवश्यक होता है।

उपसंहार में पूरे अध्ययन के संक्षिप्त निष्कर्ष की चर्चा करते हुए वर्तमान संचार व्यवस्था एवं अध्ययन के लिए कुछ भारतीय संचार सूत्र से संबंधित कुछ सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं।

महाभारत ज्ञान का एक ऐसा अथाह महासागर है जिसमें व्यक्ति जितनी बार गोता लगाये, उतनी ज्ञान राशि उसे प्राप्त होती है। मैंने एक वर्ष के अध्ययन अवकाश में इस महासागर में गोता लगाने का एक लघु प्रयास किया है। संचार की दृष्टि से मेरे इस प्रयास में एक वर्ष में जो कुछ ज्ञान प्राप्त हो सका है उसका विवरण मेरे द्वारा इस पुस्तक में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। मैं यह दावा नहीं करता कि यही अंतिम है। अभी भी महाभारत रूपी महासागर में गोता लगाने की आवश्यकता है। फिर कभी अवसर मिलने पर आगे कुछ और करने का प्रयास करूंगा क्योंकि इस महासागर में ज्ञान की अगणित राशियाँ उपलब्ध हैं।

इस अध्ययन के लिऐ मुझे विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. बृज किशोर कुठियाला ने विश्राम अवकाश (अध्ययन प्रोत्साहन अवकाश) स्वीकृत कर मेरा उत्साहवर्धन करते हुए मार्गदर्शक की भूमिका का भी निर्वाह किया। यदा-कदा जब वे मिलते थे तो पूछते थे कि अभी तक कितना काम हुआ? अभी कितना समय और लगेगा? मैं समझता हूँ कि उनके ऐसे प्रश्न मुझे कार्य के प्रति सचेष्ट करने का एक तरीका था। मैं उनके मार्गदर्शन, अवकाश स्वीकृति तथा प्रोत्साहन हेतु हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मैं विश्वविद्यालय के वर्तमान कुलपति श्री जगदीश उपासने से समय-समय पर की गई चर्चा एवं परोक्ष सहयोग के लिए उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। विश्वविद्यालय के कुलाधिसचिव श्री लाजपत आहूजा एवं श्री दीपक शर्मा (निदेशक सम्बद्ध अध्ययन संस्थाएं) एवं कुलसचिव एवं विभागाध्यक्ष जनसंचार विभाग प्रो. संजय द्विवेदी को प्रोत्साहन हेतु हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। मैं अपने लेखन के प्रेरणा स्रोत प्रख्यात समालोचक प्रो. विजय बहादुर सिंह को समय-समय पर लेखन के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने एवं प्रोत्साहन देने हेतु कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर के कुलपति प्रो. कपिल देव मिश्र भी कुछ उपयोगी सुझाव देकर मेरा उत्साहवर्धन करते रहते थे। एतदर्थ मैं उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। पत्रकारिता विभाग की विभागाध्यक्ष डॉ. राखी तिवारी, जनसंपर्क विभागाध्यक्ष प्रो. पवित्र श्रीवास्तव एवं प्रबंधन विभागाध्यक्ष प्रो. अविनाश वाजपेयी द्वारा किये गये उत्साहवर्धन के लिए मैं धन्यवाद व्यक्त करता हूँ। मेरे इस अध्ययन को त्वरित गति से सम्पन्न कराने में जिन विद्वानों एवं मित्रों का सहयोग प्राप्त हुआ है उनमें श्री लल्लन चौबे, प्रोफेसर कमल दीक्षित, श्री अनुराग सीठा, दीपेन्द्र सिंह बघेल, चंद्रमोहन गुर्जर, श्री अनिल पांडेय, डॉ. चंदन सिंह एवं श्री जगमोहन सिंह राठौर, श्री राहुल भार्गव, श्री हरिराम नापित एवं माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ. आरती सारंग एवं संतोष के. के प्रति धन्यवाद एवं शुभकामनायें ज्ञापित करता हूँ। कहने में कोई संकोच नहीं है कि इस पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करने में यदि श्री रेवती रमण मिश्र का सहयोग नहीं मिला होता तो यह कार्य अत्यन्त दुष्कर हुआ होता। एतदर्थ मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

वरिष्ठ पत्रकार एवं राष्ट्रीय एकता परिषद के उपाध्याय श्री रमेश शर्मा तथा प्रो. (डॉ.) ओम प्रकाश सिंह, निदेशक, मदन मोहन मालवीय, हिंदी पत्रकारिता संस्थान महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी तथा माधवराव सप्रे समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान के संस्थापक-संयोजक पद्मश्री विजयदत्त श्रीधर एवं निदेशक डॉ. मंगला अनुजा द्वारा किये गये सहयोग के लिए आभार प्रकट करता हूँ।

श्रीकांत सिंह

अध्याय 1
महाभारत : एक परिचय

भारतीय ज्योतिष सिद्धान्तानुसार और महाभारत में उल्लिखित तथ्यों के आधार पर इस ग्रंथ को महाराज युधिष्ठिर के पौत्र एवं राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय को महर्षि वेदव्यास के शिष्य वैशम्पायन ने कलियुगारम्भ के 84वें वर्ष में विक्रम सम्वत् पूर्व 3961 और ईस्वी सन् पूर्व 3018 वर्ष में सुनाया। ऐसी मान्यता प्राचीन काल से भारतीय समाज में प्रचलित रही है और इसकी पुष्टि भारतीय ज्योतिषियों ने की है।

'शिशुपालवध' के टीकाकार (संवत् 977) श्रीवल्लभदेव, श्रीराजशेखर (सं 957) विक्रम के आठवीं शताब्दी में आचार्य आनन्दवर्द्धन, सप्तम शताब्दी में आचार्य दण्डी, दण्डी के पूर्व के महाकवि वाण, इनसे भी प्राचीन मीमांसाशास्त्र के व्याख्याता भट्टपादकुमारिल, कविकुलगुरु कालिदास, बौद्धविद्वान धर्मकीर्ति आदि महाभारत को एक लाख श्लोक का ग्रंथ मानते हुए इसके रचयिता महर्षिकृष्णद्वैपायन व्यास जी का उल्लेख करते हैं।

महाभारत भारतीय सनातन धर्म एवं भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। यह वैविध्य रत्नों का अनुपम कोश है। इसके रचयिता भगवान वेद व्यास हैं। इस निधि के रचने में प्रारम्भ में ऐसा लग रहा था कि इस ग्रन्थ को लिखने वाला कोई नहीं है। भगवान वेदव्यास के समक्ष यह चिन्तनीय विषय था। तब ब्रह्मा जी ने कहा- "व्यास जी! संसार में विशिष्ट तपस्या और विशिष्ट कुल के कारण जितने भी श्रेष्ठ ऋषि-मुनि हैं, उनमें मैं तुम्हें सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ; क्योंकि तुम, जगत, जीव और ईश्वर तत्व का जो ज्ञान है, उसके ज्ञाता हो। मैं जानता हूँ कि आजीवन तुम्हारी ब्रह्मवादिनी वाणी सत्य भाषण करती रही है और तुमने अपनी रचना को काव्य कहा है, इसलिये अब यह काव्य के नाम से प्रसिद्ध होगी।"[1]

काव्य

ब्रह्मा जी ऐसा कहकर अन्तर्ध्यान हो गये। तत्पश्चात भगवान व्यास

जी ने विघ्न विनाशक गणेश जी का स्मरण किया, गणेश जी का स्मरण करते ही वे वहाँ उपस्थित हो गये जहाँ व्यास जी थे। व्यास जी ने कहा- "गणनायक! आप मेरे द्वारा निर्मित इस महाभारत ग्रंथ के लेखक बन जाइये; मैं बोलकर लिखाता रहूँगा। मैंने मन ही मन इसकी रचना कर ली है।"[2] तदुपरांत गणेश जी ने कहा- "व्यास जी! यदि लिखते समय क्षण भर के लिये भी मेरी लेखनी न रूके तो मैं इस ग्रंथ का लेखक बन सकता हूँ।" तब व्यास जी ने कहा- "बिना समझे किसी भी प्रसंग में एक अक्षर भी न लिखियेगा। विघ्न विनाशक गणेश जी ने ऊँ कहकर स्वीकार किया और इस ग्रंथ के लेखक बन गये। इस प्रकार भगवान व्यास महाभारत के रचयिता और गणेश जी इसके लेखक बने।

पुण्यकर्मा मानवों के उपाख्यानों सहित एक लाख श्लोकों का यह उत्तम ग्रंथ आद्य भारत (महाभारत) कहलाया। तदनंतर व्यास जी ने उपाख्यान भाग को छोड़कर चौबीस हजार श्लोकों की एक भरत संहिता बनाई जिसे विद्वान पुरुष भारत कहते हैं। तत्पश्चात भगवान व्यास ने डेढ़ सौ श्लोकों में वर्णित वृत्तांतों की एक अनुक्रमणिका (सूची) बनाई और उन्होंने सर्वप्रथम इस ग्रन्थ का अपने पुत्र शुकदेव को अध्ययन कराया। तदनंतर उन्होंने दूसरे शिष्यों को इसका उपदेश दिया। तत्पश्चात भगवान व्यास जी ने साठ लाख श्लोकों की एक दूसरी संहिता बनाई जिसमें तीस लाख श्लोक देवलोक में समादृत हो रहे हैं। पंद्रह लाख पितृलोक में तथा गंधर्व लोक में चौदह लाख श्लोकों का पाठ होता है।

शेष एक लाख श्लोकों का आद्य भारत (महाभारत) मर्त्य लोक में प्रतिष्ठित है। भगवान नारद ने देवताओं को और महर्षि असित-देवल ने पितरों को इसका श्रवण कराया है। इस ग्रंथ में इतिहास और पुराणों का मंथन करके उसका प्रशस्त रूप प्रकट किया गया है। इसमें भूत, वर्तमान एवं भविष्य काल की तीनों संज्ञाओं का वर्णन हुआ है।

महाभारत की विषय वस्तु

लौकिक और वैदिक सभी प्रकार के ज्ञान को प्रकाशित करने वाली सम्पूर्ण वाणी स्वरों एवं व्यंजनों के रूप में जैसे समायी रहती है। वैसे लोक परलोक एवं परामर्श सम्बन्धी सम्पूर्ण उत्तम विद्या बुद्धि इस श्रेष्ठ इतिहास में

समायी हुई है। वस्तुतः महाभारत इतिहास ज्ञान का अनुपम भंडार है। यह सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ और उनका अनुभव कराने वाले युक्तियों से भरा पड़ा है। इसमें वेदों के रहस्य और विस्तार, उपनिषदों के सम्पूर्ण सार, इतिहास पुराणों के उन्मेष और निमेष, चतुष्वर्णीय के विधान, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि के परिमाण, न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, वस्तु शिल्प, कला शिल्प, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आदि का सुंदर चित्रण दृष्टिगोचर होता है। तीर्थों, पुण्य देशों, वनों, पर्वतों, नदियों तथा समुद्रों का भी वर्णन इसमें किया गया है। यह गूढ़ार्थमय ज्ञान-विज्ञान शास्त्र है। इसमें भारतीय षष्ठदर्शन का भी समावेश है। गीता का कर्मयोग, भक्ति योग एवं ज्ञान योग भी इसी का फल है। यह आध्यात्म शास्त्र, पारलौकिक अंतरवैयक्तिक संचार के अतिरिक्त आर्य जाति का इतिहास है। इस ग्रंथ में मानव संचार शास्त्र, मानवेतर जैविक संचार एवं प्रकृति से संवाद का वृहद चित्रण उपस्थित है। महाभारत ऐसा ग्रंथ है जिसमें तीनों लोकों के संचार सूत्रों का सूक्ष्म विवरण भी दृष्टिगोचर होता है। इसकी सबसे बड़ी एवं अति महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें एक अद्वितीय, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वलोक महेश्वर, परम योगेश्वर, अचिन्त्यानन्त गुण सम्पन्न, सृष्टि, स्थिति, प्रलयकारी, अद्भुत लीलाधारी, निखिल रसामृत सिन्धु, प्रेमधन, विग्रह, सच्चिदानंद धन, देवकी नंदन वासुदेव भगवान श्रीकृष्ण के गुण गौरव का गान है। इसीलिये उपनिषद ऋषियों ने इसे 'पंचम वेद' बताकर इसकी सर्वोपरि महत्ता स्वीकार किया है। इसमें अनेकों स्थान पर काल की भी चर्चा की गई है। इसमें प्रमुख रूप से 18 पर्व हैं जिनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है।

1. आदि पर्व-

अध्यायानां शते द्वे तु संख्याते परमर्षिणा।
सप्तविंशतिरध्याया व्यासेनोत्तमतेजसा।[3]

परमर्षि एवं परम तेजस्वी महर्षि व्यास ने इस पर्व में दो सौ सत्ताईस (227) अध्यायों की रचना की है।

अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।
श्लोकाश्च चतुराशीतिर्मुनिनोक्ता महात्मना।[4]

महात्मा व्यास मुनि ने इन दो सौ सत्ताइस (227) अध्यायों में आठ

हजार आठ सौ चौरासी (8,884) श्लोक कहे हैं।

इस पर्व के प्रथम अध्याय में पूर्वानुक्रमणी है। इसमें अधिकांश विषयों की संक्षिप्त सूची तथा इसमें पाठ की महिमा का वर्णन है। इसे अनुक्रमणिका पर्व भी कहते हैं। इसका दूसरा अध्याय पर्व संग्रह है। इसमें सभी पर्वों के बारे में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात, पौष्य, पौलोम, आस्तीक और आदि अंशावतरण पर्व है। तदअनुसार अद्‌भुत एवं रोमांचकारी संभव पर्व है। इसमें मारीची आदि महर्षियों, कश्यप पत्नियों की संतान, परम्परा, दुष्यंत शकुंतला संवाद, आकाशवाणी द्वारा शकुंतला की बुद्धि का समर्थन एवं भरत का राज्याभिषेक का चित्रण किया गया है। इसी पर्व में राजा ययाति और अष्टक का संवाद, पुरुवंश का वर्णन राजा प्रतीक का गंगा को पुत्र रूप में स्वीकार करना, शांतनु और गंगा का कुछ शर्तों के साथ सम्बन्ध, भीष्म की उत्पत्ति एवं सत्यवती के गर्भ से चित्रांगद एवं विचित्रवीर्य की उत्पत्ति, भीष्म प्रतिज्ञा, धृतराष्ट्र, पांडु एवं विदुर की उत्पत्ति, कौरव एवं पांडवों की उत्पत्ति, कर्ण का जन्म आदि का विशद विवेचन दर्शनीय है।

तत्पश्चात जतुगृह (लाक्षा भवन) पर्व है। जतुगृह से पाण्डवों का गोपनीय रूप से वन में जीवन व्यतीत करने का उल्लेख इस पर्व में है। हिडिम्बा के गर्भ से भीमसेन द्वारा घटोत्कच की उत्पत्ति का विवरण भी इसमें दिया गया है। फिर हिडिम्बावध पर्व है। इसी प्रकार क्रमशः बकवध पर्व तथा चैत्ररथ पर्व है। उसके बाद पांचाल कुमारी द्रोपदी के स्वयंवर पर्व का तथा क्षत्रिय धर्म से सब राजाओं पर विजय प्राप्ति पूर्वक वैवाहिक पर्व का वर्णन है। भगवान व्यास द्वारा महाराज द्रुपद को अपनी पुत्री का पांचों पाण्डवों के साथ विवाह करने के लिये भगवान व्यास द्वारा उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान कर द्रोपदी के पूर्व जन्म के वृत्तांत का वर्णन किया गया है। विदुरागमन राज्यलम्भस्तथैव पर्व तत्पश्चात अर्जुन वनवास पर्व एवं सुभद्राहरण पर्व का उल्लेख है।

सुभद्राहरण के बाद हरणाहरण पर्व है। तत्पश्चात खाण्डवदाह पर्व है। आदि पर्व के अंतर्गत अन्तिम पर्व के रूप में मयदर्शन पर्व का उल्लेख किया गया है। इसी पर्व में खाण्डव वन का विनाश और मयासुर की रक्षा, शाऽ. कोपाख्यान जरिता और उसके बच्चों का संवाद, मन्दपाल का अपने

बाल-बच्चों से मिलना, भगवान इन्द्र का श्रीकृष्ण और अर्जुन को वरदान, श्रीकृष्ण अर्जुन और मयासुर का अग्नि से विदा लेकर यमुना तट पर बैठने का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

2. सभा पर्व-

इस पर्व में कुल अठहत्तर (78) अध्याय हैं जिनमें श्लोकों की कुल संख्या दो हजार पाँच सौ ग्यारह (2511) है।

अध्यायाः सप्ततिर्ज्ञेयास्तथा चाष्टौ प्रसंख्यया।
श्लोकाश्चैकादश ज्ञेयाः पर्वण्यस्मिन् द्विजोत्तमाः।[5]

इस पर्व में अनेक वृत्तांतों का वर्णन है। पाण्डवों का इन्द्रप्रस्थ में सभा निर्माण, किंकर नामक राक्षसों का दीखना, महर्षि नारद द्वारा लोकपालों की सभा का वर्णन, युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ का आरम्भ, जरासन्ध वध, गिरिव्रज में बन्दी राजाओं का श्रीकृष्ण के द्वारा छुड़ाया जाना और पाण्डवों की दिग्विजय का वर्णन है। अर्धाभिहरण पर्व में राजसूययज्ञ में ब्राह्मणों एवं राजाओं का समागम, देवर्षि नारद द्वारा श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन, शिशुपाल के आक्षेपपूर्ण वचन, युधिष्ठिर का शिशुपाल को समझाना तथा भीष्म द्वारा उसके आक्षेपों का उत्तर देना वर्णित है। शिशुपाल वध नामक पर्व में भीष्म की बातों से चिढ़े हुए शिशुपाल का उन्हें फटकारना। भीमसेन द्वारा शिशुपाल पर क्रोध तथा भगवान श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध का उल्लेख मिलता है। धुत पर्व में भगवान व्यास की भविष्यवाणी से युधिष्ठिर की चिन्ता और समत्वपूर्ण व्यवहार करने की प्रतिज्ञा, द्वय द्वारा इन्द्रप्रस्थ में निर्मित सभा भवन का दुर्योधन द्वारा अवलोकन तथा पग-पग पर भ्रम के कारण उपहास का पात्र बनना, युधिष्ठिर का वैभव देखकर चिन्तित होना, द्युत क्रीड़ा के लिए धृतराष्ट्र को तैयार करना, विदुर का दुर्योधन को फटकारना, द्युत क्रीड़ा में छल द्वारा युधिष्ठिर पर विजय, द्रोपदी का केश पकड़कर सभा में दुःशासन द्वारा घसीटते हुए लाया जाना, द्रोपदी का सभासदों से प्रश्न करना एवं चेतावनीयुक्त विलाप, श्रीकृष्ण द्वारा द्रोपदी की चीरहरण से रक्षा, धृतराष्ट्र का युधिष्ठिर को सारा धन वापस देकर समझा-बुझाकर इन्द्रप्रस्थ वापस जाने के आदेश का रोमांचकारी चित्रण दृष्टिगोचर होता है।

इस सभा पर्व का अन्तिम पर्व अनुद्यूत पर्व है। इसमें धृतराष्ट्र को दुर्योधन द्वारा अर्जुन की वीरता का वर्णन करते हुए पुनः द्युत क्रीड़ा के लिए पाण्डवों को बुलाने की स्वीकृति, गान्धारी का धृतराष्ट्र को चेतावनी और धृतराष्ट्र द्वारा उस चेतावनी की अस्वीकृति, युधिष्ठिर का पुनः जुआ खेलना और पराजित होना, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव द्वारा शत्रुओं को मारने की भीषण प्रतिज्ञा करना तथा पराजित युधिष्ठिर का पाण्डवों एवं कुन्ती सहित वन गमन करने का निश्चय एवं द्रोपदी का अपनी सास कुन्ती से विदा लेना, कुन्ती का विलाप, शोकातुर प्रजाजनों के विषय में धृतराष्ट्र एवं विदुर का संवाद तथा शरणागत कौरवों का द्रोणाचार्य का आश्वासन का विवेचन किया गया है।

3. वन पर्व-

महाभारत का तीसरा पर्व 'वन पर्व' के नाम से विख्यात है। इस पर्व में कुल दो सौ उनहत्तर (269) अध्याय हैं जिनमें कुल ग्यारह हजार छह सौ चौंसठ (11464) श्लोक हैं।

एकोनसप्ततिश्चैव तथाध्यायाः प्रकीर्तिताः।
एकादशसहस्राणि श्लोकानां षट् शतानि च।
चतुःषष्टिस्तथाश्लोकाः पर्वण्यस्मिन् प्रकीर्तिताः।।[6]

द्युत क्रीड़ा में युधिष्ठिर के पराजित होने के पश्चात जब पाण्डव वनवास के लिये यात्रा पर निकले तो उनके पीछे अनेकों पुरवासी भी चलने लगे। युधिष्ठिर ने अपने अनुयायी ब्राह्मणों के भरण-पोषण के लिये अन्न और औषधियाँ प्राप्त करने के उद्देश्य से सूर्य भगवान की आराधना की। परिणामस्वरूप सूर्य भगवान की कृपा से उन्हें अक्षय पात्र मिला। इधर महात्मा विदुर धृतराष्ट्र को हितकारी उपदेश दे रहे थे परन्तु धृतराष्ट्र ने उनका त्याग कर दिया। धृतराष्ट्र के परित्याग करने के पश्चात महात्मा विदुर पाण्डवों के पास चले गये और पुनः धृतराष्ट्र का आदेश प्राप्त करने पर वापस आ गये। इधर दुर्योधन ने कर्ण के प्रोत्साहन से वनवासी पाण्डवों को मार डालने का विचार किया। दुर्योधन के इस कुत्सित भाव को जानकर महर्षि व्यास वहाँ आ गये और उन्होंने दुर्योधन की यात्रा का निषेध कर दिया।

मैत्रेय ऋषि ने आकर महाराज धृतराष्ट्र को उपदेश दिया और दुर्योधन को शाप दे दिया।

इस पर्व में यह कथा भी वर्णित है कि युद्ध में भीमसेन ने किर्मीर को मार डाला। पाण्डवों के पास वृष्णिवंशी और पांचाल आये। पाण्डवों ने इन सबके साथ संवाद किया। इधर भगवान श्रीकृष्ण भी छलपूर्वक जुये में हराये गये पाण्डवों के बारे में सुना तो वे भी कुपित हो गये। परन्तु अर्जुन ने उन्हें शान्त किया। महर्षि व्यास द्वारा सौमवध की कथा कहने का उल्लेख भी इस पर्व में वर्णित है। श्रीकृष्ण, सुभद्रा को द्रोपदी पुत्रों सहित द्वारका ले गये। तदनंतर पाण्डवों ने द्वैतवन में प्रवेश किया। इस पर्व में युधिष्ठिर एवं द्रोपदी संवाद तथा युधिष्ठिर एवं भीमसेन संवाद का भलीभाँति चित्रण किया गया है। भगवान व्यास भी पाण्डवों के पास आकर उन्हें 'प्रतिस्मृति' नामक मंत्र दिया। तत्पश्चात पाण्डवों ने काम्यक वन की तरफ प्रस्थान किया और वीर धनुर्धारी अर्जुन अस्त्र-शस्त्र प्राप्त करने के लिये अपने भाइयों से अलग चले गये। किरात वेशधारी भगवान महादेव के साथ अर्जुन का युद्ध हुआ। लोकपालों के दर्शन हुए और अस्त्र की प्राप्ति हुई। अर्जुन अस्त्र प्राप्ति हेतु इन्द्रलोक में चले गये। यह समाचार सुनकर धृतराष्ट्र को बड़ी चिन्ता हुई। तत्पश्चात धर्मराज युधिष्ठिर को शुद्ध हृदय महर्षि वृहदश्व का दर्शन हुआ। युधिष्ठिर ने उन्हें अपनी दुःखगाथा सुनाई। इसी प्रसंग में नलोपाख्यान आता है। दमयन्ती का धैर्य और नल का चरित्र चित्रण भी इसी पर्व में दृष्टिगोचर होता है। स्वर्ग से महर्षि लोमश का पाण्डवों के पास आने का वर्णन भी इसी पर्व में किया गया है। महर्षि लोमश ने पाण्डवों को स्वर्ग में अर्जुन के अस्त्र-विद्या सीखने के सन्दर्भ में जानकारी दी। अर्जुन का पाण्डवों को तीर्थयात्रा हेतु सन्देश भी महर्षि लोमश ने दिया। महर्षि नारद द्वारा पुलस्त्यतीर्थ की यात्रा करने की प्रेरणा भी पाण्डवों को दी गई। देवाधिदेव इन्द्र द्वारा कर्ण को कुण्डलों से वंचित करने का तथा राजा गय के यज्ञ वैभव का वर्णन किया गया है। इसी पर्व में महर्षि अगस्त्य का लोपमुद्रा के साथ समागम का वर्णन भी है। कौमार ब्रह्मचारी ऋष्यश्रृंग तथा परम तेजस्वी जमदग्निनन्दन परशुराम के चरित्र का भी उल्लेख किया गया है। महर्षि च्यवन एवं मान्धाता की कथा का भी उल्लेख

इस पर्व में किया गया है। इसके बाद श्येन (बाज) और कपोत (कबूतर) का सर्वोत्तम उपाख्यान जिसमें इन्द्र और अग्नि राजा शिबि की परीक्षा लेने हेतु उपस्थित हुए हैं, का चित्रण किया गया है।

विदेहराज जनक के यज्ञ में अष्टावक्र का वरुण के पुत्र बन्दी के साथ शास्त्रार्थ का उल्लेख है जिसमें अष्टावक्र ने बन्दी को पराजित कर समुद्र में डाले हुये अपने पिता को प्राप्त किया। वन में द्रोपदी ने सौगन्धिक कमल लाने के लिये भीमसेन को गन्धमादन पर्वत पर भेजा। रास्ते में महाबली भीम का कदलीवन में पवनसुत हनुमान का दर्शन हुआ। सौगान्धिक कमल के लिये भीमसेन का राक्षसों एवं महाशक्तिशाली मणिमान आदि यक्षों के साथ हुए युद्ध का वर्णन है। पाण्डवों का कुबेर के साथ समागम एवं सव्यसाची अर्जुन का आकर उनसे मिलने का प्रसंग भी इसी पर्व में वर्णित है। सव्यसाची अर्जुन दिव्य अस्त्र प्राप्त कर लिये और हिरण्यपुरवासी निबांत कवच दानवों के साथ घोर युद्ध किये थे। इसका विवरण अर्जुन अपने अस्त्र का प्रदर्शन महाराज युधिष्ठिर के समक्ष करना चाहा तो महर्षि नारद ने आकर उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। जब पाण्डव गन्धमादन पर्वत से नीचे उतर रहे थे तो अजगर वेशधारी नहुष ने भीमसेन को पकड़ लिया। धर्मराज युधिष्ठिर ने नहुष के प्रश्नों को उत्तर देकर भीमसेन को छुड़ा लिया। तत्पश्चात पाण्डव काम्यक वन में आये। यहीं भगवान श्रीकृष्ण भी पाण्डवों से मिलने आये। यहीं पाण्डव का महामुनि मार्कण्डेय के साथ समागम हुआ।

यहीं महर्षि मार्कण्डेय ने पाण्डवों को बहुत से उपाख्यान सुनाये जिसमें राजा इन्द्रद्युम्न का उपाख्यान तथा धुन्धुमार की कथा उल्लेखनीय है। द्रोपदी और सत्यभामा का संवाद भी इसी पर्व में वर्णित है। तदनंतर पाण्डव पुनः द्वैतवन में आये। इसी समय गन्धर्वों ने दुर्योधन को बन्दी बनाकर ले जा रहे थे तब सव्यसाची अर्जुन ने गन्धर्वों को पराजित कर दुर्योधन को छुड़ाया। फिर पाण्डव काम्यक वन में आ गये। इसी पर्व में दुर्वासा जी का उपाख्यान और जयद्रथ के द्वारा आश्रम से द्रोपदी के हरण की कथा का भी वर्णन किया गया है। द्रोपदी का जयद्रथ द्वारा हरण करने के पश्चात महाबली भीमसेन ने उसका पीछा किया और उसके सिर के सारे बाल मूँड़कर उसमें पाँच चोटियाँ

रख दी।

बन पर्व में ही रामायण का भी उपाख्यान है जिसमें भगवान श्रीरामचन्द्र जी ने युद्धभूमि में अपने पराक्रम से लंकापति रावण का वध किया है। तत्पश्चात सती सावित्री का उपाख्यान एवं इन्द्र द्वारा कर्ण को कुण्डलों से वंचित करने की कथा के उल्लेख के साथ कर्ण को इन्द्र द्वारा अमोघ शक्ति प्राप्त करने का भी वर्णन है। इसके बाद अरणेय उपाख्यान है जिसमें धर्मराज ने अपने पुत्र युधिष्ठिर को उपदेश दिया है। युधिष्ठिर ने अपने भाइयों सहित अपने पिता धर्मराज से वरदान प्राप्त कर पश्चिम दिशा की यात्रा की।

4. विराट पर्व-

इस पर्व में कुल सड़सठ (67) अध्याय हैं जिसमें श्लोकों की कुल संख्या दो हजार पचास (2050) है।

सप्तषष्टिरथो पूर्णा श्लोकानामपि मे श्रृणु।
श्लोकानां द्वे सहस्रे तु श्लोकाः पंचाशदेव तु।
उक्तानि वेदविदुषा पर्वण्यस्मिन् महर्षिणा।
उद्योगपर्व विज्ञेयं पंचमं श्रृण्वतः परम्।[7]

द्युत क्रीड़ा में पराजित पाण्डवों को 12 वर्ष वन में तथा एक वर्ष अज्ञातवास करने की शर्त थी। बारह वर्ष व्यतीत होने के पश्चात पाण्डवों ने अज्ञातवास के लिये विराट नगर में जाकर एक श्मशान के पास शमी का वृक्ष देखा उसी पर उन्होंने अपने समस्त अस्त्र-शस्त्र रख दिये। तदन्तर पाण्डव नगर में प्रवेश किये और छद्मवेश में वहाँ रहने लगे। अपनी जीविका के लिये पाण्डवों में श्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर राजा विराट के यहाँ कंक नामक ब्राह्मण बनकर रहे। इसी प्रकार भीमसेन वल्लव (पाकशाला अध्यक्ष) अर्थात रसोइया तथा अर्जुन वृहन्नला बनकर अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाकर रहे। नकुल अश्ववन्ध होकर कोड़ों की देखभाल करने लगे। सहदेव तन्तिपाल नाम से गौवों की देखभाल करने लगे। महारानी द्रोपदी सैरन्ध्री बनकर महारानी सुदेषणा की सेवा करने लगी।

राजा विराट का साला कीचक जो उनका मंत्री भी था, स्वभाव से दुष्ट था। द्रोपदी को देखते ही उसका मन कामवाण से घायल हो गया। वह द्रोपदी

के पीछे पड़ गया। एक दिन उसने द्रोपदी के साथ अभद्र व्यवहार किया। इस अपराध के कारण भीमसेन ने उसे मार डाला। यह कथा कीचक वध के नाम से इसी पर्व में वर्णित है।

इधर कौरवराज दुर्योधन पाण्डवों का पता लगाने के लिये अनेकों निपुण गुप्तचरों को हर तरफ भेज दिया। परन्तु वे गुप्तचर पाण्डवों की किसी भी गतिविधि का पता लगाने में सफल न हो सके। इन्हीं दिनों त्रिगर्तों ने विराट नरेश की गौवों का अपहरण कर लिया। राजा विराट ने त्रिगर्तों के साथ अपनी गौओं को छुड़ाने हेतु घमासान युद्ध किया, जिसमें त्रिगत उन्हें पकड़कर ले जा रहे थे तब महा बलशाली भीम सेन ने त्रिगर्तों को पराजित कर उन्हें छुड़ाया। साथ ही पाण्डवों ने विराट नरेश की गौओं को भी मुक्त कर लिया। तत्पश्चात कौरवों ने विराट नगर पर चढ़ाई करके महाराज विराट की गायों को लूटना प्रारम्भ कर दिया। इस अवसर पर सव्यसाची अर्जुन ने अपने पराक्रम से संग्राम भूमि में सम्पूर्ण कौरवों को पराजित कर दिया और महाराज विराट के गोधन को लौटाकर उन्हें दे दिया।

इस प्रकार पाण्डव विराट नगर में छद्‌मवेश में रहते हुए एक वर्ष व्यतीत किये। जब उनकी पहचान हो गई तब महाराज विराट ने अपनी पुत्री उत्तरा को शत्रुघाती सुभद्रानन्दन वीर अभिमन्यु से विवाह करने के लिए अर्जुन को दे दिया।

5. उद्योग पर्व-

यह महाभारत का पंचम पर्व है। इसमें कुल एक सौ छियासी (186) अध्याय हैं। इस पर्व में कुल 6698 श्लोकों में अनेकों मनोरम वृत्तांत हैं।

अध्यायानां शतं प्रोक्तं षडशीतिर्महर्षिणा।
श्लोकानां षट्सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च।
श्लोकाश्च नवतिः प्रोक्तस्तथैवाष्टौ महात्मना।।[1]

द्युतक्रीड़ा में पराजित युधिष्ठिर द्युत की शर्तों के अनुसार बारह वर्ष का वनवास एवं एक वर्ष का अज्ञातवास पूर्ण कर वापस आये तो वे पाण्डवों सहित उपलव्य नगर में रहने लगे। तदुपरांत दुर्योधन और अर्जुन विजय की आकांक्षा से भगवान श्रीकृष्ण के पास उपस्थित हुए। दोनों ने युद्ध में

अपनी-अपनी सहायता करने हेतु श्रीकृष्ण से अनुरोध किये। इस पर भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- दुर्योधन और अर्जुन तुम दोनों ही श्रेष्ठ पुरुष हो। मैं स्वयं ही युद्ध न करके एक का मंत्री बन जाऊँ और दूसरे को एक अक्षौणी सेना दे दूँगा। अब तुम्हीं दोनों निश्चय करो कि किसे क्या दूँ?" अपने स्वार्थ के सम्बन्ध में अनभिज्ञ एवं खोटी बुद्धि वाले दुर्योधन ने अक्षौणी सेना माँग ली और अर्जुन ने यह माँगा कि श्रीकृष्ण युद्ध भले न करें, परन्तु मेरे मंत्री बन जायें।

मद्रनरेश राजा शल्य पाण्डवों की ओर से युद्ध करने आ रहे थे परन्तु दुर्योधन ने मार्ग में ही विभिन्न प्रकार के उपहारों से उन्हें धोखे में डालकर प्रसन्न कर लिया और उनसे यह वर माँगा कि 'आप मेरी सहायता कीजिये।' राजा शल्य ने दुर्योधन की सहायता करने की प्रतिज्ञा कर ली। तत्पश्चात वे पाण्डवों के पास गये और बड़ी शान्ति के साथ सब कुछ समझा-बुझाकर सारी बातें बता दीं। शल्य ने इसी प्रसंग में इन्द्र के विजय की कथा भी पाण्डवों को सुनाई। पाण्डवों ने अपने पुरोहित को कौरवों के पास भेजा। कौरव राज धृतराष्ट्र ने पाण्डवों के पुरोहित के इन्द्र विजय विषयक वचन का सादर श्रवण करते हुए उनके आगमन के औचित्य को स्वीकार किया। तत्पश्चात धृतराष्ट्र ने भी शान्ति की इच्छा से संजय को दूत के रूप में पाण्डवों के पास भेजा। जब धृतराष्ट्र को यह ज्ञात हुआ कि पाण्डवों ने भगवान श्रीकृष्ण को अपना नेता चुन लिया है और वे उन्हें आगे करके युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहे हैं, तब चिंतावश उनकी नींद उड़ गई। वे रात भर जागते रहे। तब महात्मा विदुर ने महाप्रतापी राजा धृतराष्ट्र को विविध प्रकार से अत्यन्त आश्चर्यजनक नीति का उपदेश दिया। यह उपदेश 'विदुर नीति' के नाम से विख्यात है।

उसी समय महर्षि सुनत्सुजात ने खिन्न चित्त एवं शोक विह्वल राजा धृतराष्ट्र को सर्वोत्तम अध्ययनशास्त्र का श्रवण कराया। इस प्रकार नीति संचार एवं आध्यात्म संचार का विशद चित्रण महाभारत में वर्णित है। प्रातः काल राज्यसभा में संजय ने राजा धृतराष्ट्र से श्रीकृष्ण और अर्जुन के एकात्म्य का भली भांति वर्णन किया। यहाँ एक उल्लेख्य प्रसंग यह है कि करुणानिधान भगवान श्रीकृष्ण ने दया भाव से युक्त हो शांति स्थापनार्थ संधि कराने के उद्देश्य से स्वयं हस्तिनापुर में पधारे। यद्यपि भगवान श्रीकृष्ण दोनों पक्षों का

हित चाहते थे और शांति के लिए प्रार्थना कर रहे थे। तथापि दुर्योधन ने उनकी इस प्रार्थना को अस्वीकार करते हुए विरोध किया। इतना ही नहीं दुर्योधन तो श्रीकृष्ण को बंदी बनाने का असफल प्रयास भी किया।

इसी पर्व में दम्मोझव की कथा भी वर्णित है और साथ ही महात्मा मातालि का अपनी कन्या के लिये वर ढूँढ़ने का प्रसंग भी है। इसके बाद गालव महर्षि के चरित्र का वर्णन है। साथ ही विदुला द्वारा अपने पुत्र को दी गई शिक्षा का भी उल्लेख है।

भगवान श्रीकृष्ण ने कर्ण एवं दुर्योधन की दूषित मानसिकता को जानकर राजाओं की भरी सभा में अपने योगैश्वर्य का प्रदर्शन किया। जब वे हस्तिनापुर से वापस चलने लगे तब उन्होंने कर्ण को अपने रथ पर बैठाकर (पाण्डवों के पक्ष में आने के लिए) अनेकों युक्तियों से समझाने का प्रयास किया। किंतु कर्ण के न मानने पर उनका यह प्रयास सफल न हो सका। भगवान श्रीकृष्ण उपलव्य नगर आकर हस्तिनापुर में जो कुछ घटित हुआ वह सब उसी प्रकार पाण्डवों को सुनाया।

शत्रुघाती पाण्डव भगवान श्रीकृष्ण के वचन सुनकर अपने के लिए परामर्श कर युद्ध सम्बन्धी आवश्यक सभी सामग्री जुटाने में लग गये। तत्पश्चात हस्तिनापुर नगर में युद्ध के लिए पैदल मनुष्य, घोड़े, रथ और हाथियों की चतुरंगिणी सेना ने कूच किया। इसी प्रसंग में सेना की गिनती की गई। तत्पश्चात दूसरे दिन प्रातःकाल से होने वाले महायुद्ध के सम्बन्ध में दुर्योधन ने उलूक को दूत बनाकर पाण्डवों के पास भेजा। इसी पर्व में रथी-अतिरथी आदि के स्वरूप का वर्णन तथा अम्बा का उपाख्यान है।

6. भीष्म पर्व-

यद्यपि महाभारत में आदि पर्व से ही किसी न किसी के बीच युद्ध की चर्चा की गई है। परन्तु जिस महायुद्ध के लिए महाभारत विख्यात है उसका रणक्षेत्र में आरम्भ भीष्म पर्व से ही होता है। इस पर्व में कुल एक सौ सत्रह (117) अध्याय हैं जिनमें श्लोकों की कुल संख्या पांच हजार आठ सौ चौरासी (5884) बताई गई है।

अध्यायानां शतं प्रोक्तं तथा सप्तदशापरे।

पंच श्लोकसहस्राणि संख्ययाष्टौ शतानि च।
श्लोकाश्च चतुराशीतिरस्मिन् पर्वणि कीर्तिताः।

यह पर्व अनेकों मामलों में विचित्र अर्थों से भरा पड़ा है। इसमें सबसे पहले संजय द्वारा जम्बू द्वीप की रचना सम्बन्धी कथा है। इस पर्व में कौरव-पाण्डव के बीच दस दिनों तक अत्यन्त भयंकर घोर युद्ध होने का वर्णन है। इसमें धर्मराज युधिष्ठिर की सेना के अत्यन्त दुःखी होने की कथा भी है। युद्ध के आरम्भ होने के पूर्व ही जब अर्जुन मोहजनित शोक सन्तप्त हो गये तब भगवान श्रीकृष्ण ने गांडीव धारी अर्जुन के शोक नाश करने के लिए उपदेश दिया, जो श्रीमद भगवत् गीता के नाम से न केवल भारत में वरन् पूरे विश्व में सम्मान प्राप्त महाग्रंथ है। इसी पर्व में यह कथा भी है कि युधिष्ठिर के हित में सदैव संलग्न रहने वाले निर्भय-उदार बुद्धि अधोक्षज भगवान श्रीकृष्ण सव्यसाची अर्जुन की शिथिलता देख शीघ्र ही हाथ में चाबुक लेकर पितामह भीष्म को मारने के लिए रथ से कूदकर बड़े तेजी से दौड़े। इतना ही नहीं, उन्होंने सव्यसाची अर्जुन को रणभूमि में व्यंग्य वाक्य के चाबुक से मार्मिक चोट पहुँचाई। शान्तनु सुत भीष्म को इच्छा मृत्यु प्राप्त थी और वे जब तक जीवित रहते तब तक पाण्डवों का युद्ध में विजय श्री वरण नहीं करती। इसे भगवान श्रीकृष्ण जानते थे। अतएव उन्होंने युद्ध की नौवीं रात्रि को गोपनीय ढंग से युधिष्ठिर के साथ पितामह के विश्राम गृह में पधारे और उनकी मृत्यु का उपाय पूछे। भीष्म जी द्वारा अपनी मृत्यु का उपाय बताने के पश्चात अर्जुन ने शिखंडी को सामने करके तीखे बाणों से विद्ध कर भीष्म पितामह को रथ से गिरा दिया।

7. द्रोण पर्व-

इस पर्व का शुभारंभ परम प्रतापी आचार्य द्रौण के कौरव सेना के सेनापति पद पर अभिसिक्त होने के साथ होता है। इस पर्व में कुल एक सौ सत्तर (170) अध्याय हैं। इसमें कुल श्लोकों की संख्या आठ हजार नौ सौ नौ (8909) है।

अत्राध्यायशतं प्रोक्तं तथाध्यायाश्च सप्ततिः।
अष्टौ श्लोकसहस्राणि तथा नव शतानि च।

श्लोका नव तथैवात्र संख्यातास्तत्त्वदर्शिना।[10]

यह अनेक अद्भुत वृत्तांतों से पूर्ण पर्व है। इसी पर्व में अस्त्र विद्या के परमाचार्य द्रौण द्वारा महाराज दुर्योधन को प्रसन्न करने की दृष्टि से धर्मराज युधिष्ठिर को पकड़ने की प्रतिज्ञा का विवेचन किया गया है। इसी पर्व में यह भी स्पष्ट किया गया है कि संसप्तक योद्धा अर्जुन को रणांगण में दूर हटा ले गये। वहीं यह कथा भी आई है कि ऐरावत वंशीय सुप्रीक नामक हाथी के साथ महाराज भगदत्त भी जो इन्द्र के समान पराक्रमी थे, किरीटधारी अर्जुन के द्वारा मौत के घाट उतार दिये गये।

इसी पर्व में एक अत्यन्त ही मर्मान्तिक घटना वर्णित है। सुभद्रा नंदन अभिमन्यु जो अभी युवावस्था को प्राप्त ही कर रहा था, को चक्रव्यूह की रचना कर निहत्था होने पर भी युद्ध के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन करते हुए जयद्रथ-दुःशासन आदि योद्धाओं ने मार डाला।

अभिमन्यु के वध से कुपित होकर अर्जुन ने रणभूमि में अक्षौहिणी सेनाओं का संहार करके जयद्रश का वध कर डाला। इसी अवसर पर महाबली भीमसेन और महारथी सात्यकि धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन को ढूंढने के लिए कौरवों की उस सेना में घुस गये जिसकी मोर्चाबंदी को बड़े-बड़े देवता भी तोड़ने में समर्थ नहीं हो सकते थे। अर्जुन ने संशप्तकों में से जो बच रहे थे, उन्हें भी युद्ध भूमि में मारकर संशप्तकों को निःशेष कर दिया।

यद्यपि उनकी कुल संख्या नौ करोड़ थी, ऐसा कहा जाता है। धृतराष्ट्र पुत्र बड़े-बड़े पाषाण खंड लेकर युद्ध करने वाले म्लेच्छ सैनिक समरांगण में युद्ध के विचित्र कला-कौशल का परिचय देने वाले नारायण नामक गोप, अलम्बुष, शतायु, भूरिश्रवा, जलसन्ध, राजा द्रपद तथा घटोत्कच्छ आदि के वध का प्रसंग भी इसी पर्व में वर्णित है।

इस पर्व में इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि जब द्रोणाचार्य के मार गिराये जाने पर उनके पुत्र अश्वत्थामा ने नारायण नामक भयानक अस्त्र को प्रकट किया। इसी पर्व में आग्नेय शस्त्र एवं भगवान रूद्र के उत्तम महापर्ण का वर्णन भी किया गया है। भगवान व्यास के आगमन तथा कृष्ण एवं अर्जुन के महात्म्य की कथा भी इसी पर्व में है। इसी प्रकार कौरव-पाण्डव दोनों

पक्षों के महान शक्तिशाली जो-जो नरेश मारे गये, उनका वर्णन भी इसी पर्व में किया गया है।

8. कर्ण पर्व-

महाभारत का अत्यन्त अद्‌भूत आठवाँ पर्व कर्ण पर्व के नाम से विख्यात है। इस पर्व में कुल उनहत्तर (69) अध्याय हैं। इसमें कुल चार हजार नौ सौ चौसठ (4964) श्लोक हैं।

एकोनसप्ततिः प्रोक्ता अध्यायाः कर्णपर्वाणि।
चन्वार्येव सहस्राणि नव श्लोकशतानि च।
चतुःषष्टिस्तथा श्लोकाः पर्वण्यस्मिन् प्रकीर्तिताः।[11]

द्रोणाचार्य के वध के पश्चात कर्ण ने सेनापति का दायित्व संभाला। इस पर्व में परम् बुद्धिमान महाराज शल्य को कर्ण के सारथी बनने का प्रसंग है। तत्श्चात त्रिपुर के संहार की पुराण प्रसिद्ध कथा का उल्लेख है। युद्ध में सेनापति के रूप में जाते समय कर्ण का अपने सारथी शल्य से जो कठोर संवाद हुआ है उसका वर्णन भी इसी पर्व में किया गया है। तदनंतर हंस और कौवे का आक्षेपपूर्ण उपाख्यान है। उसके पश्चात द्रौण पुत्र अश्वत्थामा के द्वारा राजा पांड्य के वध की कथा है। फिर दण्ड सेन और दण्ड के वध का प्रसंग है। इसी पर्व में कर्ण के साथ धर्मराज युधिष्ठिर के द्वैरथ (द्वंद्व) युद्ध का वर्णन है। इसमें कर्ण ने धनुर्धर वीरों के देखते ही देखते धर्मराज युधिष्ठिर के प्राणों को संकट में डाल दिया। तत्पश्चात धर्मराज युधिष्ठिर एवं महान धनुर्धर अर्जुन के एक-दूसरे के प्रति क्रोधयुक्त उद्‌गार हैं जहाँ लीलाधारी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझा-बुझाकर शांत किया है। इसी पर्व में इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि अपनी पूर्ण प्रतिज्ञा के अनुसार महाबली भीमसेन ने दुःशासन का वक्षस्थल विदीर्ण करके उसका रक्त पिया था। तदनंतर द्वंद्व युद्ध में अर्जुन द्वारा महारथी कर्ण को मार गिराने का प्रसंग भी है।

9. शल्य पर्व-

इस पर्व में कुल उनसठ (59) अध्याय हैं जिनमें कुल श्लोकों की संख्या तीन हजार दो सौ बीस (3220) है।

एकोनषष्टिरध्यायाः पर्वण्यत्र प्रकीर्तिताः।

त्रीणि श्लोकसहस्राणि द्वे शते विंशतिस्तथा।[12]

यह पर्व विचित्र अर्थ विषयों से भरा पड़ा है। जब कौरव सेना के सभी प्रमुख वीर मार दिये गये तब मद्रराज शल्य सेनापति नियुक्त हुए। वहीं कुमार कार्तिकेय का उपाख्यान और अभिषेक कर्म का भी उल्लेख है। इस पर्व में रथियों के युद्ध का विभागपूर्वक वर्णन किया गया है। इस पर्व में कुरुकुल के महान वीरों के विनाश तथा महाराज युधिष्ठिर द्वारा शल्य के वध का वर्णन किया गया है। महान कूटनीतिज्ञ एवं षड्यंत्रकारी राजा शकुनि का सहदेव द्वारा किये गये वध का वर्णन भी इस पर्व में किया गया है। जब अधिकांश कौरव सेना नष्ट हो गई, केवल थोड़ी सेना ही बची रही तब राजा दुर्योधन सरोवर में प्रवेश करके सरोवर के जल को स्तम्भित करके वहीं विश्राम के लिए बैठ गया। किंतु व्याधों ने भीमसेन से दुर्योधन की यह चेष्टा बतला दी। तब धर्मराज युधिष्ठिर के आक्षेपयुक्त वचनों से अत्यन्त आमर्ष में भरकर राजा दुर्योधन सरोवर से बाहर निकला और भीमसेन के साथ गदायुद्ध किया। युद्ध के समय भगवान बलराम के आगमन का प्रसंग भी है। इसी प्रसंग में सरस्वती तटवर्ती तीर्थों के पावन महात्म्य का परिचय दिया गया है। शल्य पर्व में ही गदायुद्ध का वर्णन भलीभांति किया गया है। इस युद्ध में भीमसेन ने हठपूर्वक (युद्ध के नियमों का उल्लंघन कर) अपनी भयानक वेगशालिनी गदा से राजा दुर्योधन की दोनों जाँघें तोड़ डालीं।

10. सौप्तिक पर्व-

महाभारत का यह अत्यन्त दारुण पर्व है। इसमें कुल अठारह (18) अध्याय हैं। इसमें कुल श्लोकों की संख्या आठ सौ सत्तर (870) बताई जाती है।

अष्टादशास्मिन्नध्यायाः पर्वण्युक्ता महात्मना।
श्लोकानां कथितान्यत्र शतान्यष्टौ प्रसंख्यया।
श्लोकाश्च सप्ततिः प्रोक्ता मुनिना ब्रह्मवादिना।[13]

इस पर्व में सौप्तिक और ऐषीक दोनों की कथाओं को सम्बद्ध कर दिया गया है। जब भीमसेन राजा दुर्योधन की जांघ तोड़कर पांडवों सहित चले गये तब अत्यन्त अमष में भरे हुए टूटी जांघ वाले राजा दुर्योधन के पास, जो खून से

लथपथ हुआ पड़ा था, सायंकाल के समय कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा आए। राजा दुर्योधन की दुर्दशा को देखकर महारथी अश्वत्थामा को बहुत क्रोध हुआ और उसने प्रतिज्ञा की कि "मैं धृष्टधुम्न आदि सम्पूर्ण पांचालों को और मंत्रियों सहित समस्त पाण्डवों का वध किये बिना अपना कवच नहीं उतारूंगा। राजा दुर्योधन के समक्ष प्रतिज्ञा कर अश्वत्थामा अन्य दोनों महारथियों कृतवर्मा और कृपाचार्य के साथ चले गये और सूर्यास्त होते-होते एक बहुत बड़े वन में पहुँच गये। वहाँ तीनों महारथी एक विशाल वटवृक्ष के नीचे बैठ गये। तदनंतर वहाँ एक उल्लू आकर रात्रि में बहुत से कौओं को मार डाला। यह देखकर क्रोध में भरे अश्वत्थामा ने अपने पिता द्रोणाचार्य के अन्यायपूर्वक मारे जाने की घटना का स्मरण करते हुए सोते समय ही पांचालों के वध का निश्चय कर लिया। फिर पाण्डवों के शिविर के द्वार पर उसने देखा कि एक बड़ा भयानक राक्षस जिसकी ओर देखना अत्यन्त कठिन है। उसने पृथ्वी से लेकर आकाश तक के प्रदेश को घेर रखा है। अश्वत्थामा उस राक्षस पर जितने भी अस्त्र चलाता उन सबको वह राक्षस नष्ट कर देता था। यह देखकर द्रोण कुमार ने तुरंत ही भयंकर नेत्रों वाले भगवान रुद्र की आराधना करके उन्हें प्रसन्न किया। तत्पश्चात अश्वत्थामा ने निःशंक होकर रात्रि में सोते हुए धृष्टद्युम्न आदि पांचालों तथा द्रोपदी पुत्रों को परिजनों सहित कृपाचार्य और कृतवर्मा की सहायता से मार डाला। भगवान श्रीकृष्ण की शक्ति का आश्रय लेने से केवल पांच पांडव और महाधनुर्धर सात्यकि बच गये। शेष सभी वीर योद्धा मार दिये गये। यह सभी दारुणिक प्रसंग सौप्तिक पर्व में वर्णित है। यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि धृष्टद्युम्न के सारथी ने जब पाण्डवों को यह सूचित किया कि द्रौण पुत्र अश्वत्थामा ने सोये हुए पांचालों का वध कर दिया है तब द्रोपदी, पिता भाई एवं पुत्रों की हत्या से अत्यन्त द्रवित हो उठी। इस घटना का बदला लेने के लिए अपने पतियों को उत्तेजित करते हुए आमरण अनशन पर बैठ गई। तत्पश्चात महाबलशाली भीम द्रोपदी का प्रिय करने की इच्छा से हाथ में गदा लेकर अश्वत्थामा के पीछे दौड़े। तब अश्वत्थामा घबराकर रोषपूर्वक भीम पर दिव्यास्त्र का प्रयोग किया। किंतु भगवान श्रीकृष्ण के अश्वत्थामा के रोषपूर्ण वचन को शांत करते हुए कहा

"भैवम्", 'पाण्डवों का विनाश न हो'। उसी समय गांडीवधारी अर्जुन ने अपने दिव्यास्त्र द्वारा अश्वत्थामा के दिव्यास्त्र को शांत कर दिया।

उस समय पापात्मा द्रोणपुत्र अश्वत्थामा के द्रोहपूर्ण विचार को देखकर भगवान व्यास एवं लीलाधारी श्रीकृष्ण ने उसे श्राप दिया। अश्वत्थामा ने भी इन दोनों महानुभावों को श्राप दिया। इधर द्रोपदी को दिये गये वचन के अनुसार अश्वत्थामा से मणि छीनकर विजय से सुशोभित होने वाले पांडवों ने प्रसन्नतापूर्वक द्रोपदी को दे दी।

11. स्त्री पर्व-

महाभारत का स्त्री पर्व करुणा रस की धारा से ओतप्रोत है। इस पर्व में कुल सत्ताइस (27) अध्याय हैं जिनमें कुल श्लोकों की संख्या सात सौ पचहत्तर (775) बताई गई है।

सप्तविंशतिरध्यायाः पर्वण्यस्मिन् प्रकीर्तिताः।
श्लोकसप्तशती चापि पंचसप्ततिसंयुता।
संख्यया भारताख्यानमुक्तं व्यासेन धीमता।[14]

प्रज्ञाचक्षु महाराज धृतराष्ट्र ने पुत्र शोक से सन्तप्त हो भीमसेन के प्रति द्रोह बुद्धि कर ली और श्रीकृष्ण द्वारा अपने समीप लाई गई लोहे की मजबूत प्रतिमा को भीमसेन समझकर अपनी भुजाओं में भरकर उसे दबाकर टूक-टूक कर दिया। उस समय पुत्र शोक से सन्तप्त महाराज धृतराष्ट्र को महात्मा विदुर ने मोक्ष का साक्षात्कार कराने वाली युक्तियों तथा विवेकपूर्ण बुद्धि के द्वारा संसार की दुःखरूपता का प्रतिपादन करते हुए भलीभांति समझा-बुझाकर शान्त किया।

तदनंतर शोकाकुल महाराज धृतराष्ट्र का अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ कौरवों के युद्धस्थल में जाने का विवरण है। वहीं वीर पत्नियों के करुणापूर्ण विलाप का अद्भुत चित्रण है। महारानी गान्धारी तथा महाराज धृतराष्ट्र के क्रोधावेश एवं मूर्च्छित होने का दृष्टान्त भी इस पर्व में वर्णित है। क्षत्राणियों द्वारा युद्धभूमि में पीठ न दिखाने वाले अपने शूरवीर पुत्रों, पतियों, बन्धुओं तथा पिताओं की मृतक देह को देखने का भी उल्लेख है। पुत्रों तथा पौत्रों के वध से पीड़ित गान्धारी के पास आकर भगवान श्रीकृष्ण ने उनके

क्रोध को शान्त किया। इस पर्व में यह भी वर्णित है कि सम्पूर्ण धर्मात्माओं में श्रेष्ठ राजा युधिष्टिर ने वहाँ मारे गये समस्त राजाओं के शरीरों का शास्त्र विधिपूर्वक दाह संस्कार किया एवं कराया। तदनंतर राजाओं को जलांजलि दान के प्रसंग में उन सबके लिये तर्पण का आरम्भ होते ही कुन्ती द्वारा गुप्त रूप से पैदा हुए अपने पुत्र कर्ण का रहस्यमय वृत्तांत प्रकट किया गया। शोक और विकलता का संचार करने वाला यह ग्यारहवाँ पर्व श्रेष्ठ पुरुषों के चित्त को भी विह्वल करके भगवान व्यास के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित कर देता है।

12. शान्ति पर्व-

महाभारत का यह पर्व सम्पूर्ण मानव जगत अध्येताओं के बुद्धि एवं विवेक को बढ़ाने वाला है। इस पर्व में कुल तीन सौ उन्तालीस (339) अध्याय हैं जिनमें श्लोकों की कुल संख्या चौदह हजार सात सौ बत्तीस (14732) है।

त्रिंशच्चैव तथाध्याया नव चैव तपोधनाः।
चतुर्दश सहस्राणि तथा सप्त शतानि च।
सप्त श्लोकास्तथैवात्र पंचविंशतिसंख्यया।
अत उर्ध्वं च विज्ञेयमनुशासनमुत्तमम्।[15]

महाभारत का यह पर्व सबसे बड़ा पर्व है। महाभारत के युद्ध में अपने पितृतुल्य गुरुजनों, भाईयों, पुत्रों, मामा एवं बहुत से सगे सम्बन्धियों को मरवाकर धर्मराज युधिष्ठिर के मन में बहुत दुःख एवं वैराग्य हुआ। बाणशैया पर शयन करने वाले पितामह भीष्म के द्वारा विभिन्न प्रकार के धर्मों का उपदेश दिया गया है। उत्तम ज्ञान की इच्छा रखने वाले राजाओं के लिये इस उपदेश को जानना चाहिए। काल और कारण की अपेक्षा रखने वाले, देश और काल के अनुसार व्यवहार में लाने योग्य आपद्धर्म का भी इस पर्व में चर्चा की गई है जिन्हें जान लेने पर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है। मानव जीवन के चार पुरुषार्थ- धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को भी इस पर्व में वर्णित किया गया है। राजधर्म, जिसकी आज भी समय-समय पर चर्चा होती रहती है, को इस पर्व में बड़े ही व्यवस्थित तरीके से प्रतिपादित किया गया है। विजयाभिलाषी राजा के धर्मानुकूल बर्ताव तथा युद्ध नीति का भी वर्णन इस पर्व में किया गया है। गणतंत्र राज्य का वर्णन और उसकी नीति की भी पर्याप्त चर्चा की गई है। जो

भविष्य में लोकतंत्र के लिये उपादेय है इस पर्व में जहाँ राजा के चरित्र का उल्लेख किया गया है वहीं सेवकों के आवश्यक गुणों पर भी प्रकाश डाला गया है। इस पर्व में सेनापति एवं मंत्रियों की नीति सम्बन्धी विवरण के साथ ही दंड के स्वरूप, लक्षण के धर्म का निश्चय, ब्राह्मण भयंकर संकट काल में किस प्रकार जीवन निर्वाह करे, इस विषय पर उपाख्यान है।

शरणागत की रक्षा सम्बन्धी कथा को एक बहेलिये और कपोत-कपोती का प्रसंग सुनाकर चित्रित किया गया है। इसी पर्व में मित्र बनाने एवं न बनाने योग्य पुरुषों के लक्षण तथा कृतघ्न गौतम की कथा का वृत्तांत है। प्रकृति के संसर्ग दोष से जीव का पतन, क्षर-अक्षर एवं प्रकृति-पुरुष के विषय में राजा जनक की शंका का निरूपण भी दृष्टिगत है। सांख्य एवं योग-दर्शन के साथ ही ब्रह्मा एवं रूद्र के संवाद में नारायण की महिमा का विशेष रूप से वर्णन भी इस पर्व में किया गया है।

13. अनुशासन पर्व-

महाभारत का अनुशासन पर्व अत्यन्त ही उत्तम पर्व है। इस पर्व में एक सौ छियालीस (146) अध्याय हैं जिनमें कुल श्लोकों की संख्या आठ हजार (8000) है।

अध्यायानां शतं त्वत्र षट्चत्वारिंशदेव तु।
श्लोकानां तु सहस्राणि प्रोक्तान्यष्टौ प्रसंख्यया।
ततोऽश्वमेधिकं नाम पर्व प्रोक्तं चतुर्दशम्।[16]

इस पर्व में इस बात का उल्लेख किया गया है कि धर्मराज युधिष्ठिर गंगानंदन भीष्म जी से धर्म का निश्चित सिद्धांत सुनकर प्रकृतिस्थ हुये। इसमें धर्म और अर्थ से सम्बन्ध रखने वाले हितकारी आचार-व्यवहार का निरूपण किया गया है। विभिन्न प्रकार के दान के महत्व को भी इस पर्व में प्रतिपादित किया गया है। दान के विशेष पात्र, दान की उत्तम विधि, आचार और उसका विधान, सत्यभाषण की पराकाष्ठा, गौवों और ब्राह्मणों का महात्म्य, धर्मों का रहस्य, देश काल तथा तीर्थ एवं पर्व की महिमा का बड़ा ही मनोरम वृत्तांत इस पर्व में किया गया है। सूर्य के उत्तरायण होने पर पितामह भीष्म के स्वर्गवासी होने का भी इस पर्व में उल्लेख किया गया है। 'शिवसहस्रनामस्त्रोत' और

उसके पाठ के फल का उपाख्यान भी इस पर्व में है।

14. अश्वमेधिक पर्व-

इस पर्व में कुल एक सौ तीन (103) अध्याय है। इसमें कुल श्लोकों की संख्या तीन हजार तीन सौ बीस (3320) है।

अध्यायानां शतं चैव त्रयोऽध्यायाश्च कीर्तिताः।
त्रीणि श्लोकसहस्राणि तावन्त्येव शतानि च।
विंशतिश्च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना।[17]

इस अध्याय में परम उत्तम योगी संवर्त तथा राजा मरूत्त का उपाख्यान है। युधिष्ठिर को सुवर्ण के खजाने की प्राप्ति और राजा परीक्षित के जन्म की कथा भी इस पर्व में है। अश्वत्थामा के अस्त्र की अग्नि से दग्ध हुए बालक का मृतक देह के रूप में जन्म लेना और भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से जीवित हो जाने का दृष्टांत भी इसमें वर्णित है। सम्पूर्ण राष्ट्र में घूमने के लिए छोड़े गये अश्वमेध सम्बन्धी घोड़े के पीछे गाण्डीवधारी अर्जुन के जाने और उन-उन देशों में कुपित राजकुमारों के साथ उनके युद्ध करने का वर्णन है। पुत्रिका धर्म के अनुसार उत्पन्न हुए चित्रांगद कुमार बभ्रुवाहन ने युद्ध में अर्जुन को प्राण संकट की स्थिति में डाल दिया था। यह कथा भी इसी पर्व में ही आयी है। अश्वमेध महायज्ञ में नकुलोपाख्यान आया है। इस पर्व में सतोगुण, तमोगुण एवं रजोगुण के कार्यों के फलों का वर्णन भी है। सभी पदार्थों के आदि-अंत का भी वर्णन है। राजा युधिष्ठिर का भीमसेन को अश्वमेध यज्ञ के लिए राजाओं की पूजा करने का आदेश देना, श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर से अर्जुन का संदेश कहना, अर्जुन के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण एवं युधिष्ठिर की बातचीत, अर्जुन का हस्तिनापुर जाना तथा उलूपी औरा चित्रांगदा के साथ बभ्रुवाहन का आगमन, युधिष्ठिर का ब्राह्मणों को दक्षिणा देना और राजाओं को भेंट देकर उन्हें विदा करने का वृत्तांत भी इस पर्व में वर्णित है। इस पर्व को महाभारत का अमृतमय रस कहा जाता है।

15. आश्रमवासिक पर्व-

इस पर्व में कुल बयालीस (42) अध्याय हैं। इसमें श्लोकों की कुल संख्या एक हजार पाँच सौ छह (1506) है।

द्विचत्वारिंशदध्यायाः पर्वैतदभिसंख्यया।
सहस्त्रमेकं श्लोकानां पंच श्लोकशतानि च।
षडेव च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना।
अतः परं निबोधेदं मौसलं पर्व दारुणम्।[18]

इस पर्व में पाण्डवों एवं कुन्ती द्वारा महाराज धृतराष्ट्र एवं गान्धारी की सेवा एवं उनके अनुकूल व्यवहार का वर्णन किया गया है। राजा धृतराष्ट्र का गान्धारी सहित वन में जाने के लिये उद्योग एवं युधिष्ठिर से अनुमति प्राप्त करने का दृष्टान्त इस पर्व में किया गया है। प्रजाजनों से धृतराष्ट्र की क्षमा याचना, प्रजा की ओर से साम्ब नामक ब्राह्मण का धृतराष्ट्र को सान्त्वनापूर्ण उत्तर देना। धृतराष्ट्र का विदुर के माध्यम से श्राद्ध हेतु युधिष्ठिर से धन माँगना, विदुर का महाराज धृतराष्ट्र को युधिष्ठर का उदारतापूर्वक उत्तर सुनाना। गान्धारी सहित धृतराष्ट्र का वन के लिये प्रस्थान, पाण्डवों के अनुरोध को अस्वीकार करते हुए कुन्ती का धृतराष्ट्र एवं गान्धारी के साथ वन जाने का वर्णन इसी पर्व में मिलता है। वन में महाराज धृतराष्ट्र का व्यास जी के प्रभाव से कुरुक्षेत्र के युद्ध में मारे गये कौरव एवं पाण्डव वीरों का गंगाजी के जल से प्रकट होकर दर्शन देना, परलोक से आये हुए शूरवीरों का परस्पर राग-द्वैष से रहित होकर मिलना और रात्रि बीत जाने पर अदृश्य हो जाना, व्यास जी की आज्ञा से विधवा क्षत्राणियों का गंगाजी में गोता लगाकर अपने-अपने पति के लोक को प्राप्त करना तथा महर्षि व्यास की आज्ञा से धृतराष्ट्र का पाण्डवों को विदा करना तत्पश्चात पाण्डवों का हस्तिनापुर सदल-बल जाने का वर्णन काफी मनोरम ढंग से किया गया है। इस पर्व के अन्त में नारद जी के सम्मुख युधिष्ठिर का धृतराष्ट्र आदि के लौकिक अग्नि में दग्ध हो जाने का वर्णन करते हुए पाण्डवों के विलाप की कथा वर्णित है। साथ ही धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा धृतराष्ट्र, गान्धारी एवं कुन्ती की हड्डियों के गंगा में विसर्जित करते हुए श्राद्धकर्म करने का विवरण भी महर्षि व्यास ने इस पर्व में किया है।

16. मौसल पर्व-

यह अत्यन्त दारूण पर्व है। इस पर्व में कुल आठ (8) अध्यायों में तीन सौ बीस (320) श्लोक हैं।

अध्यायाष्टौ समाख्याताः श्लोकानां च शतत्रयम्।
श्लोकानां विंशतिश्चैव संख्यातास्तत्त्वदर्शिना।
महाप्रस्थानिकं तस्मादूर्ध्वं सप्तदशं स्मृतम्।[19]

इस पर्व में इस बात की चर्चा है कि श्रेष्ठ यदुवंशी वीरक्षार समुद्र के तट पर आपस के युद्ध में अस्त्र-शस्त्रों के स्पर्श मात्र से मारे गये। ब्राह्मणों के शाप ने उन्हें पहले ही चूर-चूर कर डाला था। उन सभी ने मधुपान के स्थान में जाकर खूब पीया और नशे में चूर-चूर होकर अपना होश हवाश खो बैठे। तत्पश्चात दैव से प्रेरित हो परस्पर संघर्ष करके उन्होंने एरका रूपी वज्र से एक-दूसरे का वध कर डाला। वहीं सबका संहार करके बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भाइयों ने समर्थ होते हुए भी अपने ऊपर आये हुये सर्वसंहारकारी महान काल का उल्लंघन नहीं किया वरन उन्होंने महर्षियों की वाणी को सत्य करने के लिये काल को स्वेच्छा से अंगीकार कर लिया।

तत्पश्चात गाण्डीवधारी अर्जुन द्वारका में आये और उसे वृष्णवंशियों से देखकर शोक में डूब गये। कुछ समय उन्हें अत्यन्त संत्रास हुआ। उन्होंने अपने मामा नरश्रेष्ठ महात्मा वासुदेव का दाह संस्कार करके आपान स्थान में जाकर यदुवंशी वीरों के महाविनाश का रोमांचकारी दृश्य देखा। वहाँ से भगवान श्रीकृष्ण महात्मा बलराम तथा प्रमुख वृष्ठिवंशी वीरों के शरीरों को लेकर उन्होंने उनका संस्कार किया। तदनंतर अर्जुन ने द्वारका के बालक, वृद्ध तथा स्त्रियों को साथ लेकर वहाँ से प्रस्थान किया। परन्तु उस दुःखदायिनी विपत्ति में अपने गाण्डीव धनुष की अभूतपूर्व पराजय देखी। उनके सभी दिव्यास्त्र विस्मृत हो गये। वृष्णिकुल की स्त्रियों का देखते-देखते अपहरण हो जाना और अपने प्रभावों का स्थिर न रहना, यह सब देखकर सव्यसाची अर्जुन को बहुत दुःख हुआ।

तत्पश्चात उन्होंने महात्मा व्यास जी के वचनों से प्रेरित होकर धर्मराज युधिष्ठिर से मिलकर संन्यास में अभिरुचि दिखाई। इसके पूर्व समुद्र का द्वारका को डुबो देना और मार्ग में अर्जुन पर डाकुओं का आक्रमण तथा शेष बचे हुए यादवों को हस्तिनापुर में बसा देने का भी उल्लेख मौसल पर्व में किया गया है।

17. महाप्रस्थानिक पर्व-

यह महाभारत का सत्रहवां पर्व है। इसमें कुल तीन (3) अध्याय हैं जिसमें महर्षि व्यास ने एक सौ तैतीस (133) श्लोक की रचना की है।

यत्राध्यायास्त्रयः प्रोक्ताः श्लोकानां च शतत्रयम्।
विंशतिश्च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना।[20]

वृष्णवंशियों का श्राद्ध करके प्रजाजनों की अनुमति लेकर पाण्डव द्रोपदी सहित अपना राज्य छोड़कर निराहार रहते हुए स्वेच्छा से मृत्यु का वरण करने के लिए विभिन्न दिशाओं में भ्रमण करते हुए अंत में उत्तर दिशा-हिमालय की ओर प्रस्थान किये। उस यात्रा में उन्होंने लाल सागर के पास पहुंचकर साक्षात अग्निदेव को देखा और उन्हीं की प्रेरणा से पार्थ उन महात्मा को अपना दिव्य गांडीव धनुष सादर अर्पित कर दिया। इसी पर्व में यह भी कहा गया है कि मार्ग में द्रोपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन एवं भीम का गिरना तथा प्रत्येक के गिरने का कारण युधिष्ठिर ने बताया। परन्तु वे रूके नहीं, वरन आगे बढ़ते चले गये। युधिष्ठिर का धर्म, इन्द्र आदि के साथ वार्तालाप हुआ। परन्तु वे अपने धर्म में दृढ़ रहे और सदेह स्वर्णलोक में पहुँच गये।

18. स्वर्गारोहण पर्व-

महाभारत का अठारहवाँ पर्व स्वर्गारोहण पर्व कहलाता है। दिव्य वृत्तांतों से युक्त अलौकिक पर्व है। इस पर्व में कुल पाँच (5) अध्याय हैं जिनमें कुल दो सौ नौ (209) श्लोकों की रचना की गई है।

अध्यायाः पंच संख्याताः पर्वण्यस्मिन् महात्मना।
श्लोकानां द्वे शते चैव प्रसंख्याते तपोधनाः।
नव श्लोकास्तथैवान्ये संख्याताः परमर्षिणा।
अष्टादशैवमेतानि पर्वाण्युक्तान्यशेषतः।[21]

इस पर्व में यह उल्लेख है कि स्वर्ग से युधिष्ठिर को लेने के लिये एक दिव्य रथ आया। किंतु महाज्ञानी धर्मराज ने दयावश अपने साथ आये हुये कुत्ते को अकेले छोड़कर उस रथ पर चढ़ना स्वीकार नहीं किया। महात्मा युधिष्ठिर की धर्म में इस प्रकार अविचल स्थिति जानकर कुत्ते ने अपने मायामय स्वरूप को त्याग कर साक्षात धर्म के स्वरूप में स्थिर हो गया। तब उस धर्म के साथ

युधिष्ठिर स्वर्ग में गये। वहाँ युधिष्ठिर की महर्षि नारद से बातचीत हुई। तदनंतर देवदूत ने उन्हें नरक का दर्शन कराया। जहाँ भाइयों का करुणाक्रंदन सुनकर उन्होंने वहीं रहने का निश्चय किया। तत्पश्चात इन्द्र और धर्म ने युधिष्ठिर को सांत्वना दी और उनके भाइयों की जो सद्गति हुई थी उसका दर्शन कराया। इसके बाद धर्मराज युधिष्ठिर ने आकाशगंगा में गोता लगाकर मानव शरीर को त्याग दिया और स्वर्गलोक में अपने धर्म से उपार्जित स्थान पाकर वे इन्द्र आदि देवताओं के साथ उनसे सम्मानित हो आनंदपूर्वक रहने लगे। इस पर्व के अन्तिम अध्याय में भीम आदि वीरों का अपने-अपने मूल स्वरूप में मिलना तथा महाभारत का उपसंहार है। अन्त में महाभारत के स्रवण की विधि तथा महाभारत के महात्म्य का वर्णन है।

महाभारत का रचना काल

महाभारत के रचना काल पर विद्वानों में मतभेद हैं। डॉ. कृष्ण स्वामी आयंगर के मतानुसार महाभारत की रचना रामायण के पूर्व की है। किंतु यह समीचीन प्रतीत नहीं होता क्योंकि रामायण त्रेता युग पर आधारित महर्षि वाल्मीक द्वारा रचित महाकाव्य है और महाभारत भगवान वेदव्यास द्वारा द्वापर युग पर आधारित महाकाव्य है।

महाभारत भारत वर्ष के प्राचीन इतिहास का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। परम्परागत भारतीय कालगणनानुसार महाभारत-युद्ध ईसा से 3139 -38 वर्ष पूर्व, अर्थात कलियुग के आरम्भ होने से 36 वर्ष पूर्व लड़ा गया था। महाभारत ग्रंथ विगत द्वापरयुग की समाप्ति और कलियुग के प्रारम्भ के समय भारत वर्ष की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, भौतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का प्रतिज्ञान कराता है। इस प्रकार, लगभग 5,200 वर्ष पुराने इस ग्रन्थ ने भारतवासियों की आध्यात्मिक और भौतिक- दोनों क्षेत्रों में प्राप्त की हुई उन्नति में बराबर समन्वय स्थापित रखा, किन्तु अन्त में भौतिकवाद अध्यात्मवाद पर हावी हो गया।

महाभारत का महात्म्य

जिस प्रकार समुद्र और हिमालय दोनों ही रत्नों की निधि है। उसी प्रकार महाभारत भी अनेकानेक उपदेशमय रत्नों का भंडार है। महात्मा व्यास

ने इसे अर्थशास्त्र कहा है। यह महान धर्मशास्त्र भी है। इसे कामशास्त्र भी कहा गया है और मोक्षशास्त्र तो यह है ही।

अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत्।
कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामिति बुद्धिना।।[22]

जिस प्रकार पाँच भूतों से त्रिविध (दैहिक, दैविक और भौतिक) लोक सृष्टियाँ प्रकट होती हैं उसी प्रकार इस उत्तम इतिहास से कवियों को काव्य रचना विषयक बुद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इस महाभारत के अंदर ही अठारह पुराण स्थित हैं। पृथ्वी पर कोई भी ऐसी कथा नहीं है जो इस महाभारत के आश्रय लिये बिना प्रकट हुई हो। महाभारत के विषय में स्वयं भगवान व्यास ने लिखा है - "अठारह पुराण, सम्पूर्ण धर्मशास्त्र और छहों अंगों सहित चारों वेद एक ओर तथा केवल महाभारत दूसरी ओर, यह अकेली ही सबके बराबर है।" महाभारत का सारभूत उपदेश 'भारत-सावित्री के नाम से विख्यात है। जो प्रतिदिन सबेरे उठकर उसका पाठ करता है वह सम्पूर्ण महाभारत के अध्ययन का फल पाकर परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

इस महाभारत में भगवान विष्णु की दिव्य कथाओं का वर्णन है और जिसमें कल्याणमयी शक्तियों का सार है। इस लोक में परम पद की इच्छा प्राप्त करने वाले मनुष्य को महाभारत का नित्य पाठ करना चाहिए। यह महाभारत वेद सदृश (पंचम वेद) है, उत्तम है साथ ही पवित्र भी है, श्रवण करने योग्य है। यह पवित्र शक्ति को बढ़ाने वाला है।

'जय' नामक यह इतिहास मोक्ष की इच्छा रखने वाले ब्राह्मण, राजा और गर्भवती स्त्रियों को अवश्य सुनना चाहिए। इसके सुनने से स्वर्ग की इच्छा करने वाले को स्वर्ग, जय की इच्छा करने वाले को जय और गर्भवती स्त्री को पुत्र या सौभाग्यशाली कन्या प्राप्त होती है।

इस महाभारत में पवित्र देवताओं, राजर्षियों और पुण्य स्वरूप ब्रह्मर्षियों का वर्णन है। इसमें भगवान केशव के चरित्र का कीर्तन है। इसमें भगवान महादेव तथा सती पार्वती का वर्णन तो है ही साथ ही साथ इसमें अनेक माताओं वाले कार्तिकेय के जन्म का विवरण भी है। इसमें ब्राह्मणों तथा गौवों का महात्म्य भी बतलाया गया है। श्रीकृष्ण द्वैपायन भगवान व्यास जी

सत्यवादी, सर्वज्ञ, शास्त्र विधि के ज्ञाता, धर्मज्ञान युक्त संत, अतीन्द्रिय ज्ञानी, पवित्र, तप द्वारा शुद्ध चित्त, ऐश्वर्यवान, सांख्ययोगी, योगनिष्ठ तथा अनेक शास्त्रों के मर्मज्ञ तथा दिव्य दृष्टि सम्पन्न हैं। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर महात्मा पांडव तथा अन्यान्य महान तेजस्वी एवं ऐश्वर्यशाली क्षत्रियों की कीर्ति को जगत में प्रसिद्ध किया है। उन्होंने 'इतिहास' नाम से प्रसिद्ध इस पुण्यमय महाभारत की रचना की है। इसी से यह ऐसा उत्तम हुआ है, इस इतिहास के सुनने से राजा पृथ्वी पर विजय प्राप्त करता है तथा शत्रुओं को पराजित करता है। उसे श्रेष्ठ पुत्र प्राप्ति तथा महान कल्याण होता है। यह परमपुण्य दायक है। इसमें विविध कथायें हैं। देवता भी इसका सेवन करते हैं क्योंकि इससे परम पद की प्राप्ति होती है।

भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भारतर्षम।
भारतात् प्राप्यते मोक्षस्तत्वमेतद् ब्रवीमितत्।।
एवमेतन्महाराज नात्र कारणा विचारणा।
श्रद्दधानेन वै भाव्यमेवमाह गुरुर्मम।।[23]

अर्थात हे भारत श्रेष्ठ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि महाभारत सभी शास्त्रों में उत्तम है और उसके श्रवण-कीर्तन से मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह मैं तुमसे यथार्थ कहता हूँ। हे महाराज मैंने जो कुछ कहा है वह ऐसा ही है। यहाँ कोई विचार-वितर्क नहीं करना है। मेरे गुरु ने भी मुझसे यही कहा है कि महाभारत पर मनुष्य को श्रद्धावान होना चाहिए।

इस ग्रंथ में रूद्र, साध्य, सनातन, विश्वेदेव, सूर्य, अश्विनीकुमार, लोकपाल, महर्षि गुहयक, गन्धर्व, नाग विद्याधर, सिद्ध, वरुण, धर्म, स्वयंभू ब्रह्मा, श्रेष्ठ मुनि कात्यायन, पर्वत, समुद्र, नदियाँ, अप्सराओं के समुदाय, ग्रह, संवत्सर, अयन, ऋतु, काल, सम्पूर्ण जगत, देवता और असुर ये सब एकत्र हुए देखे जाते हैं।

यह महाभारत को पराशनन्दन महर्षि व्यास की वाणी रूपी सरोवर में उदित हुआ है यह गीतार्थ रूपी तीव्र सुगंध से युक्त नाना प्रकार के केसर रूपी आख्यान से युक्त, हरि कथा रूपी सूर्यताप से प्रफुल्लित है। सज्जन रूपी भ्रमर इस लोक में इसके रस का निरंतर पान करते हैं। यह उनके लिये 'सत्यं शिवम्

सुन्दरम्' है। इस ग्रंथ में बुढ़ापा, मृत्यु, भय, रोग और पदार्थों के सत्यत्व एवं मित्थ्यात्व का विशेष रूप से निश्चय किया गया है तथा अधिकारी भेद से भिन्न-भिन्न प्रकार के धर्मों एवं आश्रमों का भी लक्षण बताया गया है। न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान तथा पाशुपत का भी इसमें विशद निरूपण है।

संसारी जीव अज्ञानान्धकार से छटपटा रहे हैं। ऐसी स्थिति में यह महाभारत ज्ञान रंजन की शलाका लगाकर उनकी आँखें खोल देता है। वह शलाका वस्तुतः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थों का वर्णन यह न केवल अज्ञान की रतौंधी दूर करता है, वरन सूर्य के समान उदित होकर मानव समाज की आँख के सामने का सम्पूर्ण अन्धकार ही नष्ट कर देता है। यह महाभारत पुराण पूर्ण चंद्रमा के समान है जिससे श्रुतियों की चांदनी छिटकती है और मनुष्यों की बुद्धि रूपी कुमुदिनी सदा के लिये खिल जाती है।

महाभारत, भारतीय इतिहास का ही नहीं, वरन् मानव इतिहास का एक जाज्वल्यमान दीपक है। यह मोह रूपी अंधकार को मिटाकर मनुष्यों के अंतःकरण रूपी सम्पूर्ण अंतरंग सदन को भलीभांति ज्ञान लोक से प्रकाशित कर देती है। इस महाभारत का भगवान श्रीकृष्ण द्वैपायन एवं पर्व विचित्र शब्द विन्यास और रमणीय अर्थ से परिपूर्ण है जिसमें आत्मा-परमात्मा के सूक्ष्म स्वरूप का निर्णय एवं उनके अनुभव के लिये अनुकूल युक्तियाँ भरी हुई हैं। यह सम्पूर्ण वेदों के तात्पर्यानुकूल अर्थ से अलंकृत है। यह पुण्यस्वरूपा है। पाप और भय का नाश करने वाली है। इसमें संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष तथा दिन एवं रात्रि का प्राकट्य भी हुआ है।

विद्वान पुरुष इस महाभारत संहिता के ज्ञान को विविध प्रकार से प्रकाशित करते हैं। कुछ विद्वान इस ग्रंथ की व्याख्या करके समझाने में कुशल होते हैं। तो कुछ अन्य विद्वान अपनी तीक्ष्ण मेधाशक्ति के द्वारा इस ग्रंथ को धारण करते हैं। सत्यवती नंदन भगवान व्यास ने अपनी तपस्या और ब्रह्मचर्य की शक्ति से सनातन वेद का विस्तार करके इस लोकपावन पवित्र इतिहास का निर्माण किया है।

वस्तुतः महाभारत नामक इतिहास तो पाण्डवों के यश का विस्तार करने वाला है। इसकी कथा पवित्र अंतःकरण वाले महर्षि वेदव्यास के हृदय

रूपी सागर से प्रकट हुए सब प्रकार के शुभ विचार रूपी रत्नों से परिपूर्ण है। इस महान ग्रंथ में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष अर्थात चारों पुरुषार्थों के बारे में जो बात है वह अन्य किसी भी ग्रंथ में नहीं है, जो इस ग्रंथ में नहीं है, वह अत्यन्त कहीं भी नहीं हैं। महर्षि व्यास जी ने स्वयं कहा है-

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्ष च भरतवर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यत्नेहास्ति न तत्क्वचित्।।[24]

इस महाग्रन्थ के मुख्य विषय हैं भगवान कृष्ण। उन्हीं का इसमें संकीर्तन किया गया है। वे ही सबके, ऋत, पवित्र एवं पुण्य हैं। वे ही शाश्वत परब्रह्म हैं। वे ही अवि-अविनाशी और सनातन ज्योति हैं। महाभारत में जीवात्मा का स्वरूप भी बतलाया गया है एवं जो सत्व, रज एवं तम इन तीनों गुणों के कार्यरूप पाँच महाभूत हैं। उनका तथा जो अत्यन्त प्रकृति आदि के मूल कारण परब्रह्म परमात्मा हैं उनका भी विशद वर्णन इस ग्रंथ में किया गया है। जो विद्वान उपनिषदों सहित चारों वेदों एवं पुराणों को जानता है परन्तु इस महाभारत इतिहास को नहीं जानता वह विशिष्ट विद्वान नहीं है। यह महाभारत परम पवित्र है। धर्म के लिये यह आप्तवचन है एवं सर्वगुणसम्पन्न है। जैसे सूर्य के उदय हो जाने पर अंधकार का नाश हो जाता है वैसे ही इस महाभारत के पृष्ठ से तन-मन और वचन से किये गये सब पाप नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य को इस पवित्र इतिहास के पढ़ने-सुनने से जैसी तुष्टि प्राप्त होती है वैसी स्वर्ग में जाने से भी नहीं होती है।

अनेक पाश्चात्य विद्वान जैसे लासेन, बेवर, लुडविग, होज्मान्, फानश्राडर, सोर्यनसेन, वुहलर, विस्टरनिज, मानियर विलियम्स, वाशवर्न हापकिन्स आदि भी इस ग्रंथ के अध्ययन की ओर आकृष्ट हुए। यद्यपि महाभारत के रचयिता, रचनाकाल, ग्रन्थ के कलेवर, आख्यानादि के सम्बन्ध में भारतीय विचारकों से भिन्न इन पाश्चात्य विद्वानों के मत रहे हैं। तथापि इससे ग्रंथ का महत्व तो प्रमाणित होता ही है। इससे यह निस्संदेह माना जा सकता है कि महाभारत हिंदू धर्म एवं संस्कृति का एक महानतम ग्रंथ है।

सन्दर्भ

1. महाभारत- अनुक्रमणिका पर्व, श्लोक संख्या 72 एवं 73
2. महाभारत- अनुक्रमणिका पर्व, श्लोक संख्या 77
3. महाभारत, आदि पर्व (पर्व संग्रह पर्व), अध्याय 2, श्लोक संख्या 130
4. महाभारत, आदि पर्व (पर्व संग्रह पर्व), अध्याय 2, श्लोक संख्या 131
5. वही, श्लोक संख्या 141-142
6. वही, श्लोक संख्या 204-205
7. वही, श्लोक संख्या 216-217
8. वही, श्लोक संख्या 242-243
9. वही, श्लोक संख्या 252-253
10. वही, श्लोक संख्या 268-269
11. वही, श्लोक संख्या 278
12. वही, श्लोक संख्या 289-290
13. वही, श्लोक संख्या 310-311
14. वही, श्लोक संख्या 323-324
15. वही, श्लोक संख्या 330-331
16. वही, श्लोक संख्या 337-338
17. वही, श्लोक संख्या 343-344
18. वही, श्लोक संख्या 352-353
19. वही, श्लोक संख्या 363-364
20. वही, श्लोक संख्या 369
21. वही, श्लोक संख्या 377-378
22. महाभारत- अनुक्रमणिका पर्व, श्लोक संख्या 78
23. महाभारत- महात्मय, पृ. 1229
24. महाभारत- महात्मय, पृ. 1226

अध्याय 2

संचार : अवधारणा एवं महत्व

संचार की अवधारणा एवं अर्थ

मानव के आविर्भाव के साथ ही संचार का भी आविर्भाव हुआ। यह मानव समाज ही नहीं वरन पशु-पक्षी समाज में भी किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। जीवों के लिए जिस प्रकार वायु आवश्यक है उसी प्रकार मानव समाज के लिए संचार। संचार के अभाव में मानव समाज की परिकल्पना भी सम्भव नहीं।

यद्यपि संचार की प्रक्रिया बहुत पुरानी है परन्तु इसे एक अनुशासन के रूप में मान्यता काफी बाद में मिली। संचार का एक अनुशासन के रूप में अध्ययन लगभग सत्तर वर्ष पूर्व शुरू हुआ। संचार का एक अनुशासन के रूप में अध्ययन आरम्भिक दिनों में जिन लोगों ने शुरू किया वे विभिन्न अनुशासनों-राजनीतिशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र से सम्बद्ध थे। उन्होंने अपने विषय की आवश्यकता के ही अनुरूप संचार को देखा और अध्ययन किया, परिणामस्वरूप आज भी संचार में विभिन्न धारणाएँ विद्यमान हैं।

संचार मानव-व्यवहार को प्रभावित करता है। व्यवहार परिवर्तन और सामाजिक परिवर्तन की तह में जो रूप भेद व प्रक्रियाएँ है उन्हें समझने की आवश्यकता है। व्यक्तिगत स्तर पर हमें ज्ञात होना चाहिए कि लोग सन्देश की अनुभूति कैसे प्राप्त करते हैं तथा उसे किस प्रकार ग्रहण करते हैं? सन्देश कैसे लोगों तक पहुँचता है?

समाज का हर व्यक्ति सूचना या जानकारी अन्तर्वैयक्तिक, समूह संचार या जन संचार माध्यमों की सहायता से प्राप्त करता है इसलिए सभी प्रकार के संचार माध्यमों की विशेषताओं एवं प्रभावों के बारे में अध्ययन आवश्यक है।

संचार के लिए हिन्दी में सम्प्रेषण, संवाद, बातचीत शब्द भी प्रयुक्त किया जाता है जो संस्कृत के चर धातु से निःसृत है। चर का अभिप्राय है

चलना। गम्भीर अर्थों में निरन्तर आगे बढ़ते रहने वाली प्रक्रिया संचरण कहलाती है।

संचार शब्द अंग्रेजी भाषा के कम्युनिकेशन का हिन्दी रूपान्तरण है। कम्युनिकेशन शब्द लैटिन भाषा के कम्युनिज से बना है- जिसके निम्नलिखित तीन अर्थ होते हैं-

1. भागीदारी
2. स्थानांतरण
3. आदान-प्रदान

भागीदारी का अर्थ है किसी को अपने विचारों एवं भावनाओं से परिचित कराना। स्थानांतरण का अर्थ है विचारों एवं भावनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना। इसी प्रकार आदान-प्रदान का अर्थ है विचारों एवं भावनाओं का आदान-प्रदान। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संचार के द्वारा एक व्यक्ति अपने विचारों एवं भावनाओं को दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों तक स्थानांतरित करता है तथा दूसरे व्यक्ति की भावनाओं एवं विचारों से स्वयं परिचित होता है। विचारों भावनाओं की यह सहभागिता, स्थानांतरण एवं आदान-प्रदान एक प्रक्रिया के द्वारा होती है। यही प्रक्रिया संचार है। इसे हम इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं ''संचार एक ऐसा प्रयास है जिसके माध्यम से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के विचारों, भावनाओं एवं मनोवृत्तियों में सहभागी होता है।''[1]

इस प्रकार वे समस्त विधियाँ संचार है जिनके माध्यम से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करता है। इसी प्रकार विचारों, भावनाओं एवं अभिव्यक्तियों के उन सभी रूपों को संचार कहते हैं जो परस्पर साझेदारी के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। संचार के द्वारा व्यक्तियों के मध्य परस्पर समझ का विकास होता है। यह प्रत्येक समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। इसके अभाव में व्यक्ति का विश्व उसी तक सीमित रह जाता है। संचार का विकास व्यक्ति एवं समाज के अनुभवों पर निर्भर करता है। संचार घटनाओं का ऐसा ताल-मेल है जिसमें सन्देश निहित रहता है। इसके अनेक चरण होते हैं। जिस प्रकार मानव जीवन के लिए वायु का महत्व है उसी प्रकार समाज के लिए

संचार का महत्व है।

परिभाषाएँ

संचार को परिभाषित करना कोई सरल कार्य नहीं है। संचार को लेकर आज भी कोई एक ऐसी परिभाषा नहीं बन पाई है जिसे सारे संचार विशेषज्ञ स्वीकार कर लें। सम्प्रेषण की परिभाषा के सम्बन्ध में प्रसिद्ध संचार विशेषज्ञ थामस आर.निकल्सन ने अपनी पुस्तक 'ऑन डिफाइनिंग कम्युनिकेशन' में लिखा है ''संचार की परिभाषा की समस्या उतनी ही कठिन है जितनी कि शिक्षा की परिभाषा। एक दृष्टि में सीखने के समस्त अनुभव शिक्षा ही है.... लेकिन शिक्षा को सही परिदृश्य में देखने के लिए उन अनगिनत अनुभवों के अन्तर्सम्बन्धों की परिधि में देखना होगा जिसका शिक्षा अपने प्रयोजन में अविच्छिन्न भाग है। संचार को भी हमें इसी प्रकार समझना होगा।''[2]

विभिन्न संचार विशेषज्ञों द्वारा संचार की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं। कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

फ्रेड जी.मेयर

''मानवीय विचारों और सम्मतियों का शब्दों, पत्रों एवं सन्देशों के माध्यम से आदान-प्रदान करना संचार कहलाता है।''[3]

श्री मेयर ने अपनी परिभाषा के माध्यम से शब्दों एवं पत्रों का उल्लेख किया है जबकि संचार के आधुनिक युग में सन्देशों को इनके अतिरिक्त अन्य कई माध्यमों के द्वारा प्रेषित किया जाता है। इस दृष्टि से श्री मेयर की परिभाषा संचार की सम्पूर्णता को स्पष्ट नहीं कर रही है। आधुनिक युग में नई सूचना तकनीक में हो रहे परिवर्तनों के परिणामस्वरूप जनसंचार के अनेक माध्यम विकसित हो गये हैं जो सन्देशों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रेषित करते हैं।

वारेन वीवर

''वे समस्त विधियाँ जिसके द्वारा एक मस्तिष्क दूसरे को प्रभावित करता है संचार कहलाता है।''

लुइस ए.ऐलन

''संचार से आशय उन समस्त साधनों से है जिसके द्वारा एक व्यक्ति अपनी विचारधारा को दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में डालने के लिए अथवा उसे समझाने के लिए अपनाता है। यह वास्तव में दो व्यक्तियों के मस्तिष्क के बीच खाई को पाटने वाला सेतु है। इसके अन्तर्गत कहने, सुनने तथा समझने की एक वैज्ञानिक प्रक्रिया सदैव चालू रहती है।''

स्टीवेन्स

''सम्प्रेषण एक जीव का उत्तेजनाओं के प्रति विभेदक अनुक्रिया है।''

चार्ल्स ई. रेडफील्ड

''संचार से तात्पर्य उस व्यापक क्षेत्र से है जिसके माध्यम से मानव तथ्यों एवं सम्मतियों का आदान-प्रदान करते हैं। टेलीफोन, तार, रेडियो अथवा इसी प्रकार के अन्य तकनीकी साधन संचार नहीं है।''

श्री रेडफील्ड का आशय यह है कि ''यद्यपि तार, टेलीफोन, रेडियो आदि का संचार के साधनों का प्रतीक समझा जाता है किन्तु संचार का वास्तविक अर्थ सम्प्रेषक की विचारधारा एवं अभिव्यक्तियों को समझना है। तकनीकी साधन माध्यम होते हैं।''

ई.एम.रोजर एवं शूमेकर

''संचार वह प्रक्रिया है जिसमें स्रोत एवं श्रोता के मध्य सूचना संचार होता है। इस प्रकार संचार विचारों के आदान-प्रदान से सम्बद्ध है।''[8]

चार्ल्स ई.आसगुड

''आम तौर पर संचार तब होता है जब कोई ढाँचा या स्रोत किसी अन्य को प्रभावित करे, कुशलतापूर्वक विभिन्न संकेतों का प्रयोग करके उन साधनों के द्वारा जो उन्हें जोड़ते हो।''

एडविन एमरी, फिलिप, एच.आल्ट एवं डब्लू. के एगी

''सूचना, विचारों और अभिव्यक्तियों को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक सम्प्रेषित करने की कला का नाम संचार है।''

आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार

''विचारों, जानकारियों आदि का विनिमय, दूसरों तक पहुँचाना या बाँटना चाहे वे मौखिक, लिखित या संकेत में हों।''

संचार की प्रकृति

संचार मानव समाज का अभिन्न अंग है। मनुष्य द्वारा शब्द, संकेत, हाव-भाव इत्यादि रूपों में होने वाली संचार प्रक्रियाएँ संचार के ही अंग हैं। यह मानव जीवन की वह धुरी है जिसके द्वारा मानव समाज के सामाजिक संबंधों का निर्माण होता है। संचार के बिना हम मानव समाज के सामाजिक जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। वरिष्ठ संचार विशेषज्ञ सी.एल.लायड ने कहा है कि ''संचार ही मानव समाज की संचालन प्रक्रिया को सम्भव बनाता है।''[12]

संचार की प्रक्रिया में सूचना प्रवाह एवं सूचना की ग्रहणशीलता के कार्य में मानव शरीर के अनेक अंग पृथक-पृथक अथवा संयुक्त रूप से भूमिका निर्वहन करते हैं। इसमें प्रमुख हैं- मुख, हाथ, शरीर, चेहरा नेत्र और कान आदि। संचार प्रक्रिया में शरीर के अंग सूचना, प्रेषक, सूचना ग्रहीता, संचार माध्यम, सन्देश सम्पादन एवं नियन्त्रक का कार्य करते हैं।''

संचार प्रक्रिया का प्रारम्भ सम्प्रेषक एवं ग्रहीता के मध्य सन्देशों के आदान-प्रदान से होता है। सम्प्रेषक का प्रमुख उद्देश्य सन्देश प्रेषण के द्वारा श्रोता के विचार, व्यवहार, तौर-तरीकों को परिवर्तित एवं परिवर्धित करना होता है। सन्देश (सूचना) का संचार मात्र ही संचार नहीं है वरन इस पर एक प्रभावी प्रतिक्रिया का होना भी है जिसे संचार प्रक्रिया में प्रतिपुष्टि के रूप में जाना जाता है। कोई भी संचार तभी सार्थक होगा जब उसमें प्रतिपुष्टि भी हो। संचार में सूचनाओं एवं विचारों का आदान-प्रदान प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में होता है।

सामान्य रूप में संचार मानवीय समाज की संज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिसमें उद्देश्यपूर्ण एवं सार्थक अनुभवों, व्यवहारों एवं आवश्यकताओं का परस्पर आदान-प्रदान होता है। इसमें निश्चित लक्ष्य निहित होते हैं। यह व्यक्ति के व्यवहार को परिमार्जित एवं प्रभावित करने में सहयोगी होता है। यह कठिन, सरल, सहज, प्रतीकात्मक, समस्यायुक्त एवं विरोधाभासी प्रकृति का

भी होता है। सामान्य रूप से संचार प्रक्रिया तब व्यवहृत होती है जबकि कोई न कोई सन्देश सम्प्रेषित किया जाता है। मानव जिस रूप में संचार करना चाहता है उसी के अनुरूप इसकी प्रकृति बनती-बिगड़ती रहती है। संचार की प्रकृति सम्प्रेषक और ग्रहीता/श्रोता की प्रकृति के अनुरूप होती रहती है। यदि सम्प्रेषक विरोधाभासी सन्देश प्रसारित करता है तो इसकी प्रकृति विरोधी स्वभाव की हो जाती है।

संचार प्रत्येक समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। इसके अभाव में मानव समाज की स्थापना संभव नहीं। संचार के अभाव में व्यक्ति का संचार उसी तक सीमित होगा। संचार की प्रकृति सन्देश पर आधारित होती है। सन्देश जिस प्रकृति का होगा संचार की प्रकृति भी वैसी ही होगी। सन्देश की प्रकृति सकारात्मक और नकारात्मक प्रकृति का होता है।

संचार का परिणाम अन्तःक्रिया है अर्थात सम्प्रेषक एवं ग्रहीता के बीच सम्पर्क। यह अनेक तत्वों के बीच अन्तःक्रिया है जो पारस्परिक रूप में इस प्रकार कार्य करते हैं कि किसी एक तत्व के परिवर्तन से अन्य सभी तत्वों में परिवर्तन स्वतः गतिशील हो जाता है। वस्तुतः एक भंगिमा, संकेत, प्रतीक अथवा ध्वनि जो किसी व्यक्ति के पूर्वाग्रह अथवा वर्ग के दबाव के कारण अभिव्यक्त होती है, सम्प्रेषक के पूरे परिणाम को प्रभावित कर सकती है। "संचार की प्रकृति कोई निश्चित सैद्धान्तिक कार्य पद्धति नहीं बल्कि मानव के क्रियाशील साहसिक कार्यों एवं अन्तःक्रिया को समझने की अनवरत प्रक्रिया में निहित है। इस प्रकार यदि हम संचार की प्रकृति को समझने का प्रयास करें तो कह सकते हैं कि संचार की प्रकृति मिट्टी के उस गीले ढेर के समान है जिसे कुम्हार जिस रूप में चाहे ढाल सकता है और उनसे जो बर्तन (आकार) बनता है वह कुम्हार की इच्छा के अनुकूल होता है।"[13] जैसे बर्तन के ढेर को पकाते समय विभिन्न बाधाएँ उस ढेर में से कुछ को क्षतिग्रस्त कर देती है वैसे ही संचार की बाधाएँ ग्रहीता के लिए संचार के प्रभाव को कम अथवा नष्ट कर देती है। अतएव श्रोता एवं सम्प्रेषक की इच्छानुसार संचार की प्रकृति भी परिवर्तित होती रहती है।

कुछ मनोवैज्ञानिक संचार को मानव सम्बन्धों के एक उपकरण के

रूप में स्वीकार करते हैं। इसकी प्रकृति लोगों को एक-दूसरे के निकट आने तथा उनमें दूरी पैदा करने जैसी दोनों क्षमताओं वाली है जो जिस रूप को पसन्द करते हैं वैसा ही उपयोग भी करते हैं। संचार की प्रकृति इतनी जटिल है कि इसे किसी एक प्रतिरूप में सीमित नहीं किया जा सकता। अतएव इसकी प्रकृति असीमित है संचार के प्रतिरूपों की प्रकृति चाहे जैसी हो, वह मुख्यतया चार प्रकार की होती है-

(1) सूचनात्मक

(2) प्रेरणात्मक

(3) शिक्षात्मक

(4) मनोरंजक।

संचार का जब हम एक अनुशासन के रूप में अध्ययन करते हैं तो उसकी प्रकृति को वैज्ञानिक कह सकते हैं। परन्तु संचार के सन्देश पूर्णतया वस्तुनिष्ठ हो यह आवश्यक नहीं है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संचार की प्रकृति सम्प्रेषक और ग्रहीता की प्रकृति पर निर्भर करता है। वे इसे जिस रूप में चाहे प्रयुक्त कर सकते हैं।

संचार के कार्य

सम्प्रेषण का अर्थ है मनुष्य के भावों, विचारों, संवेदनाओं और मानवीय क्रियाओं का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तथा संचार। यह प्रक्रिया समाज सापेक्ष है। मनुष्य सम्प्रेषण की आवश्यकता केवल सम्प्रेषण के लिये ही नहीं अनुभव किया, बल्कि सम्प्रेषण की आवश्यकता उसे अपने दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलापों को सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए आवश्यक प्रतीत हुई। सम्पूर्ण महाभारत में संचार का अनुप्रयोग इसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये हुआ है।

हम जानते हैं कि सभी संचारों का परिणाम अन्तःक्रिया है। इस अन्तःक्रिया में सम्प्रेषक किसी न किसी रूप से ग्रहीता से सम्पर्क स्थापित करता है। इस प्रक्रिया में यह श्रोता के लिए कई प्रकार के कार्य करता है। संचार की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप सम्प्रेषक और प्रापक के बीच अन्तःसम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं।

हेराल्ड डी.लासवेल ने संचार के कार्यों को निम्नलिखित रूपों में विभाजित किया है।

(1) सूचना संग्रह एवं प्रसार

(2) सूचना विश्लेषण

(3) सामाजिक ज्ञान एवं मूल्यों का प्रेषण

कुछ संचार विशेषज्ञ संचार के कार्यों में मनोरंजन को भी शामिल कर लेते हैं। इस प्रकार संचार के प्रमुख चार कार्य होते हैं। ये चारों कार्य व प्रक्रियाएँ वर्तमान समाज में विभिन्न जन माध्यमों के द्वारा संचालित होते हैं। जन माध्यमों के ये कार्य परम्परागत एवं आधुनिक दोनों समाजों में देखे जा सकते हैं। उपरोक्त कार्यों को हम इस प्रकार समझ सकते हैं-

(1) सूचना संग्रह एवं प्रसार

सूचना संग्रह एवं प्रसार का कार्य जन माध्यम करते हैं। समाचारपत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो, दूरदर्शन एवं फिल्म देश-विदेश की सूचनाओं को संग्रहित एवं सम्प्रेषित करते हैं। समाचार का संचार एवं प्रसार उसकी उपयोगिता पर निर्भर करता है। यह सामान्यतया लोगों के कार्यों में सहायक होता है और बाधाओं से रक्षा करता है। जनमाध्यम सूचना के संग्रह और प्रसार के द्वारा समाज के लोगों की सूचना, समाज के अन्य लोगों तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। संचार माध्यमों की सूचना में व्यक्ति जिस रूप में स्थान पाता है उसी के अनुरूप उसका सामाजिक स्तर भी बनता है। जिन व्यक्तियों का उच्च सामाजिक स्तर होता है जनमाध्यम उस व्यक्ति की कार्य प्रणाली को प्रभावी रूप से प्रेषित करते हैं। जैसे राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, नेता प्रतिपक्ष आदि से सम्बन्धित समाचारों को अधिक महत्व दिया जाता है। समाचार सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रवृत्ति के होते हैं। संचार माध्यम यदि कभी विज्ञान के प्रगति की कथा कहते हैं तो कभी उसके दोषों से भी लोगों को सचेत करते हैं। इस प्रकार संचार माध्यम सूचनाओं का संग्रह कर उसका प्रसार करते हैं। जनमाध्यम घर बैठे ही लोगों को विश्व में होने वाली घटनाओं की तुरन्त सूचनाएँ देने में सफल हैं।

सूचनाओं के संग्रह एवं प्रसार हेतु महाभारत में गुप्तचर व्यवस्था का

उल्लेख किया गया है। तत्कालीन समाज में आज की भांति विकसित जनमाध्यमों का उल्लेख महाभारत में नहीं मिलता। देवर्षि नारद सूचना संग्रहण एवं प्रसार के क्षेत्र में प्रमुख रूप से स्मरण किये जाते हैं। वे त्रिकालदर्शी थे। अतः उनके पास सूचनायें संकलित हो जाती थी और वे इसका प्रसार भी करते थे। महाभारत में अनेक ऐसे दृष्टान्त हैं जिसमें संचार ने अलौकिक कार्य किया है।

जब द्रोपदी का चीरहरण हो रहा था वह देव सभा में अनेक प्रश्न उपस्थित की। किसी ने उसे संतोषजनक उत्तर नहीं दिया। अन्त में विवश होकर उसने आत्मगत संचार द्वारा भगवान श्रीकृष्ण को याद किया।

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन।[14]

अर्थात हे गोविन्द! हे द्वारकावासी श्रीकृष्ण! हे गोपांगनाओं के प्राण वल्लभ केशव! कौरव मेरा अपमान कर रहे हैं, क्या आप नहीं जानते? हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे संकटनाशन जनार्दन। मैं कौरव रूप समुद्र में डूबी जा रही हूँ, मेरा उद्धार कीजिये।

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्।[15]

अर्थात सच्चिदानंद स्वरूप श्रीकृष्ण! महायोगिन्! विश्वात्मन्। विश्वभावन! गोविन्द! कौरवों के बीच में कष्ट पाती हुई मुझ शरणागत अबला की रक्षा कीजिये।

पांचाली की करुण पुकार द्वारा जैसे ही भगवान श्रीकृष्ण को सूचना प्राप्त हुई कि वह संकट में है तो उन्होंने अव्यक्त रूप से उसके वस्त्र में प्रवेश करके भांति-भांति के सुन्दर वस्त्रों द्वारा उसे आच्छादित कर दिया।

(2) सूचना विश्लेषण

संचार माध्यम न केवल सूचना का संग्रहण एवं प्रसार करते हैं वरन ये सूचनाओं का विश्लेषण भी करते हैं। समाचारपत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो,

टेलीविजन आदि जनमाध्यम सूचना ग्रहण कर उनका विश्लेषण करते हैं। प्रत्येक घटना या आदेश पर सम्पादकीय, विश्लेषणात्मक लेख, वार्ता, वृत्तचित्र आदि जनमाध्यमों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। विश्लेषण का ये मुख्य उद्देश्य लोगों को प्रभावित करना होता है।

जनमाध्यमों द्वारा विश्लेषण उन्हीं घटनाओं या आदेशों का किया जाता है जो जनमाध्यम अथवा विशिष्ट वर्ग के लिए आवश्यक होता है। जनमाध्यमों द्वारा अनेक विशिष्ट विद्वानों एवं विचारकों को अपना विचार प्रकट करने का अवसर दिया जाता है। संचार माध्यमों के द्वारा व्यक्ति का बहुआयामी विकास होता है। इनके द्वारा सामान्य विचार, दृष्टिकोण एवं मूल्यों का विकास होता है।

जनमाध्यम समाजीकरण के अभिकरण के रूप में भी कार्य करते हैं। ये वयस्कों में स्कूली शिक्षा के पश्चात् भी समाजीकरण की प्रक्रिया को बनाए रखते हैं। जनमाध्यम विश्लेषण प्रक्रिया के द्वारा एक ही घटना अथवा विचार पर अनेक प्रकार के दृष्टिकोण प्रसारित करते हैं इससे जनसामान्य को उचित दृष्टिकोण के निर्धारण अथवा अनुकरण में सहायता मिलती है। जनसंचार के 'स्ट्रक्चरल फंक्शनल सिद्धांत' के अनुसार इसे 'सह सम्बन्ध' के रूप में जाना जाता है और बताया जाता है कि संचार माध्यम घटना और स्थिति के अनुसार विश्लेषण एवं व्याख्या कर उस पर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करते हैं।

गाण्डीवधारी अर्जुन द्वारा स्वयंवर में द्रोपदी को जीतने के पश्चात जब माता कुंती ने पांचों भाइयों से शादी करने का आशीर्वाद लिया तो एक धर्मसंकट खड़ा हो गया। राजा द्रुपद गंभीर चिंता में पड़ गये। भगवान व्यास वहाँ प्रकट होकर उन्हें इस समस्या का पार्श्वदृश्यों के माध्यम से उनके इस संकट का निवारण किया। इसके लिए उन्होंने इस समस्या का विश्लेषण-विवेचन। उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान की। इसका विस्तृत विवरण दिव्य दृष्टि द्वारा संचार नामक अध्याय में किया गया है।

(3) सामाजिक ज्ञान एवं मूल्यों का प्रेषण

संचार माध्यम का तीसरा प्रमुख कार्य लोगों के ज्ञान के स्तर में वृद्धि करना है। समाचारपत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो, टेलीविजन एवं अन्य संचार माध्यमों

के द्वारा लोगों को घटनाओं की सूचना ही नहीं दी जाती वरन समाज के जीवन्त प्रश्नों, उनके परिणामों, उनकी नीतियों आदि का ज्ञान भी प्रेषित किया जाता है जिससे अनेक समस्याओं के निदान भी होते हैं। संचार माध्यमों के द्वारा अनेक समस्याओं के निदान भी होते हैं। संचार माध्यम के द्वारा अनेक प्रकार की सूचनाओं एवं उनके प्रति व्याप्त सामाजिक दृष्टिकोण इत्यादि के द्वारा व्यक्ति के ज्ञान स्तर में वृद्धि होती है। आज तो जनमाध्यमों ने पाठशालाओं, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के शिक्षा के स्वरूप को भी बदल दिया है। आज विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं अन्य शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा अनेक शैक्षणिक कार्यक्रमों का प्रसारण किया जा रहा है जिससे लोगों के ज्ञान के स्तर में वृद्धि हो रही है। इस प्रकार जनमाध्यम स्कूली शिक्षा के अंग बनते जा रहे हैं, साथ ही साथ लोगों को सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों की शिक्षा भी दे रहे हैं। आज शैक्षणिक संचार को विकास संचार का अभिन्न अंग माना जा रहा है। शैक्षणिक संचार किसी निर्धारित लक्ष्य के प्रति एक शक्तिशाली आन्दोलन की परिकल्पना करता है। ऐसा आन्दोलन लोगों में चेतना पैदा कर सकता है और लोग अपने रवैये एवं व्यवहार के अपेक्षित परिवर्तन की आवश्यकता के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। नई तकनीक के सन्दर्भ में संचार का विस्तार काफी विस्तृत हो चुका है। संचार के अनेक अनुसंधानों ने हमें सूचना वितरण, शिक्षण-प्रशिक्षण तथा उनसे उपलब्ध प्रेरणा सम्बन्धी अनेक प्रकार की जानकारियाँ दी हैं। संचार द्वारा विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक गतिविधियों में समन्वय स्थापित करने का कार्य भी किया जाता है। संचार द्वारा सामाजिक मूल्यों के अनुरूप लोगों की प्राथमिकताएँ निश्चित कर उसके प्रति संचेतना पैदा की जाती है।

महाभारत ज्ञान शास्त्र है। इससे भू-लोक, अंतरिक्ष एवं पाताल तीनों लोकों का ज्ञान प्राप्त होता है। तभी तो भगवान व्यास ने कहा है

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षम्।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।[16]

अर्थात भरतश्रेष्ठ! धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के सम्बन्ध में जो बात इस ग्रंथ में है, वही अन्यत्र भी है, जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है।

(4) मनोरंजन

संचार माध्यमों का महत्वपूर्ण कार्य लोगों का मनोरंजन करना भी होता है। जनमाध्यम लेख, वृत्तचित्र, फिल्म, कार्टून, संगीत, कविता, नाटक, कहानी आदि का प्रसारण कर लोगों का मनोरंजन करते हैं। वर्तमान समय में सिनेमा, रेडियो एवं दूरदर्शन जैसे प्रसारण माध्यम मनोरंजन के प्रमुख साधन के रूप में कार्य कर रहे हैं। फिल्म के दिवास्वप्न में व्यक्ति अपने दैनिक कार्यभार एवं समय से मुक्ति पाता है। विविध भारती, चित्रहार, संगीत एवं फिल्मी गीतों के कैसेट्स, रिकार्डर या अच्छे उपन्यास पर आधारित फिल्मों में मनोरंजनपरक सूचना के कारण जनसामान्य में अच्छी लोकप्रियता प्राप्त है। सिनेमा का उद्देश्य पिछड़े लोगों को प्रभावित करना होता है। सिनेमा में अतिशयोक्ति, हिंसा, सेक्स जैसे भद्दे दृश्य भी दिखाये जा रहे हैं जो समाज का मनोरंजन तो करते हैं परन्तु उनमें समाज को गलत सन्देश भी देते हैं। यही कारण है कि संचार माध्यमों की आलोचना भी की जाने लगी है।

यद्यपि महाभारत में संचार माध्यमों का उपयोग मनोरंजन के लिये किया जाता था ऐसे अनेकों वृत्तांत मिलते हैं। यहां हम उसे उद्धरण के माध्यम से स्पष्ट कर रहे हैं-

पठन्नाख्यायिकाश्चैव स्त्रीभावेन पुनः पुनः।
रमयिष्ये महीपालमनयांश्चान्तःपुरे जनान्।[17]

स्त्रीभाव से अपने स्वरूप को छिपाकर बारंबार पूर्ववर्ती राजाओं के चरित्रों का गान करके महाराज विराट तथा अन्तःपुर की अन्यान्य स्त्रियों का मनोरंजन करना आवश्यक है।

जन मनोरंजन का अभिप्राय भावनात्मक एवं संवेदनशील उत्पादन से जुड़ा होता है। लोग सिने कलाकारों का अनुकरण भी अपने दैनिक जीवन में करने लगे हैं। इस प्रकार वर्तमान समय में जनमाध्यम जन मनोरंजन के प्रमुख आधार हैं। महाभारत काल में मनोरंजन के लिये परम्परागत माध्यमों का विवरण मिलता है इसका विस्तृत विवेचन परम्परागत संचार में किया गया है।

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त संचार के कुछ और महत्वपूर्ण कार्य भी होते हैं-

1. संचार द्वारा राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को मजबूत बनाने में मदद मिलती है।

2. यह लोगों को क्रियाशील होने के लिए प्रेरित करने का कार्य भी करता है।

3. इसके द्वारा व्यक्ति सोचने एवं सीखने के नजरिये में भी परिवर्तन लाता है।

4. यह जनमत को प्रभावित करने के लिए भी उपयोगी होता है।

5. सामाजिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन में भी सहायक होता है।

6. नवाचार प्रसारण में भी उपयोगी है।

7. पर्यावरण संरक्षण में भी सहयोग करता है।

8. अभिव्यक्ति एवं व्यवहार परिवर्तन में सहयोगी होता है।

9. संचार समाज में आपसी सम्बन्ध बनाने में भी उपयोगी होता है।

10. संचार सामाजिक व्यवस्था को नियंत्रित करने में भी सहयोगी है।

संचार की प्रक्रिया

संचार एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मानव शरीर की पाँचों इन्द्रियाँ भाग लेती हैं। इसका उल्लेख महाभारत के शांति पर्व में इस प्रकार किया गया है-

स्पर्शं तनुर्वेद रसं च जिह्वा
घ्राणं च गन्धान् श्रवणौ च शब्दान्।
रूपाणि चक्षुर्न च परत्परं यद्
गृहणत्त्यनध्यात्मविदो मनुष्याः।।

अर्थात त्वचा स्पर्श का, जिह्वा रस का, घ्राणेन्द्रिय गन्ध का कान शब्द का और नेत्र रूप का ही अनुभव करते हैं। इसे विस्तार रूप में अगले अध्यायों में वर्णित किया गया है।

संचार एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। आज संचार प्रक्रिया में 'स्रोत-ट्रान्समीटर-ग्रहीता' की सरल प्रक्रिया को महत्व देने के साथ ही साथ श्रोता-संचारक-सन्देश कूट बनाना (संकेत करना)- माध्यम- कूट खोजना (संकेत व्याख्या) - ग्रहीता -प्रतिपुष्टि जैसी जटिल प्रक्रिया को भी महत्व दिया जा रहा है। संचार प्रक्रिया, संचार के विविध साधनों एवं ग्रहीता समूहों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। संचार प्रक्रिया के विविध पहलुओं को ध्यान

में रखते हुए 'संचार के प्रतिरूप नामक अध्याय में अनेक प्रतिरूपों (मंडलों) का वर्णन किया गया है जिससे हमें पूरी संचार प्रक्रिया को समझने में सरलता होगी। यहाँ हम संचार की एक सरल प्रक्रिया को स्पष्ट कर रहे हैं। जिसमें प्रमुख रूप से तीन मूल तत्व भाग लेते हैं। यह है सम्प्रेषक, संदेश और प्रापक। इसे हम इस प्रकार चित्र द्वारा समझ सकते हैं-

संचार प्रक्रिया में कुछ ऐसी भी स्थितियाँ होती हैं, जब प्रापक सम्प्रेषक के पारस्परिक प्रभाव की प्रतिपुष्टि करता है तो सम्प्रेषक प्रक्रिया में एक तत्व और सम्मिलित हो जाता है। इस प्रकार सम्प्रेषक प्रक्रिया में चार तत्व हो जाते हैं। इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं-

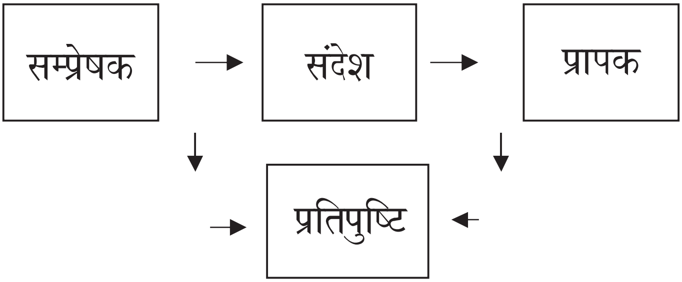

सम्प्रेषक का कार्य सन्देश को कूट बनाना (संकेत रचना) है। सन्देश प्राप्तकर्ता सन्देशों को डिकोड (कूट खोलना) करता है अर्थात संकेत संरचना की व्याख्या करता है और उसे अर्थ प्रदान करता है। इसे हम निम्न प्रतिरूप से सरलतापूर्वक समझ सकते हैं।

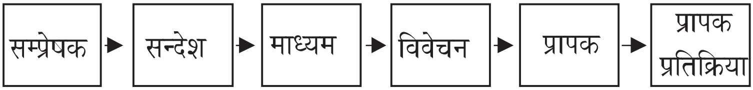

इस प्रतिरूप से स्पष्ट है कि संकेत किसी माध्यम द्वारा निर्दिष्ट गंतव्य

या व्यक्ति/व्यक्तियों तक प्रेषित किया जाता है। यदि इस प्रक्रिया में कोई अवरोध हो तो उसे 'शोर' कहा गया है। संचार, सम्प्रेषक एवं ग्रहीता के बीच अन्तःक्रिया है। इस अन्तःक्रिया में व्यक्ति, स्रोता की प्रामाणिकता या विश्वसनीयता, संज्ञानात्मक स्थिरता, अस्थिरता, अभिवृत्ति की प्रकृति तथा कतिपय सन्देशों के प्रति चयनात्मक दृष्टिकोण जैसे तत्व शामिल हैं।

एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम वह सामाजिक सन्दर्भ है जिससे संचार होता है। सामाजिक सन्दर्भ में कुछ परम्पराएँ व नियम हैं जो सन्देशों के उद्भव, प्रवाह एवं प्रभावों द्वारा अनुशासित होते हैं। ये परम्पराएँ या नियम संचार प्रक्रिया को प्रभावित करने वाली तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के परे होते हैं और ये उन परिस्थितियों की अवधारणाओं का विस्तार करते हैं जिससे संचार एक वर्ग से दूसरे वर्ग में तथा एक उप संस्कृति से दूसरी उपसंस्कृति में क्रियाशील होता है।

वेने ए.ब्रोकरीड ने अपनी पुस्तक 'डायमेन्शन ऑफ द कॉन्सेप्ट ऑफ रेड् टोरिक' में प्रभावोत्पादकता की धारणा को एक कसौटी के रूप में स्वीकार किया है और मानव संचार के अध्ययन हेतु एक बहुआयामी ढाँचे का निर्माण किया है। अधिक प्रभावशाली संचारशील क्रिया अपरिमित रूप में जटिल होती है। यह उस अन्योन्य प्रक्रिया का परिणाम है जिसे उसने मानव अन्तःक्रिया के अन्तर्गत व्यक्तिगत, स्थितिगत तथा मनोवृत्तिगत आयाम बताया है। ब्रोकरीड मानव संचार को एक दुरूह कार्रवाई के रूप में रेखांकित करते हैं। उनके अनुसार ''संचार में व्यवहार प्रक्रियाओं की विशिष्ट रूप में अपरिमित संख्या शामिल है।''

फ्रैंकलिन फीयरिंग ने संचार को, सामाजिक एवं व्यक्तिगत शक्तियों के व्यूह में होने वाली क्रिया के रूप में अभिव्यक्त किया है। उन्होंने संचार के अनेक आयामों का सुझाव दिया है जो निम्नलिखित है-

(अ) संकल्प की विशिष्टता

यह उस निश्चितता का निरूपण करती है जिससे सम्प्रेषक विषय-वस्तु के उन प्रभावों की परिकल्पना करता है जिन्हें वह उत्पन्न कर सकता है।

(ब) वास्तविकता

वास्तविकता उस बिन्दु का निरूपण करती है जिस बिन्दु तक सम्प्रेषक की विषय वस्तु मनोवैज्ञानिक तथा भौतिक वास्तविकता को प्रतिबिम्बित करती है।

(स) प्रामाणिकता या विश्वसनीयता

प्रामाणिकता उस बिन्दु का निरूपण करती है जिस बिन्दु तक सन्देश की विषय वस्तु के वे संकेत होते हैं जिन्हें टीकाकार वास्तविकता के समरूप स्वीकार करता है।

(द) रहस्यमयता

रहस्यमयता का सम्बन्ध सन्देश की विषय वस्तु के उन लक्षणों के साथ है जो टीकाकारों द्वारा परिवर्तन शील विन्यासीकरण हेतु सुग्राह्य बना दिये जाते हैं।

(य) सर्वांगसमता

यह उस बिन्दु का निरूपण करती है जहाँ तक संचार की प्रस्तुत विषय वस्तु टीकाकार की 'आवश्यक-मूल्य-माँग' के अनुकूल है।

संचार-प्रक्रिया के संघटक

सम्प्रेषण की प्रक्रिया हर स्थिति में एक समान नहीं होती। साधनों, सम्प्रेषक की स्थितियों, श्रोता की स्थिति एवं सन्देश के स्वरूप आदि के अनुसार इसकी प्रक्रिया बदलती रहती है। अतएव संचार की प्रक्रिया में भाग लेने वाले तत्वों की संख्या में भी परिवर्तन होता रहता है। संचार प्रक्रिया में सामान्यतया जो तत्व भाग लेते हैं उनका विवरण हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि ये सभी तत्व हर प्रक्रिया में मौजूद ही रहें।

1. सम्प्रेषक
2. सन्देश
3. संचार माध्यम
4. संकेतीकरण
5. संकेत वाचन

6. ग्रहीता/प्रापक

7. प्रतिपुष्टि

1. सम्प्रेषक

संचार प्रक्रिया को क्रियान्वित करने वाला सम्प्रेषक कहलाता है। यह सन्देशों की पूर्ण जानकारी रखता है। यह संचार प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण तत्व होता है। डेविड के.बर्लो ने संचारक में चार गुण का होना आवश्यक बतलाया है।

(1) संचार की निपुणता

(2) मनोवृत्ति

(3) ज्ञान का स्तर

(4) सामाजिक-सांस्कृतिक आचरण

महाभारत में संचारक के गुणों को इस प्रकार वर्णित किया गया है।

1. सान्त्वना

महाभारत में सम्प्रेषक के लिये सान्त्वना का गुण होना बतलाया गया है। सान्त्वना का भलीभाँति आचरण करने वाला व्यक्ति सबका प्रिय होता है।

सान्त्वमेकपदं शक्रः पुरुषः सम्यगाचरम्।
प्रमाणं सर्वभूतानां यशश्चैवाप्नुयान्महत्।। [18]

जो मनुष्य सभी को देखकर पहले ही बात करता है और सबसे मुस्कराकर बोलता है उस पर सब लोग प्रसन्न रहते हैं।

यस्तु सर्वभामिप्रेक्ष्य पूर्वमेवाभिभागते।
स्मितपूर्वाभिभाषी च तस्य लोकः प्रसीदति।। [19]

2. वक्ता, श्रोता और वाक्य में अविकलभाव

वक्ता, श्रोता और वाक्य तीनों में अविकलभाव से समस्थिति आ जाती है। तब वक्ता द्वारा प्रसारित सन्देश श्रोता की समझ में आता है।

वक्ता श्रोता च वाक्यं च यदा त्वविकलं नृप।
सममेति विवक्ष्ण्यां तदा सोऽर्थं प्रकाशते।। [20]

3. श्रोता की अवहेलना न करना

बोलते समय वक्ता जब श्रोता की अवहेलना करके अपनी बात

कहने लगता है तो वह बात श्रोता के हृदय में प्रवेश नहीं करती।

वक्तव्ये तु यदा वक्ता श्रोतारमवमन्य वै।
स्वार्थमाह परार्थं तत् तदा वाक्यं न रोहति।[21]

4. सार्थक वाक्य अर्थभेद रहित बोलना चाहिए।

महाभारत में एक दृष्टान्त है जिसमें सुलभा ने महाराज जनक को सम्बोधित करते हुए कहा है कि-

उपतार्थमभिन्नार्थं न्यायवृत्तं न चाधिकम्।
नाश्लक्ष्णं न च संदिग्धं वक्ष्यामि परमं ततः।[22]

अर्थात मैं ऐसा वाक्य बोलूँगी, जो सार्थक होगा। उसमें अर्थभेद नहीं होगा। वह न्याययुक्त होगा। उसमें आवश्यकता से अधिक, कर्णकटु एवं संदेहजनक पद नहीं होंगे। इस प्रकार मैं परम उत्तम वाक्य बोलूँगी।

5. निष्ठुर अक्षरों का संयोग नहीं होना चाहिए।

सुलभा ने पुनः आगे कहा-

न गुर्वक्षरसंयुक्तं पराङ्मुखसुखं न च।
नानृतं न त्रिवर्गेण विरुद्धं नाप्यसंसकृतम्।[23]

अर्थात मेरे इस वचन में गुरु एवं निष्ठुर अक्षरों का संयोग नहीं होगा। उसमें कोमलकान्त सुकुमार पदावली होगी। वह पराङ्मुख व्यक्तियों के लिए सुखद नहीं होगा। वह न तो झूठ होगा न धर्म, अर्थ और काम के विरुद्ध और संस्कारशून्य ही होगा।

6. कष्टकर शब्दों का प्रयोग न हो

सम्प्रेषक को श्रोता के लिए कष्टकारी शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

न न्यूनं कष्टशब्दं वा विक्रमाभिहितं न च।
न शेषमनु कल्पेन निष्कारणमहेतुकम्।[24]

मेरे उस वाक्य में न्यून पदत्व नामक दोष नहीं रहेगा, कष्टकर शब्दों का प्रयोग नहीं होगा, उसका क्रमरहित उच्चारण नहीं होगा। उसमें दूसरे पदों के अध्याहार और लक्षण की आवश्यकता नहीं होगी। यह वाक्य निष्प्रयोजन और युक्तिशून्य भी नहीं होगा।

अन्त में सुलभा ने महाराज जनक से स्वयं के बारे में कहा-

कामात् क्रोधाद् भयाल्लोभाद् दैन्याच्चानार्यकात् तथा।
ह्रीतोऽनुक्रोशतो मानान्न वक्ष्यामि कथंचन।[25]

मैं काम, क्रोध, भय, लोभ, दैन्य, अनार्यता, लज्जा, दया तथा अभिमान से किसी तरह कोई बात नहीं बोलूँगी।

क्रमरहित उच्चारण न हो।

काम, क्रोध, भय, लोभ, दैन्य, अनार्यता, लज्जा, दया तथा अभिमान से कोई बात नहीं बोलना चाहिए।

वक्ता और श्रोता दोनों के लिए अनुकूल वचन बोलना।

2. सन्देश

संचारक जो कुछ भी श्रोता से कहता है वही सन्देश है। सन्देश और विषय सामग्री में अन्तर होता है। सन्देश विषय सामग्री के अनुरूप नहीं होता अपितु सन्देश वह होता है जिसके बारे में विषय सामग्री कुछ कहती है। अच्छा सन्देश सामान्यतया निम्नलिखित विशेषताओं से युक्त होना चाहिए-

1. सन्देश उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए।
2. सन्देश, सत्यता, सन्तुलन एवं वैज्ञानिक दृष्टि से युक्त होना चाहिए।
3. सन्देश लक्षित व्यक्ति या समूह की आवश्यकता के अनुरूप होना चाहिए।
4. सन्देश समयानुकूल होना चाहिए।
5. सन्देश व्यावहारिक होना चाहिए।
6. सन्देश की भाषा, लक्षित व्यक्ति या समूह के अनुरूप होना चाहिए।

सन्देश के संदर्भ में भी महाभारत में जनक और सुलभा के वार्तालाप की चर्चा प्रासंगिक है। सुलभा ने महाराज जनक से कहा-

नवभिर्नवभिश्चैव दोषैर्वाग्बुद्धिदूषणैः।
अपेतमुपपन्नार्थमष्टादशगुणान्वितम्।
सौक्ष्म्यं सांख्यक्रमौ चोभौ निर्णयः सप्रयोजनः।
पंचैतान्यर्थजातानि वाक्यमित्युच्यते नृप।[26]

अर्थात वाणी और बुद्धि को दूषित करने वाले जो नौ-नौ दोष हैं, उनसे रहित, अठारह गुणों से सम्पन्न और युक्तिसंगत अर्थ से युक्त पद समूह

को वाक्य कहते हैं। उस वाक्य में सौक्ष्म्य, सांख्य, क्रम, निर्णय और प्रयोजन, ये पांच प्रकार के अर्थ रहने चाहिये।

यदि भाषा लक्षित समूह/व्यक्ति के अनुरूप नहीं है तो अच्छा सन्देश अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता।

सामान्यतया सन्देश के संचरण के समय सम्प्रेषक के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता है-

(अ) सन्देश संकेत

सन्देश को स्पष्ट एवं सरल बनाने के लिये सम्प्रेषक को सन्देश संकेत चुनना चाहिए। संकेत को प्रतीकों द्वारा सार्थक एवं प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है। यदि सन्देश के लिए भाषा का प्रयोग हो रहा हो तो यहाँ संकेत भाषा ही है। प्रभावी सन्देश के लिए आवश्यक है कि भाषा ग्रहीता के अनुकूल हो। कभी-कभी संकेतों एवं भाव भंगिमाओं से भी सन्देश दिया जाता है। इसके लिए संकेत एवं भाव भंगिमाओं को सन्देश के अनुकूल ही प्रदर्शित करना चाहिए।

(ब) विषय वस्तु

सम्प्रेषक को सन्देश की विषय वस्तु का चयन प्रयोजन के अनुरूप करना चाहिए। विषय वस्तु को देश, काल एवं परिस्थिति के अनुरूप बनाकर सन्देश को विश्वसनीय बनाया जा सकता है।

(स) सन्देश प्रतिपादन

सन्देश प्रतिपादन के अन्तर्गत सम्प्रेषक को सन्देश को अपनाने के लिए प्रतिवेदन करना चाहिए। वह सन्देश लिखने की तकनीक, बोलने की शैली और ठीक-ठीक ढंग से संचार सामग्री का प्रयोग करके सन्देश के बारे में प्रेरणा देता है। संचार प्रक्रिया के लिए आवश्यक है कि सन्देश को समय पर लक्षित समूह या व्यक्ति तक पहुँचाया जाय। सन्देश को प्रभावी बनाने के लिए उपयुक्त माध्यम का चयन करना चाहिए।

सन्देश वाक्यों में रचित होता है। इस संदर्भ में महाभारत में वर्णित है कि-

नवभिर्नवभिश्चैव दोषैर्वाग्बुद्धिदूषणैः।

अपेतमुपपन्नार्थमष्टादशगुणान्वितम्।
सौक्ष्म्यं सांख्यक्रमौ चोभौ निर्णयः सप्रयोजनः।
पंचैनान्यर्थजातानि वाक्यमित्युच्यते नृप।।[27]

अर्थात वाणी और बुद्धि को दूषित करने वाले जो नौ-नौ दोष हैं, उनसे रहित, अठारह गुणों से सम्पन्न और युक्तिसंगत अर्थ से युक्त पद समूह को वाक्य कहते हैं। उस वाक्य में सौक्ष्म्य, सांख्य, क्रम, निर्णय और प्रयोजन ये पांच प्रकार के अर्थ रहने चाहिए।

एषामेकैकशोऽर्थानां सौक्ष्म्यादीनां स्वलक्षणम्।
श्रृणु संसार्यमाणानां पदार्थपदवाक्यतः।[28]

अर्थात ये जो सौक्ष्म्य आदि अर्थ हैं, ये पद, वाक्य, पदार्थ और वाक्यार्थ रूप से खोलकर बताये जा रहे हैं। आप इनमें से एक-एक का अलग-अलग लक्षण सुनिये।

ज्ञानं ज्ञेयेषु भिन्नेषु यदा भेदेन वर्तते।
तत्रातिशायिनी बुद्धिस्तत् सौक्ष्म्यमिति वर्तते।[29]

अर्थात जहाँ अनेक भिन्न-भिन्न ज्ञेय (अर्थ) उपस्थित हों और 'यह घट है, यह पट है' इस प्रकार वस्तुओं का पृथक-पृथक ज्ञान होता है, ऐसे स्थलों में यथार्थ निर्णय करने वाली जो बुद्धि है, उसी का नाम सौक्ष्म्य है।

इदं पूर्वमिदं पश्चाद् वक्तव्यं यद् विवक्षितम्।
क्रमयोगं तमप्याहुर्वाक्यं वाक्यविदो जनाः।[30]

अर्थात परिगणित गुणों और दोषों में से अमुक गुण या दोष पहले कहना चाहिए और अमुक को पीछे कहना अभीष्ट है। इस प्रकार जो पूर्वा पर के क्रम का विचार होता है, उसका नाम क्रम है और जिस वाक्य में ऐसा क्रम हो, उस वाक्य को वाक्यवेत्ता विद्वान क्रमयुक्त कहते हैं।

3. चैनल

महाभारत काल में सन्देशों को दूत, देवदूत, गुप्तचर आदि के माध्यम से सम्प्रेषित करते थे। कहाँ, किस परिस्थिति में, कौन-सा व्यक्ति उपयुक्त होगा। इस तथ्य के आधार पर ही माध्यम का निर्धारण किया जाता था। इसका उल्लेख संचार के साधन नामक अध्याय में विस्तारपूर्वक किया गया है।

सम्प्रेषक और संग्राहक के बीच सेतु का काम करने वाला संचार साधन चैनल कहलाता है, अर्थात सन्देश को जिस माध्यम के द्वारा सम्प्रेषक अपने लक्षित समूह/व्यक्ति तक पहुँचाता है वही संचार माध्यम है। प्रभावी संचार माध्यम ही सन्देश को प्रभावी बनाता है। मार्शल, मैक्लूहान ने तो यहाँ तक कहा है कि 'माध्यम ही सन्देश' है। यह सामान्यता संकेतों और सन्देशों को रूपान्तरित करने का उपकरण होता है।

संचार माध्यम का चयन करते समय चयनकर्ता को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए।

1. माध्यम का चयन सन्देश के तत्व और उसके स्वभाव के अनुकूल करना चाहिए।
2. माध्यम की पहुँच लक्षित समूह/व्यक्ति तक सुलभ हो।
3. संचार माध्यम लक्षित समूह/व्यक्ति की एक से अधिक इन्द्रियों का प्रयोग करने वाला हो क्योंकि एक से अधिक इन्द्रियों के प्रयोग (संलग्न) होने से संचार का प्रभाव अधिक पुष्ट और प्रभावशाली होता है।
4. संचार माध्यम ऐसा हो जो लक्षित समूह/व्यक्ति तक संदेश को ठीक समय पर पहुँचा सके।
5. संचार माध्यम का चयन करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि वह ज्यादा खर्चीला न हो।

4. संकेतीकरण

सम्प्रेषक जब भावों या विचारों को संकेत के रूप में परिवर्तित कर रचनात्मक विधि से श्रोताओं तक पहुँचता है तो इसे संकेतीकरण कहते हैं उदाहरणार्थ : शब्दों, (लिखित या मौखिक), संकेतों, भाव भंगिमाओं आदि के द्वारा संदेश को प्रसारित करना। डॉ. जे पाल लीगन्स के अनुसार "शब्द संचार प्रक्रिया का मुख्य माध्यम है किन्तु शब्द तभी तक प्रभावशाली होते हैं जब इनके साथ संकेत, चित्र आदि का प्रयोग हो। संकेत, संचार प्रक्रिया में सहायक होने के साथ ही साथ उसे प्रभावशाली भी बनाते हैं।" दूरदर्शन पर आज प्रसारित होने वाले प्रायः सभी कार्यक्रमों में शब्दों के साथ चित्रों का प्रयोग इसलिए बढ़ता जा रहा है। समाचारपत्र-पत्रिकाओं में भी तेजी से चित्रों एवं

रेखाचित्रों के बढ़ते प्रयोग के भी यही कारण है।

कोई भी शब्द तब तक सार्थक नहीं होता जब तक कि उसका सही अर्थ ग्रहीता न जान सके। शब्द संकेत इस दिशा में सहयोगी होते हैं। शब्दों के अर्थ की अज्ञानता के कारण अच्छे से अच्छे शब्द भी निरर्थक एवं अनुपयोगी रह जाते हैं। संचार प्रक्रिया को सार्थक बनाने के लिए ऐसे संकेतों का चयन आवश्यक है जो विचारों को सही रूप में व्यक्त कर सकें और जिनका अर्थ सम्प्रेषक और ग्रहीता दोनों एक समान ही समझते हों। सम्प्रेषक सूचना प्रेषित करने के पूर्व सन्देश को अपने तरीके से परिवर्तित करता है ताकि ग्रहीता इसे आसानी से समझ सके। सम्प्रेषक द्वारा सन्देश के इसी परिवर्तन का नाम संकेतीकरण है।

5. संकेतवाचन

संकेत वाचन ग्रहीता की समझ क्षमता पर निर्भर करता है। ग्रहीता सन्देश को अपने तरीके से समझता है तथा उसे ग्रहण करता है। इसी प्रक्रिया को संकेत वाचन कहते हैं। यही से अर्थ की दूसरी संरचना का प्रारम्भ होता है जो तकनीकी अवस्थान उत्पादन के सम्बन्ध और ज्ञान के ढाँचे से सन्देश को पुनः जोड़ती है। इनकोडिंग और डीकोडिंग में पूरी तरह सामंजस्य नहीं होता। सामन्जस्य की स्थिति सम्प्रेषक और ग्रहीता के गुणात्मक स्तर पर निर्भर करती है। सम्प्रेषक इनकोडर और ग्रहीता डिकोडर के मानकीकरण की स्थिति पर सामंजस्य की स्थिति निर्भर करती है।

6. प्रापक/ग्रहीता

सन्देश को प्राप्त करने वाला प्रापक कहलाता है। प्रापक सर्वज्ञ या अल्पज्ञ हो सकता है। वह धैर्यपूर्वक सुनने/देखने अथवा अधैर्यपूर्वक सुनने/देखने वाला हो सकता है। वह स्पष्ट रूप से देखने/सुनने एवं समझने वाला या भ्रामक रूप से देखने/सुनने व समझने वाला भी हो सकता है। सफल संचार प्रक्रिया के लिए संग्राहक को निम्नलिखित गुणों से युक्त होना चाहिए।[31]

1. उसे सन्देश को धैर्यपूर्वक ग्रहण करना चाहिए।
2. सन्देश को स्पष्ट रूप से ग्रहण कर उसका अनुपालन करना चाहिए।
3. विश्वसनीय सूचनाओं का चयन करने की सामर्थ्य होनी चाहिए।

7. प्रतिपुष्टि

संचार प्रक्रिया को सफल बनाने में प्रतिपुष्टि भी आवश्यक होती है। संप्रेषक को सन्देश प्रसारित करने के पश्चात् यह जानना आवश्यक है कि संग्राहकों ने उसे ग्रहण किया अथवा नहीं। प्रतिपुष्टि द्विमार्गी पद्धति है।

1. संग्राहक से सम्प्रेषक तक

2. सम्प्रेषक से संग्राहक तक

प्रतिपुष्टि सूचना, प्रवृत्ति के आधार पर सामान्यतया दो प्रकार की होती है।

1. सकारात्मक- इसमें श्रोता सकारात्मक प्रतिक्रिया देता है।

2. नकारात्मक- इसमें श्रोता नकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करता है।

संचारित संदेश उपयोगी हो रहा है अथवा नहीं। संचार प्रक्रिया में यदि कोई कमी रह गई तो कहाँ और उसे कैसे सुधारा जा सकता है? इन सभी शंकाओं का उत्तर प्रतिपुष्टि से प्राप्त होता है। प्रतिपुष्टि सन्देश को संग्राहक की आवश्यकतानुसार एकलय बनाने में सहायक होती है। सार्थक संचार सदैव प्रतिपुष्टि की कामना करता है।

संचार शोर

सन्देश जब किसी बाधा या अवरोध के कारण गन्तव्य स्थल तक नहीं पहुँचता अथवा संचार प्रक्रिया विविध प्रकरणों से बाधित होती है तो यही संचार विघ्न कहलाता है। किसी सभा में सभी श्रोताओं का एक साथ समय पर उपस्थित न होना, सन्देश को पढ़ने में अक्षम होना, संचार साधनों के संचालन में तकनीकी त्रुटि आदि अनेक ऐसे तत्व हैं जिनसे संचार प्रक्रिया बाधित होती है। जब संचार प्रक्रिया बाधित होती है तो सम्प्रेषक को परेशानी होती है। कभी-कभी तो वह निराश भी होने लगता है। यह बाधा ग्रहीता/श्रोता को सूचना प्राप्त करने से रोकती है। इसे शोर भी कहते हैं। इसका अध्ययन शैनन और बीवर ने टेलीफोन संचार के सम्बन्ध में किया। उन्होंने पाया कि टेलीफोन द्वारा सन्देश प्रेषित करने में यह शोर बाधा पहुँचा रहा है। डीफ्ल्योर ने अपने प्रतिरूप में इसे किसी भी स्तर पर होने की सम्भावना व्यक्त किया है। इसे एक पुस्तक में आगे स्पष्ट किया गया है।

संचार की समस्याएँ

संचार प्रक्रिया एक मनोवैज्ञानिक जटिल प्रक्रिया है। यह उस समय और भी जटिल हो जाती है जब मानव जाति के संज्ञानात्मक प्रभावी एवं ऐच्छिक स्तरों में भिन्नता होती है। ये भिन्नतायें संचार के किसी भी चरण अर्थात अभिव्यक्ति, व्याख्या और प्रत्युत्तर में उत्पन्न हो सकती है। इससे संचार की अनेक समस्यायें उत्पन्न हो जाती है जिन पर ध्यान देना उस समय और भी आवश्यक हो जाता है, जब संचार को प्रभावकारी बनाना अनिवार्य होता है। प्रसिद्ध संचार विशेषज्ञ पाल लीगंस ने इन समस्याओं की निम्नलिखित रूपों में व्याख्या की है-

1. संचार किसी व्यक्ति की संचार प्रक्रिया की संकल्पना तक सीमित है।
2. संचार में संचारक और ग्रहीता के बीच अन्तःक्रिया होती है।
3. सन्देश को ग्रहीता (अन्य व्यक्ति) तक पहुँचाने के पूर्व संचार/संचारक का कोई विचार होना चाहिए।
4. विचारों के प्रस्तुतीकरण, वस्तुओं एवं संकल्पनाओं के लिये प्रयोग किये जाने वाली प्रतीकों का सही और कुशलता पूर्वक प्रयोग होना चाहिए।
5. सांस्कृतिक मूल्य और सामाजिक संगठन संचार के निर्धारक, निरूपक है, अतएव इसका सदैव ध्यान रखना चाहिए।
6. सम्प्रेषक द्वारा उत्पन्न वातावरण उसकी प्रभावशीलता को प्रभावित करता है जिसका ग्रहीता पर असर पड़ता है।
7. संचार को सार्थक एवं प्रभावी बनाने के लिए संचार के समस्त प्रयास किसी विशिष्ट रूप या पद्धति के अनुरूप किये जाने चाहिए।
8. संचार के लिए सहभागिता और समानुभूति अनिवार्य है।
9. संचार के मानक और स्तर उसकी सफलता को प्रभावित करते हैं।
10. संचार की सफलता एवं सुधार के लिए शिक्षा अनिवार्य है।

सामान्यतया ऐसा भी होता है कि सन्देश का वह अर्थ सन्देश प्राप्तकर्ता नहीं लेता जैसा सम्प्रेषक को अभिप्रेत है। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रभावकारी संचार के लिए संकेत रचना (कूट) बनाने में सावधानी रखनी चाहिए अथवा संकेत रचना को इस प्रकार खोला जा सके जिससे अपेक्षित

प्रत्युत्तर प्राप्त हो सके। प्रत्येक चरण में यह याद रखना चाहिए कि संचार एक सहभागी अनुभव है। ग्रहीता केवल संचारक का ही प्रतिकार नहीं करता वरन् माध्यम और सन्देश का भी प्रतिकार करता है। अतएव प्रभावी संचार के लिए माध्मय के चयन में भी बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। संचार माध्यम लक्षित श्रोताओं के अनुकूल होना चाहिए। सन्देश की भाषा भी श्रोता के अनुकूल होनी चाहिए क्योंकि सन्देश की भाषा यदि श्रोता के अनुकूल नहीं है तो उसे ग्रहण करने में कठिनाई होगी।

संचार के सात सी

संचार एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव के व्यवहार एवं संबंधों की निर्मिति होती है। यह तभी संभव होता है जब सम्प्रेषक और ग्रहीता के बीच सम्प्रेषण एवं सम्बन्धों में विश्वसनीयता होती है। संचारविदों ने सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने हेतु कुछ मार्गदर्शन दिया है जिसे संचार के सात सी कहते हैं। ये निम्नलिखित हैं-

1. स्पष्टता
2. विश्वसनीयता
3. प्रसंग
4. विषयवस्तु
5. निरन्तरता
6. माध्यम
7. ग्रहीता की क्षमता

1. स्पष्टता- प्रभावी संचार के लिए विचारों और अभिव्यक्ति में स्पष्टता अति आवश्यक है। संचार का चक्र मस्तिष्क में विचार के उत्पन्न होते ही शुरू हो जाता है। इस अवस्था में स्पष्टता की महती आवश्यकता है क्योंकि अगर विचार ही स्पष्ट नहीं होगा तो उससे बनने वाला सन्देश भी स्पष्ट और प्रभावी नहीं होगा। विचारों में स्पष्टता से निम्नलिखित आशय है-

(अ) सम्प्रेषक को संचार के उद्देश्यों की स्पष्ट समझ होनी चाहिए।

(ब) उसको सटीक रूप से यह पता होना चाहिए कि वह क्या सम्प्रेषित करना चाहता है।

(स) उसको सबसे उपयुक्त माध्यम के सम्बन्ध में निर्णय करना चाहिए।

2. विश्वसनीयता- सन्देश के ग्रहणकर्ता को अपने स्रोत पर पूरा विश्वास होना चाहिए। यह विश्वास सम्प्रेषक द्वारा अपनी कार्य प्रणाली से उत्पन्न किया जायेगा। स्रोत को अपने सन्देश प्रेषण में नैतिक सिद्धांतों के प्रति लगनशील एवं स्वच्छ प्रक्रिया अपनानी चाहिए।

3. संदर्भ- संदर्भ सन्देश की पुष्टि करने वाला होना चाहिए। ऐसा कुछ सन्देश प्रेषित नहीं करना चाहिए जो सन्देश में विरोधाभास उत्पन्न करे। ग्रहणकर्ता की सहभागिता सौजन्यतावश मानकर चलना चाहिए। सौजन्यता के माध्यम से भिन्नता को बढ़ाना चाहिए। सम्प्रेषक और ग्रहीता के बीच आपसी सम्बन्ध विकसित करना चाहिए। गलती होने पर खेद व्यक्त करना हितकर होता है।

4. अन्तर्वस्तु- सन्देश प्राप्तकर्ता के लिए अर्थपूर्ण होना चाहिए। उसके लिए वह उससे सम्बन्धित होना चाहिए। लिखित सन्देश में अन्तर्वस्तु की पूर्णता पर ध्यान देना चाहिए। पूर्व के संचार की जिज्ञासाओं का समाधान या उत्तर आगे सम्मलित हो जाना चाहिए। सन्देश की अन्तर्वस्तु सारगर्भित एवं सुगठित होना चाहिए।

5. निरन्तरता- सन्देश प्रणाली होने के टिकाऊ होना चाहिए। वह अपने में विरोधाभासी नहीं होना चाहिए। तर्कों की निरन्तरता में स्थिरता होनी चाहिए। संचार क्रिया व प्रक्रिया की न समाप्त होने वाली व्यवस्था है इसलिए इसमें निरन्तरता आवश्यक है।

6. माध्यम- हम सन्देश के प्रसारण हेतु कई माध्यमों का प्रयोग करते हैं। यह मौखिक, आमने-सामने, शाब्दिक एवं अशाब्दिक हो सकते हैं। हम मौखिक या लिखित स्वरूप का भी प्रयोग कर सकते हैं। प्रभावी संचार के लिए माध्यम का बहुत महत्व होता है। सम्प्रेषक को ग्रहणकर्ता के अनुरूप एवं उसकी इच्छानुसार माध्यम का चयन करना हितकर होता है।

7. श्रोताओं की क्षमता- सन्देश का अन्तिम पड़ाव श्रोता, पाठक या दर्शक होता है। सन्देश की भाषा व शैली ऐसी होनी चाहिए जिससे ग्रहणकर्ता आसानी और सटीकता से सन्देश को ग्रहण कर सके।

सन्दर्भ

1. डॉ. श्रीकांत सिंह, मानव संचार शास्त्र, पृ. 42
2. वही, पृ. 43
3. व्यवसाय प्रशासन एवं प्रबंधन, डॉ. एस.सी.सक्सेना
4. वही
5. Management and Organization - Louis A. Allen
6. डॉ. श्रीकांत सिंह, मानव संचार शास्त्र
7. Communication in Management - Charles E. Redifield
8. Communication of Innovation - Rogers E and E. Shoemakers
9. Psycholinguistics A Survey of Theory and Research Problems - Osgood W.E.
10. Introduction to Mass Communication - Edwin Emery Phillip. H Ault & W.K. Agee
11. Oxford Dictionary
12. Communication Assessment and Intervention Strategy., - C.L. Lyod.
13. डॉ. श्रीकांत सिंह, मानव संचार शास्त्र
14. महाभारत, सभापर्व, द्यूतपर्व, अध्याय 68, श्लोक संख्या 41-42
15. महाभारत, सभापर्व, द्यूतपर्व, अध्याय 68, श्लोक संख्या 43
16. महाभारत, आदि पर्व, अध्याय 62, श्लोक संख्या 53
17. महाभारत, विराट पर्व, अध्याय 2, श्लोक संख्या 28
18. महाभारत, धर्मानुशासन पर्व, खण्ड- 5, पृ. 270-71, श्लोक- 4
19. वही, श्लोक सं. 6
20. महाभारत, भाग- 5, पृ. 1006
21. महाभारत, शान्ति पर्व (मोक्ष पर्व), अध्याय 320, श्लोक 92
22. वही, श्लोक 87
23. वही, श्लोक 88

24. वही, श्लोक 89
25. वही, श्लोक 90
26. महाभारत, शान्ति पर्व (मोक्ष पर्व) अध्याय 320, श्लोक संख्या 78-79
27. महाभारत, शान्ति पर्व (मोक्षधर्म पर्व), अध्याय 130, श्लोक संख्या 78-79
28. वही, श्लोक संख्या 80
29. वही, श्लोक संख्या 81
30. वही, श्लोक संख्या 83
31. श्रोता के गुण, महाभारत भाग 5, पृ. 1007

अध्याय 3

आभ्यन्तर संचार

आभ्यन्तर संचार मानव समाज के सभी संचारों का मुख्य आधार अथवा केन्द्र है, जितने भी सामाजिक विज्ञान अथवा अध्ययन की प्रणालियाँ हैं, उन सभी में आभ्यन्तर प्रक्रिया में उस विषय अथवा ज्ञान की दृष्टि के विकास का प्रयास होता है, जिससे सम्बद्ध विषय का अनुशासन का हृदयांगम हो सके। मानव समाज सदा से प्रभावी एवं कुशल आभ्यान्तर संचार पूर्ण रूप से बिखरा है, उस व्यक्ति को हम पागल की संज्ञा देकर ज्ञान तथा मानव समाज के लिये अनुपयुक्त घोषित कर देते हैं। इस प्रकार आभ्यन्तर संचार प्रमुख होने के साथ-साथ रहस्यवादी भी हैं।

भारतीय मनीषा ने आभ्यन्तर संचार की प्रक्रिया को समझने के प्रयास के साथ-साथ आभ्यन्तर संचार प्रक्रिया को सुधारने तथा इसके विकास का प्रयास किया, जिसके परिणामस्वरूप योग-शास्त्र आदि का विकास हुआ। संचार की इस व्यवहार प्रक्रिया के आधार पर हम इसे भौतिक एवं अभौतिक अथवा अन्तः एवं बाह्य रूपों में विभाजित कर सकते हैं-

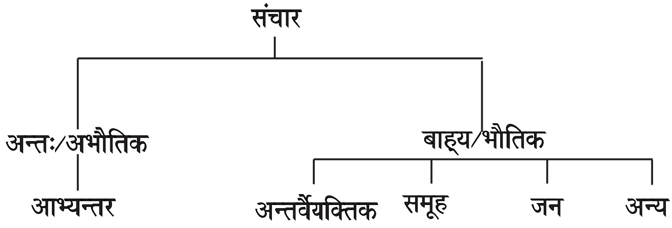

संचार के इस व्यावहारिक वर्गीकरण से स्पष्ट है कि आभ्यान्तर संचार की प्रकृति अभौतिक तथा अन्तर्मुखी है। इसकी इस प्रवृत्ति को जानने के साथ-साथ हमें अन्य संचारों से इसके सम्बन्ध को भी समझना आवश्यक है। वास्तव में आभ्यन्तर संचार अन्य संचारों का केन्द्र अथवा धुरी है। इसी के

सहारे सभी संचार मानव समाज में संचालित होते हैं। इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं-

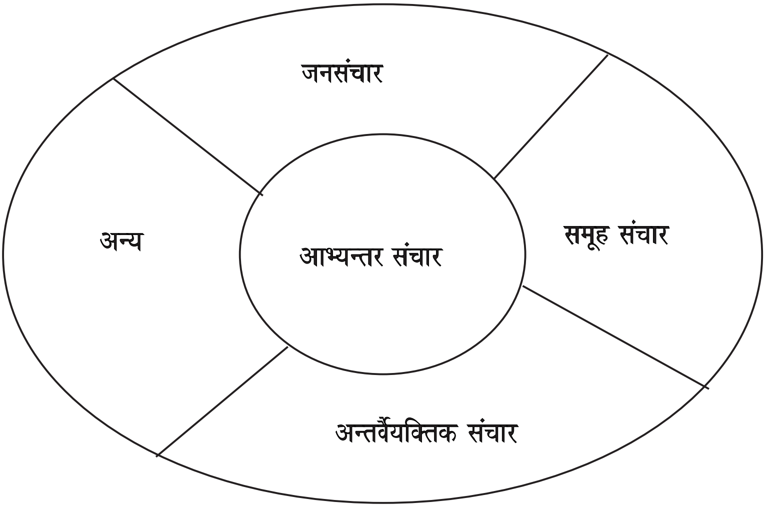

आभ्यन्तर संचार द्वारा इस बाह्य जगत के संचारों के अलावा आभ्यन्तर संचार के द्वारा सूक्ष्म जगत के जो रहस्य हैं अथवा जो ज्ञान है, उसका भी ज्ञान हमें होता है। आभ्यन्तर के विकास की अवस्था में मनुष्य संचार के गूढ़-से-गूढ़ रहस्यों को आत्मसात करता है। आभ्यन्तर संचार का चरम उस ईश्वर अथवा जगत कर्ता तक ले जाता है, जिसने विश्व की सृष्टि की है। इस कारण हम कह सकते हैं कि आभ्यन्तर संचार की परा यात्रा में मनुष्य जगत् नियंता एवं परमेश्वर की विराटता को प्राप्त करता है। इसके विपरीत भौतिक जगत् में आभ्यन्तर संचार के द्वारा जन संचार से जुड़कर व्यापक समाज की विराटता से जुड़ जाता है। इससे स्पष्ट है कि आभ्यन्तर संचार ही मनुष्य की व्यापकता तथा विराटता का आधार है।

आभ्यन्तर संचार की प्रक्रिया बड़ी व्यापक तथा रहस्यपूर्ण है। आभ्यन्तर में ही पूरा विश्व, ज्ञान दर्शन एवं सम्बन्ध निवास करते हैं।

आभ्यन्तर संचार प्रक्रिया से ही मनुष्य में हर्ष एवं विषाद आदि व्यक्त होते हैं। आभ्यन्तर संचार के द्वारा ही मनुष्य समान एवं सम्बन्धों से जुड़ा रहता है। मनुष्य के सम्बन्ध बाह्य जगत में नहीं वरन् मनुष्य के आभ्यन्तर में विद्यमान रहते हैं। इसी कारण पागल मनुष्य एवं उसके सम्बन्धी तथा समाज रहता है लेकिन आभ्यन्तर की विसंगति के कारण पागल के लिए समाज, विश्व, सम्बन्ध और ज्ञान या तो रहते नहीं यदि कुछ अंश तक रहते भी हैं तो सामान्य मनुष्य से भिन्न रूप में। इस प्रकार स्पष्ट है कि आभ्यन्तर संचार मुख्य है। मनुष्य विदेश अथवा दूरस्थ रहकर भी अपनी आभ्यन्तर संचार प्रक्रिया के द्वारा अपने परिवार तथा सम्बन्धियों से जुड़ा रहता है। इस कारण आभ्यन्तर संचार को समझना आवश्यक है।

हमारे मस्तिष्क एवं हृदय का नियंत्रण हमारे आभ्यन्तर द्वारा ही किया जाता है। इस पर अतीत एवं वर्तमान के प्रभाव प्रभावित करते हैं। मनुष्य एवं मानव समाज निरंतर इस प्रयास में है कि आभ्यन्तर संचार की प्रक्रिया को समझा जा सके, भाषा, लिपि, व्याकरण, व्यवहार, उत्तर-प्रत्युत्तर सभी वास्तव में आभ्यन्तर संचार की देन है। सम्पूर्ण विश्व साहित्य आभ्यन्तर संचार का ही उत्पादन है। इस कारण वर्तमान समय में इस संचार प्रक्रिया को जानना तथा समझना आवश्यक है। आभ्यान्तर संचार प्रक्रिया बाह्य संचार में एस (S) आर (R) के माध्यम से व्याप्त होती है। एस (S) अर्थात उद्दीपक (Stimulus) एवं आर (R) अर्थात (Response) उत्तर/प्रक्रिया इस संचार प्रक्रिया को संचालित करने के मुख्य आधार हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि द्वन्द्व अथवा परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के द्वारा आभ्यान्तर संचार की कड़ी आगे बढ़ती है। इसी सिद्धांत को कम्प्यूटर में भी अपनाया गया है। परस्पर दो विरोधी अवस्थाओं 'हाई' और 'लो' (0 एवं 1) की प्रक्रिया से कम्प्यूटर एवं मनुष्य के बीच सीधा सम्पर्क होता है। इसे हम कम्प्यूटर की भाषा में बाइनरी की संज्ञा देते हैं। इससे भी स्पष्ट है कि मनुष्य के आभ्यन्तर संचार की तर्ज पर विकसित संगणक में भी द्वंद्वात्मक प्रक्रिया कार्य का प्रमुख आधार है।

शब्द

सम्पूर्ण सृष्टि की विद्यमानता एवं अभिव्यक्ति के मूल में शब्द तत्व

है। यह सृष्टि एवं संसार शब्द तत्व के कारण ही सारवान तथा अस्तित्व में है। मनुष्य की चेतनता तथा स्वयं एवं विश्व के होने का आभास शब्द के ही द्वारा होता है। इस कारण तथा स्वयं एवं विश्व के होने का आभास शब्द के ही द्वारा होता है। इस कारण आभ्यन्तर के संचार में शब्द तत्व का अधिक महत्व है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु अथवा तत्व का मूल खोजने पर हमें अन्त में शब्द ही मिलेगा। वस्तुएँ (संसार) कहाँ से आती हैं और कहाँ चली जाती है? इसका सीधा सम्बन्ध और निर्मल उत्तर एक ही है-

ब्रह्मनेदं शब्दनिर्माणं शब्दशक्तिनिबन्धनम्।
विवृतं शब्दमात्राभ्यस्तास्वेव प्रविलीयते।।[1]

यह विद्यात्मक और अविद्यात्मक उभयविध ब्रह्म शब्द का निर्माण, निर्मित या रचना है। (शब्देनोपादानेन हेतुना निर्माणं यस्य तत् शब्दनिर्माणम्) शब्द की शक्तियाँ इस कारण है। शब्द की शक्तियों से यह विवृत होता है और उन्हीं शब्द शक्तियों में विलीन हो जाता है।) वेद का वेदत्व ही शब्दतत्वात्मक है।

तंत्रागम में शब्द तत्व को अन्य दर्शनों की अपेक्षा अधिक स्पष्टता और अनिवार्यता के साथ स्वीकार किया गया है। अपने-अपने सम्प्रदाय की स्थापना या प्रवर्तन के लिये उन्होंने देव-विशेष भगवान शिव आदि को मुख्यता दी। पाणिनि के व्याकरण सूत्र के स्रोत के रूप में भगवान शिव को ही माना गया है-

'नृत्यावसाने नटराजराजः ननाद ढ़पक्का नवपंच वारम्'

या

'जब महेश डमरू बजारहे कर रहे नृत्य अवसान,
सोई चतुर्दश ध्वनि बनी पाणिनि कह वरदान।'

महाभारत में कहा गया है-

व्यत्येन च वर्णानां परिवादकृतो हि यः।
स शब्द इति विज्ञेयस्तन्निपातोऽर्थ उच्यते।

अर्थात अकार आदि वर्णों के समुदाय को क्रम या व्यतिक्रम से उच्चारण करने पर जो वस्तु प्रकाशित होती है, उसे 'शब्द' जानना चाहिये और

उस शब्द से जिस अभिप्राय की प्रतीति हो, उसका नाम अर्थ है।

इसी प्रकार भगवती काली को भी तंत्रों में ज्ञान की देवी माना गया है। भगवती अपने गले में 51 मुंड कपाल धारण करती है। ये 51 मुंड/कपाल 51 वर्णों/अक्षरों के प्रतीक हैं। देवनागरी में प्रणव अर्थात ऊँ सहित (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं अः, ऋ, लृ, क, ख, ग, घ, ङं, च, छ, ज, झ, ट, ठ, ड, ढ़, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष, त्र, ज्ञ) कुल 51 वर्ण/अक्षर हैं। प्रत्येक वर्ण एक ध्वनि को व्यक्त करता है। इस कारण भगवती काली 51 वर्णों को धारण करती है। यह भी एक आश्चर्य है कि विश्व में जितनी भी भाषाएँ हैं उनमें उक्त 51 से अधिक ध्वनियाँ नहीं हैं। इस कारण भारतीय ज्ञान परम्परा में शिव-काली का महत्व है। शिव आरूढ़ शिवा/काली एवं गले में 51 मुंडों की माला इसका प्रतीक है कि वर्ण, ध्वनि अथवा ज्ञान शक्ति, शिव से जुड़कर ही मंगलमयी हो सकती है।

महर्षि पतंजलि ने ध्वनि को शब्द पर्याय बतलाया है- प्रतीत पदार्थ को लोके ध्वनिः शब्द इत्युच्यते अर्थात अर्थ बोधक ध्वनि ही लोक में शब्द कहा जाता है।

शब्द के भेद-

महाभारत के अनुगीतापर्व में शब्द के दस भेद बताये गये हैं जो निम्नलिखित है।

1. षडज 2. ऋषत्र 3. गान्धार 4. मध्यम
5. पंचत्र 6. निषाद 7. धैवत 8. इष्ट
9. अनिष्ट 10. संहत श्लिष्ट

उक्त प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय मनीषा ने शब्द-शक्ति एवं शब्द-तत्व को समझा तथा उस पर चिंतन किया। शब्द-तत्व युक्त सृष्टि की व्याख्या अधोलिखित रूप में व्यक्त है-

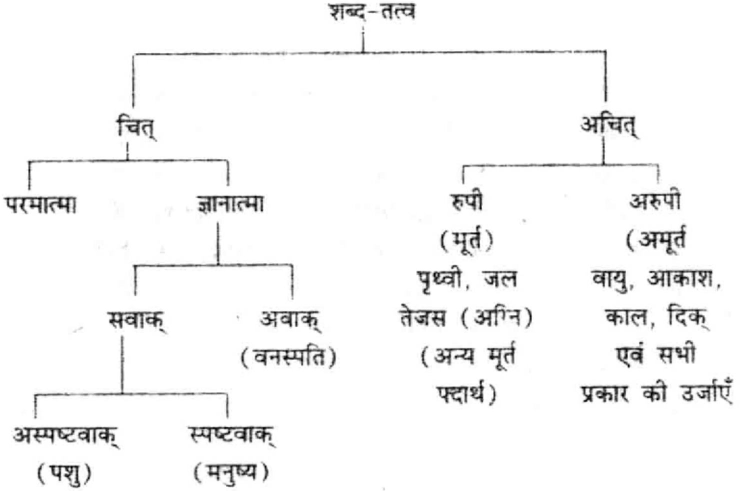

इस सृष्टि एवं विश्व में जो भी प्राणी अथवा पदार्थ है उसमें शब्द की व्याप्ति है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शब्द सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। वस्तुतः सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया ही नाद से हुई है। सृष्टि रचना के समय जब प्रथम विस्फोट हुआ तब आदिनाद उत्पन्न हुआ। उसी मूल नाद को जिसका प्रतीक ऊँ है। 'नादब्रह्म' कहा जाता है। योगसूत्र में 'तस्य वाचक प्रणवः' उसकी अभिव्यक्ति के रूप में है ऐसा कहा जाता है।

माण्डूक्योपनिषद् 1 में कहा है'

"ओमित्येतदक्षरिमिदम् सर्वं तस्योपव्याख्यानं
भूतं भवभ्दविष्यदिति सर्वमोंकार एव।
यच्यान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योरंकार एव।"[2]

अर्थात ऊँ यह अक्षर अविनाशी स्वरूप है। यह संपूर्ण जगत उसका ही उपव्याख्यान है। जो हो चुका है, जो है तथा जो होने वाला है, यह सब का सब जगत ओंकार ही है तथा जो ऊपर कहे हुए तीनों कालों से अतीत अन्य तत्व है, वह भी ओंकार ही है।

यही आदि नाद भिन्न रूपों में सृष्टि में अभिव्यक्त होता है। वही मानव में वाणी के रूप में अभिव्यक्त होता है।"[3]

यह दो रूपों में ज्ञानात्मा अवाक् एवं सवाक् में विभक्त है। अब

विचारणीय प्रश्न वाक् है। साधारणतया वाक् और शब्द की प्रतीति एक जैसी होती है। परन्तु वास्तव में वाक् और शब्द तत्व स्पष्ट रूप से अलग-अलग हैं। वास्तव में वाक् और सवाक् सृष्टि का अंतः सन्निविष्ट तत्व है। जबकि शब्द चिद्चिद है। सृष्टि का उपादान (मूलाधार) है। जब प्राणियों के मूलाधार चक्र में रहने वाले 'रव' या 'नाद' को 'शब्दब्रह्म' कहा जाए तो उससे हिमालय की उत्पत्ति की बात असंगत लगेगी। मात्र श्रद्धालु ही इस बात पर विश्वास करेंगे परन्तु जब यह कहा जाए कि यह उस वाक् का अंतरतम स्वरूप है, जिसे हम बोलते-सुनते हैं, तब यह बात बुद्धिगम्य हो जाती है। सब समझ जाते हैं कि हिमालय का अर्थाकार 'हि-मा-ल-य' शब्द से उत्पन्न होता है। वाक्य पदीयम् में इसका इस प्रकार उल्लेख है।

'पदार्थजतायः सर्वाः शब्दाकृतिनिबन्धनाः'[4]

इससे स्पष्ट है कि सभी पदार्थ आदि का अर्थाकार शब्द से है। वाक् संवाक् सृष्टि का अंतःसन्निविष्ट स्व पर सम्बोधक चित्त तत्व है। वाक् सभी तत्वों की अपेक्षा शब्द तत्व के निकट होने के कारण इसे कभी-कभी शब्द से अभिन्न मान लिया जाता है।

ऋग्वेद में वाक् अथवा प्राणी के चार भेद बताये गये हैं-

चत्वारि वाक् परित्रिता पदानि, तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहात्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति, तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।[5]

उक्त मंत्र का अभिप्राय है कि वाक् के चार पाद हैं। उन चारों पदों को मनीषी जानते हैं, जिन्होंने मन पर नियंत्रण कर लिया है। इनमें तीन पद शरीर के अन्दर रहते हैं और स्पंदन नहीं करते। वाक् का चौथा पद वह है, जिसे व्यक्ति बोलता और उसका अनुभव करता है-

तन्त्रागम में इन चारों वाक् अथवा वाणी का वर्णन इस प्रकार है-

परावङ् मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा।।

अर्थात परा वाणी मूलाधार चक्र में, पश्यन्ती नाभि प्रदेश में, मध्यमा हृदय देश में तथा बैखरी कण्ठ देश में निवास करती है। शब्द-ब्रह्मन रव या परा को कहते हैं, अतः पश्यन्ती आदि के अतिरिक्त 'रव' या 'परा' वाक् भी है।

प्रपंचसार नामक ग्रन्थ में यह इस प्रकार वर्णित है-

बिन्दोस्तस्माद्भिझरमरलरइपरे ऽव्यक्तात्माको ऽभवत्।
स एव श्रुतिसभ्यन्नैः शब्दब्रह्मेति गीयते।।

उक्त चारों वाणियों को हम निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं-

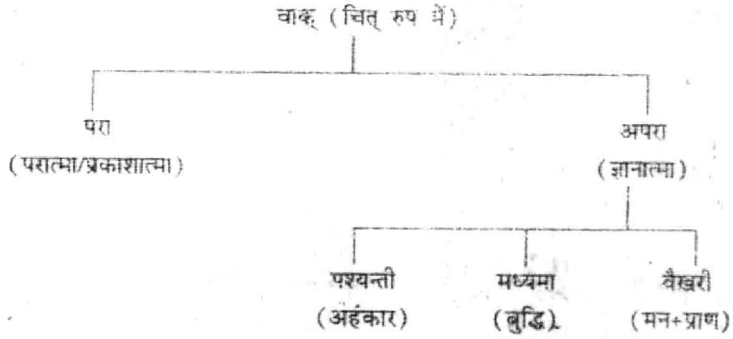

1. परावाक्

परा वाक् का सम्बन्ध ज्ञानात्मा एवं परमात्मा दोनों से है। परा वाक् अथवा वाणी अति ग्रह्य तथा सूक्ष्म है। यह बिन्दु रूप में विद्यमान रहती है। इसका ज्ञान मनीषियों को ही होता है। यह आत्मा का मूलाधार है जहाँ से ध्वनि उत्पन्न होती है। यह अनुभूति का विषय है। यह किसी यंत्र के द्वारा सुनाई नहीं देती।

2. अपरावाक्

अपरा वाक् जो पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी के रूप में है, को समझने के लिए उक्त के कार्य व्यापार एवं प्रवृत्ति को भी जानना आवश्यक है क्योंकि इसे बिना जाने मनुष्यों द्वारा प्रयुक्त वाणी के स्वरूप को जाना नहीं जा सकता।

3. वैखरी

वाणी मनुष्यों अथवा अन्य प्राणियों में वैखरी के रूप में व्यक्त होती है। अर्थात जिस वाणी को हम बोलते हैं, यह बैखरी वाणी है। यह वैखरी वाणी मनुष्य के आभ्यन्तर में मध्यमा या पश्यन्ती के रूप में स्पष्ट दिखाई देती है।

उक्त तीनों की प्रकृति इस प्रकार है-

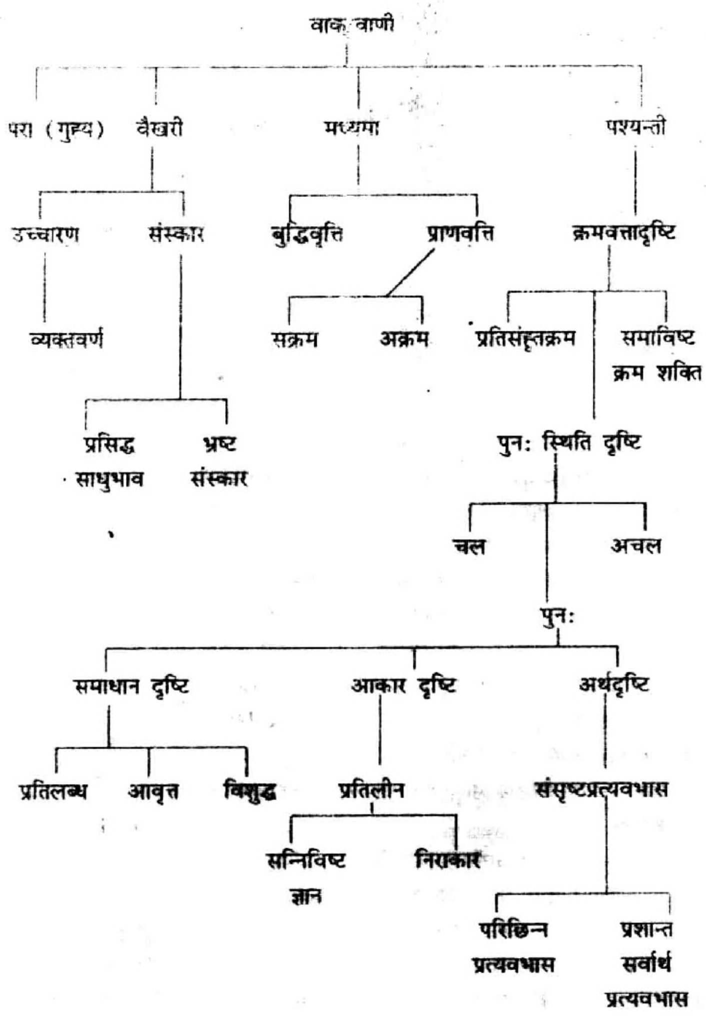

वैखरी की प्रवृत्ति

स्थाने विवृते वायौ कृतवर्णपरिग्रहा।
वैखरी वाक् प्रयोक्तृणां प्राणवृत्ति निबन्धना।

अर्थात् वैखरी-कण्ठ, तालु आदि स्थानों में भीतर उसे उठे वायु के

विवर्तित (टकराने) से अ-आ आदि वर्णो का स्वरूप धारण करती है। इस वाणी को हम वैखरी वाणी कहते हैं। यह प्रयोगकर्ता के प्राणवायु में रहती है। इस प्रकार शब्द का प्रकटतम रूप वैखरी वाणी है। इस प्रकार लोक व्यवहार के लिये वाणी वैखरी के रूप में प्रकट होती है। लोक व्यवहार में उच्चारित ध्वनि तत्काल नष्ट हो जाती है, तथापि श्रोता की बुद्धि में अपना एक बोधात्मक संस्कार छोड़ जाती है। इसी प्रकार ध्वनि एवं बोध का क्रम चलता रहता है।

जब कोई व्यक्ति शब्द या वर्ण का उच्चारण करना चाहता है तो उसकी इच्छा के अनुसार शरीर का उच्चारण अवयवों में उच्चारणानुकूल प्रयत्न होने लगता है। इस प्रयत्न से शरीर में स्थित नाभि हृदय या कंठ में रहने वाला वायु सक्रिय हो जाता है। यह क्रियाशील वायु जब कंठ, तालु आदि स्थानों से टकराता है तो शब्द रूप में परिवर्तित हो जाता है। वैखरी के रूप में श्रवणीय शब्द के तीन आधार हैं- वायु, अणु एवं ज्ञान। ये तीनों क्रमशः सूक्ष्मता की ओर बढ़ते हैं। अणु स्वयं की शक्ति से शब्द बनाता है। परन्तु शब्द नहीं है। ज्ञान स्वरूप अभिव्यक्ति के लिये शब्द बनता है। अर्थात शब्द (वैखरी) ज्ञान का अभिव्यक्त स्वरूप है।

मध्यमा की प्रवृत्ति

केवलं बुद्ध्युपादाना क्रमरूपानुपातिनी।
प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते।।

अर्थात मध्यमा- प्राणवायु-प्रयोग से पहले की स्थिति में केवल बुद्धि (ज्ञान) को अपने स्वरूप के लिये उपदानतत्व के रूप में लेकर रहने वाली वाणी मध्यमा वाणी है। इसमें वर्णक्रम और ज्ञेय-प्राप्त वस्तुओं का क्रम रहता है।

पश्यन्ती की प्रवृत्ति

अविभागा तु पश्यन्ती सर्वतः संहृतक्रमा
स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा वागनपायिनी।

अर्थात पश्यन्ती-वाणी सब प्रकार के विभाग और क्रम से रहित विकारहीन, अत्यन्त सूक्ष्म, अन्तःसान्निवेर्शिनी तथा स्वरूपतः प्रकाशमान वाणी है।

करण (इन्द्रिय)

शरीर की आभ्यन्तर संचार प्रक्रिया को संचालित करने वाले अवयव को हम करण (इन्द्रिय) की संज्ञा देते हैं। इन्द्रियाँ पृथक-पृथक हैं। इसलिये उनकी क्रियायें भी पृथक-पृथक हैं। उन्हीं के लिये बुद्धि नाना प्रकार के रूप धारण करती है। महाभारत के शान्ति पर्व में इसे इस प्रकार स्पष्ट किया गया है।

मनो विसृजते भावं बुद्धिरध्यवसायिनी।
हृदयं प्रियाप्रिये वेद त्रिविधा कर्मचोदना।[6]

अर्थात पुत्र! कर्म करने में तीन प्रकार से प्रेरणा प्राप्त होती है। पहले तो मन संकल्पना मात्र से नाना प्रकार के भाव की सृष्टि करता है, बुद्धि उसका निश्चय करती है। तत्पश्चात हृदय उनकी अनुकूलता और प्रतिकूलता का अनुभव करता है। (इसके बाद कर्म में प्रवृत्ति होती है।)

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यः परमं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा परो मतः।[7]

इन्द्रियों से उनके विषय बलवान हैं (क्योंकि वे बलात् इन्द्रियों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।), उन विषयों से मन बलवान है (क्योंकि वह इन्द्रियों को उनसे हटाने में समर्थ हैं)। मन से बुद्धि बलवान है (क्योंकि वह मन को वश में रख सकती है) और बुद्धि से आत्मा बलवान माना गया है (क्योंकि वह बुद्धि को सम बनाकर स्वाधीन कर सकता है।)

बुद्धिरात्मा मनुष्यस्य बुद्धिरेवात्मनाऽऽत्मनि।
यदा विकुरुते भावं तदा भवति सा मनः।[8]

अर्थात् बुद्धि प्राणियों की समस्त इन्द्रियों की अधिष्ठात्री है, इसलिये वह जीवात्मा के समान ही उनकी आत्मा मानी गयी है। बुद्धि ही स्वयं अपने भीतर जब भिन्न-भिन्न विषयों को ग्रहण करने के लिये विकृत हो नाना प्रकार के रूप धारण करती है, तब वही मन बन जाती है।

इन्द्रियाणां पृथग्भावाद् बुद्धिर्विक्रियते ह्यतः।
श्रृण्वती भवति श्रोत्रं स्पृशती स्पर्श उच्यते।[9]

इन्द्रियाँ पृथक-पृथक हैं, इसलिये उनकी क्रियायें भी पृथक-पृथक हैं।

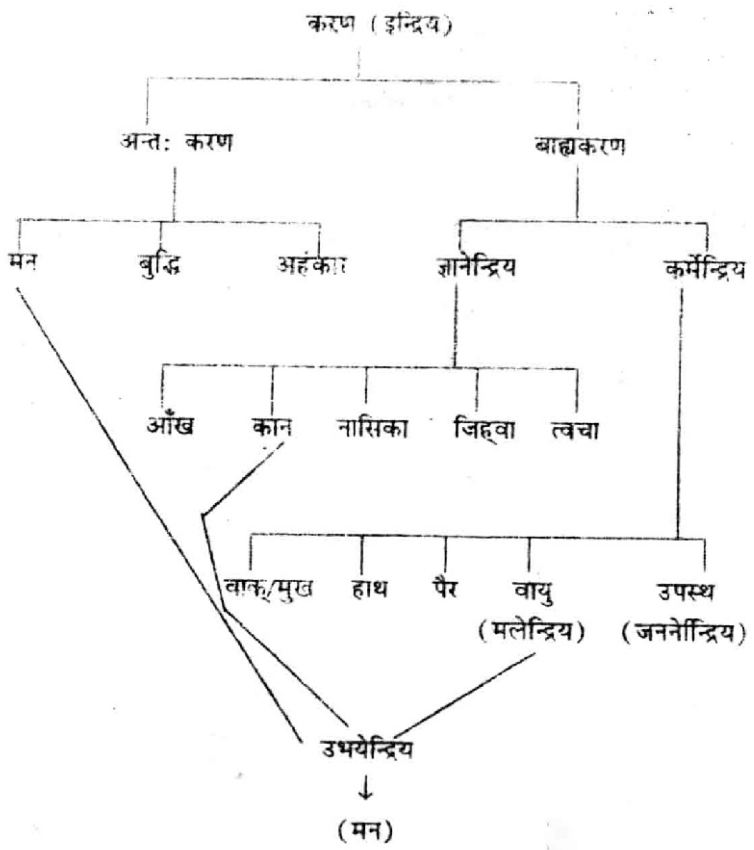

अतः उन्हीं के लिये बुद्धि नाना प्रकार के रूप धारण करती है। वही जब सुनती है तो श्रोत्र कहलाती है और स्पर्श करते समय स्पर्शेन्द्रिय (त्वचा) के नाम से पुकारी जाती है।

पश्यती भवते दृष्टी रसती रसनं भवेत्।
जिघ्रती भवति घ्राणं बुद्धिर्विक्रियते पृथक।[10]

वही देखते समय दृष्टि और रसास्वादन के समय रसना हो जाती है। जब वह गन्ध को ग्रहण करती है, तब वही घ्राणेन्द्रिय कहलाती है। इस प्रकार बुद्धि ही पृथक-पृथक विकृत होती है।

इन्द्रियाणि तु तान्याहुस्तेष्वदृश्योऽधितिष्ठति।
तिष्ठति पुरुषे बुद्धिस्त्रिषु भावेषु वर्तते।[11]

बुद्धि के इन विकारों को ही इन्द्रियाँ कहते हैं। अदृश्य जीवात्मा उन सबमें अधिष्ठित है। बुद्धि उस जीवात्मा में ही स्थित हो सात्त्विक आदि तीनों भावों में रहती है।

कदाचिल्लभते प्रीतिं कदाचिदपि शोचति।
न सुखेन न दुःखेन कदाचिदिह युज्यते।[12]

इसी हेतु से वह कभी प्रेम और प्रसन्नता लाभ करती है (यह उसका सात्त्विक भाव है)। कभी शोक में डूबती है (वह उसका सात्त्विक भाव है)। और कभी न तो सुख से युक्त होती है एवं न दुःख से ही; उस पर मोह छाया रहता है (यही उसका तामस भाव है)।

इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि मनुष्य के शरीर का इन्द्रिय जगत् अन्तः और बाह्य करणों में विभाजित है। प्रत्येक इन्द्रिय के व्यापार या कार्य भी निश्चित हैं। आँख का रूप, कान का शब्द, जिह्वा का रस, नासिका का गन्ध एवं त्वचा का स्पर्श व्यापार है। यह व्यापार ज्ञानेन्द्रियों का रहा। इसी प्रकार कर्मेन्द्रियों का भी कार्य अथवा व्यापार है- मुख/वाक् का वचन, हाथ का आदान-प्रदान, पैर का गमन (चलना), वायु (मलेन्द्रिय) का मलत्याग एवं उपस्य (जननेन्द्रिय) का रमण है। इन पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा पाँच कर्मेन्द्रिय के अतिरिक्त मन को उभयेन्द्रिय कहा जाता है, क्योंकि मनोव्यापार के बिना इन्द्रियाँ अपने-अपने व्यापार करने में असमर्थ रहती हैं। अतः मन उभयविध (ज्ञानेन्द्रिय - कर्मेन्द्रिय) व्यापार करने वाला होने से उभयेन्द्रियरूप है। मन की सहकारिता से ही उभयविध इन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य संपादन करती हैं। इसी कारण मन को उभयेन्द्रिय कहा गया है।

मन उभयेन्द्रिय होते हुए भी अन्तःकरण का भाग है। अन्तःकरण में मन, बुद्धि एवं अहंकार सम्मिलित हैं। स्थूल शरीर के अंदर रहने वाले हृदपद्म में वे (मन, बुद्धि, अहंकार) रहते हैं। इसी कारण इन्हें अन्तःकरण की संज्ञा दी जाती है। संकल्प, विवेचन, आदि मन का व्यापार है। अहंकार का व्यापार अभिमान, घमंड आदि है। बुद्धि का व्यापार ज्ञान है। अर्थात् बुद्धि का धर्म बुद्धिवृत्ति है। 'बुद्धिसत्व' समस्त विषयों के प्रकाशन करने में समर्थ रहने पर भी प्रतिबन्धक 'तम' के होने से वह अपना कार्य नहीं कर पाता। अन्तःकरण

'चिज्ञ' बुद्धि/बुद्धितत्व प्राकृत है। बाह्यकरण विषय को आकार प्रदान कर बुद्धि पर उपकार करते हैं और बुद्धि उन विषयों का भोग करने के लिए आत्मा को समर्पित करती है। दशवाह्य करणों अथवा इन्द्रियों द्वारा उपनीत समस्त यथाक्रम प्राप्त घटनादि विषयों को मन और अहंकार सहित अर्थात् मन द्वारा संकल्पित और अहंकार के द्वारा अभिमत घटाति पदार्थों को बुद्धि निश्चित करती (अंतिम व्यापार करती) है। यह कार्य इस प्रकार होता है- जैसे राजकीय कर्मचारी कर वसूल कर अपने ऊपर के जिला अधिकारी को तथा जिलाधिकारी वित्त मंत्री को भेजता है। वैसे ही दस बाह्येन्द्रियाँ अपने-अपने व्यापार को मन को सौंपती है और मन ऐसा है, ऐसा नहीं है- इस प्रकार सोच-समझकर अहंकार को अर्पित करता है और अहंकार उस विषय को यह मेरे लिए है ऐसा अभिमान कर बुद्धि को अर्पित कर देता है। बुद्धि ही आत्मा के साक्षात् भोगों का साधन है, क्योंकि इसी के निश्चयानुसार आत्मा को भोग मिलता है। इस प्रकार बुद्धि ही अन्तःकरणों में प्रधान है।

महाभारत में इसे इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

आकाशमुत्तमं भूतमंकारस्ततुः परः।
अहंकारात् पराबुद्धिर्वद्धेरात्मा ततः परः।
तस्मात् तु परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।

अर्थात आकाश सब भूतों में श्रेष्ठ है उससे श्रेष्ठ अहंकार है। अहंकार से श्रेष्ठ बुद्धि है उस बुद्धि से श्रेष्ठ आत्मा, उससे श्रेष्ठ अव्यक्त प्रकृति और प्रकृति से श्रेष्ठ पुरुष है।

यह प्राणियों की समस्त इन्द्रियों की अधिष्ठात्री है। इसलिये वह जीवात्मा के समान ही उनकी आत्मा मानी गई है। यही बुद्धि जब स्वयं अपने भीतर भिन्न-भिन्न विषयों को ग्रहण करने के लिये विकृत हो नाना प्रकार के रूप धारण करती है तब वही मन बन जाती है।

ज्ञानात्मा को ऐसा त्रिकोणीय संगठन बताया गया है जिसके तीनों कोणों पर अहंकार, बुद्धि और मन रहते हैं। सचेतन प्राणी के अन्तःकरण को हम ज्ञानात्मा कह सकते हैं। यह ज्ञानात्मा समस्त द्रष्टानुभूत संवेदनाओं का भंडार है। यह शब्दमय है। इसे हम इस रूप में देख सकते हैं-

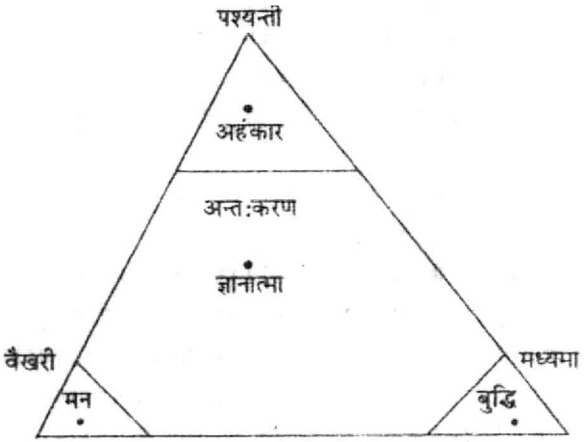

(मन + प्राण = वैखरी)

उपरोक्त प्रतिरूप से स्पष्ट है कि अन्तःकरण अथवा ज्ञानात्मा शब्दमय है ज्ञान भी शब्दमय है। इस कारण जब हम ज्ञात, अज्ञान और ज्ञेय वस्तुओं के विषय में अन्तः करण में झाकेंगे तो वहाँ प्रत्येक वस्तु शब्दाकार मिलेगी/ज्ञानात्मा का कर्तव्य अथवा ज्ञातृत्व भाग अहंकार है। वाक् की यह पश्यन्ती स्थित है। बुद्धि में ज्ञानोन्मेष होता है। इस स्थिति में भी ज्ञेय विषय का परिच्छेद विभाजन नहीं होता है। केवल अखण्ड, अनवयव, अक्रम ज्ञान होता है। यह मध्यमा स्थित है। ज्ञेय विषय का परिच्छेद या वर्गीकरण मन के द्वारा सम्पन्न होता है। यहाँ ज्ञान, सविकल्य, सावयव और सक्रम होता है। यह वैखरी स्थित है। ध्यान रहे कि सभी उक्त स्थितियाँ अश्रवणीय होती है। मन युक्त मनोमय वैखरी श्रवण योग्य तभी होती है, जब वह प्राण से अनुप्राणित होती है। श्रवणीयता के लिए ऊर्जा और कम्पन आवश्यक है।

परावाक्

शब्द तत्व में परा एवं परमात्मा का भी उल्लेख है। परमात्मा अथवा परा स्पन्दन, वचन की सुषुप्त चिद्वस्था है। यहाँ चित् के सभी बाह्य लक्षय संवेदन स्पंदन और वचन अविभक्त एकाकारण चिद्धन होकर रहते हैं। यही वाक् की परा अवस्था है। यहाँ ज्ञातृत्व भी सुषुप्त रहता है। जबकि पश्यन्ती में

ज्ञातृत्व का उन्मेष पूर्णरूपेण रहता है। चिद्‌धन अवस्था परा वाक् की है। पश्यन्ती में ज्ञातृत्व का उन्मेष पूर्णरूप में रहता है। 'अविभागा तु पश्यन्ती' जैसे वचनों में अविभागा का अर्थ है- केवल ज्ञाता और श्रेय का अविभागा है। चिद्‌धनत्व की स्थिति यह नहीं है। चिद्‌धन अवस्था परा वाक् की है। वास्तव में साधारण रूप में पश्यन्ती एवं परा का भेद करना कठिन है। सामान्य रूप में अहंकार की उपस्थिति में पश्यन्ती तथा अहंकार की अनुपस्थिति में परा वाक् समझना चाहिये।

मध्यमा

सामान्य रूप में मुख से उच्चरित तथा कानों से सुने जाने वाले ध्वनि समूह को शब्द कहा जाता है, किन्तु ध्वनि रूप शब्द का कारणभूत एक और शब्द है, जो मध्यमा वाक् के रूप में बुद्धि में विराजमान रहता है। ध्वनि रूप शब्द की उत्पत्ति इसी बुद्धिस्थ शब्द के कारण है। इधर बुद्धिस्थ शब्द के कारण उत्पन्न ध्वनियाँ श्रोता के श्रवणेन्द्रिय तक पहुँचकर उसे अर्थबोध कराती है। यह बड़ा रोचक चक्र (आवर्तन) है। इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त कोई भी संवेदन बुद्धिगत होकर द्रष्टा पुरुष का ज्ञान बन जाता है। ज्ञान का भी स्वरूप शब्दमय होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मूलाधार व्यापिनी परावाक् सुषुप्त रूप में रहती है। ये रूप, क्रोध, काम आदि की अद्‌अवस्था त्याग, तपस्या आदि की मूल भावना की सुषुप्ता अवस्था तथा परम चैतन्यता की ओर ले जाने वाली वाक् परा है। पर अवस्था अथवा वाक् की स्थिति में मनुष्य आनन्दयुक्त सुषुप्ता अवस्था को प्राप्त तथा शब्द की सुशुप्ता अवस्था का दर्शन करता है।

उक्त से स्पष्ट है कि बाह्य जगत में होने वाले संचार का स्रोत मनुष्य के आभ्यान्तर का संचार है। बाह्य लोक में अभिव्यक्ति पाने वाला संचार मनुष्य के आभ्यन्तर में प्रारूपित एवं विकसित होता है। पाश्चात्य संचारविद् भी शरीर, अनुभव एवं संवेदना तथा आदत को आभ्यान्तर के मुख्य आधार के रूप में स्वीकार करते हैं।

आभ्यन्तर संचार की प्रक्रिया

यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसकी परिधि में व्यक्ति स्वयं

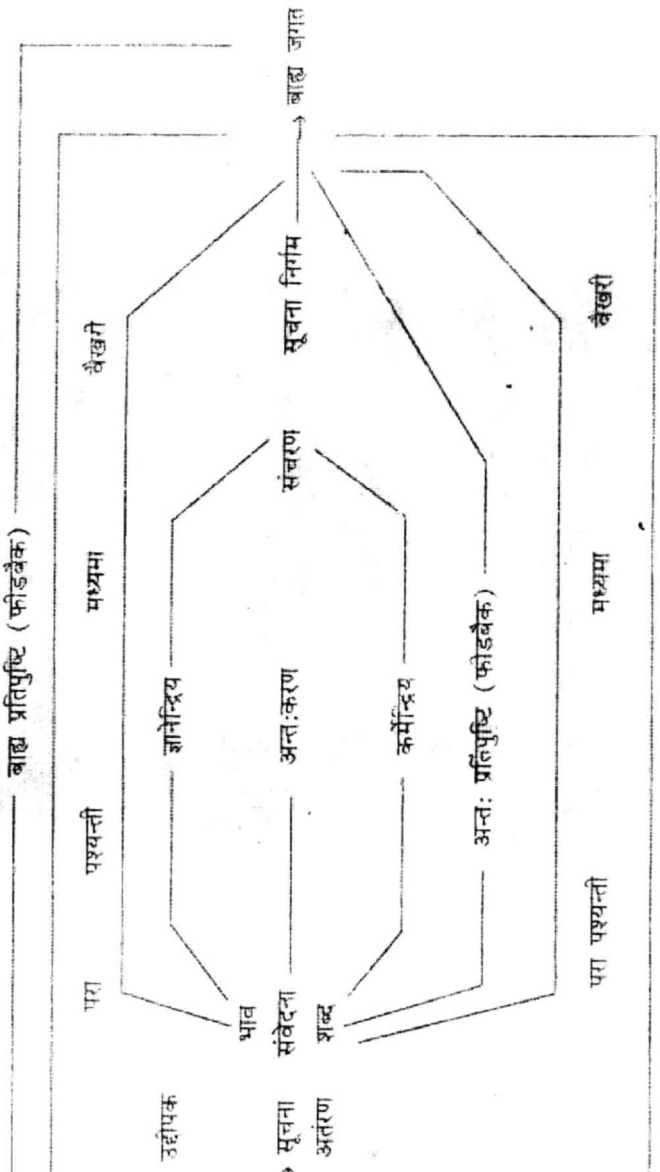
बाह्य प्रतिपुष्टि (फीडबैक)
बाह्य जगत → सूचना अंतरण
उद्दीपक
परा
पश्यन्ती
मध्यमा
वैखरी
भाव
संवेदना
शब्द
ज्ञानेन्द्रिय
अन्तःकरण
कर्मेन्द्रिय
संचरण
सूचना निर्गम → बाह्य जगत
अन्तः प्रतिपुष्टि (फीडबैक)
परा पश्यन्ती
मध्यमा
वैखरी

होता है। इसमें सम्प्रेषक और ग्रहीता दोनों एक ही व्यक्ति होता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति का विचार एवं परिणाम सम्मिलित होता है। स्वयं के अनुभव, विचार, घटना, प्रभाव के आधार पर व्यक्ति भूत, वर्तमान एवं भविष्य के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करता है। व्यक्ति द्वारा ईश्वर व्यक्तियों में होने वाला सम्प्रेषण अथवा पूजा, अर्चना करना आभ्यन्तर संचार का उदाहरण है।

अन्तरवैयक्तिक संचार की नींव आभ्यन्तर संचार के खत्म होने पर रखी जाती है। दूसरों से संचार करने से पहले यह समझना जरूरी है कि हम अपने आप से संचार कैसे करते हैं।

आभ्यन्तर संचार का विवेचन हमारे धार्मिक ग्रंथों में अनेकों स्थानों पर मिलता है। आभ्यन्तर संचार की प्रक्रिया को भली-भांति समझने के लिये हम महाभारत के एक दृष्टान्त का उल्लेख कर रहे हैं जिसके आधार पर इस प्रक्रिया को समझने में सुगमता होगी।

दृष्टान्त इस प्रकार है-

ततः सत्यवती काले वधूं स्नातामृतौ तदा।
संवेशयन्ती शयने शनैर्वचनमब्रवीत्।[13]

अर्थात तदनंतर सत्यवती ठीक समय पर अपनी ऋतुस्नाता पुत्रवध को शय्या पर बैठाती हुई धीरे से बोली-

कौसल्ये देवरस्तेऽस्ति सोऽद्य त्वानुप्रवेक्ष्यति।
अप्रमत्ता प्रतीक्षैनं निशीथे ह्यागमिष्यति।[14]

कौसल्ये! तुम्हारे एक देवर हैं, वे ही आज तुम्हारे पास गर्भाधान के लिये आयेंगे। तुम सावधान होकर उनकी प्रतीक्षा करो। वे ठीक आधी रात के समय यहाँ पधारेंगे।

श्वश्रवास्तद वचनं श्रुत्वा शयाना शयने शुभे।
साचिन्तयत् तदा भीष्ममन्यांश्च कुरुपुङ्गवान्।[15]

सास की यह बात सुनकर कौसल्या पवित्र शय्या पर शयन करके उस समय मन ही मन भीष्म तथा अन्य श्रेष्ठ कुरुवंशियों का चिन्तन करने लगी।

ततोऽम्बिकायां प्रथमं नियुक्तः सत्यवागृषिः।
दीप्यमानेषु दीपेषु शरणं प्रविवेश ह।।[16]

उस समय नियोग विधि के अनुसार सत्यवादी महर्षि व्यास ने अम्बिका के महल में (शरीर पर घी चुपड़े हुए, संयतचित्त, कुत्सित रूप में) प्रवेश किया। उस समय बहुत-से दीपक वहाँ प्रकाशित हो रहे थे।

तस्य कृष्णस्य कपिलां जटां दीप्ते च लोचने।
बभ्रूषि चैव श्मश्रूणि दृष्ट्वा देवी न्यमीलयत्।[17]

व्यास जी के शरीर का रंग काला था, उनकी जटायें पिंगलवर्ण की और आंखें चमक रही थीं तथा दाढ़ी-मूंछ भूरे रंग की दिखायी देती थी। उन्हें देखकर देवी कौसल्या ने (भय के मारे) अपने दोनों नेत्र बंद कर लिये।

सम्बभूव तया सार्धं मातुः प्रियचिकीर्षया।
भयात् काशिसुता तं त नाशक्नोदाभिवीक्षितुम्।[18]

माता का प्रिय करने की इच्छा से व्यास जी ने उसके साथ समागम किया परंतु काशीराज की कन्या भय के मारे उनकी ओर अच्छी तरह से देख न सकी।

ततो निष्क्रान्तमागस्य माता पुत्रमुवाच ह।
अप्यस्या गुणवान् पुत्र राजपुत्रो भविष्यति।[19]

जब व्यास जी उसके महल से बाहर निकले, तब माता सत्यवती ने आकर उनसे पूछा- 'बेटा! क्या अम्बिका के गर्भ से कोई गुणवान राजकुमार उत्पन्न होगा।

निशम्य तद् वचो मातुर्व्यासः सत्यवतीसुतः।
नागायुतसमप्राणो विद्वान राजर्षिसत्तमः।
महाभागो महावीर्यो महाबुद्धिर्भविष्यति।
तस्य चापि शतं पुत्रा भविष्यन्ति महात्मनः।[20]

माता का यह वचन सुनकर सत्यवती नन्दन व्यास जी बोले- 'माँ! वह दस हजार हाथियों के समान बलवान, विद्वान, राजर्षियों में श्रेष्ठ, परम सौभाग्यशाली, महापराक्रमी तथा अत्यन्त बुद्धिमान होगा। उस महामना के भी सौ पुत्र होंगे।

किं तु मातुः स वैगुण्यादन्ध एव भविष्यति।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा माता पुत्रमथाब्रवीत्।

नान्धः कुरुणां नृपतिरनुरूपस्तेपोधन।
ज्ञातिवंशस्य गोप्तारं पितॄणां वंशवर्धनम्।
द्वितीयं कुरुवंशस्य राजानं दातुमर्हसि।
स तथेति प्रतिज्ञाय निश्चक्राम महायशाः।[201]

किंतु माता के दोष से वह बालक अन्धा ही होगा। व्यास जी की यह बात सुनकर माता ने कहा- तपोधन! कुरुवंश का राजा अन्धा हो यह उचित नहीं है। अतः कुरुवंश के लिये दूसरा राजा दो, जो जातिभाईयों तथा समस्त कुल का संरक्षक और पिता का वंश बढ़ाने वाला हो। महायशस्वी व्यास जी 'तथास्तु' कहकर वहाँ से निकल गये।

सापि कालेन कौसल्या सुषवेऽन्धं तमात्मजम्।
पुनरेव तु सा देवी परिभाष्य स्नुषां ततः।
ऋषिमावाहयत् सत्या यथा पूर्वमरिंदम।
ततस्तेनैव विधिना महर्षिस्तामपद्यत।
अम्बालिकामथाभ्यागादृषिं दृष्टवा च सापि तम्।
विवर्णा पाण्डुसंकाशा समपद्यत भारत।[22]

अर्थात प्रसव का समय आने पर कौसल्या ने उसी अन्धे पुत्र को जन्म दिया। जनमेजय! तत्पश्चात देवी सत्यवती ने अपनी दूसरी पुत्रवधू को समझा-बुझाकर गर्भाधान के लिये तैयार किया और इसके लिये पूर्ववत् महर्षि व्यास का आह्वान किया। फिर महर्षि ने उसी (नियोग की संयमपूर्ण) विधि से देवी अम्बालिका के साथ समागम किया। भारत! महर्षि व्यास को देखकर वह भी कान्तिहीन तथा पाण्डुवर्ण की-सी हो गयी।

तां भीतां पाण्डुसंकाशां विषण्णां प्रेक्ष्य भारत।
व्यासः सत्यवतीपुत्र इदं वचनमब्रवीत्।[23]

जनमेजय! उस भयभीत, विषादग्रस्त तथा पाण्डु वर्ण की-सी देख सत्यवतीनंदन व्यास ने यों कहा-

यस्मात् पाण्डुत्वमापन्ना विरूपं प्रेक्ष्य मामिह।
तस्मादेव सुतस्ते वै पाण्डुरैव भविष्यति।[24]

'अम्बालिके! तुम मुझे विरूप देखकर पाण्डुवर्ण की सी हो गयी थीं,

इसलिये तुम्हारा यह पुत्र पाण्डु रंग का ही होगा।

नाम चास्यैतदेवेह भविष्यति शुभानने।
इत्युक्त्वा स निरक्रामद् भगवानृषिसत्तमः।।[25]

शुभानने! इस बालक का नाम भी संसार में 'पाण्डु' ही होगा। ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ भगवान व्यास वहाँ से निकल गये।

ततो निष्क्रान्तमालोक्य सत्या पुत्रमथाब्रवीत्।
शशंस स पुनर्मात्रे तस्य बालस्य पाण्डुताम्।।[26]

उस महल से निकलने पर सत्यवती ने अपने पुत्र से उसके विषय में पूछा। तब व्यास जी ने माता से भी उस बालक के पाण्डुवर्ण होने की बात बता दी।

तं माता पुनरेवान्यमेकं पुत्रमयाचत।
तथेति च महर्षिस्तां मातरं प्रत्यभाषत।।[27]

उसके बाद सत्यवती ने पुनः एक दूसरे पुत्र के लिए उनसे याचना की। महर्षि ने 'बहुत अच्छा' कहकर माता की आज्ञा स्वीकार कर ली।

ततः कुमारं सा देवी प्राप्तकालमजीजनत्।
पाण्डुं लक्षणसम्पन्नं दीप्यमानमिव श्रिया।।[28]

तदनन्तर देवी अम्बालिका ने समय आने पर एक पाण्डुवर्ण के पुत्र को जन्म दिया। वह अपनी दिव्य कान्ति से उद्‌भासित हो रहा था।

यस्य पुत्रा महेष्वासा जज्ञिरे पंच पाण्डवाः।
ऋतुकाले ततो ज्येष्ठां वधूं तस्मै न्ययोजयत्।।[29]

यह वही बालक था, जिसके पुत्र महाधनुर्धारी पांच पाण्डव हुए। इसके बाद ऋतुकाल आने पर सत्यवती ने अपनी बड़ी बहू अम्बिका को पुनः व्यास जी से मिलने के लिये नियुक्त किया।

सा तु रूपं च गन्धं च महर्षेः प्रविचिन्त्य तम्।
नाकरोद् वचनं देव्या भयात् सुरसुतोपमा।।[30]

परंतु देवकन्या के समान सुन्दरी अम्बिका ने महर्षि के उस कुत्सित रूप और गन्ध का चिन्तन करके भय के मारे देवी सत्यवती की आज्ञा नहीं मानी।

ततः स्वैभूषणैर्दासीं भूषयित्वाप्सरोपमाम्।
प्रेषयामास कृष्णाय ततः काशिपतेः सुता।[31]

काशिराज की पुत्री अम्बिका ने अप्सरा के समान सुन्दरी अपनी एक दासी को अपने ही आभूषणों से विभूषित करके काले-कलूटे महर्षि व्यास के पास भेज दिया।

सा तमृषिमनुप्राप्तं प्रत्युद्गम्याभिवाद्य च।
संविवेशाभ्यनुज्ञाता सत्कृत्योपचचार ह।[32]

महर्षि के आने पर उस दासी ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और उन्हें प्रणाम करके उनकी आज्ञा मिलने पर वह शय्या पर बैठी और सत्कारपूर्वक उनकी सेवा-पूजा करने लगी।

कामोपभोगेन रहस्तस्यां तुष्टिमगादृषिः।
तया सहोषितो राजन् महर्षिः संशितव्रतः।
उत्तिष्ठन्नब्रवोदेनामभुजिष्या भविष्यसि।
अयं च ते शुभे गर्भः श्रेयानुदरमागतः।
धर्मात्मा भविता लोके सर्वबुद्धिमतां वरः।[33]

एकान्त में मिलकर उस पर महर्षि व्यास बहुत संतुष्ट हुए। राजन! कठोर व्रत का पालन करने वाले महर्षि जब उसके साथ शयन करके उठे, तब इस प्रकार बोले- 'शुभे! अब तू दासी नहीं रहेगी। तेरे उदरर में एक अत्यन्त श्रेष्ठ बालक आया है। वह लोक में धर्मात्मा तथा समस्त बुद्धिमानों में श्रेष्ठ होगा।

स जज्ञे विदुरो नाम कृष्णद्वैपायनात्मजः।
धृतराष्ट्रस्य वै भ्राता पाण्डोश्चैव महात्मनः।[34]

वही बालक विदुर हुआ, जो श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास का पुत्र था। एक पिता का होने के कारण वह राजा धृतराष्ट्र और महात्मा पाण्डु का भाई था।

धर्मो विदुररूपेण शापात् तस्य महात्मनः।
माण्डव्यस्यार्थतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः।[35]

महात्मा माण्डव्य के शाप से साक्षात धर्मराज ही विदुर रूप में उत्पन्न हुये थे। वे अर्थतत्व के ज्ञाता और काम-क्रोध से रहित थे।

कृष्णद्वैपायनोऽप्येतत् सत्यवत्यै न्यवेदयत्।
प्रलम्भमात्मनश्चैव शूद्रायाः पुत्रजन्म च।[36]

श्री कृष्णद्वैपायन व्यास ने सत्यवती को भी सब बातें बता दीं। उन्होंने यह रहस्य प्रकट कर दिया कि अम्बिका ने अपनी दासी को भेजकर मेरे साथ छल किया है, अतः शूद्रा दासी के गर्भ से ही पुत्र उत्पन्न होगा।

जो तत्व आभ्यान्तर प्रक्रिया में भाग लेते हैं अथवा उसे गति देते हैं उन्हें उत्तेजित तत्व कहते हैं। ये निम्नलिखित हैं-

1. आन्तरिक उत्तेजना

मस्तिष्क का कार्य तांत्रिकीय सूचनाओं के द्वारा शरीर को सावधान करना है, इसी तरह आन्तरिक उत्तेजित तत्व का कार्य संचार के दौरान चिंतन करने के लिए उकसाना है। उपरोक्त दृष्टान्त में व्यास जी के विद्रूप स्वरूप को देखकर अम्बिका ने नेत्र बंद कर लिया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भगवान व्यास का विद्रूप रूप अम्बिका को भय से दोनों नेत्र बंद करने के लिये आन्तरिक रूप से उत्तेजित किया।

2. बाहरी उत्तेजना

बाहरी उत्तेजना की उत्पत्ति शरीर के बाहरी वातावरण से उत्पन्न होती है। बाहरी उत्तेजना के दो प्रकार हैं-

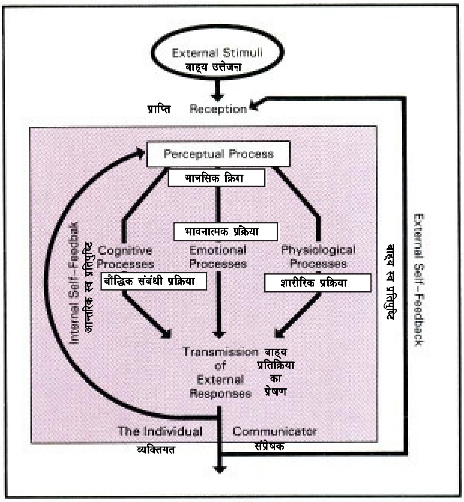

अ. प्रत्यक्ष उत्तेजना

ये उत्तेजना सचेत अवस्था में प्राप्त होती है। ये संवेदी अंगों द्वारा ग्रहण की जाती है और बाद में मस्तिष्क को भेजी जाती है। एक से ज्यादा प्रत्यक्ष उत्तेजना इंसान को किसी भी समय प्रभावित कर सकती है। व्यास जी का विद्रूप स्वरूप का देखना बाह्य उत्तेजना है।

ब. गुप्त उत्तेजना

यह भी एक प्रकार की बाहरी उत्तेजना है। यह उत्तेजना अचेतन अवस्था में प्राप्त होती है। उपरोक्त दृष्टान्त में अम्बालिका ने भी भगवान व्यास को देखकर कान्तिहीन और पाण्डुवर्ण की सी हो गई। यह एक प्रकार की गुप्त उत्तेजना है।

प्राप्ति

जिस प्रक्रिया के अन्तर्गत शरीर उत्तेजना ग्रहण करता है उसे प्राप्ति कहते हैं। उपरोक्त उद्धरण में अम्बिका एवं अम्बालिका के शरीर व्यास जी को देखकर उत्तेजना ग्रहण किये और यह उत्तेजना केन्द्रीय तंत्रिका तंतु को सूचना दिये जिससे अम्बिका को भय प्राप्त हो गया और उन्होंने व्यास जी की तरफ नहीं देखा। यह प्रक्रिया प्राप्ति कहलाती है।

बाहरी ग्राहक (पाँच संवेदना)

बाहरी ग्रहीता पाँच संवेदनाओं दृष्टि, आवाज, गंध, स्वाद एवं संपर्क को सूचना भेजते हैं। ये सूचना संवेदनाएँ प्राप्त कर नाड़ी के प्रभाव से बदलकर मस्तिष्क तक पहुँचायी जाती हैं। बाहरी ग्राहक शरीर की सतह पर उपस्थित होते हैं और भौतिक, रसायनिक एवं यांत्रिक उत्तेजना से क्रिया करके बाहरी वातावरण के बारे में आभास कराता है। आन्तरिक ग्राहक का कार्य आन्तरिक अवस्था के बारे में जानकारी देना होता है। जैसे कि मुँह का सूखना, पेट का भरा हुआ महसूस होना।

संचार के दौरान शरीर सभी उत्तेजना जो कि संचार में उपस्थित है को ग्रहण करता है। आप सभी के संचार की प्रतिक्रिया नहीं दे सकते। वह प्रक्रिया जो उत्तेजना की अनियमितता को सही करने में सहायता करती है उसे 'चयनात्मक ज्ञान' कहते हैं।

प्रक्रिया

बाहरी व आन्तरिक संचार का क्रम तीन चरणों में संपादित होता है।

1. अनुभव सम्बन्धी

2. भावनात्मक

3. शारीरिक

प्रक्रिया के प्रत्येक चरण में बाकी की अपेक्षा कुछ उत्तेजना अधिक एकाग्रता के साथ ग्रहण की जाती है। यह एकाग्रता किसी मुख्य उत्तेजना का परिणाम (कार्य) होती है। जिस प्रसंग में उसे प्रस्तुत किया जा रहा है। कुछ उत्तेजनाओं को पूर्ण रूप से ग्रहण किया जाता है। जैसे कि (ट्रेफिक लाइट, साइरन, टीवी कार्यक्रम) जबकि कुछ को ध्यान नहीं दिया जा सकता। जैसे-भाषण के दौरान पीछे की आवाज।

जो उत्तेजनाएँ पहले सुनी जाती हैं या पहले ध्यान दी जाती हैं उनकी प्रक्रिया पहले होती है। जो उत्तेजना अचेतन की अवस्था में सुनी जाती है वो दिमाग में एकत्रित हो जाती है और उनकी प्रक्रिया बाद में होती है।

अनुभव सम्बन्धी प्रक्रिया

अनुभव संबंधी प्रक्रिया को हम निम्नलिखित तरीके से समझ सकते हैं-

स्मृति- संग्रहीत भंडार जिसे याद करते हैं 'स्मृति' कहलाती है। स्मृति तीन प्रकार की होती है।

1. संवेदी भंडार स्मृति- जिसमें जानकारी तुरन्त के लिए दी जाती है। अम्बिका द्वारा व्यास जी का विद्रूप स्वरूप देखने से संवेदी भंडार स्मृति में तुरंत जानकारी प्राप्त हो गई।
2. सूक्ष्म काल स्मृति- जिसमें जानकारी कुछ समय के लिए भंडारित होती है। तुरंत जानकारी प्राप्त होने के पश्चात शरीर में भय उत्पन्न होकर नेत्रों का बंद होना एक सूक्ष्मकाल स्मृति का उदाहरण है।
3. दीर्घ काल स्मृति- जहाँ जानकारी लंबे समय तक के लिए भंडारित रहती है। उपरोक्त उद्धरण में जब माता सत्यवती ने भगवान व्यास से तीसरी बार पुत्र उत्पन्न करने की चर्चा की और इसके लिए उन्होंने पुनः अम्बिका को

तैयार किया। यद्यपि अम्बिका पुत्र उत्पादन की इच्छा से व्यास जी के साथ सहवास हेतु माता सत्यवती को सहमति तो दे दी थी किन्तु उसके दीर्घकाल स्मृति ने व्यास जी का वह विद्रूप स्वरूप भंडारित था और जैसे ही अवसर प्राप्त हुआ यह भंडारित स्मृति अम्बिका को पुनः भयभीत करने लगी और वह सहवास हेतु स्वयं न जाकर अपनी दासी को सहवास हेतु व्यास जी के पास भेज दिया।

संवेदना भंडार

ये मतलब ऐसी दक्षता से होता है जब तुरन्त दिखने वाली जानकारी को कुछ सेकेण्ड के लिए दिमाग में रखा जा सके। उदाहरण- जैसे आप फिल्म के फ्रेम के गैप के बारे में नहीं जानते लेकिन फिल्म देखने के बाद समझ जाते हैं क्योंकि उसमें फ्रेम बदलते रहते हैं।

संवेदना भंडार स्मृति एवं लघु काल स्मृति में अन्तर यह है कि डाटा का क्रियान्वयन पहचान और सरलीकरण देर में होता है। अतः इसे सुविधाजनक तरीके से भंडारित किया जा सकता है।

लघु काल स्मृति 'ठहराव युक्ति' का प्रकार है। जिसमें आप जानकारी को तब तक रख सकते हैं जब तक उसे प्रयोग करना चाहते हैं। यदि जानकारी उपयोगी लगती है तो उसे भविष्य के लिए लंबी समय स्मृति में स्थानांतरित कर सकते हैं।

पुनः प्राप्ति - जानकारी संग्रहीत हो जाती है अतः ये बाद में आने वाली किसी भी उत्तेजना का उत्तर देने में सहायता करती है। जबकि संग्रहीत जानकारी अपेक्षाकृत अनुपयोगी होती है। ये पुनः स्मृति से प्राप्त होती है। इस तरह पुनः प्राप्ति पहचान या याद का स्थान लेती है।

पहचान का तात्पर्य जागरुकता से है जिसमें जानकारी पहले से पता होती है।

याद ज्यादा कठिन है इसमें बसी हुयी जानकारी का पुनः निर्माण करना पड़ता है। उदाहरण- हम एक शब्द को पहचान जाते हैं जिसका अर्थ एक हफ्ते पहले देखा था, अब उसे याद करने में अक्षम हैं।

छाँटना मस्तिष्क में जानकारियों के अनगिनत भाग होते हैं। किसी

भी प्रक्रिया की स्थिति में आप अपने ज्ञान भंडार में उपस्थित सबसे संबद्ध जानकारी का वरण करते हैं। इसे वरण प्रक्रिया कहते हैं। उदाहरण- पढ़ते समय हम अक्षर को चुनते हैं जबकि हम शब्द बना सकते हैं।

समांगीकरण समीपस्थ स्मृति भंडार पुनः प्राप्ति और छाँटने का योग नहीं है। बल्कि ये समांगीकरण में सम्मिलित हैं।

वातावरण के किसी असंगठित पहलू को बिना बाहरी दबाव के पूर्णतया अर्थपूर्वक बनाने की प्रक्रिया को समांगीकरण कहते हैं। पढ़ने की प्रक्रिया के दौरान ये लंबी समय स्मृति में चली जाती है। और तब किताब पुनः खोलकर और वर्ण को शब्दों से छाँटकर और फिर शब्दों का वाक्यों में समांगीकरण करना चाहिए।

भावनात्मक प्रक्रिया

अब हम भावनात्मक प्रक्रिया के विभिन्न पहलूओं पर विचार करेंगे जो इस प्रक्रिया का परिचालन करते हैं। जैसे- चेतन अवस्था में अचेतन भावनात्मक राय देना। सभी के द्वारा अपनी प्रतिक्रिया जानने के लिए कोई संचार करना आदि। महाभारत के आदि पर्व में एक बहुत ही महत्वपूर्ण उद्धरण ध्यातव्य है-

वारणावत में जतुगृह से प्राण बचाकर भागे हुए पाण्डव अपनी माँ कुंती के साथ वन में निवास कर रहे थे। उनके पास निवास करने हेतु संसाधनों का अभाव था। महारानी कुंती को प्यास लगी। तत्पश्चात वह अपने पुत्रों से बोली। मैं पांच पुत्रों की माता हूं और उन्हीं के बीच स्थित हूं। तो भी प्यास से व्याकुल हूँ। माता का यह वचन सुनकर उस निर्जन वन में पानी लाने का प्रयास करने लगे। वे अपनी माता एवं सभी भाइयों को बैठाकर आगे बढ़े तो सारस पक्षी की मीठी आवाज उन्हें सुनाई पड़ी। इससे उन्हें आभास हो गया कि कुछ दूर पर जलाशय अवश्य होगा। भीमसेन उस जलाशय पर पहुँचकर पानी पिये, स्नान किये और चादर में पानी लेकर अपने भाइयों के लिये चले। जब वे अपनी माता एवं भाइयों के पास पहुँचे तो उन्हें धरती पर सोया देख वे अत्यन्त शोक संतप्त हो गये और इस प्रकार विलाप करने लगे-

अतः कष्टतरं किं नु द्रष्टव्यं हि भविष्यति।

यत् पश्यामि महीसुप्तान् भ्रातृनद्य सुमन्दभाक्।[37]

हाय! मैं कितना भाग्यहीन हूँ कि आज अपने भाइयों को पृथ्वी पर सोया देख रहा हूँ। इससे महान कष्ट की बात देखने में क्या आयेगी।

शयनेषु परार्ध्येषु ये पुरा वारणावते
नाधिजग्मुस्तदा निद्रां तेऽद्य सुप्ता महीतले।[38]

आज से पहले जब हम लोग वारणावत नगर में थे, उस समय जिन्हें बहुमूल्य शय्याओं पर भी नींद नहीं आती थी, वे ही आज धरती पर सो रहे हैं!

स्वसारं वसुदेवस्य शत्रुसंघवमर्दिनः।
कुन्तिराजसुतां कुन्तीं सर्वलीक्षणपूजिताम्।
स्नुषां विचित्रवीर्यस्य भार्यां पाण्डोर्महात्मनः।
तथैव चास्मज्जननीं पुण्डरीकोदरप्रभाम्।
सुकुमारतरामेनां महार्हशयनोचिताम्।
शयानां पश्यतोद्येह पृथिव्यामतथोचिताम्।[39]

जो शत्रु समूह का संहार करने वाले वसुदेवजी की बहिन तथा महाराज कुन्तिभोज की कन्या हैं, समस्त शुभ लक्षणों के कारण जिनका सदा समादर होता आया है, जो राजा विचित्रवीर्य की पुत्रवधू तथा महात्मा पाण्डु की धर्मपत्नी है, जिन्होंने हम जैसे पुत्रों को जन्म दिया है, जिनकी अंगकान्ति कमल के भीतरी भाग के समान है, जो अत्यन्त सुकुमार और बहुमूल्य शय्या पर शयन करने के योग्य हैं, देखो आज वे ही कुन्ती देवी यहाँ भूमि पर सोयी हैं। ये कदापि इस तरह के शयन करने के योग्य नहीं हैं।

धर्मादिन्द्राच्च वाताच्च सुषुवे या सुतानिमान्।
सेयं भूमौ परिश्रान्ता शेते प्रासादशायिनी।[40]

जिन्होंने धर्म, इन्द्र और वायु के द्वारा हम जैसे पुत्रों को उत्पन्न किया है, वे राजमहल में सोने वाली महारानी कुन्ती आज परिश्रम से थककर यहाँ पृथ्वी पर पड़ी हैं।

किं नु दुःखतरं शक्यं मया द्रष्टुमतः परम्।
योऽहमद्य नरव्याघ्रान् सुप्तान् पश्यामि भूतले।[41]

इससे बढ़कर दुःख मैं और क्या देख सकता हूँ जबकि अपने नरश्रेष्ठ

भाइयों को आज मुझे धरती पर सोते देखना पड़ रहा है।

त्रिषु लोकेषु यो राज्यं धर्मनित्योऽर्हते नृपः।
सोऽयं भूमौ परिश्रान्तः शेते प्राकृतवत् कथम्।[42]

जो नित्य धर्मपरायण नरेश तीनों लोकों का राज्य पाने के अधिकारी हैं, वे ही आज साधारण मनुष्यों की भांति थके-मांदे पृथ्वी पर कैसे पड़े हैं।

अयं नीलाम्बुदश्यामो नरेष्वप्रतिमोऽर्जुनः।
शेते प्राकृतवद् भूमौ ततो दुःखतरं नु किम्।[43]

मनुष्यों में जिनकी कहीं समता नहीं है, वे नील मेघ के समान श्याम कान्ति वाले अर्जुन आज प्राकृत जनों की भांति पृथ्वी पर सो रहे हैं; इससे महान दुःख और क्या हो सकता है।

अश्विनाविव देवानां याविमौ रूपसम्पदा।
तौ प्राकृतवदद्येमौ प्रसुप्तौ धरणीतले।[44]

जो अपनी रूप-सम्पत्ति से देवताओं में अश्विनी कुमारों के समान जान पड़ते हैं, वे ही ये दोनों नकुल-सहदेव आज यहाँ साधारण मनुष्यों के समान जमीन पर सोये पड़े हैं।

ज्ञातयो यस्य नैव स्युर्विषमाः कुलपांसनाः।
स जीवेत सुखं लोके ग्रामद्रुम इवैकजः।[45]

जिसके कुटुम्बी पक्षपातयुक्त और कुल को कलंक लगाने वाले नहीं होते, वह पुरुष गांव के अकेले वृक्ष की भांति संसार में सुखपूर्वक जीवन धारण करता है।

एको वृक्षो हि यो ग्रामे भवेत् पर्णफलान्वितः।
चैत्यो भवित निर्ज्ञातिरर्चनीयः सुपूजितः।[46]

गांव में यदि एक ही वृक्ष, पत्र और फल-फूलों से सम्पन्न हो तो वह दूसरे सजातीय वृक्षों से रहित होने पर भी चैत्य (देववृक्ष) माना जाता है तथा उसे पूज्य मानकर उसकी खूब पूजा की जाती है।

तस्मान्मुक्ता वयं दादादिमं वृक्षमुपाश्रिताः।
कां दिशं प्रतिपत्स्यामः प्राप्ताः क्लेशमनुत्तमम्।[47]

आज उसे अग्निदाह से मुक्त हो हम इस वृक्ष के नीचे आश्रय ले रहे हैं। हमें

किस दिशा में जाना है, इसका भी पता नहीं है। हम भारी-से-भारी कष्ट उठा रहे हैं।

सकामो भव दुबुद्धे धार्तराष्ट्राल्पदर्शन।
नूनं देवाः प्रसन्नास्ते नानुज्ञां मे युधिष्ठिरः।
प्रयच्छति वधे तुभ्यं तेन जीवसि दुर्मते।
नन्वद्य त्वां सहामात्यं सकर्णानुजसौबलम्।
गत्वा क्रोधसमाविष्टः प्रेषयिष्ये यमक्षयम्।
किं नु शक्यं मया कर्तुं यत् ते न क्रुध्यते नृपः।
धर्मात्मा पाण्डवश्रेष्ठः पापाचार युधिष्ठिरः।
एवमुक्त्वा महाबाहुः क्रोधसंदीप्तमानसः।
करं करेण निष्पिष्य निःश्वसन् दीनमानसः।
पुनर्दीनमना भूत्वा शान्तार्चिरिव पावकः।
भ्रातृन् महीतले सुप्तानवैक्षत वृकोदरः।
विश्वस्तानिव संविष्टान् पृथग्जनसमानिव।[48]

ओ दुर्बुद्धि अल्पदर्शी धृतराष्ट्रकुमार दुर्योधन! आज तेरी कामना पूरी हुई। निश्चय ही देवता तुझ पर प्रसन्न हैं। तभी तो राजा युधिष्ठिर मुझे तेरा वध करने की आज्ञा नहीं दे रहे हैं। दुर्मते! यही कारण है कि तू अब तक जी रहा है। रे पापाचारी! मैं आज ही जाकर कुपित हो मंत्रियों, कर्ण, छोटे भाई और शकुनि सहित तुझे यमलोक भेज सकता हूँ। किंतु क्या करूँ, पाण्डवश्रेष्ठ धर्मात्मा युधिष्ठिर तुझ पर कोप नहीं कर रहे हैं।

यों कहकर महाबाहु भीम मन ही मन क्रोध से जलते और हाथ से हाथ मलते हुये दीनभाव से लंबी सांसे खींचने लगे। बुझी हुई लपटों वाली अग्नि की भांति दीनहृदय होकर वे पुनः धरती पर सोये हुये भाइयों की ओर देखने लगे। उनके वे सभी भाई साधारण लोगों की भांति भूमि पर ही निश्चिन्तापूर्वक सो रहे थे।

शारीरिक प्रक्रिया

तीसरी तरह की प्रक्रिया शारीरिक प्रक्रिया होती है जिसमें निर्माण स्वशरीर से होता है। जीवित रहने के लिए शारीरिक प्रक्रिया महत्वपूर्ण है।

आभ्यन्तर संचार में इसका प्रयोग केवल पहचान के लिए किया जाता है। इस प्रक्रिया के अवचेतन परिवर्त्य है, हृदय-गति, मस्तिष्क, पेशीय-तनाव, रक्तचाप, शरीर का तापमान आदि।

सूचना की जानकारी होने के बाद मस्तिष्क तरंगे सुचारू रूप से ध्यान दे पाती हैं। हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि मस्तिष्क का कौन सा भाग प्रक्रिया की जानकारी में सहायक है।

इलेक्ट्रोइनसेकेलोग्राफी से पता चला है कि मस्तिष्क का दाँया व बाँया भाग किसी प्रक्रिया के लिए एकान्तरिक कार्य लिए रहे हो या किताब पढ़ रहे हो तो मस्तिष्क का बाँया भाग काम करता है। बाँये भाग का काम गणितीय कार्य, भाषण में ध्यान, तार्किक क्रिया आदि में होता है।

दाँया भाग- सूचना प्रक्रिया, संगीतीय, एक से ज्यादा चीजों को देखना आदि के लिये उपयोगी होता है।

जब कोई व्यक्ति अपना पसंदीदा गाना सुन रहा हो या सोच रहा हो कि इस परिधान में मैं कैसा लगूँगा या कोई चित्र बना रहा हो तब वह अपने मस्तिष्क के दाएँ भाग का प्रयोग करता है।

शारीरिक परिवर्तनों को नियंत्रित करके आन्तिरिक प्रक्रिया को भी नियंत्रित किया जा सकता है।

कुछ व्यक्तियों में जागरूकता दूसरों की अपेक्षा अधिक होती है। ज्यादातर लोगों में शारीरिक चेतन जागरूकता दर्द, खुशी, तनाव व आराम की उत्तेजना सीमित होती है। कुछ लोग जैविक प्रतिक्रिया का उपयोग करते हैं। ये एक तरह की आन्तरिक प्रतिक्रिया होती है जिसके अन्तर्गत अपने आपको शारीरिक प्रक्रिया के लिए ज्यादा जागरूक होने के लिए सहायता दी जाती है। कर्ता के किसी औजार की सहायता से जोड़ दिया जाता है और शारीरिक गणनाएँ जैसे- पल्स रेट (नाड़ी) पेशीय-तनाव एवं त्वचा का तापमान पता लगाया जाता है। कभी-कभी जानकारी व्यक्ति विशेष को बदलने का कार्य करती है। उदाहरण- जीव प्रतिक्रिया का प्रयोग रक्तचाप को कम करने, हृदय गति और सीजर को नियंत्रित करने में किया जाता है। साथ में जीव प्रतिक्रिया सकारात्मक स्मरण शक्ति के कारण आत्मविश्वास, आत्मनियंत्रण को बढ़ाती

है और प्रस्तुति को ऊँचाई तक ले जाती है।

पहुँचाने या भेजने का कार्य

स्रोत के माध्यम से संदेश को प्रापक तक पहुँचाने की विधि कहलाती है। आभ्यन्तर संचार में स्रोत और ग्रहीता समान होते हैं। अतः मस्तिष्क तरंगों के द्वारा होता है न कि ध्वनि तरंगों या पेज में लिखे शब्दों के द्वारा। आभ्यन्तर संचार का चक्र तब पूरा होता है जब सन्देश मस्तिष्क तरंगों से पेशीय क्रिया करती है जो कि शरीर की गति को नियंत्रित करता है। जैसे कि पिछले पाठ में बताया गया कि जब हमारा हाथ गरम पानी को छूता है तो तंत्रिकीय सूचना मस्तिष्क तक पहुँचती है और बताती है कि पानी गरम है जिसके कारण संदेश मस्तिष्क के माध्यम से मासपेशियों तक पहुँचता है और हमें तुरन्त उस गरम पानी से हाथ हटाने का संदेश मिलता है।

प्रतिपुष्टि

प्रतिपुष्टि दूसरों से हम जानकारी की तरह ही आभ्यन्तर संचार में भी प्रतिपुष्टि प्राप्त होती है। आभ्यन्तर संचार में दो तरह की प्रतिपुष्टि मिलती है।

(1) **बाह्य स्व प्रतिपुष्टि-** स्वप्रतिक्रिया का अर्थ स्वयं द्वारा सुनी गयी बात की प्रतिक्रिया देना है। इस तरह की प्रतिक्रिया से व्यक्ति अपनी गलती को सुधारता है। उदाहरण जब हम अपने को समझाते है तो बाह्य प्रतिपुष्टि होती है।

(2) **आन्तरिक स्व प्रतिपुष्टि-** पेशीय गति, हड्डी संचालन, तंत्रिकीय तन्त्र से मिलता है। उदाहरण पेशीय संकुचन को अपने चेहरे पर देखना।

हस्तक्षेप- यह संचार प्रक्रिया का ही महत्वपूर्ण परिवर्त्य है। हस्तक्षेप ऐसा नकारात्मक कारक है जो संचार को प्रभावित करता है। ये संचार के किसी भी जाल में पाया जा सकता है और संचार के किसी भी स्तर पर पाया जा सकता है। उदाहरण- पड़ोसियों द्वारा किसी विन्यास पर बहस आपके मस्तिष्क के दर्द को बढ़ा सकती है जो कि आपके पढ़ने के लिए बाधा उत्पन्न करती है। संचार का विशेष रूप आभ्यन्तर संचार में प्रेरक की एक स्तर पर प्रक्रिया होती है। हालाँकि संचार का दूसरा स्तर उनसे सौदा करने के लिए उपयुक्त होता है। उदाहरण- ज्यादातर लोग जानकारी के लिए भावनात्मक होते हैं। कम अंक आने पर आप रोते या चिल्लाते हैं जब आप शान्त रहते हैं तो बुरी खबर का

समाधान भी निकाल पाते हैं। कुछ व्यक्ति समीपस्थ स्तर पर जानकारी की प्रक्रिया पर बल देते हैं क्योंकि भावनात्मक प्रक्रिया ज्यादा सहायक होती है। प्रायः रोने से बुरे दिन का दबाव कम हो जाता है।

आभ्यन्तर परिवर्त्य का संचार में प्रभाव

आपका व्यक्तित्व और बीता अनुभव व्याख्या को बढ़ाने का काम करते हैं। अतः हमें मानना चाहिए कि आभ्यन्तर कारक संचार को प्रभावित करते हैं।

व्यक्तिगत दिशा निर्धारण या स्थित

किसी स्थिति में व्यक्ति द्वारा की गयी क्रिया उसकी व्यक्तिगत दिशा निर्धारण द्वारा पहचानी जा सकती है।

राम और श्याम दो दोस्त हैं और दोनों विज्ञापन कापी लेखक जॉब के लिए विज्ञापन एजेंसी के लिए साक्षात्कार की तैयारी कर रहे हैं। दोनों को पूर्व अभ्यास नहीं है किन्तु दोनों ने अपनी क्षमता के अनुसार विभिन्न तरह के कार्य प्रस्तुत किये। श्याम ने कम योग्यता के साथ कठिन कार्य का नमूना प्रस्तुत किया। जबकि राम ने अधिक योग्यता के साथ कम कठिन कार्य का नमूना प्रस्तुत किए। उसने उसे कुछ शब्दों से पीछे छोड़ा। आप दोनों के बारे में क्या सोचते हैं? ये आपका व्यक्तिगत दिशा निर्धारण तय करता है। क्या आप श्याम की सच्चाई और कड़ी मेहनत का सम्मान करते हैं या फिर राम द्वारा मनचाही जॉब पाने के लिए की गयी चालाकी की प्रशंसा करते हैं।

इस स्थिति में आपकी क्रिया सबसे पहले मूल्यों, रवैया, विश्वास, राय से परावर्तित होगी और व्यक्तिगत दिशा निर्धारण करेगी।

मूल्य

हममें से प्रत्येक अपने मूल्यों को सँवारते है। हम शिक्षाप्रद या पौराणिक निर्णय को महत्वपूर्ण मानते हैं। मूल्य व्यक्ति विशेष को अलग करने का माध्यम है या फिर दो अलग स्तर के व्यक्तियों के बीच की बाधा। उदाहरण- माता, पिता, बच्चों को बेईमानी के लिए मना करते हैं किन्तु अपनी आयकर की चोरी के बारे में नहीं सोचते। व्यक्ति के मूल्यों का पता उसके द्वारा लिए गए निर्णय से चलता है।

अभिवृत्ति

जेम्स ड्रेवर के अनुसार "अभिवृत्ति, मत, रुचि अथवा उद्देश्य की एक लगभग स्थायी तत्परता या प्रवृत्ति है जिसमें एक विशेष प्रकार के अनुभव की आशा और एक उचित प्रक्रिया की तैयारी निहित होती है।" इसे हम इस प्रकार भी कह सकते हैं-

किसी स्थिति में व्यक्ति द्वारा पहले से सीखी गयी सकारात्मक या नकारात्मक प्रतिक्रिया या व्यवहार को कहते हैं। यह व्यवहार मुख्य रूप से तीन स्तरों पर परिचालित होती है।

(1) समीपस्थ (2) प्रभाविकता (3) उपकरणात्मक

(1) समीपस्थ- ये स्तर किसी भरोसे पर शामिल होता है।

(2) प्रभाविक- इस स्तर पर भावना होती है तथा

(3) उपरकणात्मक- स्तर प्रत्यक्ष व्यवहार या क्रिया में शामिल होता है।

उदाहरण- एक व्यक्ति थे जो उच्च शिक्षा आयोग के सदस्य थे और मुफ्त शिक्षा के विरोधी थे। उनका नकारात्मक रवैया मुख्य तीन रूपों में तोड़ कर देखा जा सकता है।

(1) विश्वास- जिस व्यक्ति के लिए कालेज शिक्षा का व्यवसाय है। अतः शिक्षण में शुल्क से उन्हें रुपया प्राप्त होगा।

(2) भावनाएँ- जो व्यक्ति कुछ नहीं के लिए कुछ प्राप्त करता है उसे वह ठीक नहीं मानता।

(3) क्रिया- राज्य के विश्वविद्यालय में मुफ्त शिक्षण के लिए वोट नहीं करता।

विश्वास राय, पूर्वधारणा या पक्षपात - हम विश्वास शब्द का प्रयोग पहले भी कर चुके हैं, कुछ ऐसा जिसे सच के रूप में स्वीकारते हैं। याद रखना ये परिभाषाएँ सकारात्मक या नकारात्मक निर्णय पर लागू नहीं होती।

उदाहरण- हम विश्वास करते हैं कि दूसरे ग्रह में जीवन है किन्तु ये विचार सकारात्मक या नकारात्मक रवैया नहीं दिखाती। यदि आप प्लेनेट के दो कदम आगे बात करते तब ये आपकी राय बन जाती है। राय (विचार) विश्वास और रवैये के बीच उपस्थित होता है। ये सकारात्मक या नकारात्मक क्रिया दे सकता है। हमारे सभी विश्वास और राय सही नहीं होते। ये हमारे

पिछले किसी विचार पर निर्भर कर सकता है। इस अवस्था में इसे पूर्वधारणा कहते हैं कि ये किसी व्यक्ति विशेष, किसी समूह का निर्णय करने में सहायक होता है। हममें से कोई भी पूर्वधारणा से अछूता नहीं है। वस्तुतः पूर्व धारणा सही नहीं होती। अतएव व्यक्ति को पूर्वधारणा नहीं बनाना चाहिए।

व्यक्तित्व विशेषता

व्यक्तित्व विशेषता वह विशेषता है जिसके द्वारा दो व्यक्तियों के व्यक्तित्व की अलग पहचान की जा सकती है। कुछ व्यक्तित्व विशेषता संचार में होती है किन्तु वह संचार के लिए बाधक होती है।

नियंत्रण का बिन्दुपथ

एक मुख्य व्यक्तिगत परिवर्तन जो संचार को प्रभावित करता है, नियंत्रण का बिन्दुपथ कहलाता है। संचार के स्वरूप का अन्तर उनके लिए पैदा होता है जिनका विश्वास है कि वो अवसर को सम्भाल सकते है।

प्रथमोक्त व्यक्ति-

आन्तरिक नियंत्रण बिन्दुपथ के साथ अपने नए प्लान को तेजी के साथ उच्च पर्यवेक्षण को प्रस्तुत करता है। जबकि कम अनुभवी व्यक्ति का संचार दिशाहीन एवं अस्पष्ट होता है।

संदर्भ

1. वा.प. 1/1 परी वृषभवृत्ति
2. माण्डूक्योपनिषद् 1
3. भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परंपरा, सुरेश सोनी, पृ. 158
4. (वा.पा. 1/15)
5. (ऋ. सं. 2/3/22)
6. महाभारत, शान्ति पर्व, मोक्ष धर्म पर्व, अध्याय 248, श्लोक संख्या 1
7. वही, श्लोक संख्या 2
8. वही, श्लोक संख्या 3
9. वही, श्लोक संख्या 4
10. वही, श्लोक संख्या 5

11. वही, श्लोक संख्या 6
12. वही, श्लोक संख्या 7
13. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 1
14. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 2
15. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 3
16. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 4
17. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 5
18. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 6
19. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 7
20. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 8-9
21. महाभारत, आदि पर्व (संभव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 10 से 12
22. महाभारत, आदि पर्व (संभव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 13 से 15
23. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 16
24. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 17
25. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 18
26. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 19
27. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 20
28. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 21
29. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 22
30. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 23
31. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 24
32. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 25
33. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 26-27
34. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 28
35. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 29
36. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 105, श्लोक संख्या 30
37. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृहपर्व), अध्याय 150, श्लोक संख्या 22
38. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृहपर्व), अध्याय 150, श्लोक संख्या 23

39. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृहपर्व), अध्याय 150, श्लोक संख्या 24 से 26
40. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृहपर्व), अध्याय 150, श्लोक संख्या 27
41. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृहपर्व), अध्याय 150, श्लोक संख्या 28
42. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृहपर्व), अध्याय 150, श्लोक संख्या 29
43. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृहपर्व), अध्याय 150, श्लोक संख्या 30
44. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृहपर्व), अध्याय 150, श्लोक संख्या 31
45. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृहपर्व), अध्याय 150, श्लोक संख्या 32
46. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृहपर्व), अध्याय 150, श्लोक संख्या 33
47. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृहपर्व), अध्याय 150, श्लोक संख्या 37
48. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृहपर्व), अध्याय 150, श्लोक संख्या 38 से 43
49. सामाजिक मनोविज्ञान, डॉ. डी.एस.बघेल, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी
50. मनोविज्ञान तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ, ऋचा चौधरी, राधा पब्लिकेशन, नईदिल्ली
51. संचार के सिद्धांत, डॉ. ओमप्रकाश सिंह
52- Human communication, Joseph A devito, Harper & Row New York
53. International Communication and Human Relationship, Knapp, New Yark academic Press.
54. Communication- Larry L Barker, Deborab A Barker, Prentice Hall Englewood, Cliffs New Jersey 07632

अध्याय 4

अंतरवैयक्तिक संचार एवं अंतरवैयक्तिक सम्बन्ध

अन्तर्वैयक्तिक संचार

अन्तर्वैयक्तिक संचार वह संचार प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति द्वारा प्रेषित सन्देश दूसरे व्यक्ति द्वारा सीधे ग्रहण किया जाता है। दो व्यक्ति जब आपस में बात-चीत करते हैं तो उसे अन्तवैयक्तिक सम्प्रेषण कहते हैं। प्रो.जीन पाल फार आन्दे इसके अन्तर्गत उस छोटे से समूह को भी सम्मिलित करने की बात कहते हैं जिसमें फीडबैक तुरन्त सम्पन्न हो सके।

अन्तर्वैयक्तिक सम्प्रेषण में सन्देश, स्पर्श, मुस्कराहट आदि के द्वारा भी प्रेषित कर सकते हैं। टेलीफोन द्वारा सन्देशों को आदान-प्रदान करना भी इसका उदाहरण है। यद्यपि अन्तर्वैयक्तिक संचार में प्रायः संचार प्रक्रिया आमने-सामने होती है किन्तु यह हर परिस्थिति में आवश्यक नहीं है। अन्तर्व्यैक्तिक संचार की निम्नलिखित सम्भावित स्थितियाँ प्रभावी हो सकती है-

1. श्रोता का सन्देश से पूर्ण सहमत होना।
2. श्रोता का सन्देश से आंशिक सहमत होना।
3. श्रोता का सन्देश से असहमत होना।
4. श्रोता का सन्देश को न समझ पाना।

अन्तरवैयक्तिक संचार की परिभाषा

अन्तरवैयक्तिक संचार को विद्वानों ने तीन घटकों के आधार पर परिभाषित किया है। जो निम्नलिखित हैं-

(1) घटकीय/तात्विक परिभाषा

तात्विक अर्थात घटकीय आधार पर रचित परिभाषा "अन्तवैयक्तिक संचार को इसके महत्वपूर्ण घटकों के आधार पर परिभाषित करती है- जिसमें सम्प्रेषक द्वारा संदेश का भेजा जाना और किसी अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के एक लघु समूह द्वारा किसी प्रभाव के साथ तुरन्त प्रतिपुष्टि

मिलने के अवसर समेत संदेश को प्राप्त करना सम्मिलित है।''

इस प्रकार तात्विक परिभाषा के मुख्य घटक निम्नलिखित हैं-

- सम्प्रेषक द्वारा संदेश को भेजा जाना
- किसी अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के एक लघु समूह द्वारा संदेश प्राप्त करना
- किसी प्रभाव के साथ प्रतिपुष्टि मिलने का अवसर प्राप्त करना।

(2) सम्बन्धिक परिभाषा

(द्वि-वैयक्तिक परिभाषा) सम्बन्धिक परिभाषा के आधार पर ''वह संचार जो दो ऐसे व्यक्तियों के बीच सम्पन्न होता है, जिनके मध्य स्पष्टतः स्थापित सम्बन्ध होते हैं, अन्तर वैयक्तिक संचार कहलाता है।''

उदाहरण- दो व्यक्तियों (परिचित अथवा अपरिचित) के मध्य संचार, पिता-पुत्र के मध्य संचार, दो बहनों के मध्य संचार, गुरु-शिष्य के मध्य संचार, दो मित्रों के मध्य संचार आदि।

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर सभी द्वि-वैयक्तिक संचार अन्तर वैयक्तिक संचार की श्रेणी में आते हैं। अतः इसे 'द्वि-वैयक्तिक संचार' भी कहा जाता है।

एक अन्य उदाहरण के तौर पर यदि एक अजनबी भी किसी स्थान विशेष के निवासी से मार्ग पूछता है तो उसी क्षण उस अजनबी और उस स्थानीय निवासी के मध्य जैसे ही यह प्रथम संदेश प्रेषित होता है एक पूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। अतः यह भी अन्तर वैयक्तिक संचार कहा जायेगा।

कई बार सम्बन्ध के आधार पर दी गयी यह परिभाषा कुछ व्यक्तियों के लघु समूह जैसे परिवार अथवा तीन-चार मित्रों के समूह के मध्य हुये संचार को भी अन्तर वैयक्तिक संचार में सम्मिलित करती है।

तात्विक एवं सम्बन्धिक दोनों ही अवधारणायें निश्चित रूप से एक ही स्थिति अन्तर वैयक्तिक संचार को परिभाषित करती है।

तात्विक आधार पर दी गई परिभाषा संचार प्रक्रिया में भाग लेने वाले तत्वों पर विशेष जोर देती है जबकि सम्बन्धिक आधार पर दी गई परिभाषा

संचार प्रक्रिया में भाग लेने वाले प्रतिभागियों के मध्य स्थापित सम्बन्धों पर बल देती है। इन परिभाषाओं के आधार पर हमारी संचार प्रक्रिया का एक विस्तृत भाग अन्तर वैयक्तिक संचार के अन्तर्गत आता है।

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर एक बहुत ही कम एवं सीमित संख्या में व्यक्तियों के बीच संचार का अन्तरवैयक्तिक संचार की श्रेणी रखा जाता है।

(3) विकासात्मक परिभाषा

विकासात्मक अवधारणा के आधार पर अन्तर्वैयक्तिक संचार ''अव्यक्तिगत (औपचारिक) संचार के बढ़ते क्रम में चरम पर पहुँच कर समाप्त होने तथा व्यक्तिगत (अनौपचारिक) संचार में प्रवेश करने की प्रक्रिया है।''

ये विकासात्मक 'सिग्नल' (संकेत) अन्तर वैयक्तिक संचार के विकास को परिभाषित करते हैं। संचारविद गेराल्ड मिलर (ळमतंसक डपससमत) के विश्लेषण के द्वारा निम्न तीन कारकों के आधार पर अन्तर वैयक्तिक संचार विकासात्मक संकेतों के माध्यम से परिभाषित किया गया है एवं अव्यक्तिगत (औपचारिक) संचार में भिन्नता भी दर्शाता है।

(अ) मनो पूर्वाग्रह के आधार पर

अन्तर वैयक्तिक वार्तालाप में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति विशेष की किसी समूह अथवा संस्कृति की सदस्यता के आधार पर (जैसा कि अव्यक्तिगत संचार में किया जाता है) अपनी विचारधारा न बनाकर अपने मानसिक पूर्वाग्रह के आधार पर अपने विचार बनाता है और उसी आधार पर व्यवहार अथवा संचार करता है। इस मानसिक पूर्वाग्रहों के आधार पर ही प्रत्येक व्यक्ति किसी समूह में अपना अलग अस्तित्व रखता है।

''अव्यक्तिगत संचार प्रक्रियाओं में हम एक-दूसरे के साथ उस वर्ग अथवा समूह के अनुसार व्यवहार करते हैं जिनके हम सदस्य होते हैं।''

उदाहरण हेतु हम एक कॉलेज के प्राध्यापक के साथ सामान्य रूप से वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा कि एक विद्यार्थी किसी भी प्राध्यापक के साथ करेगा, ठीक उसी प्रकार प्राध्यापक भी किसी विद्यार्थी के साथ उसी प्रकार

व्यवहार करते हैं जैसा कि एक प्राध्यापक को एक विद्यार्थी के साथ सामान्य रूप से करना चाहिये, परन्तु जब यह सम्बन्ध पहले से अधिक गहरा हो जाता है, तब प्राध्यापक और विद्यार्थी एक-दूसरे के साथ उनके वर्ग अथवा समूह के आधार पर व्यवहार ना करके व्यक्तिगत व्यवहार करते हैं। दोनों ही एक-दूसरे की भिन्न आदतों और उनकी अद्वितीयता के आधार पर व्यवहार करना आरम्भ कर दते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि अव्यक्तिगत अथवा औपचारिक संचार में व्यक्ति की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति हमें यह बताती है कि किस प्रकार व्यवहार किया जाये जबकि व्यक्तिगत और 'द्वि-व्यक्तिगत' अथवा अन्तर वैयक्तिक संचार में व्यक्ति की मानसिक स्थिति इस बात का निर्णय करती है कि संचार एवं व्यवहार किस प्रकार किया जाना चाहिये?

(ब) व्याख्यात्मक ज्ञान के आधार पर

"अन्तर वैयक्तिक संचार उस प्रक्रिया के प्रत्येक प्रतिभागी के व्याख्यात्मक ज्ञान पर आधारित है।" जब हम किसी व्यक्ति को भली-भाँति जानते हैं तो हम यह अनुमान लगा लेते हैं कि अमुक परिस्थिति में वह कैसी प्रतिक्रिया देगा? व्याख्यात्मक ज्ञान के आधार पर अन्तरवैयक्तिक संचार में हम न केवल किसी व्यक्ति के व्यवहार का पूर्वानुमान लगा लेने में सक्षम होते हैं अपितु उसके व्यवहार के कारणों की भी पूर्व व्याख्या करने में सक्षम होते हैं।

उदाहरण के लिये एक शिक्षक किसी विद्यार्थी विशेष जैसे राजन के विषय में यह भविष्यवाणी करते हैं कि प्रत्येक शुक्रवार वह पाँच मिनट विलम्ब से कक्षा में आयेगा। यह प्रोफेसर द्वारा दिया गया पूर्वानुमानित वक्तव्य है। अन्तर्वैयक्तिक संचार के व्याख्यात्मक रूप में प्रोफेसर न भी बताने में सक्षम होते हैं कि वह शुक्रवार को किस कारण से कक्षा में विलम्ब से आता है। अतः इस आधार पर अन्तरवैयक्तिक संचार में व्यक्ति एक-दूसरे की आदतों एवं व्यवहारों तथा उन आदतों के कारणों का भी पूर्वानुमान लगा लेते हैं।

(स) व्यक्तिगत रूप से स्थापित नियमों के आधार पर

अव्यक्तिगत परिस्थितियों (सामान्य सामाजिक परिस्थितियों में जहाँ व्यक्ति भली-भांति व्यक्तिगत रूप से एक दूसरे को नहीं जानते) में व्यवहारिक

अंतःक्रियायें सामाजिक प्रतिमानों द्वारा निर्मित होती है।

जैसा कि एक प्राध्यापक तथा एक विद्यार्थी एक दूसरे के साथ सामाजिक प्रतिमानों एवं संस्कृति द्वारा स्थापित नियमों के आधार पर एक-दूसरे से व्यवहार करते हैं, परन्तु जैसे ही प्राध्यापक एवं विद्यार्थी का संबंध अव्यक्तिगत से अन्तरवैयक्तिक तथा व्यक्तिगत होने लगता है, वे एक दूसरे के साथ किये जाने वाले व्यवहारों में सामाजिक प्रतिमानों के द्वारा नियंत्रित नहीं होते। व्यक्ति अपने संबंधों के आधार पर अपने व्यक्तिगत नियम उस संबंध विशेष हेतु निर्मित कर लेता है।

अतः जब व्यक्ति समाज द्वारा निर्मित प्रतिमानों एवं नियमों के आधार पर व्यवहार न करके एक-दूसरे के साथ अपने व्यक्तिगत नियमों के आधार पर व्यवहार करता है तो इस परिस्थिति को अन्तरवैयक्तिक संचार कहते हैं।

ये सभी उपयुक्त विशेषताएँ मात्रा में परिवर्तित होती रहती हैं। कुछ सीमा तक हम एक दूसरे के साथ मानसिक पूर्वाग्रह के आधार पर व्यवहार करते हैं तो कुछ सीमा तक व्याख्यात्मक ज्ञान के आधार पर और कुछ परिस्थितियों में व्यक्तिगत रूप से निर्धारित नियमों के आधार पर परस्पर व्यवहार करते हैं। समाज द्वारा निर्मित प्रतिमानों के आधार पर व्यवहार न करते हुए हम सम्पर्क, सहभागिता, अंतरंगता, सम्बन्ध ह्रास (पतन) सम्बन्धविच्छेदन आदि के द्वारा व्यवहार करने लगते हैं। अतः एक विकासात्मक अवधारणा के आधार पर अन्तरवैयक्तिक संचार को एक अन्य अव्यक्तिगत अर्थात् औपचारिक संचार से उच्च व्यक्तिगत अर्थात् अनौपचारिक संचार तक श्रेणीबद्ध किया गया है। यद्यपि प्रत्येक अन्तरवैयक्तिक संचार की सीमाओं को अपने अनुसार थोड़ा-बहुत भिन्न रूप में परिभाषित कर सकता है। अतः उपर्युक्त परिभाषा अन्तरवैयक्तिक संचार की सार्वभौमिक परिभाषा नहीं है। ऊपर दिये गये तीन विशेषताओं को अन्तरवैयक्तिक संचार की परिभाषा में हमारी दृष्टि में सम्मिलित किया जाना चाहिए कि यह किस प्रकार अव्यक्तिगत अथवा औपचारिक संचार से भिन्न है।

अन्तर्वैयक्तिक संचार इन तीनों अवधारणाओं पर आधारित है। अतएव संचारविदों ने इसे भिन्न-भिन्न रूपों में परिभाषित किया है।

सुप्रसिद्ध संचारविद जोसेफ ए डेविटो के अनुसार अन्तरवैयक्तिक संचार सर्वोत्तम रूप में इसके विस्तृत अर्थों में इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है - ''अन्तरवैयक्तिक संचार उन सभी अन्तःक्रियाओं को स्वयं में सम्मिलित करता है जिनमें संचार प्रक्रिया में भाग लेने वाले प्रतिभागियों के मध्य एक सम्बन्ध स्थापित होता है।'' साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि किस प्रकार अन्तरवैयक्तिक संचार परिवर्तित होता है और पहले से भी अधिक प्रगाढ़ होता है। विकास क्रम की इस प्रक्रिया की व्याख्या विकासात्मक परिभाषा में स्पष्ट रूप से की गई है।

अतः ये तीनों परिभाषाएँ यह स्पष्ट करने में सक्षम हैं कि अन्तरवैयक्तिक संचार क्या है और किस प्रकार विकसित होता है।

अन्तर्वैयक्तिक संचार कौशल

अन्तर्वैयक्तिक संचार सामाजिक सम्बन्धों के संचालन का मूलभूत आधार है। सामाजिक सम्बन्ध व्यक्ति के व्यवहार एवं कौशल पर निर्भर करते हैं। निम्नलिखित कारक अन्तर्वैयक्तिक संचार कौशल को प्रभावित करते हैं-

(क) खुलापन-

स्व खुलेपन के कारण किसी भी व्यक्ति के चिंतन, अनुभव आदि के विषय में अन्य व्यक्ति जानते हैं। स्व-खुलापन या आत्म खुलापन सरल नहीं है, क्योंकि किसी भी घटना, व्यवहार आदि को गुप्त रखना मानव स्वभाव है। सामाजिक परम्परा, रीति-रिवाज आदि के कारण समाज में व्यक्ति अपनी भूल, सोच, इच्छा, अनुभव आदि को व्यक्त नहीं करता है। आत्म विश्वास अन्तर्वैयक्तिक संचार को प्रभावी बनाता है। प्रत्येक मनुष्य आत्म खुलेपन को बढ़ाने का प्रयास करता है। आत्म खुलापन अन्तर्वैयक्तिक संचार को प्रभावी बनाता है। जिस व्यक्ति में आत्म खुलापन जितना अधिक होगा उसका संचार भी उतना अधिक प्रभावी होगा।

(ख) आत्म-दृढ़प्रतिज्ञता-

दृढ़प्रतिज्ञता भी अन्तर्वैयक्तिक संचार को प्रभावी बनाती है। व्यक्ति

के यदि कथन, चिंतन एवं अनुभव आदि में समानता है तो अन्तर्वैयक्तिक संचार प्रक्रिया में प्रभावित रहती है। कुछ व्यक्ति किसी कार्य, कथन, अनुभव आदि के प्रति दृढ़निश्चयी नहीं होते इसी कारण वे किसी कार्य को सफलता पूर्वक सम्पन नहीं करव पाते। अन्य व्यक्ति उन्हें आलसी, लापरवाह, बेपेंदी का लोटा आदि संज्ञा से सम्बोधित करते हैं। लेकिन जिस व्यक्ति की छवि उक्त के विपरीत प्रकार की हैं। उसे समाज के अन्य लोग निर्भीक, वचनबद्ध आदि सम्बोधनों से विभूषित करते हैं।

दृढ़निश्चयी छवि वाले व्यक्तियों का अन्तर्वेयक्तिक संचार प्रभावी होता है। समाज का हर व्यक्ति दृढ़निश्चयी रूप को अपनाने का प्रयास करता है। इस प्रकार दृढ़ निश्चय के द्वारा अन्तर्वैयक्तिक संचार प्रभावी होता है।

(ग) भावाभिव्यक्ति-

अन्तर्वैयक्तिक संचार की विशेषता भावाभिव्यक्ति भी है। इसके द्वारा यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति ने क्या देखा, स्पर्श किया, सुना, सूंघा अथवा समझा। तथा उसके इर्द-गिर्द क्या घट रहा है। इस प्रकार अन्वर्वैक्तिक संचार की उत्कृष्टता भावाभिव्यक्ति द्वारा भी होती है।

(घ) विश्लेषणात्मक सम्बोधन-

विश्लेषणात्मक वक्तव्य या सम्बोधन वक्तव्य इस बात का प्रमाण होता है कि व्यक्ति स्थिति को कितना समझ रहा है। जैसे यदि कोई व्यक्ति किसी एक विषय पर चर्चा करते समय दूसरा कार्य करने लगे तो यह समझा जाता है कि वह व्यक्ति चर्चा में रुचि नहीं ले रहा है। यदि उसकी रुचि चर्चा में है तो वह उसके गुण-दोष आदि का विश्लेषण करता है और उस चर्चा में भाग लेता है तो चर्चा प्रभावी होती है।

(ड) अनुभवात्मक वक्तव्य-

यह भी व्याख्यात्मक अभिव्यक्ति की ही भाँति है। व्यक्ति अपनी संवेदनाओं के अनुरूप अपने परिवेश के संदर्भ में क्रिया-प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति किसी वस्तु या संदर्भ पर अपनी दृष्टि के अनुसार विचार व्यक्त करता है। इस विचाराभिव्यक्ति में वह कुछ तथ्यों को छुपा कर बात कर सकता है अथवा चुप रह सकता है। जैसे यदि किसी व्यक्ति का

अनुभव एवं संवेदना छिपी रहती है तो कुछ समय बाद वह अनुभवात्मक वक्तव्य या क्रिया प्रतिक्रिया अवश्य व्यक्त करता है परन्तु वह अपनी गहरी संवेदनाओं को छिपा लेता है। प्रायः इस प्रकार की स्थिति आनन्द अथवा अन्य माहौल या स्थिति में होती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपनी गहरी भावनाओं पर कड़ा नियंत्रण रखता है जैसे- अप्रिय सत्य को न कहना आदि।

(च) दृढ़ वक्तत्व-

दृढ़ वक्तत्व के द्वारा अन्य व्यक्तियों को उद्देश्य एवं कार्य योजना का पता चलता है। जब कोई व्यक्ति कार्य के सम्बन्ध में स्पष्ट वक्तत्य देता है तो उससे उस व्यक्ति की योजना आदि का पता चल जाता है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति स्पष्ट वक्तव्य न देकर किसी संदर्भ या तथ्य की भिन्न या अस्पष्ट व्याख्या करता है तो इससे उसकी भ्रामक दृष्टि या अल्पज्ञता आदि का पता चलता है। इस प्रकार दृढ़ता युक्त वक्तव्य में कार्य के प्रति लगाव झलकता है परन्तु इसके विपरीत की स्थिति में कार्य के प्रति उदासीनता ही झलकती है। दृढ़ वक्तव्य ग्रहीता को काफी प्रभावी बनाता है।

(छ) कार्य वक्तव्य-

इस प्रकार के वक्तव्य से किसी व्यक्ति की कार्य योजना अथवा भावी योजना का भी ज्ञान होता है। इस प्रकार के वक्तव्यों द्वारा दूसरों के अपने द्वारा कहीं पहुँचने के समय या उपस्थिति में व्यवधान आदि की सूचना दी जाती है। सम्प्रेषक के कार्य वक्तव्य से श्रोता सम्प्रेषक की स्थिति आदि के विषय में सहभागी बनकर उसके लक्ष्य आदि से परिचित होता है।

(ज) संदर्भ एवं समय-

संदर्भ का अभिप्राय समकालीन या अन्य स्थिति के विषय में व्यक्त किया गया अर्थ एवं वक्तव्य है। संदर्भ बदलने पर अर्थ भी बदल जाता है। जैसे किसी विवाह समारोह, जन्मदिन पर व्यक्ति हर्ष एवं प्रसन्नता की ही बात करता है न कि इसके विपरीत। इस प्रकार अन्तर्वैक्तिक संचार में संदर्भ का ध्यान रखा जाता है। व्यक्ति को समय का भी अन्तर्वैक्तिक संचार में ध्यान रखना पड़ता है। जिस समय जो गतिविधि चल रही हो, उस समय उसी प्रकार का सन्देश प्रभावी होता है।

(झ) स्पष्टता

स्पष्टता सम्प्रेषण की प्रभावी कला है। स्पष्टता की अपेक्षा छिपाव तथा रहस्यवादी वक्तव्य उचित नहीं माने जाते हैं। यह अभ्यन्तर से जुड़ी प्रक्रिया है। स्पष्टता की स्थिति में सकारात्मक संदेश तथा सदेच्छा भी झलकती है। इससे अन्तर्वैयक्तिक संचार में भ्रम का निराकरण तथा सकारात्मक स्थिति का निर्माण होता है। अन्तर्वैयक्तिक संचार में यदि सम्प्रेषक संदेश को स्पष्ट रूप से सम्प्रेषित नहीं कर पाता तो संचार प्रभावी नहीं होता।

(ञ) विश्वसनीयता

जब श्रोता या सम्प्रेषक विश्वसनीय होता है तो उसके द्वारा किया गया संचार प्रभावी होता है। एक विश्वसनीय स्रोत को भरोसे का तथा विशेषण दोनों ही रूपों में स्वीकार किया जाता है। जैसे यदि कोई डाक्टर किसी विशेष दवा की अनुशंसा रोगी के लिए करता है तो व्यक्ति उसे स्वीकार कर लेता है परन्तु यदि डाक्टर की विश्वसनीयता नहीं होती तो लोग उसके पास जाना भी पसंद नहीं करते।

(ट) खुले ध्यान से सुनना

ध्यान से सन्देश को सुनना भी अन्तर्वैयक्तिक संचार को प्रभावी बनाता है। सुनने एवं ध्यान पूर्वक सुनने में परस्पर अन्तर है। किसी शब्द, शोर या आवाज को सुनना सरल है परन्तु कोई संदेश तभी हृदयंगम होता है जब व्यक्ति ध्यानपूर्वक सुने, जैसे- यदि बातचीत के समय रेडियो समाचार प्रसारित हो रहा है तो बातचीत में लगे व्यक्ति रेडियो प्रसारण की आवाज तो सुनेंगे परन्तु ध्यान उस ओर न देने के कारण रेडियो समाचार संदर्भ से अवगत नहीं होंगे। इस प्रकार स्पष्ट कि ध्यानपूर्वक सुनने की स्थिति में ही अर्थ एवं अभिप्राय का बोध होता है। खुली ध्यानात्मक स्थिति में श्रोता सूचना पाने के साथ-साथ स्पष्ट क्रिया-प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता है।

(ठ) प्रतिपुष्टि

किसी संदेश पर श्रोता द्वारा प्रतिक्रिया व्यक्त करना अथवा उत्तर देना संचार प्रक्रिया में प्रतिपुष्टि कहलाता है। प्रतिपुष्टि के द्वारा श्रोता अपनी समझ, धारणा आदि के अनुरूप संदेश को समझ कर अपना विचार व्यक्त

करता है अथवा प्रश्न करता है। यह भी अन्तर्वैयक्तिक संचार का आवश्यक तत्व है।

(ड) अशाब्दिक व्यवहार

अन्तर्वैक्तिक संचार में कूट या संकेत व्यवहार अथवा अशाब्दिक व्यवहार भी महत्वपूर्ण है। हंसी, लिपटना, तालीबजाना, दृष्टि संकेत, स्पर्श, इत्यादि अशाब्दिक प्रक्रियाओं द्वारा भी अन्तर्वैक्तिक संचार प्रक्रिया सम्पन्न होती है। इस प्रकार अन्तर्वैयक्तिक संचार में अशाब्दिक व्यवहार भी उपयोगी तथा महत्वपूर्ण है।

(ढ) परस्पर आकर्षण

दो व्यक्तियों के मध्य सकारात्मक व्यवहार, पसंद आदि परस्पर आकर्षण की अभिव्यक्ति है। यह प्रेम प्रदर्शन या प्रेमपूर्ण भावना भी है। अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण प्रक्रिया में अनेक कारक होते हैं। समान हित एवं अभिरुचि की भी स्थिति में परस्पर आकर्षण बढ़ता है। इस प्रकार परस्पर आकर्षण भी अन्तर्वैयक्तिक संचार को प्रभावी बनाता है। अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण के द्वारा व्यक्ति की पसन्दगी एवं नापसंदगी का भी आभास होता है। अतएव हम कह सकते हैं कि अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण किसी दूसरे व्यक्ति का स्वीकारात्मक या अस्वीकारात्मक ढंग से मूल्यांकन करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अन्तर्वैयक्तिक संचार की प्रक्रिया सम्बन्धों पर विकसित एवं सम्पादित होती है। इसमें सामाजिक क्रिया-प्रतिक्रिया भी सम्मिलित होती है। इस प्रकार की क्रिया-प्रतिक्रिया में एक-दूसरे का मूल्यांकन भी करता है।

अन्तरवैयक्तिक सम्बन्ध

अन्तरवैयक्तिक सम्बन्धों की प्रकृति को इसकी दो विशेषताओं के आधार पर समझा जा सकता है- प्रथम, उन स्तरों के विश्लेषण के द्वारा जिनसे होकर अन्तरवैयक्तिक संचार की प्रक्रिया आरम्भिक अन्तःक्रिया से सम्बन्ध विच्छेद तक पहुँचती है तथा द्वितीय उन माध्यमों के अध्ययन के द्वारा जो यह व्याख्या करते हैं कि सम्बन्धों के फैलाव (चौड़ाई) तथा उनकी प्रगाढ़ता (गहराई) में परिवर्तन होता है।

सम्बन्ध विभिन्न स्तरों से गुजरकर स्थापित होते हैं?

अधिकांश सम्बन्ध लगभग सभी स्तरों से होकर ही स्थापित होते हैं। हम तुरन्त किसी से मिलते ही उसके परिचित नहीं बन जाते, बल्कि विभिन्न शृंखलाओं अथवा स्तरों से होकर ही हम धीरे-धीरे गहरी मित्रता की ओर बढ़ते हैं।

अन्य सम्बन्धों के विषय में भी यह सत्य है कि सम्बन्ध स्तर प्रक्रिया से होकर ही प्रगाढ़ होते हैं।

'पहली नजर में होने वाला प्यार' सम्बन्धों के स्तर-प्रतिरूप में व्यवधान उत्पन्न करता है, क्योंकि यह एक अपवाद है अतः इस पर विवाद करने से बेहतर है यह कहना कि अधिकांशतः और अधिकाधिक लोगों के सम्बन्ध, सम्बन्धों के इस 'स्तर-प्रतिरूप' से होकर गुजरता है।

अन्तरवैयक्तिक सम्बन्ध के स्तर-

अन्तरवैयक्तिक सम्बन्ध के पाँच प्रमुख स्तर हैं जो निम्नलिखित हैं-

1. सम्पर्क
2. सहभागिता,
3. प्रगाढ़ता (अंतरंगता)
4. सम्बन्ध-ह्रास
5. सम्बन्ध-विच्छेद

सम्बन्धों के इस पाँच स्तरीय प्रतिरूप को चित्र के रूप में इस प्रकार दर्शाया गया है। यद्यपि प्रत्येक निश्चित सम्बन्ध हेतु इस आधारभूत प्रतिरूप (मॉडल) की पुनरावृत्ति विभिन्न रूपों में करके इसे प्रवर्धित भी किया जा सकता है। परन्तु सम्बन्ध-विकास की प्रक्रिया के सामान्य वर्णन हेतु यह स्पष्ट रूप से एक उचित मानक है। यह स्तर सम्बन्धों की उसी रूप में व्याख्या करते हैं। जिस प्रकार वे हैं न कि उन्हें किस रूप में होना चाहिए। इसे हम महाभारत में वर्णित एक दृष्टान्त से इस प्रकार समझ सकते हैं-

एक बार पाण्डव वन में कुन्ती सहित सो रहे थे। वहाँ से थोड़ी ही दूरी पर हिडिम्ब नामक राक्षस रहता था। वह मनुष्यों का मांस खाता था। उसने अकस्मात पाण्डवों को देख लिया। तत्पश्चात उसने अपने बहन से कहा-

गच्छ जानी हि के त्वेते शेरते वनमाश्रिताः।

मानुषो बलवान गन्धो घ्राणं तपर्यतीव मे।।

हत्वैतान मानुषान् सर्वानानयस्व ममान्तिकम्।

अस्मद्विषयसुप्तेभ्यो नैतेभ्यो भयमास्तिते।।[1]

(अर्थात बहिन! जाओ, पता तो लगाओ, ये कौन आकर इस वन में सो रहे हैं? मनुष्य की तीव्र गंध आज मेरी नासिका को मानो तृप्त किये देती है। तुम इन सब मनुष्यों को मारकर मेरे पास ले आओ। ये हमारी हद में सो रहे हैं। इनसे तुम्हें तनिक भी खटका नहीं है।) हिडिम्बा वहाँ जाकर भीमसेन को जागते हुए देखती है और उन्हें देखकर मोहित हो जाती है और उन्हें अपना पति बनाने को विचार करती है और सोचती है पतिप्रेम ही प्रबल होता है भाई का सौहार्द उसके सामने नहीं होता। हिडिम्बा इच्छानुसार रूप धारण करने वाली थी। वह मानवी स्त्री के समान सुन्दर रूप धारण कर भीमसेन के पास गई। दिव्य आभूषणों से युक्त उसने भीमसेन से पूछा- "पुरुषरत्न आप कौन हैं और कहाँ से आये हैं। देवताओं के समान ये सुन्दर पुरुष कौन है।" हिडिम्बा का इस प्रकार पूछना प्रगाढ़ता के पूर्व की अवस्था है। उसने आगे कहा-

नेदं जानाति गहनं वनं राक्षसेवितम्।

वसति ध्यत्र पापात्मा हिडिम्बो नाम राक्षसः।।

तेनाहं प्रेषिता भ्राता दुष्टमादेन राक्षसा।

विमक्षयिषता मासं युष्माकमपरोपम।।[2]

(अर्थात इन्हें यह पता नहीं है कि ये गहन वन राक्षसों का निवास स्थान है। यहाँ हिडिम्ब नामक पापात्मा राक्षस रहता है। वह मेरा भाई है। उसने मुझे यहाँ भेजा है। वह आप लोगों का मांस खाना चाहता है।) इस प्रकार हिडिम्बा अपना परिचय भीमसेन से देती है।

(1) सम्पर्क

सर्वप्रथम हम किसी के सम्पर्क में आते हैं। इस अवस्था में हम अपनी इन्द्रियों के माध्यम से उस व्यक्ति को देखकर, सुनकर या उसकी गंध से उसके विषय में एक विचार बनाते हैं। यह वह प्रारम्भिक अवस्था है। कुछ शोधकर्ताओं के अनुसार इस अवस्था के दौरान पहले चार मिनट की आरभिक अन्तःक्रिया में ही हम यह निर्णय कर लेते हैं कि हम इस सम्बन्ध में आगे बढ़ना

चाहते हैं या नहीं। इस अवस्था में व्यक्ति का बाहरी व्यक्तित्व अति महत्वपूर्ण होता है, उसकी शारीरिक भाव-भंगिमायें महत्वपूर्ण होती हैं, जो कि दूसरे व्यक्ति के द्वारा निरीक्षण हेतु समक्ष रूप में प्रस्तुत रहती हैं। साथ ही मित्रवत् व्यवहार, खुलापन और गत्यात्मकता जैसी व्यक्तित्व-विशेषतायें भी इसी अवस्था में प्रकट होती हैं। यदि हम उस व्यक्ति को इन आधारों पर पसन्द करते हैं तो हम उस सम्बन्ध में दूसरे स्तर की ओर आगे बढ़ जाते हैं।

2. सहभागिता

यह अवस्था परिचित होने की अवस्था है जब हम दूसरे को जानने हेतु प्रतिबद्ध होते हैं और अपने बारे में भी दूसरे को जानने का अवसर देते हैं। यदि हम प्रेम सम्बन्धों की बात करें तो हम इस अवस्था में डेट पर जा सकते हैं और यदि वह मित्रता है तो हम परस्पर अपनी रूचियों को बाँटते हैं, सिनेमा देखने जा सकते हैं। अथवा कोई खेल देने भी साथ-साथ जा सकते हैं। इस अवस्था में हिडिम्बा अपनी रुचियों को बाँटते हुए भीमसेन से बोली-

साहं त्वामभिसम्प्रेक्ष्य देवगर्भसमप्रभम्।
नान्यं भर्तारमिच्छामि सत्यभेतद् ब्रवीमिते।।
एतद् विज्ञाय धर्मज्ञ युक्तं भमि समाचार।
कामोपहतचित्तांगी भजमानां भजस्व माम्।।[3]

अर्थात धर्मज्ञ इस बात को समझकर आप मेरे प्रति उचित बर्ताव कीजिये। मेरे तन-मन को कामदेव ने मथ डाला है। मैं आपकी सेविका हूँ। आप मुझे स्वीकार कीजिये। मैं इस नरभक्षी (राक्षस से आपकी रक्षा करूंगी। हम दोनों दुर्गम कन्दराओं में निवास करेंगे। अनघ! आप मेरे पति हो जाइये।)

यदि आप मुझे त्याग देंगे तो मैं कदापि जीवित नहीं रहूँगी। मैं आकाश में विचरने वाली हूँ। जहाँ इच्छा हो, विचरण कर सकती हूँ। तब भीमसेन ने कहा- "राक्षसी! ये मेरे भ्राता हैं। इन्होंने अभी तक विवाह नहीं किया है। ऐसी दशा में मैं तुमसे विवाह कर परिवेत्ता नहीं बनना चाहता। मैं अपनी माता और भाइयों को सोते हुए छोड़कर जाना भी नहीं चाहता।" हिडिम्बा ने कहा- "आपको जो प्रिय लगे मैं वही करूंगी। आप इन सभी को जगह दीजिये। मैं इच्छानुसार उस मानवभक्षी राक्षस से सभी को छुड़वा लूंगी।

3. प्रगाढ़ता/अंतरंगता

तीसरे स्तर पर प्रगाढ़ता बढ़ती है और हम एक-दूसरे को जानने के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं और एक प्रारम्भिक सम्बन्ध भी स्थापित करते हैं। जहाँ एक व्यक्ति हमारा करीबी मित्र, प्रेमी अथवा एक साथी हो सकता है। यह प्रतिबद्धता कुछ विशेष रूप धारण कर सकती है। उदाहरण विवाह, उस व्यक्ति द्वारा दूसरे की सहायता किया जाना अथवा सदैव दोनों का साथ रहना एवं अपने रहस्यों को उसके समक्ष उजागर करना। इस प्रकार की प्रतिबद्धता नैसर्गिक रूप से विभिन्न सम्बन्धों एवं व्यक्ति विशेष के साथ परिवर्तित होती है। परन्तु इस स्तर की एक मुख्य विशेषता यह है कि ऐसी पगाढ़ता अथवा प्रतिबद्धता किसी एक विशेष अथवा कुछ चुने हुए व्यक्तियों के साथ ही होती है। हिडिम्बा और भीमसेन परिचय होने पर धीरे-धीरे सम्बन्धों में प्रगाढ़ता बनने लगी। हिडिम्बा भीमसेन को पति रूप में मन में स्वीकार कर चुकी थी। अब वह भीमसेन की तुलना में अपने भाई से सम्बन्ध विच्छेद करना चाहती थी। इतने में उसका भाई हिडिम्ब पाण्डवों के पास आ गया। उसे आता देख हिडिम्बा भयभीत हो गई। उसने भीमसेन से कहा- "वीर! मैं इच्छानुसार चल सकती हूँ। आप मेरे घटिप्रदेश या पीठ पर बैठ जाइये। मैं आपको आकाश मार्ग से ले चलूँगी। आप अपनी माता तथा भाइयों सबको जगह दीजिये। मैं सबको लेकर आकाश मार्ग से ले चलूँगी। तत्पश्चात भीमसेन ने कहा- "सुन्दरी! डरो मत। मेरे सामने यह राक्षस कुछ भी नहीं है। मैं तुम्हारे देखते-देखते इसे मार डालूंगा। हिडिम्ब वहाँ आकर अपनी बहन को फटकारता है। भीमसेन उससे युद्ध करते हैं और उसे मार डालते हैं।

4. सम्बन्ध ह्रास

प्रगाढ़ता के पश्चात अन्य दो स्तर विकास के दूसरे पहलू को दर्शाते हैं। जहाँ पर दोनों पक्षों के मध्य सम्बन्धों का ह्रास होने लगता है। सम्बन्धों के ह्रास के इस स्तर पर हम यह सोचना आरम्भ कर देते हैं कि हमारे द्वारा बनाया गया सम्बन्ध उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि हमने आरम्भ में सोचा था। धीरे-धीरे हम दूर होने लगते हैं। दोनों पक्ष अपना कम से कम खाली समय साथ बिताते हैं। यद्यपि साथ होने पर भी एक शांति की स्थिति बनी रहती है,

अपनी कम से कम बातें एक पक्ष दूसरे पक्ष को बताता है और अपने विचारों के आदान-प्रदान में भी सतर्कता बरतने लगता है। इस स्थिति में यह भी निश्चित नहीं होते कि हम अपने 'प्रिय' अथवा 'निकट' (करीबी) व्यक्ति को क्या कहें? ऐसी अवस्था में न तो वह पूर्णतया प्रेमी होता है ना ही भूतपूर्व प्रेमी, न तो वास्तव में एक निकटस्थ मित्र होता है और न ही पूर्व मित्र। यह प्रगाढ़ता और सम्बन्ध-विच्छेद के मध्य बड़ी ही अजीब स्थिति होती है। जब व्यक्ति न तो यहाँ होता है न वहाँ। यदि इस स्थिति को समाप्त नहीं किया जाता और यह निरन्तर बनी रहती है तो यह अगले स्तर पर सम्बन्ध विच्छेद में परिणित होने लगती है। इस चरण में भीमसेन और हिडिम्बा के बीच सम्बन्धों में ह्रास होने लगता है। हिडिम्बा भीमसेन से कहती है- "आपके दर्शन मात्र से मैं कामदेव के अधीन हो गई और अपने भाई के क्रूरतापूर्ण वचनों की अवहेलना करके आपका ही अनुसरण करने लगी। मैंने आपका पराक्रम अपनी आँखों से देखा है तथा मैं सेविका आपकी सेवा करना चाहती हूँ।" तदनंतर भीमसेन ने कहा- "हिडिम्बे राक्षस मोहिनी माया का आश्रय लेकर बहुत दिनों तक वैर का स्मरण रखते हैं। अतः तू भी अपने भाई के ही मार्ग पर चली जा।

5. पतन/सम्बन्ध विच्छेद

विच्छेद की स्थिति वह स्थिति होती है जब व्यक्ति के सम्बन्ध टूटने लगते हैं। यदि यह सम्बन्ध विवाह का है तो विच्छेद तलाक के रूप में दृष्टिगत होता है। यद्यपि वास्तविक सम्बन्ध विच्छेद दोनों पक्षों के व्यक्तिगत जीवन को एक-दूसरे से भिन्न तथा अलग स्थापित करना आरम्भ कर देता है। यह 'अलविदा' की स्थिति होती है। इस अवस्था में व्यक्ति पूर्व प्रेमी, पूर्व मित्र, पूर्व पति, पूर्व पत्नी आदि हो जाता है। कई बार इस स्थिति में व्यक्ति राहत महसूस करता है और यह सोचता है कि अन्ततः उसे मुक्ति मिली। दूसरी तरफ कभी-कभी अत्यधिक चिंता और चिड़चिड़ापन, पुनः दाहसंस्कार, घृणा, गुस्सा आदि दूसरे भौतिकवादी शब्दों में यह स्थिति सम्पत्ति के बँटवारे तथा तलाक के सम्बन्ध में बच्चों की जिम्मेदारी के बँटवारे को लेकर हो सकती है। लेकिन यह एक ऐसा समय भी होता है जब व्यक्ति को नये जीवन की तरफ देखना चाहिये। चाहे अकेले या फिर किसी और के साथ। यह सत्य है कि कुछ व्यक्ति

मानसिक रूप से उसी रिश्ते के साथ जीवन बिताते रहते हैं जो कि पहले ही टूट चुका होता है। ऐसे व्यक्ति निरन्तर उन पुरानी जगहों पर जाते हैं जहाँ वे मिले होते हैं, पुराने प्रेम-पत्र दिन में सपने देखने, एक-दूसरे के साथ बिताया गया अच्छा समय आदि स्मृतियों में खोये रहते हैं। सामान्यतः लोग ऐसे सम्बन्धों से स्वयं को बाहर निकाल पाने में असमर्थ पाते हैं जो कि उनके मस्तिष्क के अतिरिक्त अन्य सभी जगह भर चुका होता है। इस चरण में भीमसेन हिडिम्बा से सम्बन्ध विच्छेद करना चाहते हैं।

महाभारत में जो दृष्टान्त है वह सम्बन्धों की प्रगाढ़ता को विच्छेद से पूर्व ही पुनः स्थापित करने में सहायक होता है। आज भी बहुत से ऐसे उद्धरण समाज में मिलते हैं कि सम्बन्ध टूट जाता है और पुनः संवाद के माध्यम से निर्मित हो जाता है। भीमसेन ने हिडिम्बा से अपने भ्राता महाराज युधिष्ठिर एवं अपनी माता कुंती के आदेश पर धर्मतः हिडिम्बा से सम्पर्क कर उसके गर्भ से घटोत्कच नामक पुत्र पैदा किया।

सम्पूर्ण महाभारत में अंतरवैयक्तिक संचार का वर्णन अधिकांश तथ्यों पर मिलता है। जैसे यक्ष-युधिष्ठिर संवाद, भीमसेन-युधिष्ठिर संवाद, अर्जुन-भीमसेन संवाद, अर्जुन-युधिष्ठिर संवाद आदि। वस्तुतः महाभारत का कथानक एक प्रकार से अंतरवैयक्तिक संचार पर ही आधारित है। सभी कथानक का वर्णन करना संभव नहीं है। यहाँ हम अंतरवैयक्तिक संचार को समझने की दृष्टि से एक उद्धरण देना ही पर्याप्त समझते हैं क्योंकि इस पुस्तक में विभिन्न स्थानों पर संचार के विभिन्न स्वरूप, संचार के सिद्धांत, महर्षि नारद का कल्याणकारी संचार आदि में भी उपयुक्त दृष्टान्तों की चर्चा की गई है।

दृष्टान्त- देवयानी का कच से पाणिग्रहण के लिए अनुरोध, कच की अस्वीकृति तथा दोनों का एक-दूसरे को श्राप देना।

महर्षि शुक्राचार्य का शिष्य कच देवयानी के प्रेम में अभिभूत था। जब उसकी तपस्या का व्रत समाप्त हो गया और शुक्राचार्य ने उसे अपने आश्रम से जाने की आज्ञा दे दी तब वह देवलोक को प्रस्थित हुआ। उस समय देवयानी ने उससे इस प्रकार कहा- “महर्षि अंगिरा के पौत्र आप सदाचार,

उत्तम कुल, विद्या, तपस्या तथा इन्द्रिय संयम आदि से बड़ी शोभा पा रहे हैं। महायशस्वी महर्षि अंगिरा जिस प्रकार मेरे पिताजी के पूजनीय हैं उसी प्रकार आपके पिता वृहस्पति भी मेरे लिए आदरणीय और पूज्य हैं। इसलिये मैं जो कहती हूं उस पर आप विचार करें। आप जब व्रत और नियमों के पालन में लगे थे उन दिनों मैंने आपके साथ जो व्यवहार किया आप उसे भूलें नहीं। अब आप व्रत समाप्त करके अभीष्ट विद्या प्राप्त कर चुके हैं। मैं आपसे प्रेम करती हूँ अतः आप मुझे स्वीकार करते हुए वैदिक विधि से मेरा पाणिग्रहण कीजिये।"[4]

तदनंतर कच ने कहा- "निर्दोष अंगों वाली देवयानी! जैसे तुम्हारे पिता भगवान शुक्राचार्य मेरे लिए पूजनीय और माननीय हैं वैसे ही तुम मेरे लिए उससे भी बढ़कर पूजनीया हो। भद्रे! महात्मा भार्गव को तुम प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। गुरु पुत्री होने के कारण धर्म की दृष्टि से सदा मेरी पूजनीया हो। देवयानी! जैसे मेरे गुरुदेव तुम्हारे पिता शुक्राचार्य सदा मेरे माननीय हैं उसी प्रकार तुम हो। अतएव तुम्हें मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।"[5]

देवयानी ने कहा- "द्विजोत्तम! आप मेरे पिता के गुरुपुत्र के पुत्र हैं, मेरा पिता के नहीं। अतः मेरे लिये भी आप पूजनीय और माननीय हैं। कच! जब असुर आपको बार-बार मार डालते थे तब से लेकर आज तक आपके प्रति मेरा जो प्रेम रहा है उसे आज याद कीजिये। सौहार्द्र और अनुराग के अवसर पर मेरी उत्तम भक्ति का परिचय आपको मिल चुका है। आप धर्म के ज्ञाता हैं। मैं आपके प्रति धर्म रखने वाली निरपराध अबला हूँ। आपको मेरा त्याग करना उचित नहीं है।[6]

कच ने कहा- "उत्तम व्रत का आचरण करने वाली सुन्दरी! तुम मुझे ऐसे कार्य में लगा रही हो जिस कार्य में लगाना कदापि उचित नहीं है। शुभे! तुम मेरे ऊपर प्रसन्न होओ! तुम मेरे लिए गुरु से भी बढ़कर गुरुतर हो। विशाल नेत्र तथा चन्द्रमा के समान मुखवाली भामिनि! शुक्राचार्य के जिस उदर में तुम रह चुकी हो, उसी में मैं भी रहा हूँ। इसलिए भद्रे! धर्म की दृष्टि से तुम मेरी बहिन हो। अतः सुमध्यमे! मुझसे ऐसी बात न कहो। कल्याणी! मैं तुम्हारे यहाँ बड़े सुख से रहा हूँ। तुम्हारे प्रति मेरे मन में तनिक भी रोष नहीं है।"[7]

आपृच्छे त्वां गमिष्यामि शिवमाशंस मे पथि।

अविरोधेन धर्मस्य स्मर्तव्योऽस्मि कथान्तरे।

अप्रमत्तोत्थिता नित्यमाराधय गुरुं मम।

अब मैं जाऊँगा, इसलिये तुमसे पूछता हूँ- तुम्हारी आज्ञा चाहता हूँ, आशीर्वाद दो कि मार्ग में मेरा मंगल हो। धर्म की अनुकूलता रखते हुए बातचीत के प्रसंग में कभी मेरा भी स्मरण कर लेना और सदा सावधान एवं सजग रहकर मेरे गुरुदेव की सेवा में लगा रहना।[8]

यदि मां धर्मकामार्थे प्रत्याख्यास्यसि याचितः।

ततः कच न ते विद्या सिद्धिमेषा गमिष्यति।

देवयानी बोली- कच! मैंने धर्मानुकूल काम के लिये आपसे प्रार्थना की है। यदि आप मुझे ठुकरा देंगे, तो आपकी यह संजीवनी विद्या सिद्ध नहीं हो सकेगी।[9]

गुरुपुत्रीति कृत्वाहं प्रत्याचक्षे न दोषतः।

गुरुणा चाननुज्ञातः काममेवं शपस्व माम्।

कच ने कहा- देवयानी! गुरुपुत्री समझकर ही मैंने तुम्हारे अनुरोध को टाल दिया है; तुममें कोई दोष देखकर नहीं। गुरुजी ने भी इसके विषय में मुझे कोई आज्ञा नहीं दी है। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, मुझे शाप दे दो।[10]

आर्षं धर्मं ब्रुवाणोऽहं देवयानि यथा त्वया।

शप्तो नार्होऽस्मि शापस्य कमतोऽद्य न धर्मतः।

तस्माद् भवत्या यः कामो न तथा स भविष्यति।

ऋषिपुत्रो न ते कश्चिज्जातु पाणिं ग्रहीष्यति।

बहिन! मैं आर्ष धर्म की बात बता रहा था। इस दशा में तुम्हारे द्वारा शाप पाने के योग्य नहीं था। तुमने मुझे धर्म के अनुसार नहीं, काम के वशीभूत होकर आज शाप दिया है, इसलिये तुम्हारे मन में जो कामना है, वह पूरी नहीं होगी। कोई भी ऋषिपुत्र (ब्राह्मणकुमार) कभी तुम्हारा पणिग्रहण नहीं करेगा।[11]

फलिष्यति न ते विद्या यत् त्वं मामात्थ तत् तथा।

अध्यापयिष्यामि तु यं यस्य विद्या फलिष्यति।

तुमने जो मुझे यह कहा कि तुम्हारी विद्या सफल नहीं होगी, सो ठीक

है; किंतु मैं जिसे यह विद्या पढ़ा दूँगा, उसकी विद्या तो सफल होगी ही।[12]

उपरोक्त कथन कहकर कच अत्यन्त उतावलेपन में इन्द्रलोक को चले गये। इस प्रकार महाभारत में अनेक उद्धरण अंतरवैयक्तिक संचार के रूप में विद्यमान हैं। इस प्रकार के संचार में सामान्यतया दो व्यक्ति आपस में वार्तालाप करते हैं।

संदर्भ

1. भाग- 1, पृ. 524, आदिपर्व अ 126, श्लोक 11-12
2. वही, 25-26
3. वही, 27-28
4. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 77, श्लोक संख्या 2 से 5
5. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 77, श्लोक संख्या 6 से 8
6. वही, श्लोक संख्या 9 से 11
7. वही, श्लोक संख्या 12 से 14
8. वही, श्लोक संख्या 15
9. वही, श्लोक संख्या 16
10. वही, श्लोक संख्या 17
11. वही, श्लोक संख्या 18 से 19
12. वही, श्लोक संख्या 20

अध्याय 5

पारलौकिक अंतरवैयक्तिक संचार

जब कोई व्यक्ति किसी अलौकिक शक्ति से संवाद करता है तो इसे पारलौकिक अंतरवैयक्तिक संचार कहते हैं। वह अलौकिक शक्ति किसी अप्रकट रूप से संवाद करती है तो कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि वह अलौकिक शक्ति किसी देव रूप अथवा अन्य रूप धारण कर मानव से संवाद करती है। कुछ ऐसे भी उदाहरण महाभारत में मिलते हैं जिसमें एक ही शक्ति विभिन्न स्वरूपों में अलग-अलग समय पर प्रकट हो जाती है। जैसा कि दृष्टांत 2 में यक्ष और युधिष्ठिर संवाद से स्पष्ट है। महाभारत में ऐसा वर्णन अनेक स्थानों पर मिलता है। इसे हम कुछ दृष्टांत से सरलतापूर्वक समझ सकते हैं-

दृष्टांत- सावित्री और यम का संवाद

महाभारत के वन पर्व में सावित्री और यम के संवाद का बड़ा ही मनोरम विवरण प्रस्तुत किया गया है। सावित्री अपने पति सत्यवान के साथ वन में लकड़ी काटने हेतु गई। सत्यवान लकड़ी काट रहा था। अचानक उसके सिर में दर्द होने लगी। उसने सती सावित्री से कहा- "सावित्री आज लकड़ी काटने से मेरे सिर में दर्द हो रहा है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि कोई शूलों से मेरे सिर को छेद रहा है। कल्याणि! अब मैं सोना चाहता हूँ। मुझमें खड़े रहने की शक्ति नहीं रह गई है। सावित्री सत्यवान का सिर अपनी गोद में लेकर पृथ्वी पर बैठ गई। फिर उसे महर्षि नारद की बात याद आई। वह उस मुहूर्त और समय, दिन का योग मिलाने लगी। दो ही घड़ी में उसने देखा। एक दिव्य पुरुष प्रकट हुये हैं जिनके शरीर पर लाल रंग का वस्त्र, सिर पर मुकुट है। तेजस्वी होने के कारण वे साक्षात् सूर्य के समान दिखाई दे रहे हैं। उनके नेत्र लाल हैं। हाथ में पाश है। उनका स्वरूप डरावना है। वे सत्यवान की तरफ बार-बार देख रहे हैं और उसी के पास खड़े हैं।

तदनंतर सावित्री ने सत्यवान का सिर धीरे से जमीन पर रख दिया

और सहसा खड़ी होकर हाथ जोड़कर आर्तवाणी में बोली-

देवतं त्वामिजानामि वपुरेतद्धयमानुषम्।
कामया ब्रूहि देवेश व्रस्त्वं किं च चिकीर्षासि।।[1]

अर्थात मैं समझती हूँ आप कोई देवता हैं, क्योंकि आप का यह शरीर मनुष्यों जैसा नहीं है। देवेश्वर! यदि आपकी इच्छा हो तो बताइये आप कौन हैं और क्या करना चाहते हैं?

यमराज बोले-

पतिप्रतासि सावित्री तथैव च तोऽन्विता।
अतस्त्वामक्षिभाषामि विद्धि मां त्वं शुभेचयम्।।[2]

अर्थात सावित्री! तू पतिव्रता और तपस्विनी है, इसलिये मैं तुझसे वार्तालाप कर सकता हूँ। तू मुझे यमराज जान।

तेरे पति इस राजकुमार सत्यवान की आयु समाप्त हो गई है। अतः मैं इसे बांधकर ले जाऊँगा। बस मैं यही करना चाहता हूँ।

सावित्री ने कहा- "भगवन्! मैंने सुना है कि मनुष्यों को ले जाने के लिये आपके दूत आते हैं। प्रभो! आप स्वयं यहाँ कैसे चले आये?"

यमराज ने कहा- "सावित्री यह सत्यवान, धर्मात्मा, रूपवान एवं गुणों का सागर है। यह मेरे दूतों द्वारा ले जाने योग्य नहीं है। इसलिये मैं स्वयं आया हूँ।" तदनंतर यमराज ने सत्यवान के शरीर से उसके अंगुष्ठमात्र परिमाण वाले विवश हुये जीव को बलपूर्वक खींचकर निकाला और उसे लेकर दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। सावित्री भी दुख से आतुर हो यमराज के पीछे-पीछे चल दी।

तदनंतर यमराज बोले- "सावित्री! अब तू लौट जा, सत्यवान का अन्त्येष्टि संस्कार कर। अब तू पति के ऋण से उऋण हो गई है। पति के पीछे तुझे जहाँ तक जाना चाहिये था, वहाँ तक आ चुकी हो।"

सावित्री ने कहा- "जहाँ तक मेरे पति ले जाये जाते हैं अथवा वे स्वयं जा रहे हैं वहीं मुझे भी जाना चाहिए; यही सनातन धर्म है। तत्वदर्शी विद्वान कहते हैं सात पग साथ चलने मात्र से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं, उसी मित्रता को सामने रखकर मैं आपसे कुछ निवेदन करूंगी उसे सुनिये- "जिन्होंने

अपने मन और इन्द्रियों को वश में नहीं किया वे वन में रहकर धर्मपालन, गुरुकुलवास तथा कष्ट सहन एवं तपस्या नहीं कर सकते हैं। जितेन्द्रिय पुरुष ही यह सब कुछ करने में समर्थ हैं। महात्मा लोग विवेक-विचार से ही धर्म प्राप्ति बताते हैं। अतः सभी धर्मपुरुष धर्म को ही श्रेष्ठ मानते हैं।"

यमराज बोले- "अनिन्दिते! तू लौट जा। स्वर, अक्षर, व्यंजन एवं युक्तियों से युक्त तेरी वाणी से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तू यहाँ मुझसे कोई वर माँग ले। सत्यवान के जीवन के सिवा मैं तुझे सब कुछ दे सकता हूँ।"

सावित्री बोली- "भगवन्! मेरे श्वसुर राज्य से भ्रष्ट होकर वन में रहते हैं। उनकी आँखें भी नष्ट हो गई हैं। मैं चाहती हूँ आपकी कृपा से उनकी आँखें मिल जायें और वे बलवान तथा अग्नि एवं सूर्य के समान तेजस्वी हो जायें।"

यमराज ने कहा- "अनिन्दिते! मैं तुझे वर देता हूँ। तूने जैसा कहा है, सब कुछ वैसा ही होगा। तू अब लौट जा। तू थक गई है तुझे अब और परिश्रम नहीं करना है।

सावित्री बोली- "स्वामी के समीप रहते हुये मुझे श्रम हो ही कैसे सकता है? जहाँ मेरे पतिदेव रहेंगे वहाँ मेरी भी गति निश्चित है। आप जहाँ मेरे प्राणनाथ को ले जायेंगे, वहाँ मेरा जाना भी अवश्यम्भावी है। देवेश्वर आप फिर मेरी बात सुनिये। सत्पुरुषों का एक बार समागम अत्यन्त अभीष्ट हो जाता है। उनके पास मित्रता हो जाना उससे भी अभीष्ट बताया गया है। साधु पुरुष का संग कभी निष्फल नहीं होता। अतः सदा सत्पुरुषों के समीप रहना चाहिये।"

यमराज बोले- भामिनी! तूने जो सबके हित की बात की है, वह मेरे मन के अनुकूल है तथा विद्वानों की भी बुद्धि को बढ़ाने वाली है अतः इस सत्यवान के जीवन को छोड़कर तू कोई और वर माँग ले।"

सावित्री बोली- "मेरे बुद्धिमान श्वसुर का राज्य जो पहले उनसे छीन लिया गया है, उसे वे महाराज पुनः प्राप्त कर ले तथा वे मेरे पूज्य गुरु महाराज द्युमत्सेन कभी अपना धर्म न छोड़े। यही दूसरा वर मैं आपसे माँगती हूँ।"

यमराज बोले- "राजा द्युमत्स्येन शीघ्र और अनायास ही अपना राज्य प्राप्त कर लेंगे और वे कभी अपने धर्म का भी परित्याग नहीं करेंगे। राजकुमारी मेरे द्वारा अब तेरी इच्छा पूरी हो गई। तू लौट जा, जिससे तुझे परिश्रम न हो।"

सावित्री बोली- "देव! आप समस्त प्रजा को नियम से संयम में रखते हैं और उसका नियमन करके आप अपनी इच्छा के अनुसार उसे विभिन्न लोकों में ले जाते हैं। इसीलिये आपका 'यम' नाम सर्वत्र विख्यात है। मैं जो बात कहती हूँ उसे सुनिये-

मन वाणी और क्रिया द्वारा किसी भी प्राणी से द्रोह न करना, सभी पर दया भाव बनाये रखना और दान देना, यह साधु पुरुषों का सनातन धर्म है। प्रायः इस संसार के लोग अल्पायु होते हैं। मनुष्यों की शक्ति हीनता तो प्रसिद्ध ही है। आप जैसे संत महात्मा तो अपनी शरण में आये हुये शत्रुओं पर भी दया करते हैं। फिर हमारी जैसी दीन-हीन महिला पर क्यों दया नहीं करेंगे?" यम ने कहा- "देवी! जैसे प्यासे मनुष्य को प्राप्त हुआ जल आनंददायक होता है वैसे ही तेरी कही हुई बातें मुझे आनंदित कर रही हैं। अतएव तू सत्यवान के जीवन के अतिरिक्त कोई अन्य मनचाहा वर माँग ले।" सावित्री ने कहा- "भगवन्! मेरा पिता महाराज अश्वपति पुत्र हीन हैं। उन्हें सौ ऐसे औरस पुत्र प्राप्त हों जो उनके कुल की सन्तान परम्परा को चलाने वाले हों। मैं आपसे यह तीसरा वर माँगती हूँ।"

यमराज ने कहा- "देवी! ऐसा ही होगा। तेरे पिता को कुल की परम्परा चलाने वाले सौ पुत्र होंगे। राजकुमारी तेरी यह कामना भी पूरी हुई अब तू लौट जा।"

सावित्री ने कहा- "भगवन्! मैं अपने स्वामी के समीप हूँ। इसीलिये यह स्थान मेरे लिये दूर नहीं है। मेरा मन तो और भी दूर तक दौड़ लगाता है। आप चलते-चलते मेरी कही हुई बात पुनः सुनें। देवेश्वर आप सूर्य के प्रतापी पुत्र हैं, इसीलिये विद्वान आपको 'वैवस्वत' कहते हैं। आप समस्त प्रजा के साथ समतामूलक आचरण करते हैं, इसीलिये आप धर्मराज कहलाते हैं। मनुष्यों को अपने आप पर इतना विश्वास नहीं होता जितना संतों पर होता है। इसीलिये सब लोग संतों से प्रेम करना चाहते हैं। सौहार्द्र ही समस्त प्राणियों को एक-दूसरे के प्रति विश्वास पैदा करता है। संतों से सौहार्द्र होने के कारण ही लोग उन पर अधिक विश्वास करते हैं। यम ने कहा- "कल्याणी! तूने जैसी बात कही, मैंने दूसरे के मुख से नहीं सुनी है। मैं तुम्हारी बातों से संतुष्ट हूँ।

अतएव तुम सत्यवान के जीवन के सिवा कोई चौथा वर भी माँग ले।"

सावित्री ने कहा- "भगवन्! मेरे और सत्यवान दोनों के संयोग से कुल की वृद्धि करने वाले बल और पराक्रम से सौ औरस पुत्र हों। यह मैं आपसे चौथा वर माँगती हूँ।"

यम बोले- "अबले! तुझे बल और पराक्रम से युक्त सौ औरस पुत्र होंगे जो तेरी प्रसन्नता को बढ़ाने वाले होंगे। राजकुमारी तू अब लौट जा। ताकि तुझे थकावट न हो। तू रास्ते से बहुत दूर चली आई है।"

सावित्री ने कहा- "सत्पुरुषों की वृत्ति निरंतर धर्म में ही लगी रहती है। श्रेष्ठ पुरुष कभी दुःखी या व्यथित नहीं होते। सत्पुरुषों का संतों से समागम कभी निष्फल नहीं होता। श्रेष्ठ पुरुष संतों से कभी भय नहीं मानते। श्रेष्ठ पुरुष सत्य के बल से सूर्य का संचालन करते हैं। संत-महात्मा अपने तपोबल से इस पृथ्वी को धारण करते हैं। राजन् सत्पुरुष ही भूत, भविष्य और वर्तमान के आश्रय हैं। उनके बीच रहकर कभी दुःख नहीं उठाते। यह सनातन सदाचार सदैव श्रेष्ठ पुरुषों से सेवित है। श्रेष्ठ पुरुषों का सत्य प्रसाद कभी व्यर्थ नहीं जाता।"

यम ने कहा- "पतिव्रते! जैसे-जैसे तू गंभीर अर्थ से युक्त और सुंदर पदों से विभूषित मनानुकूल वाणी मुझे सुनाती जा रही हो, वैसे ही वैसे तुम्हारे प्रति मेरी भक्ति बढ़ती जा रही है। अतः अब तू मुझसे कोई अनुपम वर माँग ले।"

सावित्री ने कहा- "मानद! आपने जो मुझे पुत्र प्राप्ति का वर दिया है वह पुण्यमय दाम्पत्य संयोग के बिना सफल नहीं हो सकता। अन्य वरों की जैसी स्थिति है वैसी इस अन्तिम वर की नहीं है। इसीलिये मैं पुनः यह वर माँगती हूँ कि सत्यवान जीवित हो जायें क्योंकि इनके बिना मैं स्वर्गलोक में भी जाने की इच्छा नहीं रखती। देव! आपने ही मुझे सौ औरस पुत्र होने का वर दिया है और आप ही मेरे पति को अन्यत्र लिये जा रहे हैं। अतः मैं आपसे यह वर माँगती हूँ कि मेरे पति सत्यवान जीवित हो जायें, ताकि आपका वचन सत्य हो।"

तदनंतर यमराज ने कहा- "भद्रे! यह ले, मैंने तेरे पति को छोड़ दिया।

कुलनंदिनी तूने अपने धर्मायुक्त वचनों द्वारा मुझे पूर्ण संतुष्ट कर दिया है। साध्वी यह सत्यवान निरोग, सफल मनोरथ तथा तेरे द्वारा ले जाने योग्य हो गया। यह तेरे साथ रहकर 400 वर्षों की आयु पूर्ण करेगा। यह यज्ञों द्वारा भगवान का भजन करके जगत विख्यात बनेगा। तुम्हारे गर्भ से सौ पुत्र उत्पन्न करेगा। तेरे ही नाम से उनकी सदा ख्याति होगी। तेरे पिता के भी तेरी माता के गर्भ से सौ पुत्र होंगे। वे माता मालवी से उत्पन्न होने के कारण मालव नाम से होंगे। तेरे भाई मालव क्षत्रिय पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न तथा देवताओं के समान तेजस्वी होंगे।"

महाभारत में एक ऐसा दृष्टान्त भी है जो मानव एवं मानवेतर अर्थात अपने पूर्वज (पिता-पुत्र) के बीच संवाद का है। इसमें पिता कुछ समय तक अदृश्य रूप में विभिन्न मानवेतर प्राणियों के रूप में पुत्र से संवाद करता है तो कुछ समय पश्चात अपने वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुये दृश्यमान होकर पुत्र से संवाद करता है। दृष्टांत का विवरण इस प्रकार है-

दृष्टान्त- युधिष्ठिर का अपने पिता धर्मराज से संवाद

एक बार पाण्डव द्वैतवन में जब निवास कर रहे थे, उस समय एक तपस्वी ब्राह्मण रस्सी से बंधकर अरणी सहित मंथन काष्ठ एक वृक्ष में टांग दिया था। वहाँ एक मृग आकर उस वृक्ष से अपनी शरीर रगड़ने लगा जिससे अरणी और मंथन काष्ठ उस मृग के सींग में अटक गये और वह मृग उसे लेकर भाग गया। जब ब्राह्मण ने इसे देखा तो तुरंत पाण्डवों के पास आया। उसने युधिष्ठिर से इस घटना के बारे में बताया। तब युधिष्ठिर ने अपने भाईयों से कहा- 'तुम सब लोग उसके पदचिन्हों को देखते हुए उस महामृग के पास पहुँचो और दोनों काष्ठ ले आओ जिससे मेरा अग्निहोत्र कर्म लुप्त न हो। वे स्वयं धनुष लेकर अपने भाइयों के साथ दौड़े। कुछ दूर जाने पर वह मृग उन्हें अपने पास ही दिखाई दिया। तदनंतर वे पाण्डव कर्णि, नालीक और नाराच नामक बाण उस पर छोड़ने लगे। किंतु वे देखते हुये भी उस मृग को बींध न सके। कठिन परिश्रम करने पर भी वह महामृग उन लोगों के हाथ न लगा। इससे वे मनस्वी पाण्डव हतोत्साहित एवं दुःखी हो गये। भूख प्यास से पीड़ित होकर वे पाण्डव उस वन में एक शीतल छाया वाले बरगद के पास बैठ गये।

उनके बैठ जाने पर नकुल अत्यन्त अमर्ष में आकर अपने बड़े भाई महाराज युधिष्ठिर से बोले- "महाराज! हमारे कुल में कभी आलस्यवश धर्म का लोप नहीं हुआ। हमने किसी भी प्राणी के प्रार्थना करने पर कभी उसे कोरा जवाब नहीं दिया- निराश नहीं किया फिर भी हम धर्म संकट में कैसे पड़ गये?"

युधिष्ठिर बोले- "नकुल आपत्तियों की न तो कोई सीमा है न तो कोई निमित्त ही दिखाई देता है और न कोई विशेष कारण ही परिलक्षित होता है। पूर्व में किये गये पुण्य और पापकर्म ही प्रारब्ध बनकर सुख-दुःख फल बाँटता है। पाण्डव आपस में इसी तरह चर्चा कर रहे थे। तदनन्तर महाराज युधिष्ठिर ने नकुल से कहा- "माद्रीनन्दन! किसी वृक्ष पर चढ़कर सब दिशाओं में दृष्टिपात करो। कहीं आस-पास पानी हो तो लाओ। तुम्हारे सभी भाई प्यासे हैं।

नकुल ने अच्छा कहकर शीघ्र ही एक वृक्ष पर चढ़कर देखा और युधिष्ठिर से बोला- "राजन! मैं ऐसे बहुतेरे वृक्ष देख रहा हूँ, जो जल के किनारे ही होते हैं। सारसों की आवाज भी सुनाई दे रही है। निःसन्देह आस-पास ही कोई जलाशय होगा।" तब युधिष्ठिर ने नकुल से कहा- "शीघ्र जाओ और तरकसों में पानी भरकर ले आओ।" नकुल बहुत अच्छा कहकर जलाशय पर गये। जलाशय का स्वच्छ जल देखकर उन्हें उस जल को पीने की इच्छा हुई। इतने में ही आकाशवाणी हुई-

मा तात साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः।
प्रश्नानुक्त्वा तु माद्रेय ततः पिव हरस्व च।।[3]

("अर्थात तात! तुम इस सरोवर का जल पीने की इच्छा मत करो। इस पर पहले से ही मेरा अधिकार हो चुका है। माद्री कुमार पहले मेरे प्रश्नों के उत्तर दे दो फिर पानी पीओ और ले भी जाओ।")

नकुल की प्यास बहुत बढ़ गई थी। उन्होंने आकाशवाणी के कथन की अवहेलना करके शीतल जल पी लिया और पीते ही अचेत होकर गिर पड़े।

नकुल के लौटने में जब विलम्ब हुआ तो महाराज युधिष्ठिर ने सहदेव को भेजा। सहदेव के साथ भी ऐसी ही घटना घटित हुई। उन्होंने नकुल को मरे हुए देखा। उनका हृदय सन्तप्त हो गया। वे भी प्यास से बहुत कष्ट पा रहे थे

अतएव जल पीने के लिए जलाशय की तरफ दौड़े। आकाशवाणी उसी प्रकार हुई। सहदेव भी आकाशवाणी की अवहेलना कर जल पीने लगे और अचेत होकर गिर गये।

तदनंतर युधिष्ठिर ने अर्जुन को भेजा। अर्जुन धनुष-बाण और खडग लेकर जलाशय पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने दोनों भाइयों को मरा हुआ देखकर वे बड़े दुःखी हुये। उन्होंने धनुष उठाकर उस वन का अच्छी तरह अवलोकन किया। उन्हें वहाँ कोई भी हिंसक जीव दिखाई नहीं दिया। वे भी प्यास से पीड़ित थे। जलाशय की तरफ दौड़े तो उन्हें भी आकाशवाणी सुनाई पड़ी। तो अर्जुन ने कहा- "जरा सामने आकर रोको। सामने आते ही वाणों से टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। फिर तुम ऐसा नहीं बोल सकोगे।" उन्होंने आकाश में अपने वाणों की झड़ी लगा दी। तब पुनः आकाशवाणी सुनाई पड़ी। "पार्थ इस प्रकार प्राणियों पर आघात करने से क्या लाभ? पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, फिर जल पीओ। यदि तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दिये बिना ही जल पीओगे, तो पीते ही मर जाओगे।"

अर्जुन आकाशवाणी का उल्लंघन कर जल पीने लगे और पीते ही अचेत होकर गिर पड़े।

तदनंतर अर्जुन के भी न लौटने पर महाराज युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा- "परंतप! भरतनंदन नकुल, सहदेव और अर्जुन को पानी के लिये गये बहुत देर हो गई। तुम जाकर उन्हें बुला लाओ और पानी भी ले आओ। तब भीमसेन भी जलाशय पर पहुँचे। उन्हें अपने तीनों भाईयों को पृथ्वी पर मृत पड़े देखकर अत्यन्त शोक हुआ। प्यास से वे भी अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे। उन्होंने मन ही मन यह निश्चय किया कि यह यक्षों अथवा राक्षसों का कार्य है। फिर उन्होंने सोचा आज निश्चय ही मुझे शत्रु के साथ युद्ध करना पड़ेगा। अतः पहले जल तो पी लूँ। ऐसा सोचकर वे जलाशय की तरफ बढ़े। उन्हें भी सुनाई पड़ा-

मा तात साहसं कार्षीर्मम पूर्वपरिग्रहः।
प्रश्नानुक्त्वा तु कौन्तेय ततः पिव हरस्व च।।[1]

("अर्थात तात! तुम इस सरोवर का जल पीने की इच्छा मत करो।

इस पर पहले से ही मेरा अधिकार हो चुका है। कुन्दी कुमार पहले मेरे प्रश्नों के उत्तर दे दो फिर पानी पीओ और ले भी जाओ।") भीमसेन भी आकाशवाणी का उल्लंघन का जल पीने लगे और मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

तदनंतर महाराज युधिष्ठिर विलम्ब होने पर स्वयं जलाशय पर गये और वहाँ की अवस्था देखकर बड़े विस्मृत हुए। वे अपने भाईयों को सरोवर के तट पर निर्जीव पड़े हुए देखा। मानो प्रलय काल में सम्पूर्ण लोकपाल अपने लोकों से भ्रष्ट होकर गिर गये हों। वे चिंतामग्न होकर विलाप करने लगे। इस प्रकार मन में नाना प्रकार के विचार करते हुए वे जलाशय में उतरे। पानी में प्रवेश करते ही उनके कानों में भी आकाशवाणी सुनाई दी।

अहं वकः शैवलमस्त्यमक्षो
नीला मया प्रेतवशं तवानुजाः।
त्वं पचमोभविता राजपुत्र
न चेत प्रश्नान् पृच्छतो व्याकरोषि।।[5]

(अर्थात राजकुमार मैं सैवार और मछली खाने वाले बगुला हूँ। मैंने ही तुम्हारे छोटे भाइयों को यमलोक भेजा है। अतः मेरे पूछने पर यदि तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर न दोगे तो तुम भी यमलोक के पाँचवें अतिथि होगे।)

"तात पानी पीने का साहस मत करना। इस पर मेरा पहले से ही अधिकार हो गया है। कुन्ती कुमार मेरे प्रश्नों का उत्तर दो और तब जल पीओ और ले भी जाओ।"

युधिष्ठिर ने कहा- "मैं पूछता हूँ, तुम रूद्रों, वसुओं अथवा मरुद्गणों में से कौन से प्रधान देवता हो? बताओ। यह काम किसी पक्षी का किया हुआ नहीं हो सकता। मेरे महातेजस्वी भाई भीमवान, पारियात्र, विन्ध्य तथा मलय इन चारों पर्वतों के समान हैं। इन्हें किसने मार गिराया है? बलवानों में श्रेष्ठ वीर! तुमने अत्यन्त महान कर्म किया है। बड़े-बड़े युद्धों में जिन वीरों को देवता, गंधर्व, असुर तथा राक्षस भी नहीं सह सकते थे, उन्हें गिराकर तुमने अद्भुत पराक्रम किया है। तुम्हारा कार्य क्या है? यह मैं नहीं जानता। तुम क्या चाहते हो? इसका भी मुझे पता नहीं है। तुमसे मुझे कुछ भय भी लगने लगा है, जिससे मेरा हृदय उद्विग्न हो उठा है और सिर में कष्ट होने लगा है। अतएव

भगवन्! मैं पूछता हूँ तुम यहाँ कौन विराज रहे हो?"

तब वह अदृश्य शक्ति दृश्यमान होकर बोला- "तुम्हारा कल्याण हो। मैं जलचर पक्षी नहीं हूँ। यक्ष हूँ। तुम्हारे ये सभी महान तेजस्वी भाई मेरे द्वारा ही मारे गये हैं।"

तदनंतर महाराज युधिष्ठिर उस यक्ष की कठोर एवं अमंगलमयी वाणी सुनकर उसके पास जाकर खड़े हो गये। तब यक्ष ने उनसे कहा- "राजन्! तुम्हारे इन भाइयों को मैंने बार-बार रोका था फिर भी ये बलपूर्वक जल ले जाना चाहते थे। इसीलिये मैंने उन्हें मार डाला। यदि तुम्हें अपने प्राण बचाने की इच्छा हो तो वहाँ जल नहीं पीना चाहिए। तुम पानी पीने का साहस मत करना। यह पहले से ही मेरे अधिकार की वस्तु है। कुन्तीनंदन पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, उसके बाद जल पिओ और ले भी जाओ।"

युधिष्ठिर ने कहा- "यक्ष! मैं तुम्हारे अधिकार की वस्तु नहीं ले जाना चाहता। मैं स्वयं ही अपनी बड़ाई करूँ। इस बात की सत्पुरुष कभी प्रशंसा नहीं करते। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूँगा। तुम मुझसे प्रश्न करो।"

यक्ष ने पूछा- "सूर्य को कौन ऊपर उठाता है? उसके चारों ओर कौन चलते हैं? उसे अस्त कौन करता है? और वह किसमें प्रतिष्ठित है?"

युधिष्ठिर बोले- "ब्रह्म सूर्य को ऊपर उठाता है। देवता उसके चारों ओर चलते हैं। धर्म उसे अस्त करता है और वह सत्य में प्रतिष्ठित है।"

यक्ष ने पूछा- "राजन्! मनुष्य श्रोत्रिय किससे होता है? महत्पद को किसके द्वारा प्राप्त करता है? वह किसके द्वारा द्वितीयवान होता है और किससे बुद्धिमान होता है?"

युधिष्ठिर ने कहा- "वेदाध्ययन के द्वारा मनुष्य श्रोत्रिय होता है, तप से महत्पद प्राप्त करता है, धैर्य से द्वितीयवान होता है और वृद्ध पुरुषों की सेवा से बुद्धिमान होता है।"

यक्ष ने पूछा- "ब्राह्मणों में देवत्व क्या है? उनमें सत्पुरुषों का धर्म क्या है? उनका मनुष्य भाव क्या है? और उनमें असत्पुरुषों का सा आचरण क्या है?"

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया- "वेदों का स्वाध्याय ही ब्राह्मणों में देवत्व है, तप सत्पुरुषों का सा धर्म है, मरना मनुष्य का भाव है और निन्दा करना असत्पुरुषों का सा आचरण है।"

यक्ष ने पूछा- "कौन एक वस्तु यज्ञिय साम है? कौन एक यज्ञिय यजु है? कौन एक वस्तु यज्ञ का वरन करती है? और किस एक का यज्ञ अतिक्रमण नहीं करता?"

युधिष्ठिर ने कहा- "प्राण ही यज्ञिय साम है, मन ही यज्ञिय यजु है। एकमात्र ऋचा ही यज्ञ का वरण करती है और उसी का यज्ञ अतिक्रमण नहीं करता।"

यक्ष ने पूछा- "पृथ्वी से भारी क्या है? आकाश से भी ऊँचा क्या है? वायु से भी तेज चलने वाला क्या है? और तिनकों से भी अधिक क्या है?"

युधिष्ठिर ने कहा- "माता का गौरव पृथ्वी से भी अधिक है। पिता आकाश से भी ऊँचा है। मन वायु से भी तेज चलने वाला है और चिन्ता तिनकों से भी अधिक असंख्या एवं अनंत है।"

यक्ष ने पूछा- "कौन सोने पर भी आँखें नहीं मूँदता? उत्पन्न होकर भी कौन चेष्टा नहीं करता? किसमें हृदय नहीं है और कौन वेग से बढ़ता है?"

युधिष्ठिर ने कहा- "मछली सोने पर भी आँखें नहीं मूँदती। अंडा उत्पन्न होकर भी चेष्टा नहीं करता। पत्थर में हृदय नहीं है और नदी वेग से बढ़ती है।"

यक्ष ने पूछा- "राजेन्द्र समस्त प्राणियों का अतिथि कौन है? सनातन धर्म क्या है? अमृत क्या है? और यह सारा जगत क्या है?"

युधिष्ठिर ने कहा- "अग्नि समस्त प्राणियों का अतिथि है। गौ का दूध अमृत है, अविनाशी नित्य धर्म ही सनातन धर्म है और वायु यह सारा जगत है।"

इस प्रकार अन्य बहुत से प्रश्न यक्ष ने धर्मराज युधिष्ठिर से किया। युधिष्ठिर ने यक्ष के सभी प्रश्नों का यथोचित उत्तर दिया। तब यक्ष ने प्रसन्न होकर कहा-

"को मोदते किमाश्चर्यं कः पन्था का च वार्तिका।

ममैतांश्चतुरः प्रश्नान कथयित्वा जलं पिब।।"[6]

सुखी कौन है? आश्चर्य क्या है? मार्ग क्या है और वार्ता क्या है? मेरे इन चार प्रश्नों का उत्तर देकर जल पीओ।

युधिष्ठिर ने कहा- "जलचर यक्ष जिस पुरुष पर ऋण नहीं है और जो परदेश में नहीं है वह भले ही पाँचवें या छठे दिन अपने घर के भीतर साग-पात ही पकाकर खाता हो, तो भी वही सुखी है।

संसार से प्रतिदिन प्राणी यमलोक जा रहे हैं। किंतु जो बचे हुए हैं, वे सर्वदा जीवित रहने की इच्छा करते रहते हैं, इससे बढ़कर और आश्चर्य क्या होगा?

तर्क की कहीं स्थिति नहीं है। श्रुतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। एक ही ऋषि नहीं है कि जिसका मत प्रमाण माना जाए तथा धर्म का तत्व गुहा में निहित है। अर्थात अत्यन्त गूढ़ है; अतः जिससे महापुरुष जाते रहे हैं, वही मार्ग है।

इस महामोह रूपी कड़ाहे में भगवान काल समस्त प्राणियों को मास ऋतु रूपी करछी से उलट-पलटकर सूर्य रूप अग्नि और रात दिन रूप ईंधन के द्वारा राँध रहे हैं। यही वार्ता है।"

तदनंतर यक्ष ने कहा- "परंतप! तुमने मेरे सब प्रश्नों के उत्तर ठीक-ठाक दे दिये। अब तुम पुरुष की भी व्याख्या कर दो और यह बताओ कि सबसे बड़ा धनी कौन है?"

युधिष्ठिर ने कहा- "जिस व्यक्ति के पुण्य कर्मों की कीर्ति का शब्द जब तक स्वर्ग और भूमि को स्पर्श करता है, तब तक वह पुरुष कहलाता है। जो मनुष्य प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख और भूत-भविष्यत् इन द्वंद्वों में सम है वही सबसे बड़ा धनी है। जो भूत-वर्तमान और भविष्य सभी विषयों की ओर से निःस्पृह, शान्तचित्त, सुप्रसन्न और सदा योगयुक्त है। वही सब धनियों का स्वामी है।"

यक्ष ने कहा- "राजन! जो सबसे बढ़कर धनी पुरुष है उसकी तुमने ठीक-ठीक व्याख्या कर दी। इसीलिये अपने भाईयों में से जिस एक को तुम चाहो वही जीवित हो सकता है।"

युधिष्ठिर बोले- "यक्ष यह जो श्याम वर्ण, अरुण नयन, सुविशाल शाल वृक्ष के समान ऊँचा और चौड़ी छाती वाला नकुल है, वही जीवित हो जाये।"

यक्ष ने कहा- "राजन्! यह तुम्हारा प्रिय भीमसेन है और तुम लोगों का सबसे बड़ा सहारा अर्जुन है। इन्हें छोड़कर तुम किसलिये सौतेले भाई नकुल को जिलाना चाहते हो? जिसमें दस हजार हाथियों के समान बल है, उस भीम को छोड़कर तुम नकुल को ही क्यों जिलाना चाहते हो?"

युधिष्ठिर बोले- "यदि धर्म का नाश किया जाए, तो वह नष्ट हुआ धर्म ही कर्त्ता को भी नष्ट कर देता है और यदि उसकी रक्षा की जाय, तो वही कर्ता की भी रक्षा कर लेता है। इसी से मैं धर्म का त्याग नहीं करता कि कहीं धर्म नष्ट होकर मेरा ही नाश न कर दे। यक्ष मेरा यह विचार है कि वस्तुतः अनृशंसता (दया और समता) ही परम धर्म है। यही सोचकर मै। सबके प्रति दया और समान भाव रखना चाहता हूँ। इसीलिये मैं चाहता हूँ कि नकुल ही जीवित हो जाये। यक्ष लोग मेरे विषय में ऐसा समझते हैं कि राजा युधिष्ठिर धर्मात्मा हैं; अतएव मैं अपने धर्म से विचिलत नहीं होऊँगा। मेरे पिता महाराज पाण्डु के कुन्ती और माद्री नामक दो रानियाँ थीं। वे दोनों ही नकुल के जीवित होने से पुत्रवती बनी रहेंगी। ऐसा मेरा विचार है। मेरे लिये जैसी कुन्ती हैं, वैसी ही माद्री। उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। मैं दोनों माताओं के प्रति समान भाव ही रखता हूँ। इसलिये नकुल ही जीवित हो।"

तदनंतर यक्ष ने कहा-

तस्य तेऽर्थाच्च कामाच्च आनृशंस्यं परम् मतम्।
तस्मात् ते भ्रातरः सर्वे जीवन्तु भरतर्षम।।

अर्थात भरतश्रेष्ठ! तुमने अर्थ और काम से भी अधिक दया और समता का आदर किया है, इसलिये तुम्हारे सभी भाई जीवित हो जायें।

तदनंतर यक्ष के कहते ही सभी पाण्डव बंधु उठकर खड़े हो गये और क्षण भर में ही उनकी भूख प्यास जाती रही। तब महाराज युधिष्ठिर ने यक्ष से पूछा- "इस सरोवर में एक पैर से खड़े हुये अपराजेय देव मैं पूछता हूँ- आप कौन देवश्रेष्ठ हैं? मुझे तो आप यक्ष नहीं मालूम होते। आप वस्तुओं में से, रूद्रों

में से अथवा महारूद्रगणों में से कोई एक श्रेष्ठ पुरुष तो नहीं हैं। अथवा आप स्वयं बज्रधारी इन्द्र ही हैं। मेरे इन अपराजेय भाइयों को आपने रणभूमि में गिरा दिया। अब जीवित होने पर भी इनकी इन्द्रियाँ सुख की नींद सोकर उठे हुये पुरुषों के समान स्वस्थ दिखाई देती है, अतः आप हमारे कोई सुहद् हैं अथवा पिता।"

तदनंतर यक्ष ने कहा- "तात युधिष्ठिर! मैं तुम्हारा जन्मदाता पिता धर्मराज हूँ। तुम्हें देखने की इच्छा से ही मैं यहाँ आया हूँ, मुझे पहचानो। यश, सत्य, दम, शौच, सरलता, लज्जा, अचंचलता, दान, तप और ब्रह्मचर्य मेरे शरीर हैं। अहिंसा, समता, शान्ति दया और अमत्सर (डाह का न होना) इन्हें मेरे पास पहुँचने के द्वार समझो। तुम मुझे सदा प्रिय हो। सौभाग्यवश तुम्हारा शम, दम, उपरीत, तितिक्षा, समाधान इन पाँचों साधनों पर अनुराग है। तुम्हारा मंगल हो। मैं तुम्हारा व्यवहार जानने की इच्छा से ही यहाँ आया हूँ। मैं तुम्हारी समदर्शिता और दयालुता से प्रसन्न हूँ। तुम्हें वर देना चाहता हूँ। तुम अपने मनोनुकूल वर माँग लो। युधिष्ठिर बोले- "भगवन्! पहला वर तो मैं यही माँगता हूँ कि जिस ब्राह्मण के अरणी सहित मन्थन काष्ठ को लेकर मृग भाग गया है उसके अग्निहोत्र का लोप न हो।"

तब धर्म ने कहा- "कुन्तीनंदन उस ब्राह्मण के अरणी सहित मंथन काष्ठ को तुम्हारी परीक्षा के लिये मैं ही मृग रूप से लेकर भाग गया। यह अरणी और मंथन काष्ठ तुझे देता हूँ। तुम और कोई दूसरा वर माँगो।

युधिष्ठिर बोले- "पिताश्री हम 12 वर्ष तक वन में रह चुके। अब तेरहवाँ वर्ष आ चुका है। अतः ऐसा वर दीजिये कि तेरहवें वर्ष में हमें कहीं भी रहने पर लोग पहचान न सकें।"

तब धर्म ने कहा- "मैं तुम्हें यह वर भी देता हूँ।" तदनंतर धर्मराज ने युधिष्ठिर को आश्वासन देते हुए कहा- "भरत नंदन यद्यपि तुम इस पृथ्वी पर इसी रूप में विचरण करोगे तो भी तीनों लोकों में कोई भी तुम्हें पहचान न सकेगा। तुम विराट नगर में रहते हुए किसी से भी पहचाने नहीं जा सकोग। वत्स तुम कोई और अभीष्ट वर माँग लो। वह मैं तुम्हें दूँगा। वत्स तुम्हें वर देते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।"

तब युधिष्ठिर ने कहा- "पिताजी आप सनातन देवाधिदेव हैं। आज मुझे साक्षात आपके दर्शन हो गये। आप प्रसन्न होकर मुझे जो भी वर देंगे उसे मैं शिरोधार्य करूंगा। विभो मुझे ऐसा वर दीजिये कि मैं लोभ मोह और क्रोध को जीत सकूँ। तथा दान, पर और सत्य में सदैव मेरा मन लगा रहे।"

तब धर्मराज ने कहा-

उपपन्यों गुजैरेतैः स्वाभावेनासि पाण्डव।
भवान धर्मः पुनश्चैव यथोक्तं ते भविष्यति।।[1]

अर्थात पाण्डुपुत्र! तुम तो स्वयं धर्मस्वरूप ही हो। अतः इन गुणों से तो स्वभाव से ही सम्पन्न हो। आगे भी तुम्हारे कथनानुसार तुममें ये सब धर्म बने रहेंगे।

दृष्टान्त- अजगर (नहुष) का भीमसेन एवं धर्मराज युधिष्ठिर से संवाद

द्वैतवन में पाण्डव वृषपर्वा के आश्रम में रह रहे थे। भीमसेन अकस्मात तलवार बाँधकर धनुष लेकर घूमने निकल जाते थे। उनकी सिंह गर्जना से महान बलशाली गजराज एवं मृगराज भी भय से अपना स्थान छोड़कर भाग गये। वे वन में घूमते हुए समस्त प्राणियों को डराते हुए अद्भुत गर्जना करते थे। एक दिन उनके गर्जना से सारे सर्प इधर-उधर भागने लगे। भीमसेन धीरे-धीरे उनका पीछा करने लगे। उसी समय उन्होंने एक विशाल अजगर देखा जो रोंगटे खड़े कर देने वाला था। वह अपने शरीर से एक कन्दरा को छोड़कर पर्वत के एक दुर्गम स्थान में रहता था। उसका शरीर विचित्र चिह्नों से चिन्हित था उसका रंग हल्दी के समान पीला था। वह सहसा भीमसेन के पास पहुँचकर उनकी दोनों बाहों को बलपूर्वक पकड़ लिया। भीमसेन सहसा अचेत हो गये। ऐसा इसलिये हुआ कि उस सर्प को ऐसा ही वरदान मिला हुआ था। भीमसेन उसके द्वारा जकड़े जाने पर छटपटाने लगे परन्तु उससे स्वयं को छुड़ाने की चेष्टा करने पर भी सफल न हो सके। तब उन्होंने उस अजगर से कहा-

उवाच च महासर्पं कामया ब्रूहि पन्नग।
कस्त्वं भो भुजगश्रेष्ठ किं मया च करिष्यसि।

पाण्डवो भीमसेनोऽहं धर्मराजादनन्तरः।
नागायुतसमप्राणस्त्वया नीतः कथं वशम्।
सिंहाः केसरिणो व्याघ्रा महिषा वारणास्तथा।
समागताश्च शतशो निहताश्च मया युधि।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च पन्नगाश्च महाबलाः।
भुजवेगमशक्ता मे सोढुं पन्नगसत्तम।
किं नु विद्याबलं किं नु वरदानमथो तव।
उद्योगमपि कुर्वाणो वशगोऽस्मि कृतस्त्वया।
असत्यो विक्रमो नृणामिति मे धीयते मतिः।
यथेदं मे त्वया नाग बलं प्रतिहतं महत्।[1]

भुजंगप्रवर! आप स्वेच्छा से बताइये। आप कौन हैं? और मुझे पकड़कर क्या करेंगे? मैं धर्मराज युधिष्ठिर का छोटा भाई पाण्डुपुत्र भीमसेन हूँ। मुझमें दस हजार हाथियों का बल है, फिर भी न जाने कैसे आपने मुझे अपने वश में कर लिया है? मेरे सामने सैकड़ों केसरी, सिंह, व्याघ्र, महिष और गजराज आये किन्तु मैंने सबको युद्ध में मार गिराया।

पन्नग श्रेष्ठ! राक्षस, पिशाल और महाबली नाग मेरी भुजाओं को वेश में नहीं कर सकते थे। परन्तु छूटाने के लिये मेरे उद्योग करने पर भी आपने मुझे वश में कर लिया, इसका क्या कारण है? क्या आपमें किसी विद्या का बल है अथवा आपको कोई अद्भुत वरदान मिला है? नागराज आज मेरी बुद्धि में यही सिद्धांत स्थिर हो रहा है कि मनुष्य का पराक्रम झूठा है। जैसा कि इस समय आपने मेरे इस महान बल को कुन्ठित कर दिया है।

महाभारत, वन पर्व, अजगर पर्व, अध्याय 179, श्लोक संख्या 2-7

तदनंतर उस नाग ने भीमसेन की दोनों भुजायें छोड़ दिया किंतु उनके शरीर को जकड़कर अपने वश में करके और उनसे इस प्रकार बोला- "महाबाहो मैं दीर्घकाल तक भूखा बैठा था आज सौभाग्यवश देवताओं ने तुम्हें मेरे लिये भोजन के रूप में भेज दिया है।

सभी देहधारियों को अपने-अपने प्राण प्रिय होते हैं किन्तु मुझे ऐसा ही वरदान मिला है। इसीलिये मैं तुम्हें पकड़ सका हूँ।

मुझे जिस प्रकार यह सर्प का शरीर मिला है मैं उसे तुम्हें अवश्य बतलाता हूँ। तुम इसे सुनो-

इमामवस्थां सम्प्राप्तो ह्यहं कोपान्मनीषिणाम्।
शापस्यात्तं परिप्रेप्सुः सर्वं तत् कथयामिते।।
नहुषोनाम राजर्षि व्यक्तं तो श्रोतभागतः।
तवैव पूर्वः पूर्वेषामायोर्वंशधरः सुतः।।
सोऽहं शापादगस्त्स्य ब्राह्मणानवमन्च च।
इमामवस्थामापन्नः पश्य दैव मिदं मम।।[10]

अर्थात "मैं मनीषी महात्माओं के कोप से इस दुर्दशा को प्राप्त हुआ हूँ और इस शाप के निवारण की प्रतीक्षा करते हुए यहाँ रहता हूँ। शाप का क्या कारण है? यह सब तुमसे कहता हूँ सुनो। मैं राजर्षि नहुष हूँ, अवश्य ही यह मेरा नाम तुम्हारे कानों में पड़ा होगा। मैं तुम्हारे पूर्वजों का भी पूर्वज हूँ। महाराज आयु का वंश प्रवर्तक पुत्र हूँ। मैं ब्राह्मणों का अनादर करके महर्षि अगस्त्य के शाप से इस अवस्था को प्राप्त हुआ हूँ। मेरे इस दुर्भाग्य को अपनी आँखों से देख लो।

त्वां चेहवहयं दायादमतीव प्रियदर्शनम्।
अहमद्योपयोक्ष्यामि विधानं पश्य यादृशम।।[11]

(अर्थात तुम यद्यपि अबध्य हो, क्योंकि मेरे ही वंशज हो। देखने में अत्यन्त प्रिय लगते हो। तथापि आज तुम्हें अपना आहार बनाऊँगा। देखो विधाता का कैसा विधान है।)

कौरव श्रेष्ठ! तुम तिर्यंग योनि में पडे हुए किसी साधारण सर्प की पकड़ में नहीं आये हो। जब मैं इंद्र के सिंहासन से भ्रष्ट हो शीघ्रतापूर्वक श्रेष्ठ विमान से नीचे गिरने लगा, उस समय मैंने मुनिश्रेष्ठ भगवान अगस्त्य से प्रार्थना की कि प्रभो! मेरे श्राप का अन्त कीजिये। तो उन्होंने द्रवित होकर मुझसे कहा- "राजन कुछ काल के पश्चात तुम इस श्राप से मुक्त हो जाओगे। मोक्षस्ते भविता राजन कस्माच्चित् कालपर्ययात। उनके इतना कहने पर मैं पृथ्वी पर गिर पड़ा। परन्तु आज भी मेरी पुरानी स्मरण शक्ति बनी हुई है।" महर्षि ने मुझसे यह भी कहा था- "जो तुम्हारे पूछे हुए प्रश्नों का विभागपूर्वक

उत्तर दे दे, वही तुम्हें श्राप से छुड़वा सकता है।"

राजन जिसे तुम पकड़ लोगे वह बलवान से बलवान प्राणी क्यों न हो, उसका भी धैर्य छूट जायेगा एवं तुमसे अधिक शक्तिशाली पुरुष ही क्यों न हो। सबका साहस शीघ्र ही खो जायेगा।

इस प्रकार मैं सर्प योनी में पड़कर उससे छूटने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ

तदनंतर भीमसेन ने अजगर से कहा- "महाबोध! न तो मैं आप पर क्रोध करता हूँ और न अपनी ही निंदा करता हूँ क्योंकि मनुष्य सुख-दुःख की प्राप्ति में कभी समर्थ होता है कभी असमर्थ। अतः किसी दशा में अपने मन में ग्लानि नहीं आने देना चाहिए। ऐसा कौन मनुष्य है जो पुरुषार्थ के बल से दैव को वंचित कर सके। मैं दैव को ही बड़ा मानता हूँ। पुरुषार्थ व्यर्थ है देव के ही आघात से आज मैं इस दशा में प्राप्त हो गया हूँ। नहीं तो मुझे अपने बाहुबल पर बड़ा भरोसा था। मुझे अपनी मृत्यु के लिए भी शोक नहीं है। शोक है तो वह अपने भाईयों के लिये जो राज्य से वंचित होकर वन में पड़े हैं। मेरी मृत्यु का समाचार सुनकर वे राज्य प्राप्ति का सारा उद्योग छोड़ देंगे। मैं ही उन्हें राज्य के लोभ से युद्ध के लिए बाध्य करता हूँ। महाबली महाबाहु अर्जुन अकेले ही देवराज इंद्र को भी अनायास ही अपने स्थान से हटा देने में समर्थ हैं। फिर उस धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन को जीतना उनके लिए कौन बड़ी बात है? मैं पुत्रों के प्रति स्नेह रखने वाली अपनी उस दीन माता के लिये शोक करता हूँ जो सदा यह आशा रखती है कि हम सभी भाइयों का महत्व शत्रुओं से बढ़-चढ़कर है। भुजंगम मेरे मरने से मेरी अनाथ माता के सभी मनोरथ जो मुझ पर अवलम्बित थे कैसे सफल हो सकेंगे। एक साथ जन्म लेने वाले नकुल और सहदेव मेरे बाहुबल से सुरक्षित हों। मेरे मरने से उत्साह शून्य हो जायेंगे। वे अपना बल और पराक्रम खो बैठेगें। सर्वथा अनाथ हो जायेंगे।"

उधर कुन्तीनन्दन धर्मराज युधिष्ठिर वन में अनिष्ठ सूचक तमाम उत्पातों को देखकर चिंता में पड़ गये। उन्होंने द्रोपदी से पूछा- "भीमसेन कहाँ हैं?" द्रोपदी ने उत्तर दिया- "उन्हें यहाँ से गये बहुत देर हो गई।" यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर महर्षि धौम्य के साथ भीमसेन की खोज में चल दिये। वे

भीमसेन के पैरों के चिह्न को पहचानते हुए आगे बढ़ रहे थे। जब वे भीमसेन के पास पहुँचे तब उन्होंने देखा कि भीमसेन अजगर की जकड़ में आकर चेष्टा शून्य हो गये हैं। उन्होंने भीमसेन से पूछा- "कुन्तीनंदन तुम कैसे इस विपत्ति में फँस गये। यह पर्वत के समान लंबा-चौड़ा नाग कौन है?" तब भीमसेन ने युधिष्ठिर से सारी घटना बताई। उन्होंने कहा- "ये वायुभक्षी सर्प के रूप में बैठे हुए महान शक्तिशाली साक्षात राजश्री नहुष हैं। इन्होंने मुझे अपना आहार बनाने के लिये पकड़ रखा है।" तदनंतर युधिष्ठिर से सर्प से कहा-

मुच्यतामयमायुष्मन् भ्राता मेडमितिविक्रमः
व्यमाहारमन्यं ते दास्यामः क्षुन्निवारणम्।।[12]

(अर्थात आयुष्मान आप मेरे इस अनंत पराक्रमी भाई को छोड़ दें। हम लोग आपकी भूख मिटाने के लिये दूसरा भोजन देंगे।)

अजगर ने कहा-

आहारोराजपुत्रोडयं मयाप्राप्नतो मुखागतः।
गम्यतां नेह स्थातव्य श्वो भवानपि मे भवेत।।[13]

(अर्थात राजन यह राजकुमार मेरे मुख के पास स्वयं आकर मुझे आहार रूप में प्राप्त हुआ है। तुम जाओ। यहाँ ठहरना उचित नहीं है। अन्यथा कल तक तुम भी मेरे आहार बन जाओगे।)

'दीर्घकाल तक उपवास के आज तुम्हारा यह छोटा भाई मुझे आहार रूप में मिला है। अतः न तो मैं इसे छोड़ूँगा और न इसके बदले में दूसरा आहार ही लेना चाहता हूँ।'

तदनंतर युधिष्ठिर ने कहा- सर्प तुम कोई देवता हो या दैत्य अथवा वास्तव में सर्प ही हो। सच बताओ। तुझसे युधिष्ठिर प्रश्न कर रहा है। भुजंगम किसलिये तुमने भीमसेन को ही ग्रास बनाया है। बोलो मैं तुम्हारे लिये किस आहार की व्यवस्था कर दूँ जिससे तुम उन्हें छोड़ सकते हो।

सर्प ने कहा- निष्पाप नरेश मैं पूर्व जन्म में तुम्हारा विख्यात पूर्वज नहुष नाम का राजा था। चंद्रमा से पांचवी पीढ़ी में जो आयु नाम के राजा हुए थे, उन्हीं का पुत्र हूँ। मैंने अनेक यज्ञ किये, तपस्या की, स्वाध्याय किया, मन और इन्द्रियों को संयमित रखने के लिये योग का अभ्यास किया। इन सत्कर्मों

के कारण मुझे तीनों लोकों का राज्य प्राप्त हुआ जिससे मेरा अहंकार बढ़ गया। मैंने सहस्त्रों ब्राह्मणों से अपनी पालकी ढुलवाई। तदनंतर ऐश्वर्य के मद से मैंने बहुत से ब्राह्मणों का अपमान किया। पृथ्वीपते इससे कुपित हुये महर्षि अगस्त्य ने मुझे इस अवस्था को पहुँचा दिया है। पांडुनंदन उन्हीं महात्मा अगस्त्य की कृपा से आज तक मेरी स्मरण शक्ति मुझे छोड़ नहीं सकी है। महर्षि के श्राप के अनुसार दिन के छठे भाग में तुम्हारा यह लघु भ्राता मुझे भोजन के रूप में प्राप्त हुआ है। अतः न तो मैं इसे छोडूँगा और न इसके बदले कोई दूसरा आहार ही लूँगा। परन्तु एक बात है यदि तुम मेरे पूछे हुए कुछ प्रश्नों का अभी उत्तर दे दो तो मैं तुम्हारे भाई भीमसेन को छोड़ दूँगा।"

तब युधिष्ठिर ने कहा- "सर्प तुम इच्छानुसार प्रश्न करो। मैं तुम्हारी बात का उत्तर दूँगा। सर्पराज! ब्राह्मण को इस जीवन में जो कुछ जानना चाहिये, वह तत्व तुम जानते हो या नहीं। यह सुनकर मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूँगा।"

सर्प ने कहा- "राजा युधिष्ठिर! ब्राह्मण कौन है? उसके जानने योग्य तत्व क्या हैं?"

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया- "नागराज! जिसमें सत्य, दान, क्षमा, सुशीलता, क्रूरता का अभाव, तपस्या और दया- नामक सद्गुण हों, वही ब्राह्मण है। जानने योग्य तत्व तो परम् ब्रह्म ही है, जो दुःख और सुख से परे है, जहाँ पहुंचकर मनुष्य शोक के पार हो जाता है।"

तदनंतर सर्प ने कहा- "सत्य एवं प्रमाणभूत ब्रह्म तो चारों वर्णों के लिये हितकर हैं। सत्य, दान, अक्रूरता का अभाव, अहिंसा और दया आदि सद्गुण तो शूद्रों में भी रहते हैं। नरेश्वर तुमने जानने योग्य तत्व को जो सुख-दुःख से परे बताया है तो सुख और दुःख से परे किसी दूसरी वस्तु की सत्ता मैं नहीं देखता।"

युधिष्ठिर ने कहा- "यदि शूद्र में सत्य आदि उपयुक्त लक्षण हैं और ब्राह्मण में नहीं हैं तो वह शूद्र शूद्र नहीं है और वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है। सर्पराज जिसमें सत्य आदि लक्षण मौजूद हों, वह ब्राह्मण माना गया है जिनमें इसका अभाव हो, उसे शूद्र कहना चाहिये। तुमने जो यह कहा है कि सुख-दुःख

से रहित कोई दूसरा वैद्य तत्व नहीं है सो तुम्हारा यह मत ठीक है। सुख-दुःख से शून्य कोई पदार्थ नहीं है। किन्तु एक ऐसा पद है भी जिस प्रकार बर्फ में ऊष्मा और अग्नि में शीतलता कहीं नहीं रहती उसी प्रकार जो वेद पद है, वह वास्तव में सुख-दुःख से रहित ही है। नागराज! मेरा जो यही विचार है फिर आप जैसा मानें।"

सर्प ने कहा- "आयुष्मान नरेश! यदि आचार से ही ब्राह्मण की परीक्षा की जाये, तब तो जब तक उसके अनुसार कर्म न हो, जाति व्यर्थ ही है।"

युधिष्ठिर ने कहा- "महासर्प, महामते! मनुष्यों में जाति की परीक्षा करना बहुत कठिन है क्योंकि इस समय सभी वर्णों का परस्पर संकर हो रहा है। ऐसा मेरा विचार है। सभी मनुष्य सदा सब जातियों की स्त्रियों से संतान उत्पन्न कर रहे हैं। वाणी, मैथुन तथा जन्म और मरण- ये सब मनुष्यों में एक समान देखे जाते हैं। इस विषय में यह आर्ष प्रमाण भी मिलता है- 'ये यजामहे'। यह श्रुति जाति का निश्चय न होने के कारण ही हम लोग यज्ञ कर रहे हैं। इसीलिये जो तत्वदर्शी विद्वान है वे शील को ही प्रधानता देते हैं और उसे ही अभीष्ट मानते हैं। जब बालक का जन्म होता है, नालोच्छेदन के पूर्व उसका जातकर्म संस्कार किया जाता है। उसमें उसकी माता सावित्री और पिता आचार्य कहलाते हैं। जब तक बालक का संस्कार करके उसे वेद का स्वाध्याय न कराया जाए, तब तक वह शूद्रों के समान ही है।"

तदनंतर युधिष्ठिर से प्रसन्न होकर सर्प ने कहा-

"श्रुतं विदितवेदस्य तव वाम्य युधिष्ठिर।
भक्षेययमहं कस्माद् भ्रातरं ते वृकोदर।।"[14]

अर्थात युधिष्ठिर! तुम जानने योग्य सभी बातें जानते हो। मैंने तुम्हारी सब बातें अच्छी तरह सुन लीं। अब मैं तुम्हारे भाई भीमसेन को कैसे खा सकता हूँ। तब युधिष्ठिर ने सर्पराज से कुछ पूछा।

"तुम सम्पूर्ण वेद वेदांगों के परगामी हो। लोक में तुम्हारी ऐसी ही ख्याति है। बताओ किस कर्म के आचरण से सर्वोच्चतम गति प्राप्त हो सकती है।"

सर्प ने कहा- "भारत! इस विषय में मेरा विचार यह है कि मनुष्य

सत्पात्र को दान देने से, सत्य और प्रिय वचन बोलने से तथा अहिंसा धर्म में तत्पर रहने से स्वर्ग पा सकता है।"

युधिष्ठर ने कहा- "सर्पराज! दान और सत्य में किसका पलड़ा भारी होता है? अहिंसा और प्रिय भाषण में किसका महत्व अधिक है और किसका कम?" सर्प ने कहा- 'महाराज युधिष्ठिर! दान, सत्य तत्व, अहिंसा और प्रिय भाषण- इनकी गुणता और लघुता कार्य की महत्ता के अनुसार देखी जाती है। राजेन्द्र! किसी दान से सत्य का ही महत्व बढ़ जाता है और कोई-कोई दान ही सत्य भाषण से अधिक महत्व रखता है।" युधिष्ठिर ने पूछा- "सर्प! मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति और कर्मों का निश्चय रूप से मिलने वाला फल किस प्रकार देखने में आता है एवं देहाभिमान से रहित पुरुष की गति किस प्रकार होती है?"

सर्प ने कहा- "अपने-अपने कर्मों के अनुसार जीवों की तीन प्रकार की गतियाँ देखी जाती हैं। स्वर्गलोक की प्राप्ति मनुष्यों में जन्म लेना और पशु-पक्षी आदि योनियों में उत्पन्न होना। बस ये ही तीन योनियाँ हैं। इसमें जो जीव मनुष्य लोक में उत्पन्न होता है पर यदि आलस्य आदि का त्याग करते हुए दान आदि शुभ कर्म करता है तो उसे स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत कारण होने पर मनुष्य योनी में तथा पशु-पक्षी आदि योनी में जन्म लेता है जो काम-क्रोध, लोभ हिंसा में तत्पर होकर मानवता से भ्रष्ट हो जाता है वह पशु-पक्षी योनी में जन्म लेता है। फिर मनुष्य योनी की प्राप्ति के लिए उसे तिर्यक योनी से उद्धार होता है। इस प्रकार देहाभिमानी जीव परवशता से बार-बार जन्म लेता है और सुख-दुःख का उपयोग भी करता है।"

इस प्रकार सर्प योनी में उत्पन्न राजा नहुष का भीमसेन एवं युधिष्ठिर से हुआ संवाद पारलौकिक अंतरवैयक्तिक संचार का उदाहरण है।

दृष्टांत- नल-कर्कोटक (सर्प) संवाद

जब राजा नल दमयन्ती को छोड़कर वन में भटक रहे थे तो उन्होंने एक दिन महान दावानल को प्रज्ज्वलित होते देखा। उसी समय उन्हें किसी प्राणी का शब्द सुनाई पड़ा- 'पुण्य श्लोक महाराज नल! दौड़िये मुझे बचाइये।' ऊँचे स्वर में बार-बार इस वाणी की पुनरावृत्ति होने पर राजा नल ने कहा- 'डरो

मत।' और वे आग के भीतर घुस गये। वहाँ उन्होंने देखा- एक नागराज कुण्डलाकार पड़ा हुआ सो रहा है। उस नागराज ने हाथ जोड़कर नल से कहा-

स नागः प्रांजलिर्भूत्वा वेपमानो नलं तदा।
उवाच मां विद्धि राजन् नागं कर्कोटकं नृप।
मया प्रलब्धो ब्रह्मर्षिर्नारदः सुमहातपाः।
तेन मन्युपरीतेन शप्तोऽस्मि मनुजाधिप।
तिष्ठ त्वं स्थावर इव यावदेव नलः क्वचित्।
इतो नेता हित तत्र त्वं शापान्मोक्ष्यसि मत्कृतात्।
तस्य शापन्न शक्तोऽस्मि पदाद् विचलितुं पदम्।
उपदेक्ष्यामि ते श्रेयस्त्रातुमर्हति मां भवान्।
सखा च ते भविष्यामि मत्समो नास्ति पन्नगः।
लघुश्च ते भविष्यामि शीघ्रमादाय गच्छ माम्।
एवमुक्त्वा स नागेन्द्रो बभूवाङ्.गुष्ठमात्रकः।
तं गृहीत्वा नलः प्रायाद् देशं दावविवर्जितम्।
आकाशदेशमासाद्य विमुक्तं कृष्णवर्त्मना।
उत्स्रष्टुकामं तं नागः पुनः कर्कोटकोऽब्रवीत्।
पदानि गणयन् गच्छ स्वानि नैषध कानिचित्।
तत्र तेऽहं महाबाहो श्रेयो धास्यामि यत् परम्।[15]

"राजन! मुझे कर्कोटक नाग समझिये। एक दिन मेरे द्वारा महान तपस्वी ब्रह्मर्षि नारद ठगे गये। उन्होंने क्रोध से आविष्ट होकर मुझे श्राप दे दिया- 'तुम स्थावर वृक्ष की भांति एक जगह पड़े रहो। जब कभी राजा नल तुम्हें यहाँ से आकर कहीं अन्यत्र ले जायेंगे। तभी तुम मेरे श्राप से छुटकारा पा सकोगे। राजन् नारद जी के उस श्राप से मैं एक पग भी नहीं चल सकता; आप मुझे बचाइये। मैं आपको कल्याणकारी उपदेश दूँगा। साथ ही मैं आपका मित्र हो जाऊँगा। सर्पों में मेरे जैसा प्रभावशाली दूसरा नहीं है। आपके लिये मैं हल्का हो जाऊँगा। आप मुझे यहाँ से लेकर शीघ्र चलिये।" इतना कहकर वह नाग कर्कोटक अंगूठे के बराबर हो गया। राजा नल उसे लेकर अग्नि से दूर चले गये और उसे छोड़ने पर विचार करने लगे। तब कर्कोटक ने पुनः कहा- "महाराज!

आप अपने कुछ पग गिनते हुए चलिये। ऐसा करने पर मैं आपके लिये कल्याण का परम् साधन करूंगा।"

राजा नल पग गिनते हुए आगे बढ़े। जैसे ही उन्होंने 'दश' कहा- कर्कोटक ने उसे डस लिया। उसके डसते ही राजा नल का चेहरा श्याम वर्ण का हो गया और उन्होंने कर्कोटक नाग को पूर्व के स्वरूप में देखा। राजा नल को बड़ा विस्मय हुआ। कर्कोटक ने राजा को सांत्वना देते हुए कहा- "राजन! मैंने आपके पहले रूप को इसलिये अदृश्य कर दिया है कि लोग आपको पहचान न सकें। महाराज जिस कलयुग के कपट से आपको महान दुःख का सामना करना पड़ा है वह मेरे विष से आपके शरीर से दग्ध होकर बड़े कष्ट से निवास करेगा। नरेश्वर आप छल-कपट द्वारा सताये जाने योग्य नहीं थे। तो भी जिसने बिना किसी अपराध के साथ कपट का व्यवहार किया है उसी के प्रति क्रोध की दृष्टि से मैंने ऐसा व्यवहार किया है। अब कलयुग के सारे अंग मेरे विष से व्यक्त हो जायेंगे। अब वह आपके भीतर बड़े दुःख से निवास करेगा। नरेश्वर मेरे प्रसाद से अब आपको किसी भी जीव-जन्तु, वेदवेत्ताओं के श्राप से भय नहीं होगा। आपको युद्ध में सदा विजय प्राप्त होगी और कभी भी विषजनित पीड़ा नहीं होगी। अब आपने अपने को बाहुक सूत बताते हुए आयोध्या नरेश ऋतुपण के यहाँ जाइये। वे आपसे अश्वविद्या का रहस्य सीखेंगे और बदले में आपको द्युत क्रीडा का ज्ञान देंगे। आप एक साथ अपनी पत्नी एवं दोनों संतानों को प्राप्त कर लेंगे।" उसने उन्हें एक वस्त्र दिया और कहा- "जब आप अपने पूर्व स्वरूप को देखना चाहेंगे तो मेरा स्मरण करके इस वस्त्र को ओढ़ लीजियेगा। तदनंतर वह नाग कर्कोटक वहीं अंतर्ध्यान हो गया।"

सन्दर्भ

1. महाभारत, वन पर्व (पतिव्रतामहात्मय पर्व), अध्याय 297, श्लोक संख्या 11
2. वही, श्लोक संख्या 12
3. महाभारत, वन पर्व (अरण्य पर्व), अध्याय 312, श्लोक संख्या 12
4. वही, श्लोक संख्या 39

5. वही, अध्याय 313, श्लोक संख्या 29
6. महाभारत, वनपर्व, आरणेय पर्व, अध्याय 313, श्लोक संख्या 114
7. वही, श्लोक संख्या 133
8. वही, अध्याय 314, श्लोक संख्या 25
9. महाभारत, वन पर्व, भाग- 2, अध्याय 179, श्लोक 2 से 7
10. महाभारत, भाग दो, वनपर्व, अध्याय 179, श्लोक 12 से 14
11. वही, श्लोक 15
12. वही, अध्याय 180, श्लोक संख्या 5
13. वही, श्लोक संख्या 6
14. वही, श्लोक संख्या 38
15. महाभारत, वन पर्व, नलोपाख्यान पर्व, अध्याय 66, श्लोक संख्या 4-11

अध्याय 6

मानव-मानवेतर प्राणी संवाद

यह एक प्रकार दरों से अंतरवैयक्तिक संचार की भांति ही होते हैं। यह होता है कि अन्तर्वैयक्तिक संचार में सम्प्रेषक और ग्रहीता दोनों मनुष्य होते हैं किन्तु संचार की इस प्रविधि में सम्प्रेषक और ग्रहीता दोनों ही मनुष्य नहीं होते। वरन उसमें एक मानव होता है दूसरा मानवेतर प्राणी। यह एक प्रकार से प्रकृति से संवाद का रूप होता है। इसमें सामान्यतः संचारक और श्रोता की भूमिका परिवर्तित होती रहती है। ऐसे संवाद में कभी-कभी समूह के रूप में भी संचार होता है। इसे हम निम्नलिखित दृष्टांतों द्वारा समझ सकते हैं।

मानव का पक्षियों (हंस) से संचार

दृष्टान्त- राजा नल का हंसों से संवाद

दमयन्ती जैसी सुन्दर स्त्री से निषध देश के राजा वीरसेन के पुत्र नल की लोग प्रशंसा करते थे और नल के पास आकर दमयन्ती के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा करते थे। इस प्रकार एक-दूसरे की प्रशंसा सुनते-सुनते उन दोनों में बिना एक-दूसरे को देखे ही परस्पर काम (अनुराग) उत्पन्न हो गया। उन दोनों की यह कामना निरन्तर बढ़ती गई। राजा नल एक दिन कामवेदना को छिपाये रखने में असमर्थ हो गये तब वे अन्तःपुर के समीपवर्ती उपवन में जाकर एकान्त में बैठ गये। इतने में उनकी दृष्टि कुछ हंसों पर पड़ी, जो सुवर्णमय पंखों से विभूषित थे। राजा नल ने उनमें से एक हंस को पकड़ लिया। तब उस हंस ने नल से कहा- ***'हिन्तव्योऽस्मि न तो राजन करिष्यामि तव प्रियम् ।'***[1]

"राजन आप मुझे न मारें। मैं आपका प्रिय कार्य करूंगा। निषधनरेश मैं दमयन्ती के सामने आपकी ऐसी प्रशंसा करूंगा, जिससे वह आपके सिवा किसी अन्य पुरुष को मन में कभी स्थान न देगी।" हंस के ऐसा कहने पर राजा नल ने उसे छोड़ दिया। फिर वे हंस वहाँ से उड़कर विदर्भदेश में गये जहाँ दमयन्ती रहती थी। सखियों से घिरी हुई राजकुमारी उन हंसों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और तुरन्त उन्हें पकड़ने की चेष्टा करने लगी।

तदनंतर हंस उस प्रमादवन में सब ओर विचरण करने लगे। उस समय सभी राजकन्याओं ने एक-एक करके उन सभी हंसों का पीछा किया। दमयन्ती जिस हंस के निकट दौड़ रही थी उसने उससे मानवी वाणी में कहा-

दमयन्ती नलो नाम निषधेषु महीपतिः।
अश्विनी सदृशो रूपे न समातस्य भानुषाः।।[1]

राजकुमारी दमयन्ती सुनो! निषद देश में नल नाम से प्रसिद्ध एक राजा है, जो अश्विनी कुमारों के समान सुन्दर है। मनुष्यों में तो कोई उनके समान है ही नहीं।

कंदर्प इव रूपेण मूर्तिमान भवत् स्वयम्।
तस्य वै यदि भार्या त्वं भवेथा वरवर्जिनी।।
सफलं ते भवेजन्म रूपं चेदं सुमध्यमे।
वयं हि देवगन्धर्व मनुष्योरगराक्षसान।।
दुष्वन्तो न चास्मामि दृष्ट पूर्वस्तथाविदः।
त्वं चापि रत्नं नारीणां नरेषु च नलो वरः।।
विशिष्टया विशिष्टेन संगमो गुणवान भवेत।[1]

(अर्थात सुन्दरि! आप की दृष्टि से तो वे मानो स्वयं मूर्तिमान कामदेव से प्रतीत होते हैं। सुमध्यमे यदि तुम उनकी पत्नी हो जाओ तो तुम्हारा जन्म और मनोहर रूप सफल हो जाये। हम लोगों ने देवता, गन्धर्व, मनुष्य, नाग तथा राक्षसों को भी देखा है; परन्तु हमारी दृष्टि में अब तक उनके जैसा कोई भी पुरुष कभी नहीं आया है। तुम रमणियों में रत्नरूपा हो और नल पुरुषों के मुकुटमणि हैं। यदि किसी विशिष्ट नारी का विशिष्ट पुरुष के साथ संयोग हो तो वह विशेष गुणकारी होता है।) हंस के इस प्रकार कहने पर दमयन्ति ने उससे कहा- "पक्षिराज तुम नल के निकट भी ऐसी ही बातें कहना।" तदनंतर वे सभी हंस वहाँ से आकर नल से सब बातें निवेदन की।

उपरोक्त दृष्टांत मानव का पक्षियों से संवाद का उत्तम उदाहरण है।

दृष्टान्त- पक्षियों द्वारा राजा नल का वस्त्र लेकर उड़ते हुए संवाद करना

नल जब अपने भाई पुष्कर से जुये में पराजित होकर वन में दर-दर की ठोकरें खा रहे थे तो एक दिन उन्होंने कुछ ऐसे पक्षियों के समूह को देखा

जिनकी पंखें सोने की-सी थी। उन्हें देखकर क्षुधातुर राजा नल ने विचार किया कि आज ये पक्षियों का समूह ही मेरा भक्ष्य हो सकता है और इनकी पंखें मेरे लिये धन हो जायेंगी। तदनंतर उन्होंने अपने अधोवस्त्र से उन पक्षियों को ढंक दिया किंतु वे सब पक्षी उनका वस्त्र लेकर आकाश में उड़ गये। उड़ते हुए पक्षियों ने राजा नल के नीचे मुँह कर दीनभाव में खड़ा देखकर कहा-

वयक्षमा सुदुर्बुद्धे तव वासो जिहीर्षवः।

आगता न ही नः प्रीतिः सवाससे गति त्वयि।।[4]

अर्थात जो खोटी बुद्धि वाले नरेश! हम पक्षी नहीं पासे हैं और तुम्हारा वस्त्र अपहरण करने की ही इच्छा से यहाँ आये थे। तुम वस्त्र पहने ही वहाँ से चले आये थे। इससे हमें प्रसन्नता नहीं हुई थी।

नल का हंसों के दमयन्ती तक सन्देश पहुँचाना और पुनः दमयन्ती का राजा नल के पास सन्देश देना संचार की द्विमार्गी प्रक्रिया का उदाहरण है जबकि दृष्टांत दो एकमार्गीय प्रक्रिया है।

साध्यगणों एवं हंस रूपधारी ब्रह्मा से संवाद

महाराज युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म से पूछा- "पितामह संसार में बहुत से विद्वान इंद्रिय, संयम, क्षमा, सत्य और प्रज्ञा (उत्तम बुद्धि की प्रशंसा करते हैं। इस विषय में आपका क्या मत है?" तब पितामह भीष्म ने उन्हें हंस रूपधारी, ब्रह्मा से कहा- "हम लोग साध्य देवता हैं। पक्षिराज! आप मोक्ष-तत्व के ज्ञाता हैं। आप पण्डित और धीर वक्ता हैं। आपकी वाणी का सर्वत्र प्रचार है। समस्त कार्यों में से जिस एक कार्य को आप श्रेष्ठ समझते हैं और जिसके करने से जीव को हर प्रकार के बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है उसी का हमें उपदेश दीजिये।"

हंस ने कहा- "अमृत भोगी देवताओं! मैं तो सुनता हूँ कि तप, इन्द्रिय संयम, सत्यभाषण और मनोनिग्रह आदि कार्य ही सबसे उत्तम है। हृदय की सारी गाठें खोलकर प्रिय-अप्रिय को अपने वश में करे अर्थात उसके लिए न तो हर्ष करे और न विषाद करे।

इदं कार्यममृताशाः श्रृणोमि

तपो दमः सत्यमात्मामित्रुप्तिः।

ग्रन्थीन विमुच्य हृदयस्य सर्वान्।

प्रिया प्रिये स्वं वशमानयीत्।[5]

किसी के मन में आघात न पहुँचाये। दूसरों से निष्ठुर वचन न बोले। किसी नीच मनुष्य से अध्यात्म शास्त्र का उपदेश न ग्रहण करें तथा जिसे सुनकर दूसरों को उद्वेग हो, ऐसी नरक में डालने वाली अमंगलमयी बात भी मुँह से न निकालें।

नारुन्तुदः स्नान्न नृशंसवादी न हीनतः परसभ्याददीत।

ययास्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेद्रुषतीं पापलोक्याम्।[6]

किसी के मर्म में आघात न पहुँचाये। दूसरों से निष्ठुर वचन न बोले। किसी नीच मनुष्य से अध्यात्म शास्त्र का उपदेश न ग्रहण करें तथा जिसे सुनकर दूसरों को उद्वेग हो, ऐसी नरक में डालने वाली अमंगलमयी बात भी मुंह से न निकालें।

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।

परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु।[7]

वचन रूपी बाण जब मुँह से निकल पड़ते हैं, तब उनके द्वारा बींधा गया मनुष्य रात-दिन शोक में डूबा रहता है, क्योंकि वे दूसरों के मर्म पर आघात पहुंचाते हैं। इसलिये विद्वान पुरुष को किसी दूसरे मनुष्य पर वाग्बाण का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

क्षेपायमाणमभिषङ्ग्व्यलीकं निगृह्णाति ज्वलितं यश्च मन्युम्।

अदुष्टचेता मुदितोऽनसूयुः वस आदत्ते सुकृतं वै परेषाम्।[8]

जो जगत में निन्दा कराने वाले और आवेश में डालने के कारण अप्रिय प्रतीत होने वाले प्रज्वलित क्रोध की रोक लेता है, चित्त में कोई विकार या दोष नहीं आने देता, प्रसन्न रहता और दूसरों के दोष नहीं देखता है, वह पुरुष अपने प्रति शत्रु भाव रखने वाले लोगों के पुण्य ले लेता है।

वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।

दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम्।[9]

वेदाध्ययन का सार है सत्य भाषण, सत्यभाषण का सार है इन्द्रियसंयम और इन्द्रियसंयम का फल है मोक्ष। यही सम्पूर्ण शास्त्रों का

उपदेश है।

केनायमावृतो लोकः केन वा न प्रकाशते।
केन त्यजति मित्राणि केन स्वर्गं न गच्छति।[10]

हंस! इस जगत को किसने आवृत्त कर रखा है? किस कारण से उसका स्वरूप प्रकाशित नहीं होता है? मनुष्य किस हेतु से मित्रों का त्याग करता है? और किस दोष से वह स्वर्ग में नहीं जाने पाता?

कः स्विदेको रमते ब्राह्मणानां कः स्विदेको बहुभिर्जोषमास्ते।
कः स्विदेको बलवान् दुर्बलोऽपि कः स्विदेषां कलहं नान्ववैति।[11]

हंस! ब्राह्मणों में कौन एकमात्र सुख का अनुभव करता है? वह कौन ऐसा एक मनुष्य है, जो बहुतों के साथ रहकर भी चुप रहता है? वह कौन एक मनुष्य है, जो दुर्बल होने पर भी बलवान है तथा इनमें कौन ऐसा है, जो किसी के साथ कलह नहीं करता?

प्राज्ञ एको रमते ब्राह्मणानां प्राज्ञश्चैको बहुभिर्जोषमास्ते।
प्राज्ञ एको बलवान् दुर्बलोऽपि प्राज्ञ एषां कलहं नान्ववैति।[12]

देवताओं! ब्राह्मणों में जो ज्ञानी है, एकमात्र वही परम सुख का अनुभव करता है। ज्ञानी ही बहुतों के साथ रहकर भी मौन रहता है। एकमात्र ज्ञानी दुर्बल होने पर भी बलवान है और इनमें ज्ञानी ही किसी के साथ कलह नहीं करता है।

किं ब्राह्मणानां देवत्वं किं च साधपुत्वमुच्यते।
असाधुत्वं च किं तेषां किमेषां मानुषं मतम्।[13]

हंस! ब्राह्मणों का देवत्व क्या है? उनमें साधुता क्या बतायी जाती है? उनके भीतर असाधुता और मनुष्यता क्या मानी गयी है?

स्वाध्याय एषां देवत्वं व्रतं साधुत्वमुच्यते।
असाधुत्वं परीवादो मृत्युर्मानुष्यमुच्यते।[14]

साध्यगण! वेद-शास्त्रों का स्वाध्याय ही ब्राह्मणों का देवत्व है। उत्तम व्रतों का पालन करना ही उनमें साधुता बतायी जाती है। दूसरों की निन्दा करना ही उनकी असाधुता है और मृत्यु को प्राप्त होना ही उनकी मनुष्यता बतायी गई है।

दृष्टान्त- रुरु (मुनि) और डुन्डुभ (सर्प) का संवाद

मुनि रुरु की पत्नी प्रमद्वरा को सर्प ने डस लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। इस घटना से दुःखी हो मुनि रुरु ने सर्पों को मारने का निश्चय किया। एक दिन की बात है रुरु ने एक विशाल वन में डुन्डुभ जाति के एक सर्प को सोते देखा। उसे देखते ही मुनि ने उसे मारने की इच्छा से एक भयंकर डंडा उठाया। यह देखते ही डुन्डुभ ने मनुष्य की वाणी में मुनि रुरु से कहा- तपोधन! आज मैंने तुम्हारा कोई अपराध तो नहीं किया है फिर! किसलिये क्रोध के आवेश में आकर तुम मुझे मार रहे हो।[15]

मम प्राणसमा भार्या दष्टासीद् भुजगेन ह।
तत्र मे समयो घोर आत्मनोरग वै कृतः।
भुजङ्गं वै सदा हन्यां यं यं पश्येयमित्युत।
ततोऽहं त्वां जिघांसामि जीवितेनाद्य मोक्ष्यसे।[16]

रुरु बोला! सर्प! मेरी प्राणों के समान प्यारी पत्नी को एक सांप ने डस लिया था। उसी समय मैंने यह घोर प्रतिज्ञा कर ली कि जिस-जिस सर्प को देख लूँगा, उसे-उसे अवश्य मार डालूँगा। उसी प्रतिज्ञा के अनुसार मैं तुम्हें मार डालना चाहता हूँ। अतः आज तुम्हें अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।

अन्ये ते भुजगा ब्रह्मन् ये दशन्तीह मानवान्।
डुण्डुभानहिगन्धेन न त्वं हिंसितुमर्हसि।[17]

डुण्डुभ ने कहा- ब्रह्मन्! वे दूसरे ही सांप हैं जो इस लोक में मनुष्य को डसते हैं। सांपों की आकृति मात्र से ही तुम्हें डुण्डुभों को नहीं मारना चाहिये।

एकानर्थान् पृथगर्थानेकदुःखान् पृथक्सुखान।
डुण्डुभान् धर्मविद् भूत्वा न त्वं हिंसितुमर्हसि।[18]

अहो! आश्चर्य है, बेचारे डुण्डुभ अनर्थ भोगने में सब सर्पों के साथ एक हैं; परन्तु उनका स्वभाव दूसरे सर्पों से भिन्न है तथा दुःख भोगने में वे सब सर्पों के साथ एक हैं; किंतु सुख सबका अलग-अलग है। तुम धर्मज्ञ हो, अतः तुम्हें डुण्डुभों की हिंसा नहीं करनी चाहिये।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य भुजगस्य रुरुस्तदा।
नावधीद् भयसंविग्नमृषिं मत्वाथ डुण्डुभम्।[19]

डुण्डुभ सर्प का यह वचन सुनकर रुरु ने उसे कोई भयभीत ऋषि समझा, अतः उसका वध नहीं किया।

उवाच चैनं भगवान् रुरुः संशमयन्निव।
कामं मां भुजग ब्रूहि कोऽसीमां विक्रियां गतः।।[20]

इसके सिवा, बड़भागी रुरु ने उसे शान्ति प्रदान करते हुए कहा- 'भुजंगम्! बताओ, इस विकृत (सर्प) योनि में पड़े हुए तुम कौन हो?'

अहं पुरा रुरो नाम्ना ऋषिरासं सहस्रपात्।
सोऽहं शापेन विप्रस्य भुजगत्वमुपागतः।[21]

डुण्डुभ ने कहा- रुरो! मैं पूर्व जन्म में सहस्रपाद नामक ऋषि था; किंतु एक ब्राह्मण के शाप से मुझे सर्पयोनि में आना पड़ा है।

किमर्थं शप्तवान् क्रुद्धो द्विजस्त्वां भुजगोत्तम।
कियन्तं चैव कालं ते वपुरेतद् भविष्यति।[22]

रुरु ने पूछा- भुजगोत्तम! उस ब्राह्मण ने किसलिये कुपित होकर तुम्हें शाप दिया? तुम्हारा यह शरीर अभी कितने समय तक रहेगा?

दृष्टान्त- दुर्योधन का बालक्रीड़ा के समय भीमसेन को विष खिलाकर गंगा में धकेलना और भीमसेन का नाग लोक में पहुंचकर नागों से संवाद

बाल्यावस्था में कौरव-पाण्डव एक साथ खेलने जाते थे। वे आपस में बालक्रीड़ाओं में अपने को बढ़-चढ़कर सिद्ध करने का प्रयास करते थे। भीमसेन किसी भी वस्तु को प्रत्यक्ष देखकर सबसे पहले ही दौड़कर उसे उठा लेते थे और खान-पान एवं धूल उछालने में भी वे अग्रणी रहते थे। वे कौरवों का मान-मर्दन भी कर डालते थे। भीमसेन धृतराष्ट्र के 101 पुत्रों को भी अपने वश में कर लेते थे। कभी-कभी वे उनका बाल पकड़कर एक-दूसरे को लड़ा देते थे। इससे पीड़ित होकर दुर्योधन के मन में पापपूर्ण विचार भर गया। वह अपने भाइयों से विचार कर एक योजना तैयार की जिसके अनुसार भीम जब नगरोद्यान में सो जाये तो उसे गंगा में फेंक दिया जाये। एक दिन दुर्योधन कौरव-पाण्डव सभी को लेकर गंगा तटवर्ती प्रमाणकोटि तीर्थ में गया। और वह जहाँ आयोजन किया उस स्थान का नाम उदकक्रीडन रखा।

उस स्थान पर पहुँचकर समस्त कौरव और पाण्डव यथायोग्य स्थान

पर बैठ गये और विभिन्न प्रकार के भोगों का उपभोग करने लगे। वे आपस में एक-दूसरे के मुंह में खाने की वस्तयें भी डालने लगे। भीमसेन को मारने की इच्छा से दुर्योधन ने उनके भोजन में कालकूट नामक विष डलवा दिया। भीमसेन इससे अपरिचित थे। अतः दुर्योधन ने जितना परोसा वे सब खा गये। तत्पश्चात वे सभी पाण्डव एवं कौरव आपस में जलक्रीडा करने लग गये। जलक्रीडा समाप्त होने पर वे सभी विश्राम करने लगे। भीमसेन क्रीडा के कारण थके हुए तो थे ही और विष के मद से वे अचेत भी हो गये। उनके अंग-अंग में विष का प्रभाव फैल गया। तब दुर्योधन ने उन्हें लताओं के पास में बांधकर गंगा जी के जल में धकेल दिया। भीमसेन गंगा जी में डूबकर बेहोशी की दशा में नागलोक जा पहुंचे। उस समय बहुत से नाग कुमार उनके शरीर से दब गये जिससे वे सब उन्हें खूब डसे। इससे कालकूट विष का प्रभाव नष्ट हो गया। सर्पों के जंघम विष ने खाये हुये स्थावर विष को हर लिया। भीमसेन की त्वचा लोहे के समान कठोर थी। अतएव सर्पों के दांत उनकी त्वचा को भेदने में समर्थ न हो सके। जब भीमसेन की नींद टूटी तो उन्होंने अपने सारे बंधनों को तोड़कर सर्पों को पकड़-पकड़कर धरती पर पटकने लगे। कितने ही सर्प भय के कारण भाग खड़े हुए। भीम के हाथों से मरने से बचे सर्प तेजस्वी नाग वासुक के पास गये और इस प्रकार बोले-

अयं नरो वै नागेन्द्र ह्यप्सु बद्ध्वा प्रवेशितः।
यथा च नो मतिर्वीर विपषीतो भविष्यति।[23]

'नागेन्द्र! एक मनुष्य है, जिसे बांधकर जल में डाल दिया गया है। वीरेश्वर! जैसा कि हमारा विश्वास है, उसने विष पी लिया होगा।

निश्चेष्टोऽस्माननुप्राप्तः स च दष्टोऽन्वबुध्यत।
ससंज्ञश्चापि संवृत्तश्छित्त्वा बन्धनमाशु नः।
पोथयन्तं महाबाहुं त्वं वै तं ज्ञातुमर्हसि।[24]

वह हम लोगों के पास बेहोशी की हालत में आया था, किंतु हमारे डसने पर जाग उठा और होश में आ गया। होश में आने पर वह महाबाहु अपने सारे बन्धनों को शीघ्र तोड़कर हमें पछाड़ने लगा है। आप चलकर उसे पहचानें।

तत्पश्चात वासुकी नागों के साथ आकर महापराक्रमी भीमसेन को देखा। उसी समय नागराज आर्यक ने भी उन्हें देखा जो कुंती के पिता सूरसेन के नाना थे। उन्होंने भीमसेन को कसकर हृदय से लगा लिया। यह देखकर वासुक भी भीमसेन पर प्रसन्न हुये और बोले- इनका कौन सा प्रिय कार्य किया जाये। इन्हें खूब धन-धान्य, स्वर्ण एवं नाना प्रकार के रत्नों की राशि भेंट की जाये। तत्पश्चात आर्यक ने वासुक से कहा- नागराज! यदि आप प्रसन्न हैं तो यह धनराशि लेकर क्या करेगा। इतना ही नहीं उन्होंने यह भी कहा कि

रसं पिबेत कुमारोऽयं त्वयि प्रीते महाबलः।
बलं नागसहस्रस्य यस्मिन् कुण्डे प्रतिष्ठितम्।[25]

आपके संतुष्ट होने पर तो इस महाबली राजकुमार को आपकी आज्ञा से उस कुण्ड का रस पीना चाहिये, जिससे एक हजार हाथियों का बल प्राप्त होता है।

यावत् पिबति बालोऽयं तावदस्मै प्रदीयताम्।
एवमस्तित्वति तं नागं वासुकिः प्रत्यभाषत।[26]

यह बालक जितना रस पी सके, उतना इसे दिया जाये। यह सुनकर वासुकि ने आर्य के नाग से कहा- ऐसा ही हो।

तदनंतर सभी नागों ने भीमसेन के लिए स्वस्ति वाचन किया तत्पश्चात भीमसेन ने पूर्वाभिमुख बैठकर कुंड का रस पिया और फिर सो गये। जब वे नींद से उठे तब उनके बल की कोई सीमा न रही।

यत् ते पीतो महाबाहो रसोऽयं वीर्यसम्भृतः।
तस्मान्नागायुतबलो रणेऽधृष्यो भविष्यसि।[27]

महाबाहो! तुमने जो यह शक्तिपूर्ण रस पीया है, इसके कारण तुम्हारा बल दस हजार हाथियों के समान होगा और तुम युद्ध में अजेय हो जाओगे।

गच्छाद्य त्वं च स्वगृहं स्नातो दिव्यैरिमैर्जलैः।
भ्रातरस्तेऽनुतप्यन्ति त्वां विना कुरुपुङ्गव।[28]

आज तुम इस दिव्य जल से स्नान करो और अपने घर लौट जाओ। कुरुश्रेष्ठ! तुम्हारे बिना तुम्हारे सब भाई निरन्तर दुःख और चिन्ता में डूबे रहते हैं। इसके बाद भीमसेन माता कुंती एवं अपने अन्य भाईयों के पास वापस चले गये।

सन्दर्भ

1. महाभारत, वन पर्व, अध्याय 53, श्लोक संख्या 20
2. महाभारत, वन पर्व, अध्याय 53, श्लोक संख्या 27
3. महाभारत, वन पर्व, अध्याय 53, श्लोक संख्या 28-30
4. महाभारत, वन पर्व, अध्याय 61, श्लोक संख्या 16
5. महाभारत, शान्ति पर्व, मोक्षधर्म पर्व, अध्याय 299, श्लोक 7
6. महाभारत, शान्ति पर्व, मोक्षधर्म पर्व, अध्याय 299, श्लोक 8
7. महाभारत, शान्ति पर्व, मोक्षधर्म पर्व, अध्याय 299, श्लोक 9
8. महाभारत, शान्ति पर्व, मोक्षधर्म पर्व, अध्याय 299, श्लोक 11
9. महाभारत, शान्ति पर्व, मोक्षधर्म पर्व, अध्याय 299, श्लोक 13
10. महाभारत, शान्ति पर्व, मोक्षधर्म पर्व, अध्याय 299, श्लोक 39
11. महाभारत, शान्ति पर्व, मोक्षधर्म पर्व, अध्याय 299, श्लोक 40
12. महाभारत, शान्ति पर्व, मोक्षधर्म पर्व, अध्याय 299, श्लोक 42
13. महाभारत, शान्ति पर्व, मोक्षधर्म पर्व, अध्याय 299, श्लोक 43
14. महाभारत, शान्ति पर्व, मोक्षधर्म पर्व, अध्याय 299, श्लोक 44
15. महाभारत, आदि पर्व, पौलोमपर्व, अध्याय 9, श्लोक संख्या 23
16. महाभारत, आदि पर्व, पौलोमपर्व, अध्याय 10, श्लोक संख्या 1-2
17. महाभारत, आदि पर्व, पौलोमपर्व, अध्याय 10, श्लोक संख्या 3
18. महाभारत, आदि पर्व, पौलोमपर्व, अध्याय 10, श्लोक संख्या 4
19. महाभारत, आदि पर्व, पौलोमपर्व, अध्याय 10, श्लोक संख्या 5
20. महाभारत, आदि पर्व, पौलोमपर्व, अध्याय 10, श्लोक संख्या 6
21. महाभारत, आदि पर्व, पौलोमपर्व, अध्याय 10, श्लोक संख्या 7
22. महाभारत, आदि पर्व, पौलोमपर्व, अध्याय 10, श्लोक संख्या 8
23. महाभारत, आदि पर्व, सम्भव पर्व, अध्याय 127, श्लोक संख्या 61
24. महाभारत, आदि पर्व, सम्भव पर्व, अध्याय 127, श्लोक संख्या 62
25. महाभारत, आदि पर्व, सम्भव पर्व, अध्याय 127, श्लोक संख्या 68
26. महाभारत, आदि पर्व, सम्भव पर्व, अध्याय 127, श्लोक संख्या 69
27. महाभारत, आदि पर्व, सम्भव पर्व, अध्याय 128, श्लोक संख्या 22
28. महाभारत, आदि पर्व, सम्भव पर्व, अध्याय 128, श्लोक संख्या 23

अध्याय 7
समूह संचार

जब दो से अधिक व्यक्ति किसी स्थान पर बैठकर आमने-सामने विचार विमर्श करते हैं तो उसे समूह संचार कहते हैं। इसमें भी प्रतिपुष्टि मिलती है परन्तु अन्तर्वैयक्तिक की तरह नहीं। फिर भी यह एक प्रभावशाली संचार प्रक्रिया है तथा सदस्यों को अपने-अपने क्षेत्र में अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है। समूह संचार कई सामाजिक परिवेश में हो सकता है। जैसे- स्कूल, कॉलेज, प्रशिक्षण केन्द्र, चौपाल आदि। समूह संचार को अच्छी तरह समझने के लिए सर्वप्रथम हमें समूह की संरचना एवं प्रकृति को समझना आवश्यक है।

समूह

समूह उन सामाजिक मनुष्यों का एक संग्रह है जिनके बीच किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध पाया जाता है। समूह को विभिन्न समाजशास्त्रियों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

मैकाइवर और पेज के अनुसार

''समूह से हमारा तात्पर्य मनुष्यों के उस संकलन से है जो एक-दूसरे के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं।''[1]

आर.बी. कैटल के अनुसार- ''समूह व्यक्तियों में उस एकत्रीकरण को कहते है। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सभी सदस्यों का सहयोग किया जाये।''[2]

प्रो. अस्व्यिान स्माल के अनुसार- ''समूह का अर्थ व्यक्तियों की किसी भी उस बड़ी अथवा छोटी संख्या से है जिनके बीच इस प्रकार के सम्बन्ध विद्यमान हों कि उन्हें एक सम्बद्ध इकाई के रूप में समझा जा सके।''[3]

प्रत्येक समूह की अपनी एक पहचान होती है जिसकी निश्चित विशेषतायें होती हैं। समूह के सदस्यों के बीच कार्यात्मक सम्बन्ध होते हैं। समूह के अन्तर्गत सदस्यों की स्थिति तथा उनकी भूमिका का सम्बन्ध

अपेक्षाकृत निश्चित तथा स्थित होते हैं। समूह कई प्रकार के होते हैं।

(अ) सामाजिक सम्पर्क के आधार पर

(ब) कार्य व्यवहार के आधार पर।

सामाजिक सम्पर्क के आधार पर समूह दो प्रकार का होता है -

(1) प्राथमिक समूह।

(2) द्वितीयक समूह।

कार्य व्यवहार के आधार पर भी दो प्रकार के होते हैं। (1) हित समूह (दबाव समूह)। इसके अतिरिक्त, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि समूह का भी निर्धारण किया जा सकता है। इसी प्रकार संचार समूह भी होता है। संचार समूह का निर्धारण सन्देश प्राप्त करने के लिए एकत्र व्यक्ति पुंज से होता है। इस समूह को श्रोता समूह भी कह सकते हैं। श्रोता समूह उपरोक्त वर्णित मानव समूहों से भिन्न होता है।

वर्तमान समय में तकनीकी पर आधारित संचार माध्यमों का श्रोता समूह बिखरा हुआ है। परम्परागत संचार माध्यमों का जुड़ाव संगठित जातीय व ग्रामीण परम्पराओं से है। उसकी लोक परम्परा ही सम्प्रेषण का माध्यम है, जो आज भी, स्वर, संगीत, अभिनय कला, नृत्य नाटिका आदि के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सामाजिक समूहों के बीच प्रेषित होती रहती है। समूह संचार से जुड़े श्रोता का ढाँचा वर्तमान में तकनीकी या जनसंचार से जुड़े श्रोताओं की तरह भिन्न सांस्कृतिक ढाँचे या आकार का नहीं होता। ये बिखरे हुए नहीं होते हैं वरन एकत्रित रहते है। समूह संचार सभा, गोष्ठी, परिचर्चा, नाटक, वाद-विवाद, प्रतियोगिता आदि के माध्यम से होता है। इस अध्याय में हम संचार प्रक्रिया की दृष्टि से समूह संचार का अध्ययन दो प्रकार के समूह मानकर करते हैं-

(1) लघु समूह (2) वृहत समूह

(1) लघु समूह - लघु समूह सीमित सदस्यों का आमने-सामने का तथा अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध वाला समूह है जिसमें कि उद्देश्यों की समानता, सहानुभूति, सद्भावना व सहयोग पाया जाता है।

लघु समूह में सदस्यों की संख्या सीमित होती है। दो से दस-पन्द्रह

तक के व्यक्तियों के समूह को लघु समूह कहा जाता है। इस समूह के सारे सदस्य संचार प्रक्रिया के समय आमने-सामने दिखाई दिखाई देते हैं। सभी सदस्य एक-दूसरे को व्यक्तिगत रूप से पहचानते हैं इसलिये हर सदस्य एक-दूसरे पर नियन्त्रण रखता है।

महाभारत में अलग-अलग मुद्दों पर समूह में बैठकर विचार-विमर्श करने का अनेक दृष्टांत मिलता है। यह समूह छोटे समूह एवं बड़े समूह में बैठकर चर्चा करने का अनेक दृष्टान्त मिलता है। यहाँ हम कुछ दृष्टान्तों के माध्यम से इसे स्पष्ट करना चाहते हैं-

छोटे/लघु समूह में संचार प्रक्रिया

प्रायः लोग अन्तर्वैयक्तिक संचार का अभिप्राय मात्र दो व्यक्तियों के मध्य होने वाले संचार से लगाते हैं। परन्तु अन्तर्वैयक्तिक संचार में दो से अधिक व्यक्तियों के लघु समूह को सम्मिलित किया जाता है। संचारविदों के अनुसार लघु समूह का अभिप्राय 5 अथवा 10 व्यक्तियों से ही है, क्योंकि इस प्रकार के समूह में प्रतिपुष्टि तुरन्त होती है। फीडबैक तुरन्त होना ही समूह संचार का प्रमुख गुण या विशेषता है। इस प्रकार के संचार में पैनल- डिस्कशन, एक साथ भोज पर चर्चा इत्यादि सम्मिलित है। इसे हम निम्नलिखित आधार पर समझ सकते हैं। उपरोक्त चित्र में छह व्यक्तियों को एक समूह के रूप में दर्शाया गया है। प्रत्येक व्यक्ति सम्प्रेषण एवं ग्रहीता की भूमिका का निर्वाह करते हैं। एक व्यक्ति जब सम्प्रेषक की भूमिका में होता है तो समूह के अन्य सभी सदस्य ग्रहीता की भूमिका में सन्देश को ग्रहण करते हैं। जब दूसरा व्यक्ति अपने विचारों को व्यक्त करता है तो वह व्यक्ति जो सम्प्रेषक की भूमिका में पूर्व में था ग्रहीता की भूमिका का निर्वाह श्रोता के रूप में करता है। इसी प्रकार सभी व्यक्तियों को अपने विचारों को व्यक्त करने और अन्य के विचारों को सुनने का अवसर प्राप्त होता है।

लघु समूह में अन्तर्वैयक्तिक संचार प्रक्रिया सम्पन्न होती है। इसमें भी सम्मिलित प्रत्येक व्यक्ति अपने सम्प्रेषक एवं ग्रहीता व्यवहार के कारण सम्प्रेषक एवं श्रोता की दुहरी भूमिका निभाता है यह भी स्पष्ट है कि लघु समूह में सहभागी लोगों की संख्या बढ़ने पर प्रतिपुष्टि अथवा फीडबैक तुरन्त सम्भव

नहीं होता। इस कारण यह संख्या 10 तक ही सीमित मानी गई है।

समूह संचार प्रक्रिया में भाग लेने वाले तत्व

समूह संचार प्रक्रिया में निम्नलिखित प्रमुख तत्व निम्नलिखित है-

1. सम्प्रेषक
2. सन्देश
3. श्रोता समूह
4. प्रभाव
5. फीडबैक

समूह संचार में श्रोता एक-व्यक्ति नहीं होता वरन एकत्रित व्यक्तियों का समूह होता है। स्रोत द्वारा प्रेषित सूचना को श्रोता समूह एक साथ एक स्थान पर एक समय में प्राप्त करता है। इस प्रकार समूह संचार वह संचार कहा जाता है जिसमें सूचना या सन्देश श्रोता समूह के लिए प्रेषित किया जाता है। सभी तत्वों पर अध्याय पाँच में संचार प्रक्रिया के संदर्भ में स्पष्ट किया गया है। चूँकि समूह संचार में भी आत्मगत एवं अन्तर्वैयक्तिक संचार की प्रक्रिया होना अवश्यंभावी है। अतएव इन तत्वों की अलग से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है।

वृहद समूह में संचार

वैसे छोटे और बड़े समूहों के लिये कोई सहभागियों सर्वमान्य संख्या निर्धारित नहीं की गई है। जब लगभग पन्द्रह या बीस से अधिक व्यक्ति समूह संचार की प्रक्रिया में भाग लेते हैं तो इसे बड़ा समूह कहना ही उचित होता है। बड़े समूह में संचार की प्रक्रिया भी लगभग छोटे समूह के समान ही होती है। संचार के संघटक भी लगभग वहीं रहते हैं। बड़े समूह में संचार के लिये यह आवश्यक होता है कि संचार प्रक्रिया को सुचारू रूप से संचालित करने के लिये व्यवस्था इस प्रकार की जाती है कि हर व्यक्ति एक-दूसरे की आवाज को सुन सके। इस समूह में होने वाला संचार भी मौखिक होता है। कभी-कभी संचार प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिये कुछ दृश्य सामग्री का सहयोग लिया जाता है जैसे स्लाइड प्रोजेक्ट, माइक, प्रोजेक्टर आदि।

सम्प्रेषण को विषय वस्तु के अनुसार समूह चर्चा करना चाहिए।

बड़े-बड़े समूह में संचार प्रक्रिया को प्रारम्भ करने के लिये एक व्यक्ति माडरेटर होता है जो समूह लीडर की भूमिका का निर्वाह करता है, वही समूह संचार का संचालक होता है।

समूह संचार के प्रायः अन्तर्वैयक्तिक संचार की मौखिक परम्परा का अनुसरण किया जाता हैं, श्रोता की संख्या अधिक होने से कभी-कभी संचार प्रक्रिया बाधित भी होती है। वैसे समूह के हर सदस्य को बोलने का अवसर देना चाहिए। जब एक व्यक्ति सम्प्रेषण करता है तो अन्य सभी व्यक्ति श्रोता की भूमिका में होते हैं। प्रायः इस प्रकार के संचार को प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना उपयोगी हो सकता है।

समूह में प्रभावी संचार

समूह चर्चा के दौरान समूह में प्रभावी संवाद कायम करने हेतु हमें निम्नांकित बातों पर विशेष बल देना चाहिए तभी सफल संवाद समूह में हो पाना संभव होगा-

- यह जरूरी है कि समूह जिस मुद्दे पर बातचीत, चर्चा करे, उसे समूह के सभी सदस्य पूरी तरह समझते हों।
- ऐसा माहौल जरूरी है कि समूह के सभी सदस्यों को आरामदायक व रुचिकरण परिस्थितियाँ महसूस हो।
- सभी सदस्यों को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करें एवं समर्थन दें। एक दो लोगों को चर्चा में हावी न होने दें।
- सदस्यों को, जानकारी, राय, सुझाव आदि बाँटने का पर्याप्त अवसर व प्रोत्साहन दें।
- व्यक्तिगत राय व सुझावों का सम्मान करें।
- समूह में फुसफुसाहट व बाधाएँ खड़ी कर हतोत्साहित न करें।
- चर्चा का केन्द्र मुख्य बिन्दु की ओर रखें।

जो चर्चा हुई है, समय-समय पर चर्चा के दौरान ही निम्नलिखित तरीकों से सार संक्षेप प्रस्तुत करें।

(1) विचारों को एकत्र करके

(2) विवादों को हलकर, मेल-मिलाप करके

(3) विचारों की विभिन्नताओं की छान-बीन करके

(4) एकमत विकसित करके

(5) समूह में कोई न बोले तो इसके कारणों को दूर करने का प्रयत्न करे

समूह में प्रभावी संवाद हेतु निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए-

(1) वक्ता को टोकें नहीं

(2) वक्ता जब तक अपनी बात खत्म करे तब तक प्रतीक्षा करें

(3) जो आपने सुना है, उस पर तुरन्त प्रतिक्रिया व्यक्त न करें

(4) यह सुनिश्चित कर लें कि जो बातें बताई जा रही है उसे आपने वास्तव में समझ लिया है।

इस प्रकार यदि हम उपरोक्त परिस्थितियों का आभास कर समूह संवाद करेंगे, तो निश्चय ही सामान्य संवाद कायम करने में आसानी होगी, और सम्प्रेषण प्रक्रिया प्रभावी होगी।

सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने हेतु कुछ और बातों को दृष्टिगत् रखते हुए हम आपसी संवाद को बेहतर बना सकते हैं। संवाद प्रक्रिया में मुख्य बातें यह होती हैं कि हम सामने वाले की बात सुने और समझें। भावात्मक पक्ष को अनदेखा न करें। प्रभावी सम्प्रेषण हेतु कुछ बातें सहायक सिद्ध होती हैं जो निम्नांकित हैं-

(1) प्रतिक्रिया देना :- इसमें हम सामने वाले को पूरा समय देते हैं, तथा अच्छा, हूँ हाँ, ठीक है, आदि शब्दों एवं शब्दहीन संकेतों द्वारा सामने वाले को अवगत कराते रहते हैं, कि हम सुन और समझ रहे हैं।

(2) खुलकर सुनना :- इसमें हम सामने वाले की बात को समझने के लिए प्रश्न को खुला रखते हैं। जैसे- मुझे इस विषय में कुछ और बतायें, या हम इस बारे में जानना चाहता हूँ कि आप इसके बारे में आप क्या सोचते हैं, इत्यादि।

(3) बात दोहराना :- इसमें हमने जो समझा या सुना है, उसे दोहरा देते हैं। जैसे- 'आप कह रहे हैं कि, आपकी बस्ती में हैण्ड पम्प नहीं है अथवा आप बीमार हैं, ऐसा है क्या' इत्यादि।

(4) सक्रियता से सुनना :- सक्रियता, संवाद/सम्प्रेषण प्रक्रिया में बहुत

महत्वपूर्ण है। इसमें हम सामने वाले की भावना और विचार को समझाने में उसकी सहायता करते हैं। जैसे उसने तुम्हारी मनोभावनाओं पर ठेस पहुँचायी, तुम्हें बुरा लगा न आदि। इस प्रकार दोनों को समझने में आसानी होती है और हम सामने वाले को अवगत भी कराते रहते हैं कि वे जो कह रहे हैं, उसे हम समझ व अनुभव कर रहे हैं। सुनने की प्रक्रिया में यह जरूरी है कि साथ-साथ में विषय का विश्लेषण करते चलें। विश्लेषण की इस प्रक्रिया में कुछ प्रश्न भी दिमाग में उठ सकते हैं, इस प्रश्नों को रखने के दो तरीके हो सकते हैं-

- ऐसे प्रश्न जिनके उत्तर केवल हाँ या न में हो और जो बात आगे बढ़ाने में सहायक न हो।
- खुले प्रश्न जिनमें संवाद/सम्प्रेषण को आगे बढ़ाने में मदद मिले और उनके उत्तर में विस्तृत जानकारी मिलने की संभावना होती हो।

समूह संचार प्रक्रिया में मुख्यतः दो ध्रुव होते हैं, पहला सूचनादाता और दूसरा सूचनाग्राही। ये दोनों सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समूह में संचार को प्रभावी बनाने के लिए निम्नांकित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है-

1. सूचनादाता को अपने आप को व अपनी क्षमताओं को, भली भाँति जानने की कोशिश करनी चाहिए।
2. सूचनादाता को सोच-विचार कर कोई बात कहनी चाहिए।
3. सूचनादाता को अपने विचार सर्वप्रथम रखने चाहिए इसके बाद आलोचना करनी चाहिए। सामान्यतया लोग आलोचना पहले और अपने विचार बाद में रखते हैं। यह उचित नहीं है।
4. सूचनाग्राही को सूचना ग्रहण करने की कला से परिचित होना चाहिए।
5. सूचनाग्राही को बोलने वाले के इरादे को समझने की कोशिश करनी चाहिए।
6. सूचनाग्राही को जल्दी ही उपसंहार पर नहीं कूद पड़ना चाहिए।
7. सूचनादाता और सूचनाग्राही दोनों की प्रतिपुष्टि प्रक्रिया के तहत सूचनाओं का आदान-प्रदान करना चाहिए।

8. सूचनादाता, सूचनाग्राही दोनों को विरोधी बातों को सहने की क्षमता रखनी चाहिए।

उपर्युक्त विधियों द्वारा हम सम्प्रेषण को प्रभावी बना सकते हैं। इसके इसके अलावा सम्प्रेषण प्रक्रिया को निम्नांकित तत्व भी प्रभावित करते हैं-

1. सम्प्रेषक को सम्प्रेषित विषय वस्तु, तथ्य, सूचनाओं की अच्छी जानकारी रखनी चाहिए, क्योंकि बिना उचित जानकारी के सम्प्रेषण सफल एवं प्रभावी नहीं होता।
2. जिस भाषा में सम्प्रेषक किया जाय उस भाषा पर पूर्ण अधिकार होना अच्छे सम्प्रेषक के लिए अति आवश्यक है।
3. सूचना प्रापक या ग्राही को भी सम्प्रेषित भाषा का ज्ञान आवश्यक है, नहीं तो सूचनाग्राही सम्प्रेषक के विचारों का ज्ञानार्जन नहीं कर पाता है।
4. जैसा की हम सभी जानते हैं कि शोर, सफल एवं प्रभावी सम्प्रेषण के लिए अत्याधिक व्यवधान उत्पन्न करता है। अतः शोर को कम करने का यथा उचित प्रयत्न किया जाना चाहिए।
5. सम्प्रेषक और सूचनाग्राही के मानसिक स्तर पर भी प्रभावी सम्प्रेषण में अपनी अहम् भूमिका निभाता है। जैसा कि हम जानते हैं कि परिपक्व मस्तिष्क ही किसी विषय की जटिलता को हल करने में संभावी भूमिका निभाता है।
6. सम्प्रेषण के दौरान यदि सम्प्रेषक, सूचनाग्राही के प्रतिक्रिया, आलोचना को स्वीकार नहीं करता तो भी, वैसी स्थिति में प्रभावी सम्प्रेषण सम्भव नहीं होता और कभी-कभी श्रोताओं की प्रतिक्रियाओं को जब सम्प्रेषक नजरअंदाज कर देता है, तो अव्यवस्था उत्पन्न होने की सम्भावना काफी बढ़ जाती है। जैसा कि आम सभाओं में देखने को प्रायः मिलता है।

अतः हम कह सकते हैं कि उपुर्यक्त तत्वों की भूमिका सम्प्रेषण के प्रभावी व अप्रभावी स्वरूप का निर्धारण करती है। अशाब्दिक सम्प्रेषण के मुख्य घटक भी सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने में मदद करते हैं।

यों तो महाभारत में समूह संचार सम्बन्धी अनेक दृष्टान्त वर्णित हैं। सबका उल्लेख करना संभव नहीं है। यहाँ हम वृहद समूह में संचार का एक

मर्मस्पर्शी दृष्टान्त प्रस्तुत कर रहे हैं।

दृष्टान्त- द्युतक्रीडा में युधिष्ठिर के पराजित होने पर पांचाली को घसीटते हुये सभा भवन में ले आना।

द्युतक्रीडा में युधिष्ठिर पराजित हो गये। उन्होंने अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया। यहाँ तक कि अपने भाईयों एवं पत्नी पांचाली को भी दांव पर लगाकर पराजित हो गये। पांचाली रजस्वला थी फिर भी दुर्योधन के आदेशानुसार दुःशासन उसे राज्यसभा में घसीटते हुये ले आया।

सभा में उच्च सिंहासन पर ज्योतहीन महाराज धृतराष्ट्र विराजमान थे। उनके निकट ही महापतिव्रता साध्वी पत्नी गांधारी नेत्रों पर वस्त्रपट बांधे बैठी थी। अनेक प्रकांड विद्वान मनीषी, विधिमर्मज्ञ, धर्मविद, साधुपुरुषों एवं पराक्रमी राजपुत्रों से सुशोभित वह सभामंडल जगमगा रहा था। वहाँ परम प्रतापी पितामह भीष्म थे तो प्रसिद्ध धनुर्विद आचार्य द्रोणाचार्य भी। महर्षि विदुर थे तो कृपाचार्य भी। दूसरी ओर बैठे थे महापराक्रमी क्षत्रिय शिरोमणि दुर्योधन, अंगराज कर्ण, गांधार कुमार शकुनी, शल्य, दुःशासन, सुमुख, विकर्ण सहित धृतराष्ट्र के अन्य पुत्र हर्षित एवं प्रसन्न मुद्रा में सभागृह के मध्य भाग में महाराज युधिष्ठिर अपने अन्य सभी अनुजों के साथ सिर नीचे झुकाये दास बने बैठे थे। उनके कभी न झुकने वाले मस्तक झुके थे। दर्शक दीर्घा में अन्य बहुत से हस्तिनापुर के गणमान्य नर-नारी उपस्थित थे। कुल मिलाकर यह एक वृहद समूह था। समूह में अचानक दुःशासन द्वारा घसीटी जाती हुई द्रुपत सुता पांचाली बोल उठी। 'छोड़ दे पापी!.... यह मेरे परम पूज्य श्वसुर महाराज धृतराष्ट्र की राजसभा है। इस धर्मस्थल पर अधर्म नहीं होता दुष्ट! दुराचारी, छोड़! यहाँ न्यायप्रिय विद्वज्जन बैठे हैं, वयोवृद्ध बैठे हैं- क्यों उनके कोप का भाजन बनना चाहता है नराधम!'[4]

पांचाली का स्वर प्रखर था। वहाँ पहुंचते ही पांचाली ने बलपूर्वक दुःशासन का हाथ झटक दिया। असावधान दुःशासन स्तंभ से टकरा कर गिर गया। 'मुझे बचायें तात!... माता गांधारी'.. पांचाली दौड़ पड़ी महाराज धृतराष्ट्र एवं महारानी गांधारी की शरण में। उसे विश्वास था कि महाराज धृतराष्ट्र एवं महारानी गांधारी धर्मज्ञ हैं। उसकी रक्षा करेंगे।'[5]

दुःशासन बोला- 'नीच! दासी! तुममें इतना बल कि मुझे गिरा दे! मायाविनि... तू मानवी नहीं- दानवी है।'[6]

ऐसा कहते हुए दुर्योधन द्रोपदी की नील मेघकुंडल वेणी को पकड़कर वेग से झटक दिया। वेणी खुल गई। पीड़ा से कराहती पांचाली का हाथ तत्क्षण वेणी पर पहुंचा। अनायास वह निश्छल हो गई और क्रुद्ध नागिन सी वह फुफकार उठी- दुष्ट तूने मेरे मंत्र पूत जल सिंचित इन पवित्र केशों को हाथ लगाया। तेरा अन्त निकट आ गया है इसलिये... नराधम! अब जब तक इन कुंतलों को तेरे रक्त से धोकर न शुद्ध कर लूंगी, तब तक ये केश ऐसे ही खुले रहेंगे। शठ, यह वेणी अब नहीं बंधेगी। मेरे केश कर्षण के बदले अब तूझे बलि चढ़ना होगा। तभी तुझे शांति मिलेगी।... अज्ञानी! तू अभी समझ नहीं पा रहा है कि तू किस प्रंचड अग्नि से खेल रहा है।'[7]

पांडव निष्प्राण बैठे हुए थे। पांचाली विलख रही थी। अश्रुसिंचित नेत्रों सहित सहसा बोल उठी-

धिगस्तु नष्टः खलु भारतानां
धर्मस्तथा क्षत्रविदां च वृत्तम्।
यत्र ह्यतीतां कुरुधर्मवेलां
प्रेक्षन्ति सर्वे कुरवः सभायाम्।[8]

अर्थात अहो! धिक्कार है! भारत वंश के नरेशों का धर्म निश्चय ही नष्ट हो गया है तथा क्षत्रिय धर्म के जानने वाले इन महापुरुषों का सदाचार भी लुप्त हो गया; क्योंकि वहाँ कौरवों की धर्ममर्यादा का उल्लंघन हो रहा है, तो भी सभा में बैठे हुए सभी कुरुवंशी चुपचाप देख रहे हैं।

द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्वं
क्षत्तुस्तथैवास्य महात्मनोऽपि।
राजस्तथा हीममधर्ममुग्रं।
न लक्ष्यन्ते कुरुवृद्धमुख्याः।।[9]

अर्थात! जान पड़ता है द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म, महात्मा विदुर तथा राजा धृतराष्ट्र में अब कोई शक्ति नहीं रह गयी है; तभी तो ये कुरुवंश के बड़े-बूढ़े महापुरुष राजा दुर्योधन के इस भयानक पापाचार की ओर दृष्टपात

नहीं कर रहे हैं।

इमं प्रश्नमिमे ब्रूत सर्व एव सभासदः।
जितां वाप्यजितां वा मां मन्यध्वे सर्वभूमिपाः।[10]

मेरे इस प्रश्न का सभी सभासद उत्तर दें। राजाओं! आप लोग क्या समझते हैं? धर्म के अनुसार मैं जीती गयी हूँ या नहीं?

द्रोपदी की करुणा भरी वाणी सुनकर पितामह भीष्म बोले-

न धर्मसौक्ष्म्यात् सुभगे विवेक्तु
शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत्।
अस्वाम्यशक्तः पणितुं यथावत्।
अस्वाम्यशक्तः भर्तुर्वशतां समीक्ष्य।।[11]

सौभाग्यशालिनी बहू! धर्म का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण मैं तुम्हारे इस प्रश्न का ठीक-ठीक विवेचन नहीं कर सकता। जो स्वामी नहीं है वह पराये धन के दांव पर नहीं लगा सकता, परंतु स्त्री को सदा अपने स्वामी के अधीन देखा जाता है, अतः इन सब बातों पर विचार करने से मुझसे कुछ कहते नहीं बनता।

त्यजेत सर्वां पृथिवीं समृद्धां
युधिष्ठिरो धर्ममथो न जह्यात्।
उक्तं जितोऽस्मीति च पाण्डवेन
तस्मान्न शक्नोमि विवेक्तुमेतत्।[12]

मेरा विश्वास है कि धर्मराज युधिष्ठिर धन-समृद्धि से भरी हुई इस सारी पृथ्वी का त्याग सकते हैं, किंतु धर्म को नहीं छोड़ सकते। इन पाण्डुनंदन ने स्वयं कहा है कि मैं अपने को हार गया; अतः मैं इस प्रश्न का विवेचन नहीं कर सकता।

द्यूतेऽद्वितीयः शकुनिर्नरेषु
कुन्तीसुतस्तेन निसृष्टकामः।
न मन्यते तां निकृतिं युधिष्ठिर-
स्तस्मान्न ते प्रश्नमिमं ब्रवीम्रि।[13]

यह शकुनि मनुष्यों में द्यूतविद्या का अद्वितीय जानकार है। इसी ने

कुन्तीनंदन युधिष्ठिर को प्रेरित करके उनके मन में तुम्हें दांव पर रखने की इच्छा उत्पन्न की है, परंतु युधिष्ठिर इसे शकुनि का छल नहीं मानते; इसीलिये मैं तुम्हारे इस प्रश्न का विवेचन नहीं कर पाता हूँ।

आहूय राजा कुशलैरनार्यै
र्दुष्टात्मभिर्नैकृतिकैः सभायाम्।
द्यूतप्रियैर्नातिकृतप्रयत्नः।
कस्मादयं नाम निसृष्टकामः।[14]

अर्थात जूआ खेलने में निपुण, अनार्य, दुष्टात्मा, कपटी तथा द्यूतप्रेमी धूर्तों ने राजा युधिष्ठिर को सभा में बुलाकर जूए का खेल आरम्भ कर दिया। इन्हें जूआ खेलने का अधिक अभ्यास नहीं है। फिर इनके मन में जूए की इच्छा क्यों उत्पन्न की गयी?

अशुद्धभावैर्निकृतिप्रवृत्तै
रबुध्यमानः कुरुपाण्डवाग्रयः।
सम्भूय सर्वेश्च जितोऽपि यस्मात्
पश्चादयं कैतवमभ्युपेतः।[15]

जिनके हृदय की भावना शुद्ध नहीं है, जो सदा छल और कपट में लगे रहते हैं, उन समस्त दुरात्माओं ने मिलकर इन भोले-भाले कुरु पाण्डव शिरोमणि महाराज युधिष्ठिर को पहले जूए में जीत लिया है, तत्पश्चात ये मुझे दांव पर लगाने के लिए विवश किये गये है।

तिष्ठन्ति चेमे कुरवः सभाया
मीशाः सुतानां च तथा स्नुषाणाम्।
समीक्ष्य सर्वे मम चापि वाक्यं
विब्रूत मे प्रश्नमिमं यथावत्।[16]

ये कुरुवंशी महापुरुष जो सभा में बैठे हुए हैं, सभी पुत्रों और पुत्रवधुओं के स्वामी हैं। (सभी के घर में पुत्र और पुत्रवधुएँ हैं) अतः ये सब लोग मेरे कथन पर अच्छी तरह विचार करके इस प्रश्न का ठीक-ठीक विवेचन करें।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा

न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत् सत्यं यच्छलेनानुविद्धम्।[17]

वह सभा नहीं है जहाँ वृद्ध पुरुष न हों, वे वृद्ध नहीं हैं जो धर्म की बात न बतावें, वह धर्म नहीं है जिसमें सत्य न हो और वह सत्य नहीं है जो छल से युक्त हो।

द्रोपदी के उपरोक्त प्रश्नों का सभा में किसी ने भी कोई उत्तर नहीं दिया। सब निरुत्तर थे। वह चारों ओर देख रही थी। महामनीषियों के हाथ नेत्रों पर थे। किसी में इतना साहस नहीं कि पांचाली की प्रज्ज्वलित अग्निमयी दृष्टि का सामना कर सके।

उसने महाराज धृतराष्ट्र की तरफ दृष्टि कर कहा- तात् धृतराष्ट्र! आपके जीवित रहते इतना बड़ा अधर्म इस गौरवशाली कुरुकुल में हो रहा है और आप मौन साधे बैठे हैं।'[18]

कोई उत्तर नहीं! सब मौन थे।

उसने पुनः महात्मा विदुर की तरफ सजल नेत्रों से देखा और कहा- "तात विदुर आप महात्मा हैं, धर्मज्ञ हैं। आप ही धर्म की व्याख्या कर सकते हैं। बताइए, जब आर्य युधिष्ठिर पहले स्वयं को हार गये तब उन्हें बाद में किसी को भी दांव पर लगाने का क्या अधिकार रहा? कैसे अधिकार रहा?... तात्! मैं महान तेजस्वी पांचालनरेश द्रुपद की पुत्री पांचाली, भरी सभा में आपसे ही न्याय करने का निवेदन कर रही हूँ... कृपया बताइये कि मैं दासी किस विधि के अन्तर्गत हुई?... किस नियम के अनुसार मुझे दासी कहा जा रहा है?... तात! आप ही कहें कि महाप्रतापी स्वर्गीय महाराज पाण्डु की पुत्रवधु- एक राजलक्ष्मी को अपरिचित पुरुषों से भरी राजसभा में लाकर इस प्रकार अपमानित करना क्या न्यायोचित है?.."[19]

"वत्से! द्रुपदनन्दिनी! इस दुष्ट दुर्योधन का अब काल आ गया है तभी इसकी बुद्धि विपरीत दिशा में जा रही है। मेरा निश्चित मत है कि स्वयं को हार जाने के पश्चात युधिष्ठिर को अधिकार नहीं रहा कि वे द्रुपदसुता को पण पर रखें। अनधिकारी व्यक्ति चाहे जिस धन को दांव पर लगा दे किन्तु

उसकी हार-जीत को मैं स्वप्न में हुई हार-जीत से अधिक महत्व नहीं देता। सभासद जन! यह गहन उत्तरदायित्व प्रत्येक सभासद पर आ पड़ा है। संसद के प्रत्येक सदस्य का यह धर्म है कि आपत्तिग्रस्त व्यक्ति की समस्या का समाधान निर्भीकता एवं निष्पक्षता से करे। साक्षी होते हुए भी गोकर्णों की भांति शिथिल और ढीले-ढाले होकर दोनों पक्षों की हाँ में हाँ मिलाना अनुचित है। आप लोग विचार करें, न्याय और अन्याय का विवेक करें अन्यथा समूची सभा पाप की भागी होगी!" विदुर गरजकर बैठ गये।[20]

तत्पश्चात धृतराष्ट्र पुत्र विकर्ण ने महात्मा विदुर की बात का समर्थन करते हुए बोला-

याज्ञसेन्या यदुक्तं तद् वाक्यं विब्रूत पार्थिवाः
अविवेकेन वाक्यस्य नरकः सद्य एव नः।[21]

भूमिपालों! द्रौपदी ने जो प्रश्न उपस्थित किया है, उसका आप लोग उत्तर दें। यदि इसके प्रश्न का ठीक-ठीक विवेचन नहीं किया गया तो हमें शीघ्र ही नरक भोगना पड़ेगा।

विब्रूत पृथिवीपाला वाक्यं मा वा कथंचन।
मन्ये न्याय्यं यदत्राहं तद्धि वक्ष्यामि कौरवाः।[22]

कौरवों तथा अन्य भूमिपालों! आप लोग द्रौपदी के प्रश्न पर किसी प्रकार का विचार प्रकट करें या न करें, मैं इस विषय में जो न्यायसंगत समझता हूँ, वह कहता हूँ।

"नरश्रेष्ठ भूपालों! राजाओं के चार दुर्व्यसन बताये गये है- आखेट, मद्यपान, द्यूत एवं विषयासक्ति। इनमें रत मनुष्य का कोई सम्मान नहीं करता। युधिष्ठिर द्यूत-आसक्त हैं और इस दुर्व्यसन में पड़कर उन्होंने द्रौपदी को पण पर लगा दिया। किन्तु विद्वज्जन! स्मरण रखें कि द्रुपदनन्दिनी एकमात्र युधिष्ठिर की पत्नी नहीं, पांचों पाण्डवों की समान रूप से पत्नी हैं। अतः अकेले युधिष्ठिर को कोई अधिकार नहीं कि वे द्रौपदी को स्वच्छन्दतापूर्वक दांव पर लगा दें। इसके अतिरिक्त.. युधिष्ठिर पहले स्वयं को हारे, तत्पश्चात द्रोपदी को! स्वयं को हार जाने के बाद मनुष्य के पास कुछ शेष नहीं रह जाता जिसे वह पण्य बना दे। और फिर सौबलि शकुनि ने युधिष्ठिर के ध्वस्त मनोबल का

लाभ उठाकर उन्हें उकसाय कि वे पत्नी को पण पर लगाएं। युधिष्ठिर इस दिशा में स्वयं प्रेरित नहीं हुए। अतः मेरी दृष्टि से द्रुपदनन्दिनी जुए में हारी हुई अथवा दासी कदापि नहीं।"[23]

विकर्ण का उद्‌गार सुनते ही कर्ण ने क्रोधित होकर उसका बांह पकड़कर बैठा लिया और बोला-

"मन्दबुद्धि! यह समझने की बात है कि जब युधिष्ठिर ने अपना सर्वस्व दांव पर लगा दिया, तो पत्नी भी तो सर्वस्व में ही सम्मिलित है। पुत्र, पत्नी एवं दास का अपना स्वतंत्र अधिकार नहीं होता। वे पूर्णतः अपने पिता, पति अथवा स्वामी के अधिकार में होते हैं। जब पति दास हो गया तो उसकी पत्नी का दासी होना स्वाभाविक है। और मूढ़! मैं देता हूँ तुझे और भी उत्तर। द्रौपदी पाण्डवों की सामान्य पत्नी है तथा उसे युधिष्ठिर ने पण पर रखा। किन्तु क्या उनके किसी भी भाई ने इसका विरोध किया? प्रतिवाद किया? नहीं। पाण्डवों ने मौन रहकर युधिष्ठिर के द्रौपदी को दांव पर लगाने के अधिकार को स्वीकार किया है। द्रौपदी दासी है और दासी को सभा में पकड़कर, घसीटकर, कैसे भी लाये जाने से धर्म का उल्लंघन नहीं होता।"[24]

तत्पश्चात भीमसेन गरज उठे और बोले-

अस्याः कृते मन्युरयं त्वयि राजन् निपात्यते।
बाहू ते सम्प्रधक्ष्यामि सहदेवाग्निमानय।।[25]

अर्थात राजन! द्रौपदी की इस दुर्दशा के लिये मैं आप पर ही अपना क्रोध छोड़ता हूँ। आपकी दोनों बाहें जला डालूँगा। सहदेव! आगे ले आओ। अर्जुन ने कहा-

न पुरा भीमसेन त्वमीदृशीर्वदिता गिरः।
परैस्ते नाशितं नूनं नृशंसैर्धर्मगौरवम्।[26]

भैया भीमसेन! तुमने पहले कभी ऐसी बातें नहीं कही थीं। निश्चय ही क्रूरकर्मा शत्रुओं ने तुम्हारी धर्म विषयक गौरव बुद्धि को नष्ट कर दिया है।

न सकामाः परे कार्या धर्ममेवाचरोत्तमम्।
भ्रातरं धार्मिकं ज्येष्ठं कोऽतिवर्तितुमर्हति।[27]

शुत्रओं की कामना सफल न करो, उत्तम धर्म का आचरण करो।

भला, अपने धर्मात्मा ज्येष्ठ भ्राता का अपमान कौन कर सकता है।

आहूतो हि परै राजा क्षात्रं व्रतमनुस्मरन्।
दीव्यते परकामेन तन्नः कीर्तिकरं महत्।[28]

महाराज युधिष्ठिर को शत्रुआं ने द्यूत के लिये बुलाया है; अतः ये क्षत्रियव्रत को ध्यान में रखकर दूसरों की इच्छा से जूआ खेलते हैं। यह हमारे महान यश का विस्तार करने वाला है।

एवमस्मिन् कृतं विद्यां यदि नाहं धनंजय।
दीप्तेऽग्नौ सहितौ बाहू निर्दहेयं बलादिव।[29]

अर्जुन! यदि मैं इस विषय में यह न जानता कि इनका यह कार्य क्षत्रिय धर्म के अनुकूल ही है, तो बलपूर्वक प्रज्ज्वलित अग्नि में इनकी दोनों बाहों को एक साथ ही जलाकर राख कर डालता।

तदनंतर कर्ण ने पुनः बोला -

“अच्छा, द्रुपदनन्दिनी! तुम बहुत धर्म-अधर्म की विवेचना में निपुण हो और तुम्हारे पति युधिष्ठिर तो साक्षात् धर्मराज ही हैं। तो क्यों न युधिष्ठिर ही निर्णय दें कि तुम दासी हो अथवा नहीं?” दुर्योधन ने कुटिलता से मुस्कुराते हुए एक नया जाल बिछाया।

घटनाक्रम ने अचानक एक रोचक मोड़ ले लिया था। लोग कौतूहल में थे। युधिष्ठिर कैसे कह सकते हैं कि द्रौपदी दासी नहीं! युधिष्ठिर को यह उद्घोषणा सार्वजनिक रूप से करनी पड़ेगी कि अब द्रौपदी पर उनका कोई अधिकार शेष नहीं। यह घोषणा कि द्रौपदी दासी है! यह घोषणा कि उसके साथ दासी जैसा व्यवहार किया जाये! सभा में उसके साथ व्यवहार किसी भी सीमा तक निकृष्ट क्यों न हो, उचित है!

अथवा युधिष्ठिर यह कह दें कि द्रौपदी दासी नहीं, तो... युधिष्ठिर का धर्म-राजस्व गया! युधिष्ठिर के अनजाने में उनकी समस्त धर्मनिष्ठा, प्रतिष्ठा, सम्मान, उनके प्रति लोगों के मन में पूज्यभाव आज के जुए में दांव पर लग गया था।

निश्चेष्ट बैठे युधिष्ठिर अस्थिर हो उठे! पाण्डव व्याकुल हो उठे।

‘कहें धर्मराज! स्पष्ट रूप से कहें। आपको द्रौपदी को दांव पर लगाने

का अधिकार था या नहीं?'[30]

तब महात्मा विदुर ने कहा-

द्रौपदी प्रश्नमुक्त्वैवं रोरवीति ह्यनाथवत्।
न च विब्रूत तं प्रश्नं सभ्या धर्मोऽत्र पीडयते।[31]

इस सभा में पधारे हुए भूपालगण! द्रुपद कुमारी कृष्णा यहां अपना प्रश्न उपस्थित करके इस तरह अनाथ की भांति रो रही है; परंतु आप लोग उसका विवेचन नहीं करते, अतः यहाँ धर्म की हानि हो रही है।

सभां प्रपद्यते ह्यार्तः प्रज्वलन्निव हव्यवाट्।
तं वै सत्येन धर्मेण सभ्याः प्रणमयन्त्युत।[32]

संकट में पड़ा हुआ मनुष्य अग्नि की भांति चिन्ता से प्रज्जवलित हुआ सभा की शरण लेता है, उस समय सभासदगण धर्म और सत्य का आश्रय लेकर अपने वचनों द्वारा उसे शान्त करते हैं।

धर्मप्रश्नमतो ब्रूयादार्यः सत्येन मानवः।
बिब्रूयुस्तत्र तं प्रश्नं कामक्रोधबलातिगाः।[33]

अतः श्रेष्ठ मनुष्य को उचित है कि वह धर्मानुकूल प्रश्न को सचाई के साथ उपस्थित करे और सभासदों को चाहिये कि वे काम-क्रोध के वेग से ऊपर उठकर उस प्रश्न का ठीक-ठीक विवेचन करें।

विकर्णेन यथाप्रज्ञमुक्तः प्रश्नो नराधिपाः।
भवन्तोऽपि हि तं प्रश्नं विब्रुवन्तु यथामतिः।[34]

राजाओं! विकर्ण ने अपनी बुद्धि के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर दिया है, अब आप लोग भी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उस प्रश्न का निर्णय करें।

यो हि प्रश्नं न विब्रूयाद् धर्मदर्शी सभां गतः।
अनृते या फलावाप्तिस्तस्याः सोऽर्धं समश्नुते।[35]

जो धर्मज्ञ पुरुष सभा में जाकर वहाँ उपस्थित हुए प्रश्न का उत्तर नहीं देता वह झूठ बोलने के आधे फल का भागी होता है।

फिर भी सभा निस्तब्ध थी। कोई कुछ कहने का साहस नहीं करता था। कर्ण पुनः बोल उठा-

त्रयः किलेमे ह्यधना भवन्ति
दासः पुत्रश्चास्वतन्त्रा च नारी।
दास्य पत्नी त्वधनस्य भद्रे
हीनेश्वरा दासधनं च सर्वम्।[36]

भद्रे द्रौपदी! दास, पुत्र और सदा पराधीन रहने वाली स्त्री- ये तीनों धन के स्वामी नहीं होते। जिसका पति अपने ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो गया है, ऐसी निर्धन दास की पत्नी और दास का सारा धन- इन सब पर उस दास के स्वामी का ही अधिकार होता है।

अन्यं वृणीष्व पतिमाशु भाविनि
यस्मातद् दास्यं न लभसि देवनेन।
अवाच्या वै पतिषु कामवृत्ति।
र्नित्यं दास्ये विदितं तत् तवास्तु।।[37]

सुन्दरी! अब तुम शीघ्र ही दूसरा पति चुन लो, जिससे द्यूतक्रीडा के द्वारा तुम्हें फिर किसी की दासी न बनना पड़े। पतियों के प्रति इच्छानुसार बर्ताव तुम जैसी स्त्री के लिये निन्दनीय नहीं है। दासीपन में तो स्त्री की स्वेच्छाचारिता प्रसिद्ध है ही, अतः यह दास्यभाव ही तुम्हें प्राप्त हो।

तदनंतर भीमसेन ने कर्ण की बातें सुनकर कहा-

राजन्! मुझे सूतपत्र कर्ण पर क्रोध नहीं आता। सचमुच ही दास धर्म वही है जो उसने बताया है। महाराज! यदि आप इस द्रौपदी को दांव पर लगाकर जूआ न खेलते तो क्या ये दुष्ट कौरव हम लोगों से ऐसी बात बोलते। तत्पश्चात भीमसेन की बात सुनकर दुर्योधन ने अपनी जांघ का वस्त्र हटाकर द्रौपदी की ओर मुस्कुराते हुए देखते हुए बोला महाराज युधिष्ठिर! भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव आपकी आज्ञा के अधीन हैं। आप ही द्रौपदी के प्रश्न पर कुछ बोलिये। आप पांचाली को हारा हुआ मानते हैं या नहीं। इसके बाद भीमसेन क्रोधित होकर गरज उठे-

पितृभिः सह सालोक्यं मा स्म गच्छेद् वृकोदरः।
यद्येतमूरुं गदया न भिन्द्यां ते महाहवे।[38]

'दुर्योधन! यदि महासमर में तेरी इस जांघ को मैं अपनी गदा से न

तोड़ डालूँ तो मुझे भीमसेन को अपने पूर्वजों के साथ उन्हीं के समान पुण्यलोकों की प्राप्ति न हो।'

महात्मा विदुर बोले- धृतराष्ट्र के पुत्रों! तुम लोगों ने मर्यादा का उल्लंघन करके यह जूए का खेल किया है! तभी तो तुम भरी सभा में स्त्री को लाकर उसके लिये विवाद कर रहे हो। तुम्हारे योग और क्षेम दोनों पूर्णतया नष्ट हो रहे हैं। आज सब लोगों को मालूम हो गया कि कौरव पापपूर्ण मंत्रणा ही करते हैं।

कौरवों! तुम धर्म की इस महत्ता को शीघ्र ही समझ लो, क्योंकि धर्म का नाश होने पर सारी सभा को दोष लगता है। यदि जूआ खेलने वाले राजा युधिष्ठिर अपने शरीर को हारे बिना पहले ही इस द्रौपदी को दांव पर लगाते तो वे ऐसा करने के अधिकारी हो सकते थे।

तत्पश्चात दुर्योधन बोला- द्रौपदी! मैं भीम, अर्जुन एवं नकुल-सहदेव की बात मानने के लिये तैयार हूँ। ये सब लोग कह दें कि युधिष्ठिर को तुम्हें हारने का कोई अधिकार नहीं था, फिर तुम दासीपन से मुक्त कर दी जाओगी।

अर्जुन ने कहा- कुन्तीनंदन महात्मा धर्मराज राजा युधिष्ठिर पहले तो हमें दांव पर लगाने के अधिकारी थे ही, किंतु जब वे अपने शरीर को ही हार गये, तब किसके स्वामी रहे? इस बात पर सब कौरव विचार करें।

सभा में दुःशासन, द्रोपदी का वस्त्र खींचता जाता था। परन्तु भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्र प्रकट होते जाते थे। वहाँ बड़ा भयंकर कोलाहल मच गया। यह दृश्य देखकर सब लोग द्रोपदी की प्रशंसा और दुःशासन की निंदा करने लगे तथा दुर्योधन को धिक्कारने लगे। दुःशासन ज्यों-ज्यों वस्त्र खींचता जाता था, रंग-बिरंगे वस्त्र बढ़ते ही जाते थे। अंत में वह थककर एवं शर्मिन्दा होकर गिर पड़ा। पर द्रौपदी निर्वस्त्र न हो सकी। यह द्वारिकाधीश भगवान श्रीकृष्ण के आशीर्वचन से संभव हो सका था।

तत्समय भीमसेन गरज उठे और बोले- भरतवंशी राज राजेश्वर! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इन सब शत्रुओं को यहीं समाप्त कर डालूं। उनकी भौंहें तनी थीं और प्रलय काल में मूर्तिमान यमराज की भांति उनकी तरफ देखना भी कठिन हो रहा था। तदनंतर धर्मराज युधिष्ठिर ने उनसे कहा- ऐसा

न करो! शांतिपूर्वक बैठ जाओ। महाराज युधिष्ठिर हाथ जोड़कर अपने ताऊ धृतराष्ट्र के पास गये और बोले राजन! आप हमारे स्वामी हैं। आज्ञा दीजिये हम क्या करें? हम लोग सदा आपकी आज्ञा के ही अधीन रहना चाहते हैं। इस पर धृतराष्ट्र ने कहा- अजातशत्रु! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी आज्ञा के हारे हुए धन के साथ बिना किसी विघ्न बाधा के कुशलपूर्वक अपनी राजधानी को लौट जाओ। तात युधिष्ठिर! तुम धर्म के सूक्ष्मगत को जानते हो, तुमने सदैव बड़े-बूढ़ों की उपासना की है।

उपरोक्त घटनाक्रम के पश्चात राजा धृतराष्ट्र की अग्निशाला में एक गीदड़ आकर जोर से हुंआ-हुंआ करने लगा। उस शब्द को लक्ष्य करके सब तरफ गदहे रेंकने लगे और गिद्ध आदि भयकंर पशु अशुभ सूचक कोलाहल करने लगे। इस स्वर को महात्मा विदुर और महारानी गांधारी ने सुना और उन्होंने उन दोनों ने महाराज धृतराष्ट्र से निवेदन किया। तत्पश्चात धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा-

हतोऽसि दुर्योधन मन्दबुद्धे
यस्त्वं सभायां कुरुपुङ्गवानाम्।
स्त्रियं समाभाषसि दुर्विनीत
विशेषतो द्रौपदीं धर्मपत्नीम्।[39]

अर्थात् रे मन्दबुद्धि दुर्योधन! तू तो जीता ही मारा गया। दुर्विनीत! तू श्रेष्ठ कुरुवंशियों की सभा में अपने ही कुल की महिला एवं विशेषतः पाण्डवों की धर्मपत्नी को ले आकर उससे पापपूर्ण बातें कर रहा है।

तत्पश्चात वे अपने बंधु-बांधवों को विनाश से बचाने के उद्देश्य से पांचाल कुमारी कृष्णा को सांत्वना देने हुए इस प्रकार कहा-

वरं वृणीष्व पांचालि मत्तो यदभिवांछसि।
वधूनां हि विशिष्टा मे त्वं धर्मपरमा सती।[40]

बहू द्रौपदी! तुम मेरी पुत्रवधुओं में सबसे श्रेष्ठ एवं धर्मपरायणा सती हो। तुम्हारी जो इच्छा हो, उसके अनुसार मुझसे वर माँग लो।

ददासि चेत् वरं मह्यं वृणोमि भरतर्षभ।
सर्वधर्मानुगः श्रीमानदासोऽस्तु युधिष्ठिरः।

मनस्विनमजानन्तो मैवं ब्रूयुः कुमारकाः।
एष वै दासपुत्रो हि प्रतिविन्ध्यं ममात्मजम्।[41]

भरतवंश शिरोमणे! यदि आप मुझे वर देते हैं तो मैं यही माँगती हूँ कि सम्पूर्ण धर्म का आचरण करने वाले राजा युधिष्ठिर दास भाव से मुक्त हो जायें। जिससे मेरे मनस्वी पुत्र प्रतिविन्ध्य को अज्ञानवश दूसरे राजकुमार ऐसा न कह सकें कि यह 'दासपुत्र' है।

राजपुत्रः पुरा भूत्वा यथा नान्यं पुमान् क्वचित्।
राजभिर्लालितस्यास्य न युक्ता दासपुत्रता।[42]

जैसे पहले राजकुमार होकर फिर कोई मनुष्य कभी दासपुत्र नहीं हुआ है, उसी प्रकार राजाओं के द्वारा जिसका लालन-पालन हुआ है, उस मेरे पुत्र प्रतिविन्ध्य का दासपुत्र होना कदापि उचित नहीं है।

एवं भवतु कल्याणि यथा त्वमभिभाषसे।
द्वितीयं ते वरं भद्रे ददानि वरयस्व ह।
मनो हि मे वितरति नैकं त्वं वरमर्हसि।[43]

कल्याणि! तुम जैसा कहती हो, वैसे ही हो। भद्रे! अब मैं तुम्हें दूसरा वर देता हूँ, वह भी माँग लो। मेरा मन मुझे वर देने के लिए प्रेरित कर रहा है कि तुम एक ही वर पाने के योग्य नहीं हो।

सरथौ सधनुष्कौ च भीमसेनधनंजयौ।
यमौ च वरये राजन्नदासान् स्ववशानहम्।[44]

राजन्! मैं दूसरा वर यह माँगती हूँ कि भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव अपने रथ और धनुष-बाण सहित दास भाव से रहित एवं स्वतंत्र हो जायें।

तथास्तु ते महाभागे यथा त्वं नन्दिनीच्छसि।
तृतीयं वरयास्मत्तो नासि द्वाभ्यां सुसत्कृता।
त्वं हि सर्वस्नुषाणां मे श्रेयसी धर्मचारिणी।[45]

महाभागे! तुम अपने कुल को आनन्द प्रदान करने वाली हो। तुम जैसा चाहती हो, वैसा ही हो। अब तुम तीसरा वर माँगो। तुम मेरी सब पुत्रवधुओं में श्रेष्ठ एवं धर्म का पालन करने वाली हो। मैं समझता हूँ, केवल दो

वरों से तुम्हारा पूरा सत्कार नहीं हुआ।

लोभो धर्मस्य नाशाय भगवन् नाहमुत्सहे।

अनर्हा वरमादातुं तृतीयुं राजसत्तम्।[46]

भगवन्! लोभ धर्म का नाशक होता है, अतः अब मेरे मन में वर माँगने का उत्साह नहीं है। राजशिरोमणे! तीसरा वर लेने का मुझे अधिकार भी नहीं है।

एकमाहुर्वैश्यवरं द्वौ तु क्षत्रस्त्रिया वरौ।

त्रयस्तु राज्ञो राजेन्द्र ब्राह्मणस्य शतं वराः।[47]

राजेन्द्र! वैश्य को एक वर माँगने का अधिकार बताया गया है, क्षत्रिय की स्त्री दो वर माँग सकती है, क्षत्रिय को तीन वर तथा ब्राह्मण को सौ वर लेने का अधिकार है।

पापीयांस इमे भूत्वा संतीर्णाः पतयो मम।

वेत्स्यन्ति चैव भद्राणि राजन् पुण्येन कर्मणा।[48]

राजन्! ये मेरे पति दासभाव को प्राप्त होकर भारी विपत्ति में फँस गये थे। अब उससे पार हो गये। इसके बाद पुण्य कर्मों के अनुष्ठान द्वारा ये लोग स्वयं कल्याण प्राप्त कर लेंगे।

समूह संचार को प्रभावित करने वाले कारक

समूह संचार एवं समूह की निर्णय प्रक्रिया को कुछ कारक प्रभावित करते हैं। समूह संचार का परिणाम समूह की निर्णय प्रक्रिया के रूप में सामने आता है। सामाजिक कारक वास्तव में समूह व्यवहार, समूह की निर्णय प्रक्रिया तथा समूह संचार प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इस कारण समूह संचार को प्रभावित करने वाले कारकों को जानना अति आवश्यक है। समूह संचार को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक इस प्रकार हैं-

(क) व्यक्तित्व

प्रत्येक समूह की एक सदस्यता होती है। सदस्यता की प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के लोग समूह के सदस्य होते हैं। समूह के सभी सदस्यों का व्यक्तित्व परस्पर भिन्न-भिन्न होता है। व्यक्तित्व समूह के सदस्यों के

पारस्परिक एवं अन्तःक्रियाओं के परिणामस्वरूप निर्मित होता है। प्रत्येक सदस्य अपनी प्रकृति, प्रवृत्ति, मूल्य, धारणा आदि के अनुरूप समूह में अपनी भूमिका निभाता है। जैसे कुछ व्यक्ति संकोची तथा शान्त प्रकृति के होते हैं। कुछ व्यक्ति इसके ठीक विपरीत प्रकृति के होते हैं। इस परस्पर भिन्नता युक्त स्थिति में जो व्यक्ति तर्क-वितर्क की क्षमता रखते हैं अथवा जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है वह समूह सम्प्रेषण में सफल रहता है। प्रभावशाली व्यक्तित्व समूह संचार के संचालन में भी महत्वपूर्ण होता है।

समूह में व्यक्तियों का भी संघर्ष होता है जिसके कारण कभी-कभी कठिनाई आती है। इसके अतिरिक्त समूह की यह विशेषता होती है कि यह स्वयं एक समूह-व्यक्तित्व का निर्माण करता है, इसी के कारण निर्णय आदि सुचारू रूप से हो जाते हैं। समूह के व्यक्तित्व आदि का निर्धारण समूह के सदस्यों के व्यक्तित्व से जुड़ा होता है तथा इस प्रकार व्यक्तित्व समूह संचार की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

(ख) लगाव

हर समूह अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है। इसी व्यक्तित्व के कारण समाज में समूह लोकप्रिय अथवा अलोकप्रिय होता है। संचार विशेषज्ञों के अनुसार समूह में लगाव अथवा प्रतिबद्धता के कारण समूह में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। लगाव अथवा प्रतिबद्धता एक ऐसी आत्मगत संचार प्रक्रिया है जिसके कारण समूह का सदस्य अपने को एक टीम का सदस्य मानकर चलता है। इसके विपरीत की स्थिति में समूह मात्र व्यक्तियों का संग्रह जैसा ही होता है। लगाव अथवा प्रतिबद्धता समूह का महत्वपूर्ण आधार है। इसके लिए समूह के सदस्यों में संतुष्टि का होना आवश्यक है। इस संतुष्टि के लिए अन्तर्वैयक्तिक संचार अधिक आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है।

प्रतिबद्धतायुक्त समूह अपने सदस्यों को उचित प्रतिदेय अथवा पुरस्कार देता है। ऐसी अवस्था में समूह के सदस्य अधिक से अधिक भागीदारी करते हैं तथा समूह अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। लगाव बढ़ाने के लिए समूह में पारस्परिक संचार प्रक्रिया के आधार पर मित्रता, सम्मान आदि प्रकार के मनोवैज्ञानिक युक्तियों की भी सहायता ली जाती है। पुरस्कार, प्रशंसा आदि

भी इसी प्रक्रिया के अंग है इस प्रकार स्पष्ट है कि लगाव अथवा प्रतिबद्धता समूह के विकास के लिए आवश्यक है।

(ग) सहयोग

समूह संचार के लिए समूह के सदस्यों में आपसी सहयोग का होना आवश्यक होता है। जिस समूह के सदस्यों में आपस में सहयोग नहीं होता वहाँ समूह संचार सुचारू रूप से संचालित नहीं हो पाता। समूह संचार की सफलता समूह के सदस्यों के आपसी सहयोग पर निर्भर करती है।

(घ) संघर्ष

समूह संचार की प्रक्रिया को संघर्ष भी प्रभावित करता है। सौहार्दपूर्ण वातावरण में होने वाले समूह संचार में सकारात्मक प्रवृत्तियों का अधिक्य होता है। इसके विपरीत की स्थिति में समूह संचार नकारात्मक प्रवृत्ति का होता है। यदि समूह में नकारात्मक संचार होता है तो समूह के सदस्यों के बीच विवाद उत्पन्न हो जाता है जिससे समूह में कटुता पैदा हो जाती है और यह कटुता समूह संचार को नकारात्मकता की ओर ले जाती है। संघर्ष समूह संचार में एक प्रकार की बाधा उत्पन्न करने का कार्य करता है।

यदि संघर्ष या मतभेद की स्थिति मूल्य परक तथा तथ्य परक हो और उसका उचित समाधान प्राप्त कर लिया जाए तो निश्चित ही समूह का विकास हो सकेगा। यह समाधान समूह के मध्य परस्पर वार्ता आदि के द्वारा सम्पन्न संचार की प्रक्रिया के आधार पर प्राप्त किया जा सकता है।

समय रहते यदि समूह में व्याप्त मतभेद या संघर्ष का पता चल जाए साथ ही साथ इसके स्रोत का भी ज्ञान हो जाए ऐसी स्थिति में परस्पर वार्ता एवं निर्णय के आधार पर संघर्ष की स्थिति को हम टाल सकते हैं। लेकिन इसके लिए समूह के सदस्यों में संचार आवश्यक होता है।

(ड.) नियमों की एकरूपता

समूह संचार को नियमों की समानता या एकरूपता भी प्रभावित करती है। इससे समूह संचार प्रक्रिया सकारात्मक रूप से आगे बढ़ती है और संचालक को निर्णय करने में सुविधा होती है। नियमों की एकरूपता के

अनुपालन से समूह में संघर्ष या टकराव की स्थिति भी नियंत्रित रहती है।

(च) नेतृत्व

"नेतृत्व वह व्यवहार है जो कि दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों को उससे कहीं अधिक प्रभावित करता है जितना कि उसका व्यवहार नेता को प्रभावित करता है।" लैपईयर एवं फ्रांसबर्थ के इस विचार से इस बात का संकेत मिलता है कि नेता वह व्यक्ति होता है जो दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार का नेतृत्व करता है। दूसरे लोग उसका अनुकरण करते हैं और जो कुछ वह करता है वह दूसरों पर अधिक सीमा तक प्रभाव डालता है। समूह संचार का नेतृत्वकर्ता यदि नेतृत्व के उच्च गुणों से युक्त है तो वह समूह को सुचारू रूप से प्रभावित करने में सक्षम होता है।

समूह संचार की विशेषताएँ

समूह संचार की निम्नलिखित विशेषताएँ होती है-

1. समूह संचार में न्यूनाधिक मात्रा में व्यक्तियों की भागीदारी होती है। प्रत्येक व्यक्ति निजी तौर पर संचार प्रक्रिया में सहभागी होता है।
2. समूह के सदस्यों के बीच विचारों एवं अनुभवों का परस्पर आदान-प्रदान होता है। जिससे समूह के सदस्यों के बीच आपसी संबंध विकसित होते हैं तथा वे एक-दूसरे के निकट आते हैं।
3. यह समस्याओं के निदान के लिए परस्पर विचार-विमर्श की एक प्रक्रिया है। इसमें सम्प्रेषक एवं श्रोता में निकटता होती है।
4. समूह संचार का उद्देश्य समूह चेतना के विकास के साथ-साथ समूह के सदस्यों में दायित्व बोध भी कराना होता है।
5. समूह संचार में फीडबैक भी तुरन्त प्राप्त होता रहता है।
6. समूह संचार में संचार प्रक्रिया प्रत्यक्ष होती है क्योंकि समूह के सभी सदस्य आमने-सामने होते हैं और उनके बीच आमने-सामने का सम्बन्ध भी होता है। सम्बन्ध आमने-सामने का होने से उनमें पारस्परिक घनिष्ठता होती है।
7. समूह संचार में समूह के सदस्य समूह की समस्या के मूल उद्देश्यों के अनुरूप सन्देश प्रेषित करते हैं।

8. समूह संचार अन्तर्वैयक्तिक संचार की भाँति न तो सीमित श्रोताओं वाला होता है और न ही जन संचार की भाँति बिखरे श्रोताओं वाला होता है। सामान्य रूप से समूह संचार अन्तर्वैयक्तिक और जनसंचार से भिन्न प्रकृति का होता है।

9. समूह संचार संगठनात्मक संचार से भी भिन्न होता है क्योंकि प्रत्यक्ष संचार, समूह संचार की आवश्यकता शर्त है जबकि संगठनात्मक संचार में प्रत्यक्ष संचार आवश्यक नहीं है।

10. समूह संचार में समूह की स्थिति एवं संरचना के आधार पर औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों प्रकार के संचार होते हैं।

11. समूह संचार में एक व्यक्ति लीडर होता है जो संचार प्रक्रिया को पूरी तरह से संचालित करता है। समूह में टकराव की स्थिति होने पर लीडर ही निर्णायक की भूमिका का निर्वहन करता है।

समूह संचार में श्रोता और सम्प्रेषक के मध्य आमने-सामने संचार प्रक्रिया होती है। पूरा का पूरा श्रोता समूह पूर्व निश्चय या सूचना के आधार पर एकत्रित होता है या श्रोता समूह अपने मन्तव्य के आधार पर एकत्रित होता है या श्रोता समूह अपने मन्तव्य के अनुसार सम्प्रेषक तक जाता है। ''समूह संचार का प्रत्येक सदस्य सम्प्रेषक से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में अवगत होता है।''

सन्दर्भ

1. समाजशास्त्र, रविन्द्रनाथ मुकर्जी एवं भरत अग्रवाल
2. सम्प्रेषण : प्रतिरूप एवं सिद्धांत, डॉ. श्रीकांत सिंह, भारती पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, फैजाबाद
3. संचार के मूल सिद्धांत- डॉ. ओमप्रकाश सिंह, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नईदिल्ली
4. महाभारती, चित्रा चतुर्वेदी 'कार्तिका', पृ. 121
5. महाभारती, चित्रा चतुर्वेदी 'कार्तिका', पृ. 121
6. महाभारती, चित्रा चतुर्वेदी 'कार्तिका', पृ. 121

7. महाभारती, चित्रा चतुर्वेदी 'कार्तिका', पृ. 122
8. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 67, श्लोक 40
9. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 67, श्लोक 41
10. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 67, पृ. 1022
11. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 67, श्लोक 47
12. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 67, श्लोक 48
13. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 67, श्लोक 49
14. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 67, श्लोक 50
15. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 67, श्लोक 51
16. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 67, श्लोक 52
17. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 67, पृ. 1023-1024
18. महाभारत, सभापर्व पृ. 126
19. वही, पृ. 126
20. वही, पृ. 126
21. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 68, श्लोक 12
22. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 68, श्लोक 19
23. वही, पृ. 127
24. वही, पृ. 127
25. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 68, श्लोक संख्या 6
26. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 68, श्लोक संख्या 7
27. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 68, श्लोक संख्या 8
28. महाभारत, सभापर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 68, श्लोक संख्या 09
29. महाभारत, सभा पर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 68, श्लोक संख्या 10
30. वही, पृ. 127- 128
31. महाभारत, सभापर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 68, श्लोक 59
32. महाभारत, सभापर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 68, श्लोक 60
33. महाभारत, सभापर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 68, श्लोक 61
34. महाभारत, सभापर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 68, श्लोक 62

35. महाभारत, सभापर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 68, श्लोक 63
36. महाभारत, सभापर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 71, श्लोक 1
37. महाभारत, सभापर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 71, श्लोक 3
38. महाभारत, सभापर्व (द्यूतपर्व), अध्याय 71, श्लोक 14
39. महाभारत, सभा पर्व, द्यूतपर्व, अध्याय 71, श्लोक संख्या 25
40. वही, श्लोक संख्या 27
41. वही, श्लोक संख्या 28-29
42. वही, श्लोक संख्या 30
43. वही, श्लोक संख्या 31
44. वही, श्लोक संख्या 32
45. वही, श्लोक संख्या 33
46. वही, श्लोक संख्या 34
47. वही, श्लोक संख्या 35
48. वही, श्लोक संख्या 36
49.. सम्प्रेषण विधा- दयाराम विश्वकर्मा
50. संचार माध्यमों का प्रभाव, ओमप्रकाश सिंह
51. Roberge Gaston, Mediation the action of the Media in our society, Manohar Book Service, Delhi
52. Larry L Barker, Communication, Prentice Hall Inc., Englewood, Cliffs, New Jersey, 1978.

अध्याय 8

स्वप्न संचार

स्वप्न में प्रायः व्यक्ति को रजोगुण और तमोगुण दबा लेते हैं। वह कामनायुक्त होकर दूसरे शरीर को प्राप्त हुए की भांति विचरता है। व्यक्ति में ज्ञान का आभास करने से उसमें जागने की आदत होती है। तत्पश्चात विचार करने के लिए जागना अनिवार्य हो जाता है। जो व्यक्ति तत्वज्ञान प्राप्त कर लेता है वह ब्रह्म में निरंतर जागता रहता है। अब प्रश्न उठता है कि जो देहादि स्वप्न में दिखाई देते हैं, क्या है? (सत्य है या असत्य। यदि कहें कि सत्य है तो ठीक नहीं, क्योंकि) स्वप्न अवस्था में सब कुछ विषयों से सम्पन्न सा दिखाई देने पर भी वास्तव में वहाँ कोई विषय नहीं होता। समस्त इन्द्रियाँ उस समय मन में विलीन हो जाती है। देहाभिमानी व्यक्ति उन्हीं इन्द्रियों से देहधारी जैसा बर्ताव करता है और यदि कहें कि स्वप्न के पदार्थ असत्य है तो यह भी ठीक नहीं। क्योंकि जो सर्वदा असत्य है, जैसे आकाश पुष्प तो उसकी प्रकृति ही नहीं होती।

अन्नाह को न्त्वयं भावः स्वप्ने विषयवानिव।
पत्नीनैरिन्द्रियैर्देही वर्तते देहवानिव।।[1]

स्वप्न में देहभिमानी व्यक्ति अपने इन्द्रियों से देहधारी जैसा व्यवहार करता है वह अलग देह के रूप में उपस्थित नहीं होता। इसीलिये संचार की इस प्रक्रिया में अन्य कोई देहधारी व्यक्ति नहीं होता। इसीलिये इसे आत्मगत संचार कहा जाता है। कभी-कभी व्यक्ति स्वप्न में किसी अन्य देहधारी का स्वप्निल दर्शन नहीं करता, बल्कि वह किसी वस्तु का ही दर्शन करता है।

इस संदर्भ में महाभारत में यह उल्लेख किया गया है कि-

इन्द्रियाणां श्रमात् स्वप्नमाहुः सर्वगतं बुधाः।
मनसस्त्वप्रलीनत्वात् तत् तदाहुर्निदर्शनम्।।[2]

(अर्थात विद्वान महर्षियों का कहना है कि जागृत अवस्था में निरंतर शब्द आदि विषयों को ग्रहण करते-करते श्रोता आदि इन्द्रियाँ जब थम जाती

हैं, तब सभी प्राणियों के अनुभव में आने वाला स्वप्न दिखाई देने लगता है। उस समय इन्द्रियों के लय होने पर भी मन का लय नहीं होता है। इसीलिये वह समस्त विषयों का जो मन में अनुभव करता है, वही स्वप्न कहलाता है। इस विषय में प्रसिद्ध दृष्टांत बतलाया गया है-

कार्य व्यासक्तमनसः संकल्पो जाग्रतो ह्यपि।
यद्वन्मनोरथै स्वप्ने तद्वन्मनोगतम्।।[3]

(अर्थात जैसे जागृत अवस्था में विभिन्न कार्यों में आसक्त चित्र हुए मनुष्य के संकल्प मनोराज्य की ही विभूति है, उसी प्रकार स्वप्न के भाव मन से ही सम्बन्ध रखते हैं। इस प्रकार स्वप्न संचार में निम्नलिखित बातें ध्यातव्य है-

1. कामनाओं में जिनका मन आसक्त है वह पुरुष स्वप्न में असंख्य संस्कारों के अनुसार दृश्यों को देखता है। यद्यपि वे समस्त संस्कार उसके मन में ही छिपे रहते हैं।

2. कर्मों के अनुसार सत्वादि गुणों में से यदि यह सत्व, रज या तम जो कोई भी गुण प्राप्त होता है उससे मन पर जब जैसे संस्कार पड़ते हैं, अथवा जब जिस कर्म से मन भावित होता है उस समय सूक्ष्म भूत स्वप्न में वैसे ही आकार प्रकट कर देते हैं।

3. स्वप्न का दर्शन होते ही सत्व, तम, रज, गुण यथायोग्य सुख-दुख रूप फल का अनुभव कराने के लिए स्वप्नदर्शी के पास आ पहुँचते हैं।

4. मनुष्य स्वप्न में अज्ञानवश बात, पित्त या कफ की प्रधानता से युक्त तथा काम, मोह आदि राजस, तमस भावों से व्यक्त विविध प्रकार के शरीरों का दर्शन करते हैं।

5. कभी-कभी मनुष्य जागृत अवस्था में जो-जो संकल्प करता है स्वप्न अवस्था में उसका मन हर्षपूर्वक उसी-उसी संकल्प को पूर्ण होता हुआ देखता है।

6. मन की सर्वत्र अबाध गति है। वह अपने अधिष्ठान भूत आत्मा में ही प्रभाव से सम्पूर्ण भूतों में व्याप्त है। अतः आत्मा को अवश्य जानना चाहिए।

7. स्वप्न दर्शन का द्वारभूत जो स्थूल मानव देह है वह सुसुप्ति अवस्था में मानव देह में लीन हो जाता है। उसी देह का आश्रय से मन अत्यन्त सदसत्वस्वरूप एवं साक्षीभूत आत्मा को प्राप्त होता है। वही आत्मा सम्पूर्ण

भूतों का आत्मभूत है।

स्वप्न में व्यक्ति केवल देहधारी जीवों का ही दृश्य नहीं देखता। वह कभी-कभी अनेक प्रकार के निर्जीव पदार्थों का भी दर्शन करता है। जैसे कभी-कभी व्यक्ति स्वप्न में तालाब, नदी, वर्षा, तूफान स्वर्ण, मकान आदि का भी दर्शन करता है। यदि व्यक्ति जाग्रत अवस्था में कोई अच्छा संकल्प करता है तो उसे स्वप्न में भी वैसा ही दिखाई देता है। किंतु यह सदैव हो ही यह आवश्यक नहीं होता है। वस्तुतः स्वप्न के भाव भी मन से ही सम्बन्ध रखते हैं। मन सदैव चंचल होता है। इसीलिये कभी-कभी मन की चंचलता के कारण स्वप्न में भी चंचलता दृष्टिगोचर होता है। जब शरीरधारी व्यक्ति इन्द्रियों सहित निद्रित हो जाता है तब उसका सूक्ष्म शरीर आकाश में वायु के समान सर्वत्र विचरण करने लगता है। अर्थात वह स्वप्न देखने लगता है। वह जागृत अवस्था की भांति स्वप्न में भी यथोचित रीति से दृश्य वस्तुओं को देखता है तथा स्पृश्य पदार्थों का स्पर्श करता है। सारांश यह है कि वह सम्पूर्ण विषयों का जागृत के समान ही अनुभव करता है। फिर सुशुप्ति अवस्था होने पर विषय ज्ञान में असमर्थ सम्पूर्ण इन्द्रियाँ अपने-अपने स्थान में उसी प्रकार विधिवत लीन हो जाती हैं। स्वप्न अवस्था में अपने-अपने स्थानों में स्थिर हुई सम्पूर्ण इन्द्रियों की समस्त गतियों को आक्रांत करके जीवात्मा सूक्ष्म विषयों में विचरण करता है। प्रायः स्वप्न याद नहीं रहते। परन्तु ऐसा भी नहीं है कि स्वप्न का कोई प्रयोजन या उपयोगिता नहीं है। अभी वैज्ञानिकों ने जो स्वप्न पर अनुसंधान किया है जिसका निष्कर्ष इस प्रकार है-

1. डर पर काबू करने की ताकत देते हैं स्वप्न

अंती रेवॉन्सू की थ्रेट सिम्युलेशन थ्योरी बताती है कि लोगों के अंदर जो डर छिपे हैं वे सपने में उन्हीं खतरों को अलग रूप में देखते हैं। ऐसा इसलिये कि कभी कोई खतरा आए भी तो उन्हें सर्वाइव करने में कोई दिक्कत न हो। सपने इस डर से बाहर निकालने की कोशिश करते हैं। सपने अपने डर से दूर भगाने में मदद देते हैं।

2. मन को शांत और तनाव दूर करते हैं।

प्रोफेसर रोजौलिंड कार्टराइट ने शोध से साबित किया है कि सपने

देखने से तनाव कम हो जाता है। ये एक तरह से इंटर्नल थेरोपिस्ट का काम करते हैं। ये पिछली भावनाओं के साथ दोबारा जोड़ते हैं। इसी दौरान आप अपनी उस भावना पर दोबारा काम करते हैं जिससे सुबह तक असर काफी कम हो जाता है।

3. याददाश्त तेज करते हैं।

स्वप्न हमारी सीखने की क्षमता बढ़ाते हुए याददाश्त भी पुख्ता कर देते हैं। शोधकर्ता रॉबर्ट स्टिकगोल्ड कहते हैं कि नई जानकारी को प्रोसेस करना और समझने का दिमाग का ये अपना तरीका है। वे कहते हैं कि सपने बुरे हो सकते हैं, लेकिन सपने देखना बुरा नहीं होता है।

4. परिस्थिति का सामना करना सिखाते हैं

फिजिकल के अलावा इमोशनल हेल्थ पर भी सपने गहरा असर करते हैं। शोधकर्ता मोहकैमसिन देन बोअर ने सुरिनामीज ट्राइब्स पर शोध किया और जाना कि सपने देखकर ही वे मुश्किल परिस्थितियों का सामना कर पाते थे। ऐसे निर्णय भी ले पाते थे जो उनके जीवन में कई तरह के जरूरी बदलाव लाने के लिये आवश्यक थे।

5. कई बार रचनात्मक प्रेरणा भी देते हैं

पॉल मैकार्टनी कहते हैं कि 1965 में उनके गाने 'येस्टरडे' की धुन उन्होंने अपने सपने में ही सुनी थी। ऐसे कई कलाकार हैं, जो सपने देखकर ही काम करने के लिए प्रेरित हुए हैं।

इस प्रकार स्वप्न में भी संचार की प्रक्रिया होती है। इसका हमारे जीवन में बहुत महत्व है। संचार की यह प्रक्रिया काल्पनिक नहीं है। वरन सत्य है। इसके हमें अनुभव हैं। स्वप्न में संचार की प्रक्रिया में मनुष्य को कभी-कभी सुखानुभूति होती है तो कभी-कभी ऐसे स्वप्न भी दृष्टिगोचर होते हैं जिससे वह भयंकर रूप से भयभीत हो जाता है। कभी-कभी स्वप्न सामान्य भी दिखाई देते हैं। स्वप्न संचार का महाभारत में भी कई उदाहरण मिलते हैं। इसे हम कुछ दृष्टांतों के द्वारा स्पष्ट कर रहे हैं।

दृष्टांत- पाण्डवों का द्वैतवन से काम्यक वन में प्रस्थान

एक दिन रात्रि में जब धर्मराज युधिष्ठिर द्वैतवन में सो रहे थे तो

उन्होंने स्वप्न में देखा कि वन के सिंह, बाघ आदि हिंसक पशु अश्रुपूरित नेत्रों एवं रुधे गले से थर-थर कांपते हुए उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हैं। धर्मराज युधिष्ठिर ने उनसे पूछा- "आप लोग कौन हैं? क्या कहना चाहते हैं? आपकी क्या इच्छा है?"

पशुओं ने कहा-

वयं मृगा द्वैतवने हतशिष्टास्तु भारत।
नोत्सीदेम, महाराज, क्रियतां वासपर्ययः।
भवतो भ्रातरः शूराः सर्वऐवास्त्र कोविदा।
कुलान्यल्पावशिष्टानि कृतवन्तो बनौकसाम्।।[4]

(भारत! हम द्वैतवन के पशु हैं। आप लोगों के मारने से हमारी इतनी ही संख्या शेष रह गई है। महाराज! हमारा सर्वथा संहार न हो जाय, इसके लिये आप अपना निवास स्थान बदल दीजिये। आप के सभी भाई शूरवीर एवं अस्त्र विद्या के पंडित हैं। इन्होंने हम वनवासी हिंसक पशुओं के कुलों को थोड़ी ही संख्या में जीवित छोड़ा है।)

वीजभूता वयं केचिद्वशिष्टा महामते।
विवर्धेमहि राजेन्द्र प्रसादात् ते युधिष्ठिर।।[5]

(महामते! हम सिंह, बाघ आदि पशु थोड़ी सी संख्या में अपने वंश के बीज मात्र शेष रह गये हैं। महाराज युधिष्ठिर आपकी कृपा से हमारे वंश की वृद्धि हो, यही हम निवेदन करते हैं।)

तदनंतर युधिष्ठिर ने कहा- "बहुत अच्छा! तुम लोग जैसा कहते हो, वैसा ही करूंगा।" इस पर पशुओं ने कहा- "राजन्! आपका भला हो।"

इस प्रकार रात्रि बीतने पर जब सबेरे उनकी नींद टूटी, तब वे धर्मराज हिंसक पशुओं के प्रति दया भाव से द्रवित हो अपने सब भाइयों से "स्वप्न की चर्चा करते हुए कहा- स्वप्न में वे पशु ठीक कह रहे थे। हम लोगों को वनवासी हिंसक जीवों पर दया करनी चाहिए।" हम लोगों को इस द्वैतवन में रहते हुए एक वर्ष आठ माह व्यतीत हो चुके हैं। अतएव अब हम लोग यहाँ से प्रस्थान कर काम्यक वन में तृणविन्दु नामक सरोवर के पास चलें। वहीं हम लोग सुखपूर्वक वनवास की शेष अवधि पूर्ण करेंगे।

दृष्टान्त 2 सूर्य का स्वप्न में कर्ण को दर्शन देकर इन्द्र को कवच और कुंडल न देने के लिए सचेष्ट करना।

जब पाण्डवों के वनवास का 12वां वर्ष बीत गया। 13वां वर्ष अज्ञातवास का प्रारंभ हो गया। तब पाण्डवों के शुभेच्छु अर्जुन के पिता भगवान इन्द्र कर्ण से कवच-कुण्डल मांगने को उद्धृत हुए। इन्द्र के इस मनोभाव को समझकर भगवान सूर्य ने स्वप्न में आकर कर्ण से दर्शन दिया। कुछ समय वे वेदवेत्ता ब्राह्मण का रूप धारण किये थे। उनका स्वरूप योग समृद्धि से सम्पन्न था। उन्होंने कर्ण को समझाते हुए कहा-

कर्ण मद्वचनं तात श्रृणु सत्यमृतां वर।
ब्रुवतो अद्य महाबाहो सौहृद्दात् परमहितम्।
उपायास्यति शक्रस्त्वां पाण्डवानां हितेष्सया।
ब्राह्मणच्छद्मना कर्ण कुण्डलापजिहीर्षया।।[6]

(अर्थात सत्यधारियों में श्रेष्ठ तात कर्ण! मेरी बात सुनो। महाबाहो! मैं सौहार्दवश आज तुम्हारे परमहित की बात करता हूँ। कर्ण! देवराज इन्द्र पाण्डवों के हित की इच्छा से तुम्हारे दोनों कुण्डल और कवच लाने के लिये ब्राह्मण का छद्मवेश धारण करके तुम्हारे पास जाओगे।)

विदितं तेनशीलम् ते सर्वस्य जगतस्तथा
यथा त्वं भिक्षितं सद्भिर्ददास्येव न याचसे।।
त्वं हि तात ददास्येव ब्राह्मणेभ्यः प्रयाचितम्।
वित्तं यच्चान्यदप्याहुर्न प्रत्याख्यासि कस्यचिद्।[7]

तुम्हारी दानशीलता उन्हें ज्ञात है। तथा सम्पूर्ण जगत को तुम्हारे इस नियम का पता है कि किसी सत्पुरुष के माँगने पर तुम उसकी अभीष्ट वस्तु देते ही हो। उससे कुछ मांगते नहीं हो। तात तुम ब्राह्मणों को उनकी मांगी हुई वस्तु ही दे देते हो। साथ ही धन तथा और जो कुछ भी वे माँग लें, सब दे डालते हो। किसी को नहीं कहकर निराश नहीं लौटाते।)

त्वां तु चैवं विधं ज्ञात्वा स्वयं वै पाकशासनः।
आगन्ता कुण्डलार्थाय कवचं चैव भिक्षितुम्।।
तस्मै प्रयाचमानाय न देते कुण्डले त्वया।

अनुनेयः परं शक्त्या श्रेय येतद्धि ते परम् ।[1]

(तुम्हारे ऐसे स्वभाव को जानकर साक्षात इन्द्र तुमसे तुम्हारे कवच और कुंडल मांगने आने वाले हैं। उनके मांगने पर तुम अपने दोनों कुंडल और कवच उन्हें दे न देना। यथाशक्ति अनुनय विनय करके उन्हें समझा देना। इससे तुम्हारा परम मंगल होगा।)

"कर्ण वे ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र तुमसे जब कवच-कुंडल के लिए बात करें तो तुम उन्हें नाना प्रकार का धन देने की बात कहकर बार-बार कवच कुंडल मांगने से मना करना। उन्हें विविध प्रकार के रत्न, स्त्री, गौ आदि देकर अनेक दृष्टांतों द्वारा बहलाकर टालने का प्रयत्न करना।

तुम अपने जन्म के साथ ही उत्पन्न हुए ये कवच और कुंडल यदि इन्द्र को दे दोगे तो तुम्हारी आयु क्षीण हो जायेगी और तुम मृत्यु के अधीन हो जाओगे। कवच-कुंडल से संयुक्त रहने पर तुम शत्रुओं से अवध्य बने रहोगे। ये दोनों अमृत से बने हैं। इसीलिये तुम इसे इन्द्र को मत देना।"

तदनंतर कर्ण ने पूछा- "भगवान आप मेरे प्रति अत्यन्त स्नेह दिखाते हुए सलाह दे रहे हैं। इससे मैं जानना चाहता हूँ कि आप कौन हैं? आप ब्राह्मण वेशधारी कौन हैं?"

तदनंतर भगवान सूर्य ने कहा- "तात! मैं सूर्य हूँ। तब कर्ण ने कहा- इसके हित का अनुसंधान भगवान सूर्य करते हैं और हित की बात बताते हैं। उस कर्ण का परम कल्याण ही है। भगवन् आप मेरी बात सुनें।

प्रसादये त्वां वरदं प्रणयाच्च ब्रवीम्यहम् ।
न निवार्थो ब्रतादस्मादहं यद्यस्मि ते प्रियेः ।।
ब्रतुं भम लोकोऽयं वेत्ति कृत्सनं विभावसो ।
यथाहं द्विजमुखेभ्यो दधां प्राणानपि ध्रुवम् ।।[1]

प्रभो! आप वरदायक देवता हैं। मैं आपसे प्रसन्न रहने का अनुरोध करता हूँ कि यदि मैं आपका प्रिय हूं तो आज मुझे इस व्रत से विचलित न करें। भगवन! संसार में सब लोग मेरे इस व्रत के विषय में जानते हैं कि मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण को याचना करने पर अपने प्राण भी दे सकता हूँ। सूर्य देव ब्राह्मण के छद्मवेश में अपने को छिपाकर साक्षात इन्द्र देव मेरे पास भिक्षा मांगने आ रहे

हैं। तो मैं देवेश्वर मैं उन्हें दोनों कुंडल और कवच अवश्य दे दूँगा। इससे मुझे जग में यश प्राप्त होगा। मेरे जैसे शूरवीर को यश की रक्षा हेतु अपने प्राणों को हंसते-हंसते न्यौछावर कर देना ही उचित है। अपयश लेकर प्राणों की रक्षा करना कदापि उचित नहीं। सुयश के साथ यदि मृत्यु हो जाए तो वह वीरोचित एवं सम्पूर्ण विश्व के लिए सम्मान की वस्तु है। मुझे प्राण देकर भी अपनी कीर्ति सुरक्षित रखनी है। इसीलिये हे लोकेश्वर मैं ब्राह्मण देशधारी इन्द्र को यह परम श्रेष्ठ भिक्षा देकर जगत में उत्तम गति प्राप्त करूंगा।

तदनंतर सूर्य देव ने कहा- कर्ण तुम अपना और अपने सुभद्रों का, पुत्रों और पत्नियों का तथा माता-पिता का अहित न करो। अपने शरीर की रक्षा करते हुए ही प्राणियों को इह लोक में यश की प्राप्ति तथा स्वर्ग में स्थायी कीर्ति की प्राप्ति अभीष्ट होती है। यदि तुम प्राणों का नाश करके सनातन कीर्ति प्राप्त करना चाहते हो तो, निश्चय ही वह तुम्हारे प्राणों को लेकर जायेगी। इस चराचर विश्व में माता-पिता, पुत्र, वधु जो भी लोग हैं वे सब जीवित पुरुषों से ही अपने प्रयोजन सिद्ध करते हैं। कर्ण राजा लोग भी जीवित रहने पर ही पुरुषार्थ से कीर्तिलाभ करते हैं। तुम यह समझो कि जीवित पुरुष के लिए ही कीर्ति अच्छी मानी गई है। जो मर जाता है उसका शरीर चिता में जलकर भस्म हो जाता है। उसे कीर्ति से क्या प्रयोजन रहता है। मैं तुम्हारे हित के लिए ही ये सभी बातें कह रहा हूँ। मुझे अपने भक्तों की रक्षा करनी चाहिये। इसीलिये मैं तुम्हारे हित की बात कहता हूँ।

भगवान सूर्य ने गोपनीय रहस्य को नहीं बतलाया कि कर्ण उनका पुत्र है। किंतु उन्होंने इतना अवश्य कहा कि समय आने पर गोपनीय रहस्य तुम अपने आप जान लोगे। नर व्याध तुम सदा अर्जुन से स्पर्द्धा रखते हो। अतः शूरवीर अर्जुन युद्ध में तुमसे कभी न कभी अवश्य भिड़ेगा। यदि तुम इन दोनों कुंडलों को धारण किये रहोगे तो अर्जुन तुम्हें कदापि जीत नहीं पायेंगे।

तदनंतर कर्ण ने भगवान सूर्य के चरणों में मस्तक रखकर बारम्बार क्षमा याचना किया और कहा- "मैं मृत्यु से भी उतना नहीं डरता, जितना झूठ से डरता हूँ। भगवान आपने जो अर्जुन की चर्चा की है, मैं अर्जुन से कदापि नहीं डरता क्योंकि मैं उनसे किसी भी मामले में कमतर नहीं हूँ।"

तब सूर्यदेव ने कहा- "तात! यदि तुम इन्द्र देव को यह कवच और दोनों कुंडल दे रहे हो तो तुम भी उससे अपनी विजय के लिये कोई अस्त्र मांग लेना और उनसे कह देना कि देवराज! मैं एक शर्त के साथ ये दोनों कुंडल आपको दे सकता हूँ। कर्ण इन्द्र अर्जुन के द्वारा तुम्हारा विनाश चाहते हैं। अतः तुम बारम्बार प्रार्थना करते हुए उनसे अबोध अस्त्र प्राप्त करना।"

तत्पश्चात स्वप्न के अंत में कर्ण कुछ बोलता हुआ जाग उठा। जागने पर उसने यह विचार किया कि यदि इन्द्र मेरे पास कवच और कुंडल लेने आयेंगे तो मैं उन्हें शक्ति लेकर कवच और कुंडल दूंगा।

दृष्टान्त- कर्ण का भगवान कृष्ण को स्वदृश्य स्वप्न द्वारा कौरवों की पराजय एवं पाण्डवों की विजय से अवगत कराना

भगवान कृष्ण संधि वार्ता विफल होने पर कर्ण को पाण्डवों के पक्ष में युद्ध करने हेतु एकांत में ले जाकर प्रेरित करने लगे। तब कर्ण ने उनसे कहा कि-

जानन् मां किं महाबाहो सम्मोहयितुमिच्छसि।
योऽयं पृथिव्याः कात्स्न्र्येन विनाशः सामुपस्थितः।
निमित्तं तत्र शकुनिरहं दुःशासनस्तथा।
दुर्योधनश्च नृपतिर्धृतराष्ट्रसुतोऽभवत्।[10]

अर्थात महाबाहो! आप सब कुछ जानते हुए भी मुझे मोह में क्यों डालना चाहते हैं? यह जो इस भूतल का पूर्ण रूप से विनाश उपस्थित हआ है, उसमें मैं, शकुनि, दुःशासन तथा धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन निमित्त मात्र हुए हैं।

राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः।
रणे शस्त्रग्निना दग्धाः प्राप्स्यन्ति यमसादनम्।।
स्वप्ना हि बहवो घोरा दृश्यन्ते मधुसूदन।
निमित्तानि च घोराणि तथोत्पाताः सुदारुणाः।।[11]

अर्थात दुर्योधन के वश में रहने वाले जो राजा और राजकुमार हैं, वे रणभूमि में अस्त्र-शस्त्रों की आग से जलकर निश्चय ही यमलोक में जा पहुँचेंगे। मधुसूदन! मुझे बहुत से भयंकर स्वप्न दिखायी देते हैं। घोर अपशकुन

तथा अत्यन्त दारुण उत्पात दृष्टिगोचर होता है।

पराजयं धार्तराष्ट्रे विजयं च युधिष्ठिरे।
शंसन्त इव वार्ष्णेव विविधा रोमहर्षणाः।
प्राजापत्यं हि नक्षत्रं ग्रहस्तीक्ष्णो महाद्युतिः।
शनैश्चरः पीडयति पीडयन् प्राणिनोऽधिकम्।।[12]

वृष्णिनन्दन! वे रोंगटे खड़े कर देने वाले विविध उत्पात मानो दुर्योधन की पराजय और युधिष्ठिर की विजय घोषित करते हैं। महातेजस्वी एवं तीक्ष्ण ग्रह शनैश्चर प्रजापति सम्बन्धी रोहिणी नक्षत्र को पीड़ित करते हुए जगत के प्राणियों को अधिक-से-अधिक पीड़ा दे रहे हैं।

कृत्वा चाङ्गारको वक्रं ज्येष्ठायां मधुसूदन।
अनुराधां प्रार्थयते मैत्रं संगमयन्निव।।
नूनं महभ्दयं कृष्ण कुरुणां समुपस्थितम्।
विशेषेण हि वार्ष्णेय चित्रां पीडयते ग्रहः।।[13]

मधुसूदन! मंगल ग्रह ज्येष्ठा के निकट से वक्र गति का आश्रय ले अनुराधा नक्षत्र पर आना चाहते हैं। जो राज्यस्थ राजा के मित्र मंडल का विनाश-सा सूचित कर रहे हैं। वृष्णिनंदन! श्रीकृष्ण! निश्चय ही कौरवों पर महान भय उपस्थित हुआ है। विशेषतः महापात नामक ग्रह चित्रा को पीड़ा दे रहा है (जो राजाओं के विनाश का सूचक है)।

सोमस्य लक्ष्य व्यावृत्तं राहुरर्कमुपैति च।
दिवश्चोल्काः पतन्त्येताः सनिर्घाताः सकम्पनाः।
निष्टनन्ति च मातङ्गा मुंचन्त्यश्रूणि वाजिनः।
पानींय यवसं चापि नाभिनन्दन्ति माधव।[14]

अर्थात चन्द्रमा का कलंक (काला चिह्न) मिट सा गया है, राहु सूर्य के समीप जा रहा है। आकाश से ये उल्कायें गिर रही हैं। वज्रपात से शब्द हो रहे हैं और धरती डोलती-सी जान पड़ती है। माधव! गजराज परस्पर टकराते और विकृत शब्द करते हैं। घोड़े नेत्रों से आंसू बहा रहो हैं। वे घास और पानी भी प्रसन्नतापूर्वक नहीं ग्रहण करते हैं।

कर्ण ने आगे कहा- केशव अभी तक मैंने जो आपसे कहा है उसके

अनुसार युद्ध में कौरवों की पराजय निश्चित है। मैंने स्वप्न में पाण्डवों के विजय से सम्बन्धित दृश्य भी देखा है जिसमें एक हजार खंभों वाले महल पर धर्मराज युधिष्ठिर को भाइयों सहित चढ़ते देखा है। स्वप्न के अंतिम भाग में यह दृश्य भी मेरे सामने उपस्थित हुआ कि-

अस्थिसंचमारूढश्चामितौजा युधिष्ठिरः।
सुवर्णपात्र्यां संहृष्टो भुक्तवान् घृतपायसम्।
युधिष्ठिरो मया दृष्टो ग्रसमानो वसुन्धराम्।
त्वया दत्तामिमां व्यक्तं भोक्ष्यते स वसुन्धराम्।[15]

अर्थात मैंने स्वप्न में देखा, अमित तेजस्वी युधिष्ठिर सफेद हड्डियों के ढेर पर बैठे हुए हैं और सोने के पात्र में रखी हुई घृतमिश्रित खीर को बड़ी प्रसन्नता के साथ खा रहे हैं। मैंने यह भी देखा कि युधिष्ठिर इस पृथ्वी को अपना ग्रास बनाये जा रहे हैं; अतः यह निश्चित है कि आपकी दी हुई वसुन्धरा का वे ही उपभोग करेंगे।

उच्चं पर्वतमारूढो भीमकर्मा वृकोदरः।
गदापाणिर्नरव्याघ्रो ग्रसन्निव महीमिमाम्।
क्षपयिष्यति नः सर्वान् स सुव्यक्तं महारणे।
विदितं मे हृषीकेश यतो धर्मस्ततो जयः।।[16]

भयंकर कर्म करने वाले नरश्रेष्ठ भीमसेन भी हाथ में गदा लिये ऊँचे पर्वत पर आरूढ़ हो इस पृथ्वी को ग्रसते हुए से स्वप्न में दिखायी दिये हैं। अतः यह स्पष्ट रूप से जान पड़ता है कि वे इस महायुद्ध में हम सब लोगों का संहार कर डालेंगे। हृषीकेश! मुझे यह भी विदित है कि जहाँ धर्म है उसी पक्ष की विजय होती है।

पाण्डुरं गजमारूढो गाण्डीवी स धनंजयः।
त्वया सार्धं हृषीकेश श्रिया परमया ज्वलन्।
यूयं सर्वे वधिष्यध्वं तत्र में नास्ति संशयः।
पार्थिवान् समरे कृष्ण दुर्योधनपुरोगमान्।[17]

श्रीकृष्ण! इसी प्रकार गाण्डीवधारी धनंजय भी आपके साथ श्वेत गजराज पर आरूढ़ हो अपनी परम कान्ति से प्रकाशित होते हुए मुझे स्वप्न में

दृष्टिगोचर हुए हैं। अतः श्रीकृष्ण! आप सब लोग इस युद्ध में दुर्योधन आदि समस्त राजाओं का वध कर डालेंगे, इसमें मुझे संशय नहीं है।

नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः।
शुक्लकेयूरकण्ठत्राः शुक्लमाल्याम्बरावृताः।
अधिरूढा नरव्याघ्रा नरवाहनमुत्तमम्।
त्रय एते मया दृष्टाः पाण्डुरच्छत्रवाससः।[18]

नकुल, सहदेव तथा महारथी सात्यकि- ये तीन नरश्रेष्ठ मुझे स्वप्न में श्वेत भुजबन्द, श्वेत कण्ठहार, श्वेत वस्त्र और श्वेत मालाओं से विभूषित हो उत्तम नरयान (पालकी) पर चढ़े दिखायी दिये हैं। ये तीनों ही श्वेत छत्र और श्वेत वस्त्रों से सुशोभित थे।

श्वेतोष्णीषाश्च दृश्यन्ते त्रय एते जनार्दन।
धार्तराष्ट्रेषु सैन्येषु तान् विजानीहि केशव।
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः।
रक्तोष्णीषाश्च दृश्यन्ते सर्वे माधव पार्थिवाः।[19]

जनार्दन! दुर्योधन की सेनाओं में से मुझे तीन ही व्यक्ति स्वप्न में श्वेत पगड़ी से सुशोभित दिखायी दिये हैं। केशव! आप उनके नाम मुझसे जान लें। वे हैं- अश्वत्थामा, कृपाचार्य और यादव कृतवर्मा। माधव अन्य सब नरेश मुझे लाल पगड़ी धारण किये दिखायी दिये हैं।

उष्ट्रप्रयुक्तमारूढौ भीष्मद्रोणौ महारथौ।
मया सार्धं महाबाहो धार्तराष्ट्रेन वा विभो।
अगस्त्यशास्तां च दिशं प्रयाताः स्म जनार्दन।
अचिरेणैव कालेन प्राप्स्यामो यमसादनम्।[20]

अर्थात महाबाहु जनार्दन! मैंने स्वप्न में देखा, भीष्म और द्रोणाचार्य दोनों महारथी मेरे तथा दुर्योधन के साथ ऊँट जुते हुए रथ पर आरूढ़ हो दक्षिण दिशा की ओर जा रहे हैं। विभो! इसका फल यह होगा कि हम लोग थोड़े ही दिनों में यमलोक पहुँच जायेंगे।

अहं चान्ये च राजानो यच्च तत् क्षत्रमण्डलम्।
गाण्डीवाग्निं प्रवेक्ष्याम इति मे नास्ति संशयः।[21]

अर्थात 'मैं' अन्यान्य नरेश तथा वह सारा क्षत्रिय समाज सब-के-सब गाण्डीव की अग्नि में प्रवेश कर जायेंगे। इसमें संशय नहीं है।

संदर्भ

1. महाभारत, शान्ति पर्व, अध्याय 215, श्लोक संख्या 4
2. वही, श्लोक संख्या 6
3. वही, श्लोक संख्या 7
4. वही, वनपर्व (मृगस्वप्नोद्भव पर्व) अध्याय 258, श्लोक संख्या 5-6
5. वही, श्लोक संख्या 7
6. वही, वन पर्व (कुण्डलाहरण पर्व) अध्याय 300, श्लोक संख्या 10-11
7. वही, श्लोक संख्या 12-13
8. वही, श्लोक संख्या 14-15
9. वही, श्लोक संख्या 24-25
10. महाभारत, उद्योग पर्व (भगवद्‌यान पर्व), अ. 143, श्लोक संख्या 3
11. वही, श्लोक संख्या 5-6
12. वही, श्लोक संख्या 7-8
13. वही, श्लोक संख्या 9-10
14. वही, श्लोक संख्या 11-12
15. वही, श्लोक संख्या 33-34
16. वही, श्लोक संख्या 35-36
17. वही, श्लोक संख्या 37-38
18. वही, श्लोक संख्या 39-40
19. वही, श्लोक संख्या 41-42
20. वही, श्लोक संख्या 43-44
21. वही, श्लोक संख्या 45

अध्याय- 9

अशाब्दिक संचार

मानव सम्प्रेषण का वैज्ञानिक अध्ययन प्रायः भाषा को केन्द्र में रखकर किया जाता रहा है। परिणामस्वरूप अवाचिक तथा अशाब्दिक सम्प्रेषण का विश्लेषण उपेक्षित रहा है। पशुओं में सम्प्रेषण के अध्ययन तो अवश्य किये गये परन्तु भाषा के समर्थ माध्यम के उपलब्ध होने के कारण मानव स्तर पर अवाचिक व्यवहार के अध्ययन की ओर प्रारम्भ में बहुत कम ध्यान दिया गया। यह तो निर्विवाद है कि एक समूह के रूप में संगठन मनुष्य ही नहीं अपितु सभी प्राणियों में सदस्यों के बीच सूचनाओं के आदान-प्रदान पर निर्भर करता है। यह सूचना व्यक्ति के क्रमिक व्यवहार- परिवर्तनों का समाज में एकीकृत करने हेतु होता है। इन सूचनाओं से व्यक्ति के भविष्य का व्यवहार प्रभावित होता है। कुछ प्राणियों में यह कार्य रसायनिक संकेतों कुछ में ध्वनि सकेतों और कुछ में चाक्षुष संकेतों द्वारा होता है। मनुष्यों में वैकासिक दृष्टि से अवाचिक व्यवहार का उपयोग-भाषा का पूर्ववर्ती कहा जा सकता है। मनुष्य ने अभी भी इसका प्रयोग नहीं छोड़ा है। मानव स्तर पर वाचिक-अवाचिक संकेतों का अन्तर सैद्धान्तिक अधिक है और व्यावहारिक कम।

मानव संचार विज्ञान में सम्प्रेषण के अध्ययन-क्षेत्र में सम्प्रति अवाचिक सम्प्रेषण पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। अब इसे केवल प्रच्छन्न भाषा ही माना जाता है, अपितु अपने आप में एक स्वतंत्र विषय माना जाने लगा है। प्रायोगिक स्थितियों तथा वास्तविक जीवन में किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि भाव-भंगिमाएँ तथा अन्य अवाचिक व्यवहार भी अर्थ को सम्प्रेषित करते हैं। शारीरिक भाषा कोरी कल्पना मात्र नहीं है अपितु इसके पक्ष में प्रायोगिक प्रमाण भी उपलब्ध हैं। इसके अध्ययन का अनेक क्षेत्रों में उपयोग किया जा रहा है। मनोचिकित्सा, राजनीति तथा दैनिक व्यवहार में इसके अध्ययन किये जा रहे हैं।

अशाब्दिक/अवाचिक सम्प्रेषण की अवधारणा

अशाब्दिक सम्प्रेषण, सम्प्रेषण की ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत हम अपने विचारों, भावनाओं तथा अभिव्यक्तियों को बिना शब्दों के प्रयोग किये व्यक्त करते हैं। अपनी मानसिक भावानुभूतियों को अभिव्यक्ति के लिए हर सम्भव प्रयास करना मानव का जन्मजात गुण हो गया है। मनुष्य अपने विचारों को व्यक्त करने के

लिए ही अपने परिवार, पड़ोस, गाँव, शहर, देश-विदेश के निवासियों के साथ संवाद सम्बन्ध जोड़ना चाहता है। इसके लिए वह शब्दों पर निर्भर रहता है। शब्द भाषा को स्वरूप प्रदान करते हैं। भाषा के माध्यम से संवाद प्रक्रिया सुगम होती है। संवाद की यह प्रक्रिया कहीं स्थूल तो कहीं सूक्ष्म होती है। जब भाषा का प्रयोग सम्प्रेषण में किया जाता है तो अभिव्यक्ति का मौलिक स्वरूप स्थूल हो जाता है और जब मानव मन अपने को व्यक्त करने के लिए संकेतों का प्रयोग करता है तब यह अभिव्यक्ति, संचार की सूक्ष्म स्थिति में हो जाती है।

भाव सम्प्रेषण की एक ऐसी भी स्थिति होती है जिसे हम सूक्ष्म और स्थूल स्थिति से भी अलग 'अनिर्वचनीय' कहते हैं। इसे श्री प्रवीण दीक्षित ने इस प्रकार स्पष्ट किया है- "एक रूपवती-षोडसी प्रेमिका और उसके प्रेमी के मध्य केवल संकेतों के माध्यम से व्यक्त होने वाली भाव प्रणवता और प्रणयानुभूति को जब संसार के बड़े-बड़े महाकवियों की वाणी भी यथावत व्यक्त करने में समर्थ नहीं होती तो और कौन समर्थ होगा? कल्पना कीजिए कि आप किसी बस या ट्रेन से यात्रा कर रहे हैं। आप के आगे की सीट पर एक युवती दो वर्ष के एक स्वस्थ सुन्दर बालक को गोद में लिये बैठी है। सहसा बालक की दृष्टि आप पर पड़ती है और आप भी बालक को देखते हैं। आप उसे देखकर आनन्दित होते हैं। आप के चेहरे के आनन्द भाव को देखकर अपनी माता की गोद में बैठा नन्हा शिशु आनन्दानुभूति से भर जाता है। वह बार-बार आप की ओर देखकर मुस्कराता है और बार-बार अपनी माता के आंचल से मुंह छिपा लेता है। आंचल से मुँह निकालकर आप की ओर देखने और मुस्कराने में बालक की जो भावना सक्रिय होती है, भला आप उसको कौन-सी संज्ञा देंगे? उस बालक की निश्छल निर्लिप्त और सुमधुर मुस्कान में अन्तर्निहित अनिर्वचनीय संवाद को भला कौन-सा माध्यम शब्द और भाषा के बन्धन में बाँध सकता है?" विश्व की संचार प्रक्रिया ऐसी अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है। अशाब्दिक सम्प्रेषण की परम्परा प्राचीन समय से ही हमारे समाज में विद्यमान है और आज भी किसी न किसी रूप में प्रयुक्त हो रही है।

आदि मानव की गुफाओं में प्रस्तर वस्तुओं और चित्रों से लेकर नृत्य, मूक प्रदर्शन, बैले, नृत्य नाटिका एवं अभिव्यंजनात्मक तथा अमूर्त कला के रूप में आधुनिक मानव की उच्चकोटि की आधुनिकतम कला के रूप में अशाब्दिक सम्प्रेषण का विस्तृत इतिहास रहा है। नृत्यकला ने अशाब्दिक सम्प्रेषण को समृद्ध करने में काफी योगदान दिया है। कत्थक, कथकली, भरत नाट्यम, ओडिसी,

नौटंकी, मूक अभिनय, कुचिपुड़ि, मणिपुरी आदि नृत्य शैलियाँ शब्दों के बिना भाव-भंगिमाओं एवं मुद्राओं द्वारा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं।

यदि हम सूक्ष्म अध्ययन करें तो हमें दृश्य सम्प्रेषण की एक विशाल प्रणाली के विकास में वृद्धि करने वाले चिह्न और प्रतीक दृष्टिगोचर होते हैं। प्रसाधन सामग्री, आवरण विग, मुखौटे, यातायात संकेत, ध्वज, विज्ञापन, वर्दियाँ, चित्र, ध्वजों पर बने चित्र, (जैसे हथौड़ा और हंसिया, कमल, चरखा, चक्र, अशोक-चक्र आदि) किसी न किसी सन्देश एवं विचार से युक्त होते हैं। नृत्यों द्वारा विभिन्न रसों-शृंगार, वीर, रौद्र, वीभत्स, हास्य, करुण, अद्भुत-वात्सल्य की अभिव्यक्ति अशाब्दिक सम्प्रेषण की बहुमूल्य देन है।

अशाब्दिक सम्प्रेषण में शारीरिक भंगिमायें, मुख मण्डल की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ, दृष्टि तथा मानव अन्तःक्रिया के पराभाषाई रूप शामिल है। अशाब्दिक सम्प्रेषण को समझने के लिए महाकवि बिहारी का निम्नलिखित दोहा बहुत ही उपयुक्त है-

कहत, नटत, रीझत खिझत, खिलत मिलत लजियात।
भरे मौन में करत हैं, नयनन ही सौं बात।।

सामान्यतया मनुष्य इन अशाब्दिक संकेतों का प्रयोग आदिकाल से ही सम्प्रेषण के लिए करता चला आ रहा है। अशाब्दिक संकेतों के नियम चेतना के स्तर पर सन्देश की प्रकृति अथवा प्राप्त सूचना के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होते हैं इसके अतिरिक्त सम्प्रेषक के सूचना देने के ढंग पर भी निर्भर है कि क्या वह सन्देश अपेक्षित अनुक्रिया को प्रेरित करेगा या नहीं। शारीरिक भाव-भंगिमायें तथा मुख मण्डलीय अभिव्यक्तियाँ, प्रदर्शन के तरीके सन्देश को और भी प्रभावी बनाते है। निःसन्देह शारीरिक भंगिमायें, मुख मण्डलीय अभिव्यक्ति, नेत्र सम्पर्क, संस्पर्श तथा मानव अन्तःक्रिया के पराभाषायी रूप सन्देश में सघनता और अभिव्यक्ति में गंभीरता उत्पन्न कर देते हैं। इतना ही नहीं ये अन्तर्मन की भावनाओं को भी उत्प्रेरित कर देते हैं। मूक अभिनय कहा जाने वाला प्रदर्शन शब्दों की अभिव्यक्ति को तो बढ़ाता ही है साथ ही उन्हें अर्थवान भी बना देता है। अंग संचालन और भाव-भंगिमाओं की भाषा उतनी ही जटिल होती है जितनी मौखिक या लिखित भाषा। ऐसे भी अवसर आते हैं जब भाव-भंगिमाओं की भाषा मौखिक और लिखित भाषा से भी ज्यादा प्रभावी एवं कठिन होती है।

अशाब्दिक सम्प्रेषण की कुछ विशिष्ट बातों को हम निम्नलिखित रूप से

समझ सकते हैं।

1. अशाब्दिक संकेत में कोई क्रिया या मुद्रा हो सकती है तथा ये शारीरिक भंगिमाओं जितनी जटिल अथवा नेत्र कटाक्ष या सम्पर्क जितनी विशिष्ट हो सकती है।
2. अशाब्दिक संकेत अपनी प्रत्यक्ष उपलब्धि में भिन्न होता है।
3. अशाब्दिक संकेत की सूचनाओं में भिन्नता हो सकती है।
4. ऐसे सम्प्रेषण अपने उद्देश्यों से भिन्न हो सकते हैं तथा इनकी किसी व्यक्ति की मानसिक स्थिति (डमदजंसै जंजने) या सामाजिक अनुभव की अभिव्यक्ति के रूप में व्याख्या की जा सकती है।
5. सभी लोग अशाब्दिक सम्प्रेषण का समान रूप से उपयोग नहीं कर सकते।

मनुष्य में भाषा का विकास होने से पहले जो अन्य सम्प्रेषण के अशाब्दिक स्वरूपों का प्रयोग होता रहा है। प्रायः कुछ परिस्थितियों में इनका मनुष्य अभी भी उपयोग करता रहता है। ये निम्नलिखित हैं-

1. संकेत
2. विस्मयादिबोधन
3. मुखाभिव्यक्ति तथा शारीरिक संवेगात्मक अभिव्यक्ति
4. मुखाकृति
5. शारीरिक हाव-भाव

उपरोक्त सभी बिन्दुओं को क्रमशः इस प्रकार समझ सकते हैं-

1. संकेत - छः प्रकार के संकतों का वर्णन किया जा सकता है। वे हैं-

(1) संवेगात्मक
(2) निर्देशक
(3) सुचित्रित
(4) प्रतीकात्मक
(5) स्वभावज अथवा अभ्यस्त, एवं
(6) अचेतन

इन सब संकेतों के विभिन्न उत्तेजक मूल्य होते हैं। संवेगात्मक संकेतों के उदाहरण हैं- जमीन पर पैर पटकना, खुशी में हाथ हिलाना, चिन्ता के समय माथे पर हाथ रखना। जब एक व्यक्ति अपनी उंगली से निश्चित दिशा की ओर संकेत करता है जिससे कि एक वस्तु की ओर इशारा होता है तो इसे निर्देशक संकेत कहते हैं।

सुचित्रित संकेत उसे कहते हैं जिसमें हाथों तथा अंगुलियों को अनुकरणीय गति देकर एक वस्तु का वर्णन किया जाता है। ये तीनों प्रकार के संकेत सामाजिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं।

जब किन्हीं संकेतों द्वारा अमूर्त्त विचारों को व्यक्त किया जाता है तो ऐसे संकेतों को प्रतीकात्मक संकेत कहते हैं। भारतीय मूल्य की मुद्राओं में इस प्रकार के प्रतीकात्मक संकेतों का प्रयोग किया जाता है। जब एक संकेत से व्यक्ति अभ्यस्त हो जाता है तो उसे स्वभावज अथवा अभ्यस्त संकेत कहते हैं। उदाहरण के लिए कुछ व्यक्ति खड़े होते समय अपनी कमर पर हाथ रख लेते हैं, अथवा हाथ जोड़कर या हाथ हिलाकर बातचीत करते हैं। अचेतन संकेत वह है जो कि व्यक्तियों के आन्तरिक द्वन्द्वों के कारण विकसित हो जाते हैं। इस प्रकार के संकेतों के उदाहरण- नाखूनों को या ओठों को दाँतों से काटना या कुर्सी पर बैठकर टाँगें हिलाना है। इस प्रकार के संकेतों के कोई प्रत्यक्ष सामाजिक उत्तेजक मूल्य नहीं होते, हम अनेकों समय उनके प्रति कोई प्रत्युत्तर नहीं देते।

2. विस्मयादिबोधन- कुछ वाक्य इत्यादि जो कि हमारे सम्बोधनों को एकाएक बिना किसी विचार के व्यक्त कर देते हैं, विस्मयादिबोधन कहते हैं। यह तत्कालीन एवं आकस्मिक ध्वनियाँ होती हैं। इसके उदाहरण ऐसे शब्द हैं, जैसे- ओह, अफ, आह इत्यादि। इस प्रकार के शब्द प्रत्येक भाषा में मिलते हैं। सम्प्रेषण में इस प्रकार के शब्द महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। वह उस भाषा जिसका कि प्रयोग किया जा रहा है, उसके संवेगात्मक भावों को व्यक्त करते हैं। बहुधा जब हम दूसरों से बातचीत कर रहे होते हैं तो अपनी वाणी में विस्मयादिबोधन का प्रयोग करते हैं जो कि दूसरों द्वारा हमारे भावों को समझने में सहायक होते हैं।

3. मुखाभिव्यक्ति तथा शारीरिक अभिव्यक्ति - मानव ने मुखाभिव्यक्ति तथा शारीरिक अभिव्यक्तियों का प्रयोग सम्प्रेषण में भाषा के विकास से पहले ही प्रारम्भ कर दिया था। अब हम मुखाभिव्यक्ति को देखकर दूसरे व्यक्तियों के भावों तथा इच्छाओं को समझ सकते हैं। यह बिलकुल सत्य है कि उन दशाओं में जिनमें कि व्यक्ति अपने भावों को चेहरे पर लाने से रोक लेता है, मुखाभिव्यक्ति के आधार पर उसके भावों को उचित अर्थ प्रदान नहीं किया जा सकता है।

तथा ब्रुवन्ती करुणं सुमध्यमा।
भर्तृन् कटाक्षैः कुपितानपश्यत्।
सा पाण्डवान् कोपपरीतदेहान्।

संदीपयामास कटाक्षपातैः।[1]

जब द्यूतक्रीडा के पश्चात द्रोपदी को सभा भवन में दुर्योधन खींचकर ले आया तब वह करुण स्वर में विलाप करती और क्रोध में भरे हुए अपने पतियों की तरफ तिरछी दृष्टि से देखती थी। परिणामस्वरूप पाण्डवों के अंग-अंग में क्रोध की अग्नि व्याप्त हो गई थी। द्रोपदी ने अपने कटाक्ष द्वारा देखकर उनकी क्रोधाग्नि को और उद्दीप्त कर दिया।

4. मुखाकृति - मुखाभिव्यक्ति का अध्ययन जब असंवेगात्मक क्षणों में किया जाता है, तभी वह दूसरे व्यक्तियों पर प्रभाव डालते हैं। मुखाकृति अभ्यस्त मुख की कृतियों एवं उन झुर्रियों को जो चेहरे की मांस-पेशियों को सिकुड़ने की दिशा से समकोण बनाते हैं, उनकी ओर संकेत करती है। जब हम दूसरों के साथ सम्प्रेषण करते हैं तो उनकी मुखाकृति के आधार पर प्रतिक्रिया करते हैं। एक व्यक्ति के मुख के भाव बहुधा हमारी उस व्यक्ति के सम्बन्ध में पसन्द व नापसन्द को निर्धारित करते हैं।

अर्जुन के देवराज इन्द्र के निवास स्थान में आगमन के अवसर पर एक भव्य उत्सव का आयोजन किया गया था। उस उत्सव में उपस्थित लोगों में उर्वशी नामक अप्सरा भी थी जिसकी तरफ अर्जुन एकटक देखते रहे जिससे उर्वशी को अर्जुन की मुखाकृति देखकर ऐसा आभास हुआ कि अर्जुन उसके चित्त को खींच लिये हैं। इस तथ्य को जब उर्वशी ने कामभावना के वशीभूत होकर अर्जुन के समक्ष प्रस्तुत किया तो अर्जुन ने स्पष्ट रूप से कहा-

यथा कुन्ती महाभागा यथेन्द्राणी शची मम।
तथा त्वमपि कल्याणि नात्र कार्या विचारणा।[2]

कल्याणी, जैसी महाभागा कुंती और इन्द्राणी शचि हैं वैसी ही तुम भी हो। इस विषय में तुम्हें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिए।

यच्चेक्षितासि विस्पष्टं विशेषेण मया शुभे।
तच्च कारणपूर्वं हि शृणु सत्यं शुचिस्मिते।[3]

शुभे! पवित्र मुसकानवाली उर्वशी! मैंने जो उस समय सभा में तुम्हारी ओर एकटक दृष्टि से देखा था, उसका एक विशेष कारण था, उसे सत्य बताता हूँ सुनो-

इयं पौरववंशस्य जननी मुदितेत ह।
त्वामहं दृष्टवांस्तत्र विज्ञायोत्फुल्ललोचनः।
न मामर्हसि कल्याणि अन्यथा ध्यातुमप्सरः।
गुरोर्गुरुतरा मे त्वं मम त्वं वंशवर्धिनी।[4]

'यह आनन्दमयी उर्वशी ही पूरुवंश की जननी है, ऐसा समझकर मेरे नेत्र खिल उठे और इस पूज्य भाव को लेकर ही मैंने तुम्हें वहाँ देखा था। कल्याणमयी अप्सरा! तुम मेरे विषय में कोई अन्यथा भाव मन में न लाओ! तुम मेरे वंश की वृद्धि करने वाली हो, अतः गुरु से भी अधिक गौरवशालिनी हो।

5. शारीरिक हाव-भाव - शारीरिक हाव-भाव उच्च उत्तेजक मूल्य रखते हैं। दूसरे व्यक्ति हमारे शारीरिक हाव-भाव से बहुत प्रभावित होते हैं। हमारे हाव-भाव उनको हमारे भावों के सम्बन्ध में सूचना प्रदान कर देते हैं। उदाहरण के लिये जब हम एक ऐसा शारीरिक हाव-भाव अपनाते हैं जो इस बात का संकेत करें कि हम दूसरे व्यक्ति की तरफ ध्यान नहीं दे रहे हैं तो दूसरा व्यक्ति हमारी उदासीनता को समझ लेता है और एक विशिष्ट प्रकार की प्रतिक्रिया करने लगता है।

दृष्ट्वैव चौर्बशीं पार्थो लज्जासंवृतलोचनः।
तदाभिवादनं कृत्वा गुरुपूजां प्रयुक्तवान्।[5]

जब उर्वशी अर्जुन के पास कामभावना से पीड़ित होकर पहुँची तो अर्जुन के नेत्र लज्जा से मूँद गये। उस समय उन्होंने उसके चरणों में प्रणाम करके उसका गुरुजनोचित सत्कार किया।

अवाचिक व्यवहार का सम्प्रत्यय

अवाचिक व्यवहार के सम्प्रत्यय को अनेक प्रकार से परिभाषित किया गया है। नेप के अनुसार अवाचिक सम्प्रेषण से तात्पर्य उन सभी मानवीय अनुक्रियाओं से है जो लिखित शब्दों के रूप में वर्णित नहीं की जा सकती। नेप ने मानव सम्प्रेषण को शरीर-गति के रूप में परिभाषित किया है। उसके अनुसार वाचिक उपकरण की गति से वाणी उत्पन्न होती है। पराभाषा से अवाचिक कार्य होता है। वस्तुतः अवाचिक सम्प्रेषण तथा अवाचिक व्यवहार के बीच अन्तर है। अवाचिक सम्प्रेषण अवाचिक व्यवहार से अधिक व्यापक पद है।

अवाचिक सम्प्रेषण के निम्नलिखित 18 प्रकार होते हैं :

(1) पशु तथा कीट संस्कृति, (2) परिवेश, (3) भाव-भंगिमा,
(4) शारीरिक गतियाँ, (5) मानव व्यवहार, (6) अन्तःक्रियात्मक संरूप,
(7) अधिगम, (8) यन्त्र, (9) संचार माध्यम,
(10) मानसिक प्रक्रम (जैसे- प्रत्यक्षीकरण, प्रतिभा तथा सृजनात्मकता)
(11) संगीत, (12) पराभाषा, (13) वेशभूषा, (14) दैहिकी,
(15) चित्र, (16) देश या दिक्, (17) त्वचीय अनुभूति तथा (18) काल।

एकमैन तथा फ्रीजेन ने पाँच प्रकार के अवाचिक व्यवहारों की श्रेणियाँ निरूपित की हैं-

(अ)- प्रतीक - इसके अन्तर्गत ऐसी गतियाँ आती हैं जो शब्द के स्थानापन्न रूप होती हैं।

(ब) नियामक - इसके अन्तर्गत वे गतियाँ आती हैं जो श्रोता या वक्ता की भूमिका में परिवर्तन उत्पन्न करती है।

(स) निदर्शक - इसके अन्तर्गत वे गतियाँ आती हैं जो भाषा का साथ देती हैं।

(द) भावनात्मक व्यंजक - इसके अन्तर्गत मुखाकृतिक अभिव्यक्तियाँ आती हैं।

(य) अभियोजक - इसके अन्तर्गत व्यक्ति की आवश्यकता हो या सांवेगिक दशा से जुड़े स्वयं या वस्तु-विशेष के प्रहस्तनों से है।

मेहरा बियन ने एक अन्य उपागम का उपयोग करते हुए अवाचिक अव्यवहार के तीन आयामों का उल्लेख किया है। प्रत्येक आयाम से सम्बन्धित कुछ विशिष्ट संकेत होते हैं और कुछ व्यंजन होते हैं। इनका वर्गीकरण इस प्रकार है-

आयाम	**संकेत**	**अवाचिक व्यंजक**
धनात्मक या मूल्यांकन	तात्कालिकता	स्पर्श करना, दूरी, अक्षि, सम्पर्क प्रेक्षण
गाम्भीर्य या संस्कृति	विश्राम	असममित बाहुस्थिति तथा पादास्थिति, हस्त विश्राम
प्रतिक्रियात्मक क्रिया,	क्रियाशीलता	मुखाकृतिक क्रिया, वाचिक वाचिक दर

कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे डर्कमैन, रोजली तथा वेक्सटर ने उपलब्ध सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक ज्ञान का विश्लेषण करते हुए अवाचिक सम्प्रेषण के पाँच प्रकार्यों का उल्लेख किया है-

प्रकार्य	**अवाचिक व्यवहार के व्यंजक तथा माध्यम**
व्यवस्था-पूर्व सम्प्रेषण	मुद्रा परिवर्तन तथा अन्य गतिज संकेत, वाक् अवरोध
सूचना संसाधन	पूरित तथा अपूरित विषय, पेशियों में परिवर्तन, ताराकर्म
अनुनयात्मक निवेदन	मुखाकृतिक तथा वाचिक व्यवहार में व्यक्त क्रिया स्तर
धोखा देना	भंगिमाएँ, अक्षि सम्पर्क, वाक्, अशुद्धि दर

सूक्ष्म संदेश — पराभाषिक संकेत, मुखाकृतिक अभिव्यक्तियाँ, प्रयुक्त माध्यमों की संख्या

उपर्युक्त विवेचन से है कि अवाचिक व्यवहार के बहुविधि प्रयोजन को व्यक्त किया जाता है। इनके द्वारा सूचना-संसाधन के विषय में संकेत प्राप्त होता है। ये अनुनयात्मक निवेदन को प्रबल बनाते हैं। इनके द्वारा सूचनाओं को छिपाया जाता है और इनका उपयोग सूक्ष्म और अस्पष्ट संदेश के सम्प्रेषित करने में भी किया जाता है। वस्तुतः अवाचिक सम्प्रेषण को दो मुख्य प्रकार्यों के रूप में निरूपित किया जा सकता है-

(अ) सूचना संसाधन

(ब) प्रभावांकन व्यवस्था

पहले प्रकार्य का सम्बन्ध दूसरे व्यक्ति के विषय में अनुमान लगाने के लिए संदेश को समझना है तथा दूसरे का सम्बन्ध पहले व्यक्ति के विचारों का प्रत्यक्षीकरण है। इस प्रकार पहले प्रकार्य का सम्बन्ध व्याख्या से है। अर्थात प्रेक्षक की दृष्टि से है। दूसरे का सम्बन्ध प्रभाव से है जिसमें कर्ता की दृष्टि महत्वपूर्ण है।

इन अध्यायों में पराभाषा मुखाकृति, शरीर तथा चक्षु इन चार माध्यमों को लेकर स्वतंत्र रूप से अध्ययन किये गये है। इन अध्ययनों की चर्चा अप्रासंगिक न होगी।

अशाब्दिक सम्प्रेषण के प्रमुख आयाम

एक पुरानी कहावत है कि 'चेहरा हृदय का दर्पण' है। अनेक मनोवैज्ञानिक शोधों से यह बात प्रमाणित हो चुका है। व्यक्ति के तात्कालिक संवेग और भाव उसके चेहरे से अभिव्यक्त होते हैं। अनेक अध्ययन यह दिखाने में सफल रहे हैं कि मानव के कम से कम छः मूल संवेग-हर्ष, विषाद, आश्चर्य, भय, क्रोध तथा घृणा आनन-फानन में स्पष्ट रूप से होते हैं। ये संवेग अशाब्दिक सम्प्रेषण हैं। अशाब्दिक सम्प्रेषण में पराभाषा, अपरा भाषा, अनियमित भाव-भंगिमा, मानसिक रुचि, ज्ञान, प्रदर्शन, सन्दर्भ एवं सूक्ष्म अभिव्यक्ति आदि जैसी अनेक संकल्पनायें हैं। ये संकल्पनायें अशाब्दिक अन्तःक्रिया की जटिल किन्तु सामाजिक प्रकृति को दर्शाती हैं प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मर्टेन्सन के अनुसार ''सन्देश के आधि सम्प्रेषण महत्व में सभी अशाब्दिक संकेतों का योगदान है। प्रत्येक अशाब्दिक संकेत यह बताने में सहायक है कि अन्तःक्रिया करने वाले किस प्रकार दूसरों द्वारा अपने कर्मों की व्याख्या करते हैं। अधिकांशतः अशाब्दिक संकेत अपनी उन निहित धारणाओं एवं नियमों का जो

मौखिक कूटों का नियमन एवं विवेचन करते हैं, उनकी व्याख्या में सहायता करते हैं। प्रभाव-प्रदर्शन की प्रकृति व्याख्यानुसार अभिव्यक्तात्मक है। उसका संचारी गुण ऐसा है जो परोक्ष एवं निष्पक्ष विवेचना में बाधा उत्पन्न करता है। चूँकि नियामक तत्व सम्बद्धता के नियमों को प्रभावित करते हैं, अन्तःक्रिया के उतार-चढ़ाव में वृद्धि करते है तथा यह भी बताते हैं कि किस प्रकार व्यवहार के प्रत्येक क्रम का विवेचन किया जाये। संकेत तत्व यह निश्चित करते हैं कि प्रत्येक पक्ष जो कहा या किया जाता है उसमें सबसे महत्वपूर्ण पक्ष किसे मानता है जिसके द्वारा वह शाब्दिक या अशाब्दिक अन्तःक्रिया के प्रत्येक तथ्य को सुस्पष्ट या रेखांकित करता है।''

स्पर्श संचार

अशाब्दिक सम्प्रेषण से स्पृशीय सम्प्रेषण भी बहुत महत्वपूर्ण कार्य करता है। संस्पर्श भी अनेक प्रकार की सूचनायें देता है। स्पर्श व्यक्ति की स्थिति और शक्ति का परिचायक हो सकता है। प्रायः उच्च पद वाला व्यक्ति अपने से कम सांस्थित वाले व्यक्ति को स्पर्श करता है जैसे शिक्षक-शिक्षार्थी को। यद्यपि संस्पर्श का अर्थ परिस्थिति और सांस्कृतिक रीति-रिवाजों पर निर्भर करता है तथापि यदि शरीर के किसी अविवादास्पद भाग का धीरे से संक्षिप्त और कोमल संस्पर्श किया जाय तो उसका विधेयात्मक प्रभाव होता है किन्तु यदि इसके विपरीत वही संस्पर्श देर तक अंतरंग रीति से अप्रत्याशित और अवांछनीय व्यक्ति द्वारा हो तो स्पर्श किया जाने वाला व्यक्ति क्रोध एवं घृणा का अनुभव कर सकता है। संस्पृशीय सम्प्रेषण के विषय में प्रो. 'फ्रैंक' ने लिखा है। ''त्वचा सन्देश प्रसारण और सन्देश ग्रहण दोनों ही रूपों में कार्य करती है।''

इसे हम इस प्रकार महाभारत के दृष्टान्त द्वारा समझ सकते हैं- अर्जुन गंगा द्वार में ठहरे हुए थे। वहाँ गंगाजी में स्नान करके पानी से बाहर निकलना चाहते थे कि नागराज की पुत्री उलूपी ने उनके प्रति आसक्त हो पानी के भीतर से ही अर्जुन को खींच लिया। जब अर्जुन ने उससे पूछा कि

किमिदं साहसं भीरू कृतवत्यसि भाविनी।
कश्चायं सुभगे देशः का च त्वं कस्य यवाऽऽत्मजा।[6]

भीरू! तुमने ऐसा साहस क्यों किया है? भाविनी! यह कौन सा देश है? शुभगे! तुम कौन हो, किसकी पुत्री हो।

ऐरावतेकुल जातः कौरव्ये नाम पन्नगः।
तस्यास्मि दुहिता राजन्नुलूपी नाम पन्नगी।[7]

राजन्! ऐरावत नाग के कुल में कौरव्य नामक नाग उत्पन्न हुए हैं, मैं उन्हीं की पुत्री नागिनी हूँ। मेरा नाम उलूपी है।

साहं त्वामभिषेकार्थमवतीर्णं समुद्रगाम्।
दृष्ट्वैव पुरुषव्याघ्र कन्दर्पेणाभिमूर्च्छिता।

नरश्रेष्ठ! जब आप स्नान करने के लिए गये थे तब मैं कामदेव के ताप से जली जा रही थी। मैंने आपके सिवा दूसरे को अपना हृदय अर्पण नहीं किया है। अतः मुझे आत्मदान देकर आनन्दित कीजिये।

आधि सम्प्रेषण

सामान्यतया व्यक्ति सम्प्रेषण करते समय मात्र अशाब्दिक सम्प्रेषण द्वारा ही संदेश श्रोता को नहीं देते बल्कि वे वह सन्देश भी देते हैं जो स्वयं सम्प्रेषण प्रक्रिया के सन्दर्भ को इंगित करता है। आधि सम्प्रेषण के अनुसार सन्देश का अर्थ कैसे लगाया जाय तथा सन्देश पाने वाला भी उसका वैसा ही अर्थ लगाये, इस विषय में भी सम्प्रेषक द्वारा विशिष्ट अनुदेश दिया जाता है। इस प्रकार आधि सम्प्रेषण से आशय 'सम्प्रेषण के विषय में सम्प्रेषण' से है तथा जो कुछ कहा और किया जाता है उसके बीच जितनी असंगति होगी आधि सम्प्रेषण उतना ही अधिक होगा।

आधि सम्प्रेषण हमें व्यक्तिगत सूचना देता है तथा मनुष्य के अशाब्दिक व्यवहार की विवेचना के नियमों को निर्दिष्ट करता है। कुछ व्यक्तिगत सन्देश ऐसे भी होते जो हमें उनके नियामकों, संकेतकों की प्रकृति तथा प्रभाव प्रदर्शन का संकेत देते हैं और यह भी बताते हैं कि उनके व्यवहार का कूट कैसे खोला जाये। प्रसिद्ध विचारक मोर्टेन्सन का कथन है किः नियामक बोलने से सुनने तक के संक्रमण को नियन्त्रित करता है। इसे हम निम्नलिखित तरीके से आसानी से समझ सकते हैं -

1. नियामक शाब्दिक और अशाब्दिक संकेतों की दर, व्याख्या तथा चिन्हांकन के नियंत्रण में अनैच्छिक और अवचेतन तथा चेतना दर से परे प्रकट होते हैं।
2. शारीरिक भंगिमायें, शरीर को चिन्हित करने वालों के माध्यम से प्रथमतः उद्व्यक्त अथवा विराम चिह्नों का कार्य करती है।
3. शरीर संचालन या अंग संचालन के निहित नियम, सामाजिक अनुभव तथा संस्कृति के प्रभावों से सीखे जाते हैं।
4. सानिध्य तत्व भी अन्तःक्रिया की पद्धति तथा प्रवाह से संबंधित है। अन्तःव्यक्ति आकर्षण, लिंगगत, परिचय एवं व्यक्तिगत अन्तर की भावना अंश के साथ भिन्न-भिन्न होते हैं।

5. अशाब्दिक सम्प्रेषण का भावात्मक प्रभाव भी होता है। सम्प्रेषक की भंगिमायें ग्रहीता के मन में नये भाव पैदा करने का प्रयास करते है।
6. संकेतकों का योगदान उस मनोवैज्ञानिक नवीकरण में होता है जिसे अन्तःक्रिया करने वाले परस्पर बनाये रखते हैं, जैसे-
   (अ) नेत्र सम्पर्क चाहत का एक आदर्श संकेतक है।
   (ब) सम्मिलन की घनीभूत भावना के साथ नेत्र सम्पर्क बढ़ जाता है तथा अन्तःव्यक्ति आकर्षण, सकारात्मक एवं नकारात्मक मूल्यांकन, लिंग तथा व्यक्तित्व अन्तर मनोवैज्ञानिक प्रधानता के निर्णयों के साथ सम्बद्ध होता है।

पराभाषा

पराभाषा से तात्पर्य वाणी के प्रच्छन्न पक्षों से है। वाणी की विशेषताएँ जैसे- उच्चता, तारता, तीव्रता तथा तरह-तरह के वाग्दोष, ध्वनियों की अस्पष्टता, प्रतिक्रिया-काल, मौन की अवधि आदि की सम्प्रेषण में क्या भूमिका है? इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक ध्यान दिया गया है। इस क्षेत्र में किये गये अध्ययनों का उद्देश्य मुख्यतः दशाओं के पहचानने में और अन्तः क्रियात्मक स्थितियों में पराभाषिक संकेतों की परिमार्जित करने की भूमिका का विश्लेषण करना रहा है। इस बात के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं कि वाणी की विशेषताएँ सम्प्रेषण की सांवेगिक स्थितियों को व्यक्त करती हैं। प्रयोगों में वाणी की विशेषताओं को परिवर्तित करके संवेगों की पहचान का सफलतापूर्वक प्रयास किया गया है। उदाहरण के लिए वाणी में अवरोध चिन्ता के सम्बन्ध में पाया गया है। वाणी का टोन झूठ और सच को अलग करता है।

सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

अशाब्दिक सम्प्रेषण का आधार मौखिक (जैविक) अथवा सामाजिक या दोनों ही हो सकता है। भाव सामान्यतया चेहरे या मुख-मण्डल द्वारा स्पष्ट हो जाता है। चेहरे को हर्ष-विषाद, भय, आशा-निराशा, आश्चर्य, उत्तेजना, क्रोध, लज्जा, परेशानी आदि को अभिव्यक्त के सम्बन्ध में की जाये। जब किन्हीं अभिव्यक्तियों को हटकर देखा जाता है तो चित्र में अंकित भावनाओं को ठीक-ठीक समझना जटिल हो जाता है। यदि किसी व्यक्ति के मुस्कराते हुए चेहरे का किसी व्यक्ति के उदास चेहरे से आकलन किया जाय तो यह स्थिति आसानी से समझ में आ जाती है। दोनों चेहरों की भिन्नता भी स्पष्ट हो जाती है। डब्लू.एल.रे ने इस सम्बन्ध में लिखा है-

"शरीर की कोई भी भंगिमा या अभिव्यक्ति जिस सन्दर्भ में प्रकट की जाये अर्थहीन नहीं होती तथा मानव व्यवहार के अनेक पक्षों की तरह शारीरिक आसन, भंगिमायें, मुख मण्डलीय अभिव्यक्तियों के अनेक रूप होते हैं जिनके द्वारा हम उनका विश्लेषण कर सकते हैं।" जब शारीरिक हाव-भाव में कोई नियमितता नहीं होती तो उसे अनियमित भंगिमा कहते हैं। ये भंगिमायें जब विशिष्ट होती है तो इन्हें 'विलक्षण स्वभाव' वाला कहा जाता है। भाव भंगिमायें उस समय और भी महत्वपूर्ण होती है जब वे निरीक्षण करने एवं कोड को अर्थ देने हेतु उपलब्ध होती है। अशाब्दिक संकेत जो भाषण के उतार चढ़ाव को नियन्त्रित करते हैं उन्हें 'नियामक संकेत' कहते हैं। इसके अतिरिक्त एक 'परिचयात्मक संकेत' भी होती हैं इससे मानवीय रुचियों, व्यक्तिगत भावनाओं तथा रवैये सम्बंधी अभिव्यक्ति होती है।

एक अशाब्दिक सिद्धान्त के प्रतिपादन में संहिताकरण की अशाब्दिक विधाओं को तीन विशिष्ट श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. संकेत भाषा

इसमें संहिताकरण की वे सभी विधायें शामिल है जिसमें शब्द, अंक तथा विराम चिह्नों का स्थान हाव-भाव सम्प्रेषण ले लेते हैं। यह हिचकिचाहट की मुद्रा से लेकर वधिरों जैसी सम्पूर्ण प्रणाली तक भिन्न-भिन्न रूप धारण कर सकती है।

2. क्रिया भाषा

इसमें वे सभी अंग संचार आ जाते हैं जिन्हें केवल संकेतों के रूप में प्रयोग नहीं किया जाता। उदाहरणार्थ हमारे उठने-बैठने का ढंग, शारीरिक संकेत और भाव-भंगिमायें भी हमारी भावनाओं को बहुत हद तक अभिव्यक्त कर देते हैं। इसी प्रकार आँखों की भाषा से भी बहुत कुछ अभिव्यक्त हो जाता है।

3. वस्तु भाषा

इसमें उपकरण, यन्त्र, कला, वस्तु तथा अन्ततः मानव शरीर, वस्तु या आचरण जो मानव शरीर को ढंकते है जैसी वस्तुओं के सभी सचेष्ट व निश्चेष्ट प्रदर्शन शामिल है। अक्षर समूह जैसा विज्ञापनों में होता है वे भौतिक तत्व है। शब्दों का यह पक्ष भी वस्तु भाषा के रूप में माना जाता है। कार्टून, फोटो आदि भी वस्तु भाषा के ही रूप है।

अशाब्दिक संचार का महत्व

अशाब्दिक सम्प्रेषण बहुत ही जटिल प्रक्रिया है। इसका रहस्य जानने के लिए अनेक अध्ययन किये गये। इन अध्ययनों में पाया गया कि अशाब्दिक संकेत

संचेतना का प्रकटीकरण भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं। ये संकेत अनियमित भंगिमायें, मानसिक दैहिक व्यवहार अथवा ऐसे क्रिया हो सकते हैं जिनमें अनुभव की भागीदारी होती है। वे उस सूचना के प्रकार जो वे दूसरों को देते हैं से ही भिन्न नहीं होते अपितु अपने मूल में भी भिन्न हो सकते हैं। सम्प्रेषण की यह प्रक्रिया मानवीय सम्प्रेषण प्रक्रिया में मूकों एवं बधिरों के लिए सर्वाधिक उपयोगी होती है। अशाब्दिक सम्प्रेषण का भावनात्मक प्रभाव भी होता है। सम्प्रेषण की यह प्रक्रिया सामान्यतया निर्देशात्मक होती है।

प्रतिपुष्टि जो सम्प्रेषण प्रक्रिया का अनिवार्य घटक है उसकी प्राप्ति भी अशाब्दिक सम्प्रेषण में संकेतों के माध्यम से हो सकती है। चूँकि शाब्दिक सम्प्रेषण (मौखिक सम्प्रेषण) में सन्देशों के बीच में एक अन्तराल होता है तो अशाब्दिक सम्प्रेषण श्रोताओं की ओर से तत्काल प्रतिक्रिया करा देता है।

प्रतिपुष्टि अविलम्ब, निश्चित एवं विनिश्चयात्मक होती है। यह मूल कथन को स्पष्ट करने, बदलने या अधिक विस्तृत बनाने में सहायक है।

अशाब्दिक सम्प्रेषण के विभिन्न घटक

अशाब्दिक सम्प्रेषण के घटकों को निम्नलिखित छह रूपों में समझा जा सकता है।

(1) गतिशास्त्र
(2) निकटता विश्लेषण
(3) नेत्रगति
(4) स्पर्श
(5) वातावरण
(6) ध्वनि का उतार-चढ़ाव

(1) गतिशास्त्र

यह सम्प्रेषक के गति की ओर संकेत करता है। इसका शाब्दिक अर्थ 'शारीरिक गति' से है। सम्प्रेषण के तरीकों में यह शारीरिक हावभाव, मुखमुद्रा और शरीर गति की ओर इंगित करता है। शारीरिक गति से कुछ ऐसी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं, जो शाब्दिक सूचनाओं से भी ज्यादा प्रभावी होती है। शारीरिक हावभाव, मुखमुद्रा, शारीरिक गति, अनेक तरह के भाव तथा संवेग पैदा करती है, जो सम्प्रेषण में अपनी अहम् भूमिका निभाता है, जैसे आँखों की भौहों को बहुत देर तक उठाने का अर्थ, आश्चर्य प्रकट करना और उन्हें थोड़ा कम उठाना, बातचीत जारी रखने का

संकेत प्रदान करता है। अध्यापक की किसी खास विद्यार्थी की ओर जाना, उसके सक्रिय सहभागिता को बढ़ाता है और कभी-कभी तो उससे विद्यार्थी को घबड़ाहट भी महसूस होने लगती है। अन्तर्वैयक्तिक वार्तालाप में शरीर गति और भाषिक व्यवहार दोनों ही कार्य करते हैं और अनतःक्रिया को संयोजित भी करते हैं।

(2) समीपता

प्रोक्जोमिक्स शब्द की उत्पत्ति प्रोक्जेमिटी शब्द से हुआ है। जिसका अर्थ समीपता से लगाया जाता है। यहाँ का मतलब अन्तरव्यैक्तिक या समूह अन्तःक्रिया के बीच दूरी से लगाया जाता है। इस दूरी को एडवर्ड हाल ने चार क्षेत्रों में विभाजित किया है। जो विभिन्न प्रकार के सम्प्रेषण के लिए अपनी सार्थकता सिद्ध कर चुके हैं।

1. आत्मीय दूरी	0-18 इंच की दूरी
2. वैयक्तिक दूरी	18 इंच से 4 फीट की दूरी
3. सामाजिक दूरी	4 फीट से 7 फीट की दूरी
4. आम दूरी	7 फीट से अधिक दूरी

एडवर्ड हाल द्वारा उपर्युक्त वर्णित दूरी क्षेत्र सम्प्रेषण में काफी महत्वपूर्ण है। सूचना स्रोत, सम्प्रेषक और सूचनाग्रहीता के बीच प्रभावी सम्प्रेषण के लिए न तो ज्यादा और न तो अधिक कम दूरी होनी चाहिए। मध्यम दूरी से सदैव अच्छा प्रभाव पड़ता है। अर्थात् 18 इंच से 4 फीट वैयक्तिक संचार के लिए और 4 से 7 फीट की दूरी कला-शिक्षण के लिए प्रभावी होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूचना स्रोत, सम्प्रेषक और सूचनाग्राही के बीच की दूरी, प्रभावी व सफल सम्प्रेषण के लिए अति आवश्यक है।

3- नेत्र गति

यह नेत्र गति और नेत्र सम्बन्ध की ओर इंगित करता है, इससे संवेग और अन्तःक्रिया के नियन्त्रण में प्रमुख सहायता मिलती है। आँखों का व्यवहार बड़ी आसानी से समझ में आ जाता है और शीघ्रतापूर्वक दूसरों का ध्यान भी आकर्षित हो जाता है। नेत्र गति की निम्नांकित विशेषताएँ हैं-

(i) वक्ता को सूचनाग्राही से नेत्र सम्बन्ध भी स्थापित करने होते हैं लेकिन अधिक देर तक नेत्र सम्बन्ध स्थापित करना ठीक नहीं है।

(ii) यदि आप बात करते समय किसी की तरफ अधिक देर तक टकटकी लगाये देखते हैं तो वह व्यक्ति आपसे कोई प्रश्न पूछने में और आप द्वारा

प्रसारित सूचनाओं को समझने में कठिनाई महसूस करने लगता है।

(iii) अल्प तथा अधिक आवृत्ति वाली दृष्टि यह बताती है कि व्यक्ति के बारे में सूचना प्राप्त करना चाहता है लेकिन अपने बारे में सूचना को नियंत्रित रखना चाहता है।

(iv) सम्प्रेषण के दौरान थोड़ा आँखें खोलना, रोचकता से लगाया जाता है लेकिन उन्हें काफी अधिक खोलना 'चेतावनी पूर्व स्थिति' का आभास कराता है।

(v) अधिक आवृत्ति वाली और दीर्घकालिक दृष्टि का तात्पर्य है कि व्यक्ति के बारे में सूचना पाना चाहता है और अपने बारे में दूसरे व्यक्ति को सूचना देना चाहता है।

4- स्पर्श

इसका शाब्दिक अर्थ स्पर्श ज्ञान से लगाया जाता है। इसकी निम्नांकित विशेषताएँ हैं।

(i) सम्प्रेषण के दौरान किसी के ध्यान को आकर्षित करने के लिए कंधे को प्रायः स्पर्श करना अच्छा नहीं समझा जाता इससे प्रभावी सम्प्रेषण में बाधा उत्पन्न होती है।

(ii) अपने शरीर के किसी भाग को प्रायः स्पर्श करना सम्प्रेषण के दौरान ठीक नहीं समझा जाता। नाक रगड़ना, सर खुजलाना, शर्ट या पैंट को बार-बार ठीक करना, सम्प्रेषण प्रक्रिया में घबराहट या ध्यान भंग करने का द्योतक माना जाता है।

5- वातावरण

आब्जेक्टिव का अर्थ सम्प्रेषण के दौरान हम जिन चीजों से सम्बन्धित या घिरे हैं, या वहाँ के चारों ओर के वातावरण से लगाया जाता है। अतः निम्नांकित बातों का ध्यान रखना चाहिए-

(i) सम्प्रेषक का पोशाक ध्यान भंग करने वाला नहीं होना चाहिए। इसे सूचनाग्राही के स्थिति और कार्य के अनुसार होना चाहिए।

(ii) सम्प्रेषण के दौरान हमारे चारों ओर की चीजें, जैसे- कुर्सी, मेज, सुगन्ध, रंग, प्रकाश की कमी और प्रकाश की समुचित मात्रा सम्प्रेषण को प्रभावी बनाती है।

6- ध्वनि का उतार-चढ़ाव

वोकैलिक्स का अर्थ अशाब्दिक सम्प्रेषण में शब्द, शब्दों की तीव्रता, टोन, पिच व ध्वनि के उतार-चढ़ाव इत्यादि से लगाया जाता है जो सम्प्रेषण को प्रभावी बनाता है। इसकी विशेषताएँ निम्नांकित हैं-

(i) सम्प्रेषण के दौरान मोटी धीमी आवाज संदेशग्रहीता के लिए अधिक प्रभावी होती है।

(ii) बहुत तेज वक्तव्य देना सम्प्रेषण की सफलता को हानि पहुँचाता है।

(iii) सम्प्रेषण के दौरान अग् ..... इंच.....अर.... इत्यादि उच्चारण भाषण के स्तर को कम करते हैं और सम्प्रेषण में बाधक तत्व का कार्य करते हैं। कभी-कभी ये सूचनाग्रहीता के लिए परेशानी भी पैदा करते हैं।

(iv) सम्प्रेषण में सम्प्रेषक का, वक्तव्य के दौरान कम ठहराव, ग्रहीता का ध्यान केन्द्रित करता है, लेकिन वक्तव्य के दौरान अधिक ठहराव, सूचनाप्रापक को परेशानी में डालता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्प्रेषण में अशाब्दिक कौशलों का प्रयोग सम्प्रेषण के गुण और प्रभावकारिता को प्रदर्शित करता है। सम्प्रेषक अवाचिक संचार कौशल में जितना ही निपुण होगा सन्देश उतना ही प्रभावी होगा। अवाचिक सम्प्रेषण द्वारा सूचना सम्प्रेषित भी की जाती है, ग्रहण भी की जाती है तथा भाषिक (मौखिक) सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने में सहमति भी ली जाती है।

संदर्भ

1.महाभारत, सभा पर्व, द्यूतपर्व, अध्याय 56, श्लोक 42

2. महाभारत, वन पर्व, इन्द्रलोकाभिगमन पर्व, अध्याय 46, श्लोक 38

3. महाभारत, वन पर्व, इन्द्रलोकाभिगमन पर्व, अध्याय 46, श्लोक 39

4. महाभारत, वन पर्व, इन्द्रलोकाभिगमन पर्व, अध्याय 46, श्लोक 40-41

5. महाभारत, वन पर्व, अध्याय 46, श्लोक संख्या 19

6. महाभारत, आदि पर्व, अर्जुनवनवास पर्व, अध्याय 37, श्लोक संख्या 17

7. महाभारत, आदि पर्व, अर्जुनवनवास पर्व, अध्याय 37, श्लोक संख्या 18

8. महाभारत, आदि पर्व, अर्जुनवनवास पर्व, अध्याय 37, श्लोक संख्या 19

9. संचार के मूल सिद्धांत, डॉ. ओमप्रकाश सिंह,

10. सम्प्रेषण विधा, दयाराम विश्वकर्मा

11. सम्प्रेषण : अवधारणा और स्वरूप, गुलाब कोठारी, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन

12. सम्प्रेषण प्रतिरूप एवं सिद्धांत, डॉ. श्रीकांत सिंह

13. सामाजिक मनोविज्ञान, रामबाबू गुप्त, रतन प्रकाशन मंदिर

14. जनमाध्यम और पत्रकारिता, प्रवीण दीक्षित

15. नाट्यम, हिंदी त्रैमासिक, संपादक- राधावल्लभ, नाट्य परिषद सागर, अगस्त 1988

16- The Process of Communication- An Introduction to the theory and Practice, David K. Berlo, Holt Richart and Winston

17- Human Communication- An Introduction, Joseph A Devito, Harper & Row new York.

18- Towards a Psychological theory of Human Communication, F. Franklin

अध्याय 10

दिव्य दृष्टि द्वारा संचार

सामान्यतः दिव्य दृष्टि का अर्थ है-

1. वह अलौकिक दृष्टि जिससे गुप्त पदार्थ या अदृश्य तत्व आदि दिखाई दें।

2. ज्ञान दृष्टि

3. बहुत दूर के या छिपे हुये पदार्थों या बातों को देखने और समझने की शक्ति जो कुछ विशिष्ट व्यक्तियों या विशिष्ट अवस्थाओं में होने वाली मानी जाती है। दिव्य दृष्टि सामान्य परिस्थितियों में किसी को प्राप्त नहीं होती। यह पारलौकिक कतिपय शक्तियों द्वारा मनुष्यों को प्रदान की जाती है। इस दिव्य दृष्टि द्वारा व्यक्ति दृश्यों का अवलोकन करने जाता है। इस प्रकार दिव्य दृष्टि एक तरह से दृश्य संचार का उत्कृष्ट उदाहरण है।

उपरोक्त अर्थों के आधार पर हम कह सकते हैं कि महाभारत में अनेक ऐसी घटनाओं का उल्लेख जिन्हें अलौकिक शक्तियाँ लौकिक (मनुष्य) को अदृश्य वस्तुओं (चित्रों) को देखने एवं समझने हेतु दिव्य दृष्टि प्रदान की। महाभारत युद्ध का तो आँखों देखा पूरा विवरण दिव्य दृष्टि के द्वारा ही संजय, महाराज धृतराष्ट्र को सुनाते थे। यहाँ हम महाभारत के कुछ प्रमुख दृष्टांतों का उल्लेख कर रहे हैं।

दृष्टान्त- पाण्डवों का द्रोपदी के साथ विवाह

महाराज द्रुपद अपनी पुत्री द्रोपदी का पाँचों पाण्डवों के साथ विवाह करना धर्म विरुद्ध समझते थे। तब भगवान व्यास ने उन्हें समझाते हुए कहा-

इदं चान्यत् प्रीतिपूर्व नरेन्द्र
ददानिले वरमत्यद्युतं च।
दिव्यंचक्षुः पश्च कुन्तीसुतांस्त्वं
श्रुण्यैदिव्यैः पूर्व देहैरूपेतान्।।[1]

(अर्थात नरेन्द्र मैं तुम्हें प्रसन्नतापूर्वक एक और अद्भुत वर के रूप में दिव्य दृष्टि देता हूँ। इससे सम्पन्न होकर तुम कुन्ती के पुत्रों को उनके

पूर्वकालीन पुण्यमय दिव्य शरीरों से सम्पन्न देखो।)

तदनंतर भगवान व्यास ने महाराज द्रुपद को अपनी तपस्या के प्रभाव से दिव्य दृष्टि प्रदान किया जिससे उन्होंने समस्त पाण्डवों को पूर्व शरीरों से सम्पन्न वास्तविक रूप में देखा। वे सभी दिव्य शरीर से सुशोभित थे। उनके मस्तक पर सुवर्णमय किरीट और गले में सुन्दर सोने की माला शोभा पा रही थी। उनकी छवि इन्द्र के समान थी। वे अग्नि और सूर्य के समान कांतिमान् थे। उनके सभी अंग दिव्य अलंकारों से सुशोभित थे। उनकी युवावस्था थी। छाती चौड़ी थी। इस रूप में महाराज द्रुपद ने पाण्डवों के पूर्व रूप का दर्शन किया। पाँचों पाण्डवों को परम सुन्दर पूर्वकालीन इन्द्रों के रूप में देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न और आश्चर्यचकित हो उठे।

ततो व्यासः परमोदारकर्मा
शुचिर्विप्रस्तपसा तस्य राज्ञः।
चक्षुर्दिव्यं प्रददौ तांश्च सर्वान्।
राजापश्यत् पूर्वदेहैर्यथावत्।।
ततो दिव्यान हेमकिरीटमालिनः।
शक्रप्रख्यान् पावकादित्यवर्णान्।
बद्धापीडांश्चारुरूपांश्च यूनो
व्यूढोरस्कांस्तालमात्रान् ददर्श।।[2]

उन्होंने अपनी पुत्री को भी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी तथा साक्षात चन्द्रमा तथा अग्नि के समान प्रकाशित होने वाली दिव्य नारी के रूप में देखा तथा यह मान लिया कि द्रोपदी रूप, तेज, यश की दृष्टि से उन पाँचों पाण्डवों की पत्नी होने योग्य है। इससे वे अत्यन्त हर्षित हुये।

तां चैवाग्रयां स्त्रियमतिरूपयुक्तां
दिव्यां साक्षात् सोमवह्निप्रकाशाम्।
योग्यां तेषां यपतेजोयशोभिः
पत्नीं मत्वा हृष्टवान् पार्थिवेन्द्रः।।[3]

यह देखकर महाराज द्रुपद सत्यवती नंदन भगवान व्यास के चरण पकड़ लिये और बोले- 'महर्षि आपमें ऐसी शक्ति का होना आश्चर्य की बात

है।' तत्पश्चात व्यास जी ने द्रोपदी से सम्बन्धित एक और दृष्टांत सुनाया। (इसका उल्लेख पूर्व के अध्याय में किया गया है।)

दृष्टान्त- भगवान श्रीराम द्वारा परशुराम से संवाद

(यह दृष्टांत रामायण काल का है। किन्तु महाभारत में वन पर्व के तीर्थ यात्रा पर्व में भी इसका उल्लेख मिलता है।)

दशरथ नंदन श्रीराम का भारी पराक्रम सुनकर यमदग्निनंदन परशुराम उन्हें देखने के लिये उत्सुक हो क्षत्रिय संहारक दिव्य धनुष लिये अयोध्या में आये। उनका उद्देश्य दशरथ नंदन भगवान श्रीराम के बल पराक्रम की परीक्षा करनी थी। महाराज दशरथ को जब पता चला कि परशुराम जी हमारी सीमा पर आ गये हैं तब उन्होंने मुनि की अगवानी के लिये अपने पुत्र श्रीराम को भेजा। भगवान श्रीराम धनुष बाण लेकर महर्षि के स्वागत हेतु खड़े थे। यह देखकर परशुराम जी ने हँसते हुये कहा- "राजेन्द्र यदि तुममे शक्ति हो तो इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाओ। यह वह धनुष है जिसके द्वारा मैंने क्षत्रियों का संहार किया है।"

कृतकालं हि राजेन्द्र धनुरेतन्मया विभो।
समारोपयं यत्नेन यदि शक्नोषि
इत्युक्तस्त्वाह भगवंत्स्वं नाधिक्षेप्तुमर्हसि।।[4]

उनके ऐसा कहने पर भगवान श्रीराम ने कहा- "भगवन आपको इस तरह आक्षेप नहीं करना चाहिये। मैं भी समस्त द्विजातियों में क्षत्रिय धर्म का पालन करने में अधम नहीं हूँ। सामान्यतः इक्षाकुवंशीय क्षत्रिय अपने बल और पराक्रम की प्रशंसा नहीं करते।" तब परशुराम जी ने कहा- "रघुनंदन! बताने-बनने की कोई आवश्यकता नहीं। यह धनुष लो और इस पर प्रत्यंचा चढ़ाओ।"[5]

तदनंतर भगवान श्रीराम ने वह क्षत्रिय संहारक धनुष लेकर तुरंत प्रत्यंचा चढ़ा दी। तत्पश्चात पराक्रमी श्रीराम जी ने मुस्कुराकर धनुष की टंकार फैलाई और बोले- "ब्रह्मन्! यह धनुष तो मैंने चढ़ा दिया अब आपका कौन सा कार्य करूँ।"[6] तब परशुराम ने भगवान राम को एक दिव्य वाण देकर कहा- "इसे धनुष के पास रखकर अपने कान के पास तक खींचिये।"

तब भगवान श्रीराम क्रोधित होकर बोले- "भृगुनन्दन! तुम बड़े घमण्डी हो, मैं तुम्हारी कठोर बातें सुनता हूँ फिर क्षमा कर देता हूँ। तुम अपने पितामह ऋचीक के प्रभाव से क्षत्रियों को जीतकर विशेष तेज प्राप्त किया है। इसीलिये मुझ पर आक्षेप करते हो। लो मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ। उसके द्वारा मेरे यथार्थ स्वरूप का दर्शन करो।"

पश्य मां स्वेन रूपेण चक्षुस्ते वितराम्यहम्।
ततो रामशरीरे वै रामः पश्यति भार्गवः।।[7]

तब परशुराम जी ने श्रीराम जी के शरीर में बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रूद्र, साध्य देवता, उनचास मरुद्गण, पितृगण, अग्नि देव, नक्षत्र, ग्रह, गंधर्व, राक्षस, यक्ष, नदियाँ, तीर्थ, सनातन ब्रह्मभूत, उपनिषदों सहित वेद आदि को चेतन रूप धारण किये हुये प्रत्यक्ष देखा। भगवान राम ने वह बाण छोड़ा जो परशुराम जी को व्याकुल करके केवल उनके तेज को क्षीण कर पुनः वापस लौट आया। परशुराम जी मूर्च्छित हो गये। उठने पर वे भगवान राम को प्रणाम करके लज्जित होकर महेन्द्र पर्वत पर चले गये।

दृष्टान्त- कुन्ती द्वारा मंत्र का परीक्षण एवं कर्ण की उत्पत्ति

राजकुमारी कुन्ती महर्षि दुर्वासा द्वारा दिये गये मंत्र का परीक्षण करने के लिये सूर्य देव का आह्वान किया। भगवान सूर्यदेव बड़े उतावलेपन के साथ वहाँ आये और कुन्ती से बोले-

तां समासाद्य देवस्तु विवस्वानिदमब्रवीत्।
बयूर्स्यकसमापांगि ब्रूहि किं करवाणि ते।।[8]

"भद्रे! मैं तुम्हारे मंत्र के बल से आकृष्ट होकर तुम्हारे वश में आ गया हूँ। बताओ मैं तुम्हारे अधीन तुम्हारा कौन-सा काम करूँ।" कुन्ती ने कहा- "भगवन! आप जहाँ से आये हैं, वहीं पधारिये। मैंने आपको कौतुहल वश ही बुलाया था। प्रभो! प्रसन्न होईये।" सूर्य ने कहा- "तुम जैसा कह रही हो, उसके अनुसार मैं चला तो जाऊँगा ही परन्तु किसी देवता को बुलाकर उसे व्यर्थ लौटा देना न्याय की बात नहीं है। सुभगे! तुम्हारे मन में यह संकल्प उठा कि सूर्यदेव से मुझे एक ऐसा पुत्र प्राप्त हो जो संसार में अनुपम पराक्रमी तथा जन्म से ही कवच और कुण्डलों से सुशोभित हो। अतः तुम मुझे अपना शरीर समर्पित कर

दो। ऐसा करने से तुम्हें अपने संकल्प के अनुसार तेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा। तुमसे समागम करके मैं पुनः लौट जाऊँगा।

पुत्रस्ते निर्मितः सुभ्रु श्रृणु यादृक्छुभाने।
आदित्ये कुण्डले बिभ्रत् कवचं चैव मामकम्।
शस्त्रास्त्राणामभेद्यं च भविष्यति शुचिस्मिते।।
न न किंचन देयं तु ब्राह्मणेभ्यो भविष्यति।
चाद्यमानो मया चापि नाक्षमं चिन्तयिष्यति।
दास्यत्येव हि विप्रेभ्यो मानी चैव भविष्यति।।[9]

यदि तुम ऐसा नहीं करोगी तो मुझे देवलोक के देवता कहेंगे कि मैं तुम्हारे द्वारा कैसा ठगा गया? वे सभी देवता मुस्कुरा रहे हैं।" यह कहकर भगवान सूर्य ने कुन्ती को दिव्य दृष्टि प्रदान किया। तब राजकुमारी कुन्ती ने सभी देवताओं को आकाश में अपने-अपने विमान पर बैठे हुये देखा।

दृष्टान्त- भगवान कृष्ण का विश्व रूप दर्शन कराकर कौरव सभा से प्रस्थान-

भगवान श्रीकृष्ण शांति दूत बनकर गये। पाण्डवों का संदेश वे कौरव सभा में सुना दिये। किन्तु कौरवों का इस पर कोई असर नहीं पड़ा। दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन एवं शकुनि भगवान कृष्ण को कैद करने की योजना बना चुके थे। इस योजना का क्रियान्वयन होने के पूर्व ही पटाक्षेप हो गया। तब भगवान श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से कहा- दुर्बुद्धि दुर्योधन! तू मोहवश मुझे अकेला मान रहा है और मेरा तिरस्कार करके मुझे पकड़ना चाहता है। यह तेरा अज्ञान है। देख सब पाण्डव यहीं हैं। अंधक और वृष्णिवीर के सभी वीर भी यहीं हैं। आदित्यगण, वसुगण, रूद्रगण एवं महर्षिगण भी यहीं हैं।"

विदुरेणैवमुक्तस्तु केशवः शत्रुपूगहा
दुर्योधनं धार्तराष्ट्रमभ्यीाषत वीर्यवान्।
एकोऽहमिति यन्मोहान्मन्यसे मां सुयोधन।
परिभूय सुदुर्बुद्धे ग्रहीतुं मां चिकीर्षसि।।
हइैव पाण्डवाः सर्वे तथैवान्धकवृष्णयः।
इहादित्याश्च रूद्राश्च वसवश्च महर्षिभिः।।[10]

ऐसा कहते हुए भगवान श्रीकृष्ण अट्टहास करने लगे। समस्त लोकपाल उनकी भुजाओं में स्थित है। उनके मुख से अग्नि की लपटें निकलने लगीं। उनकी दोनों भुजाओं से भगवान बलराम और अर्जुन का प्रादुर्भाव हुआ। भीमसेन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव उनके पृष्ठभाग में थे। प्रद्युम्न आदि वृष्णिवंशी योद्धा हाथों में विशाल आयुध धारण किये उनके अग्रभाग में प्रकट हुये। समस्त रोम कूपों से सूर्य के समान किरणें छटक रही थीं। भगवान कृष्ण के इस भयंकर रूप को देखकर सभी राजाओं के मन में भय उत्पन्न हो गया। पितामह भीष्म, महात्मा विदुर, आचार्य द्रोण, संजय एवं तपस्या में धनी महर्षियों को छोड़कर अन्य सभी की आँखें बंद हो गईं। भीष्म आदि को भगवान कृष्ण ने दिव्य दृष्टि प्रदान की थी। अतः वे आँख खोलकर उन्हें देखने में समर्थ हो सके।

संजयं च महाभागमृषींश्चैव तपोधनान्।
प्रादात् तेषां स भगवान् दिव्यं चक्षुर्जनार्दनः।।[11]

तदनंतर महाराज धृतराष्ट्र ने भगवान कृष्ण से कहा- "कमलनयन, यदुकुल तिलक, मधुसूदन! आप ही सम्पूर्ण जगत के हितैषी हैं। अतएव मुझ पर भी कृपा कीजिये। भगवन मेरे नेत्रों का तिरोधान हो चुका है। परन्तु आज मैं आपसे पुनः दोनों नेत्र माँगता हूँ। केवल आपका दर्शन करना चाहता हूँ। आपके सिवा किसी दूसरे को मैं नहीं देखना चाहता हूँ।"

त्वमेव पुण्डरीकाक्ष सर्वस्य जगतो हितः।
तस्मात् त्वं यादवश्रेष्ठ प्रसादं कर्तुमर्हसि।।
भगवन् मम नेत्राणामन्तर्धानं वृणे पुनः।
भवन्तं द्रष्टुमिच्छामि नान्यं द्रष्टुमिहोत्सहे।।[12]

भगवान कृष्ण ने महाराज धृतराष्ट्र को अपने विश्वरूप का दर्शन करने की इच्छा से दोनों नेत्र प्रदान कर दिये। तदनंतर धृतराष्ट्र ने उनके विश्व रूप का दर्शन कर लिया। फिर भगवान कृष्ण इसी लीला को समाप्त कर सभा भवन से बाहर चल दिये। उनके जाते ही वहाँ उपस्थित सभी महर्षि भी चले गये।

दृष्टान्त- भगवान वेद व्यास द्वारा संजय को दिव्य दृष्टि का ज्ञान-

महाभारत युद्ध के लिए कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरव और पाण्डव दोनों पक्षों की सेनायें युद्ध के लिये खड़ी हो गईं। दोनों ओर की सेनाओं को खड़ी देख भूत-भविष्य और वर्तमान का ज्ञान रखने वाले वे देवताओं में श्रेष्ठ सत्यवती नंदन भगवान व्यास जो युद्ध के भावी परिणाम को प्रत्यक्ष देख रहे थे, महाराज धृतराष्ट्र के पास आये। महाराज धृतराष्ट्र उस समय अपने पुत्रों के अन्याय का चिन्तन करते हुये शोकमग्न हो रहे थे। भगवान व्यास ने एकांत में उनसे कहा- "अम्बिकानंदन तुम्हारे पुत्रों तथा अन्य राजाओं का मृत्यु काल आ पहुँचा है। वे संग्राम में एक-दूसरे से भिड़कर मरने-मारने को तैयार हैं। भारत वे काल के अधीन होकर जब नष्ट होने लगे तो इसे काल का चक्र समझकर मन में शोक मत करना। यदि संग्राम भूमि में तुम इनकी अवस्था देखना चाहो तो मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान करूँ। वत्स! फिर तुम वहाँ होने वाले युद्ध का सारा दृश्य देख सकोगे।"

यदि चेच्छसि संग्रामे द्रष्टुमेतान् विशाम्पते।
चक्षुर्ददानि ते पुत्र युद्धं तत्र निशामय्।।[13]

महाराज धृतराष्ट्र बोले- "महर्षि प्रवर! मुझे आपने कुटुम्बीजनों का वध देखना अच्छा नहीं लगता। परन्तु आपके प्रभाव से इस युद्ध का सारा वृत्तांत सुन सकूँ ऐसी कृपा आप अवश्य कीजिये।"

न रोचये ज्ञातिवधं द्रष्टुं ब्रह्मर्षिसत्तम।
युद्धमेतत् त्वशेषेण श्रृणुयां तव तेजसा।[14]

महर्षि व्यास ने देखा कि महाराज धृतराष्ट्र युद्ध का हाल तो देखना नहीं चाहते, परन्तु सुनना अवश्य चाहते हैं। तब वर देने में समर्थ महर्षि व्यास ने संजय को वर देते हुए कहा-

एष ते संजयो राजन् युद्धमेतद् वदिष्यति।
एतस्य सर्वसंग्रामे न परोक्षं भविष्यति।
चक्षुषा संजयो राजन् दिव्यनैव समन्वितः।
कययिष्यति ते युद्धं सर्वज्ञश्च भविष्यति।।
प्रकाशं वा प्रकाशंवा दिवा वा यदि वा निशि।

मनसा चिन्तितमपि सर्वं वेत्स्यति संजयः।।

नैनं शस्त्राणि छेत्स्यन्ति नैनं वाधिष्यते श्रमः।

गावल्गणिरयं जीवन् युद्धादस्माद् विमोक्ष्यते।।[15]

(अर्थात राजन! यह संजय आपको इस युद्ध का सब समाचार बताया करेगा। सम्पूर्ण संग्राम भूमि में कोई ऐसी बात नहीं होगी, जो इसके प्रत्यक्ष न हो। संजय दिव्य दृष्टि से सम्पन्न होकर सर्वज्ञ हो जायेगा और तुम्हें युद्ध की बात बतायेगा। कोई भी बात प्रकट हो या अप्रकट, दिन में हो या रात में, अथवा वह मन में ही क्यों न सोची गई हो, संजय सब कुछ जान लेगा। इसे कोई हथियार नहीं काट सकता। इसे परिश्रम या थकावट की बाधा भी नहीं होगी। गल्लवगण का पुत्र संजय इस युद्ध में जीवित बच जायेगा।)

दृष्टांत- 6

भगवान कृष्ण ने विश्व रूप का अर्जुन को दर्शन कराया। यह दृष्टांत महाभारत के भीष्म पर्व में गीता के ग्यारहवें अध्याय में वर्णित है। अर्जुन भगवान कृष्ण के उपदेश को सुनकर उनसे प्रार्थना करते हैं-

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।

दुष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम्।।[16]

अर्थात हे परमेश्वर! आप अपने को जैसा कहते हैं, यह ठीक ऐसा ही है; परन्तु हे पुरुषोत्तम! आप के ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज से युक्त ऐश्वर्य रूप को मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ।

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रुष्टुमिति प्रभो।

योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्।।[17]

(अर्थात हे प्रभो! यदि मेरे द्वारा आपका वह रूप देखा जाना शक्य है- ऐसा आप मानते हैं, तो हे योगेश्वर! उस अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइये।)

न तु मां शक्यसे द्रुष्टमनेनैव स्वचक्षुषा।

दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्च मे योगमैश्वरम्।।[18]

(अर्थात मुझको तू अपने प्राकृत नेत्रों द्वारा देखन में निःसंदेह समर्थ नहीं है। इसी से मैं तुम्हें दिव्य अर्थात अलौकिक चक्षु देता हूँ। उससे तू मेरी

ईश्वरीय योगशक्ति को देख ।)

यह कहकर भगवान कृष्ण ने अपना दिव्य विराट स्वरूप अर्जुन को दिखलाया- अनेक मुख और नेत्रों से युक्त, अनेक अद्भुत दर्शन वाले बहुत से दिव्य भूषणों से युक्त और बहुत से शस्त्रों को हाथ में उठाये हुये दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किये हुये, दिव्य गंध का सारे शरीर में लेप किये हुये सब प्रकार के आश्चर्य से युक्त, सीमा रहित और सब ओर मुख किये हुये विराट स्वरूप परमदेव परमेश्वर को अर्जुन ने देखा। आकाश में हजारों सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न जो प्रकाश हो, वह भी उस विश्व रूप परमात्मा के प्रकाश सदृश कदाचित ही हो। अर्जुन ने कृष्ण के शरीर में देवों को तथा अनेक भूतों के समुदायों को, कमल के आसन पर विराजित ब्रह्मा को, महादेव को, सम्पूर्ण ऋषियों को तथा दिव्य सर्पों को देखा। वे भगवान कृष्ण को अनन्त सामर्थ्य से युक्त, अनंत भुजा वाले चन्द्र सूर्य रूप नेत्रों वाले, प्रज्ज्वलित अग्नि रूप मुख वाले और अपने तेज से इस जगत को संतृप्त करते हुये देखा। उन्होंने यह भी देखा कि देवताओं के समूह भगवान कृष्ण के गुणों का उच्चारण करते हुए भयभीत होकर हाथ जोड़े उत्तम स्रोतों द्वारा उनकी स्तुति कर रहे हैं।

धृतराष्ट्र के सभी पुत्र, राजाओं के समुदाय सहित कृष्ण के अन्दर प्रवेश कर रहे हैं। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण तथा पाण्डव पक्ष के बहुत से योद्धा कृष्ण के विकराल भयानक मुख में प्रवेश कर रहे हैं। जैसे पतंग मोहवश नष्ट होने के लिये प्रज्ज्वलित अग्नि में अति वेग से दौड़ते हुये प्रवेश करते हैं वैसे ही ये सब लोग अपने नाश के लिये कृष्ण के मुख में प्रवेश कर रहे हैं। ऐसा भयंकर दृश्य देखकर बोले-

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्टवा
मयेन च प्रत्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपम्
प्रसीद देवेश जगन्निवास।।[19]

(अर्थात्! मैं पहले न देखे हुये आपके इस आश्चर्यमय रूप को देखकर हर्षित हो रहा हूँ और मेरा मन भय से अति व्याकुल भी हो रहा है। इसीलिये आप अपने उस चतुर्भुज विष्णु रूप को मुझे दिखलाइये। हे देवेश! हे

जगन्निवास! प्रसन्न होइये ।)

इस प्रकार भगवान कृष्ण ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि प्रदान कर उन्हें अपने चतुर्भुज रूप का दर्शन कराया और बोला- "जिस प्रकार तुमने मुझको देखा है- इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला मैं न वेदों से, न तप से, न ज्ञान से और न यज्ञ से ही देखा जा सकता हूँ ।"

दृष्टान्त- भगवान श्रीकृष्ण का उतंक मुनि को विश्व स्वरूप का दर्शन कराना ।

श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ हस्तिनापुर जा रहे थे। उन्होंने रास्ते में कौरवों के विनाश की बात की । मार्ग में अनेक प्रकार के शकुन प्रकट होते थे। भगवान श्रीकृष्ण मरु भूमि के समतल प्रदेश में पहुँचकर अमित तेजस्वी मुनि श्रेष्ठ उतंक का दर्शन किया और उनका कुशल समाचार पूछा । महर्षि उतंक ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा क्या तुम कौरवों और पाण्डवों में संधि कराकर वापस लौट रहे हो । तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- महर्षे! मैंने पहले कौरवों के पास जाकर उन्हें शांत करने के लिए बड़ा प्रयत्न किया । परन्तु वे किसी तरह संधि के लिये तैयार न हुये । जब उन्हें समतापूर्ण मार्ग में स्थापित करना असंभव हो गया तब वे सबके सब अपने पुत्र और बंधु-बांधवों सहित युद्ध में मारे गये। भगवान श्रीकृष्ण के इतना कहते ही उतंक मुनि क्रोधित होकर श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहा- श्रीकृष्ण कौरव तुम्हारे प्रिय सम्बन्धी थे । तथापि तुम शक्ति युक्त होने पर भी उनकी रक्षा नहीं की। अतएव मैं तुम्हें अवश्य श्राप दूंगा। तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- भार्गव! आप तपस्वी हैं इसलिये मेरा अनुनय विनय स्वीकार करें। ऐसा कहकर उन्होंने उतंक मुनि के समक्ष अध्यात्म विषयक विस्तार से चर्चा की और कहा आपका तप और तेज बहुत बढ़ा हुआ है। विधिश्रेष्ठ आपने बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य का पालन किया है। इसलिये अत्यन्त कष्ट सहकर आपने जो पुण्य अर्जित किया है मैं उसे नष्ट नहीं करना चाहता। तब उतंक मुनि ने कहा- केशव! आप संपूर्ण जगत के कर्ता हैं। आपकी मुझ पर कृपा है ।

यदि त्वनुग्रहं कंचित् त्वत्तोऽर्हामि जनार्दन ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं तन्निदर्शय ।[20]

जनार्दन! यदि मैं आपसे कुछ भी कृपा प्राप्त करने का अधिकारी होऊँ तो आप मुझे अपना ईश्वरीय रूप दिखा दीजिये। आपके उस रूप को देखने की बड़ी इच्छा है।

ततः स तस्मै प्रीतात्मा दर्शयामास तद् वपुः।
शाश्वतं वैष्णवं धीमान् ददृशे यद् धनंजयः।[21]

राजन्! तब परम बुद्धिमान भगवान श्रीकृष्ण ने प्रसन्नचित होकर उन्हें अपने उसी सनातन वैष्णव स्वरूप का दर्शन कराया, जिसे युद्ध के प्रारम्भ में अर्जुन ने देखा था।

स ददर्श महात्मानं विश्वरूपं महाभुजम्।
सहस्रसूर्यप्रतिमं दीप्तिमत् पावकोपमम्।[22]

उत्तंक मुनि ने उस विश्वरूप का दर्शन किया, जिसका स्वरूप महान था। जो सहस्रों सूर्य के समान प्रकाशमान तथा बड़ी-बड़ी भुजाओं से सुशोभित था। उससे प्रज्ज्वलित अग्नि के समान लपटें निकल रही थीं।

सर्वमाकाशमावृत्य तिष्ठन्तं सर्वतोमुखम्।
तद् दृष्टवा परमं रूपं विष्णोर्वैष्णवमद्भुतम्।
विस्मयं च ययौ विप्रस्तं दृष्टवा परमेश्वरम्।[23]

उसके सब ओर मुख था और वह सम्पूर्ण आकाश को घेरकर खड़ा था। भगवान विष्णु के उस अद्भत एवं उत्कृष्ट वैष्णव रूप को देखकर उन परमेश्वर की ओर दृष्टिपात करके ब्रह्मर्षि उत्तंक को बड़ा विस्मय हुआ।

पर्याप्त एष एवाद्य वरस्त्वत्तो महाद्युते।
यत् ते रूपमिदं कृष्ण पश्यामि पुरुषोत्तम।[24]

महातेजस्वी पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण! आपके इस स्वरूप का जो मैं दर्शन कर रहा हूँ, यही मेरे लिए आज आपकी ओर से बहुत बड़ा वरदान प्राप्त हो गया।

संदर्भ

1. महाभारत, आदि पर्व (वैवाहिक पर्व), अ. 196, श्लोक संख्या 37
2. वही, श्लोक संख्या 38-39
3. वही, श्लोक संख्या 42
4. महाभारत, वन पर्व (तीर्थ यात्रा पर्व) अध्याय 99, श्लोक संख्या 46-47
5. वही, पृ. सं. 337
6. वही
7. वही, श्लोक संख्या 56
8. महाभारत, आदि पर्व (संभव पर्व), अ. 110, श्लोक संख्या 10
9. वही, पृ. 391
10. महाभारत, उद्योग पर्व, अ. 131, श्लोक संख्या 2-3
11. वही, श्लोक संख्या 15
12. वही, श्लोक संख्या 17-18
13. महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय 2, श्लोक संख्या 6
14. वही, श्लोक संख्या 7
15. वही, श्लोक संख्या 9 से 12 तक
16. श्रीमद्‌भगवतगीता, अध्याय - 11, श्लोक संख्या 3
17. वही, श्लोक संख्या 4
18. वही, श्लोक संख्या 8
19. वही, श्लोक संख्या 45
20. महाभारत, आश्वमेधिक पर्व (अनुगीता पर्व), अध्याय 195, श्लोक संख्या 3
21. वही, श्लोक संख्या 4
22. वही, श्लोक संख्या 5
23. वही, श्लोक संख्या 6
24. वही, श्लोक संख्या 11

अध्याय 11

सार्वजनिक लोक विमर्श

सुप्रसिद्ध संचारविद हैबरमास ने अपनी पुस्तक 'द स्ट्रकचरल ट्रांसफार्मेशन ऑफ द पब्लिक स्फेयर में जनक्षेत्र या लोकक्षेत्र की अवधारणा की विस्तारपूर्वक चर्चा की है। सामान्यतया लोक विमर्श वह सामाजिक जीवनवृत्त या अवस्थिति है जिसके निर्धारण में सामाजिक सम्प्रेषण की अनिवार्यता होती है। सामान्यतया लोक विमर्श की प्रकृति में नागरिक सहभागिता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह मनुष्य के निजी जीवन और सामाजिक तंत्र के बीच फैला एक मध्य क्षेत्र होता है। हैबरमास ने अपने अध्ययन में सामुदायिकता तथा जनक्षेत्र को दो संदर्भों में समझने का प्रयास किया है। इसका एक आयाम अपेक्षाकृत अधिक संचरणशील तथा विसरणमूलक है। इसके अन्तर्गत सम्प्रेषणीयता, सामाजिक अन्तःक्रिया, लोक विमर्श व समन्वित क्रिया कलाप सम्मिलित होते हैं जो वस्तुतः सामाजिक एकता तथा संवाद प्रणाली को जन्म देते हैं तो दूसरी तरफ स्थैतिक व्यवस्थामूलक आयाम है जो पूरी नौकरशाही व्यवस्था, भौतिक उत्पादन प्रणाली तथा शासकीय तंत्र को जन्म देता है। हैबरमास ने अपनी पुस्तक में इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि एक विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों तथा पूर्व निर्धारित मान्यताओं के आधार पर लोकविमर्श की अवधारणा का उदय होता है। हैबरमास ने 18वीं व 19वीं शताब्दी में बुर्जुआ के अभ्युदय को लोकतंत्र के जन्म व विकास के लिए उत्तरदायी माना है। वे इंग्लैंड फ्रांस व जर्मनी के राजनीतिक जीवन के आधार पर नागरिक समाज लोकतंत्र के सम्बन्ध में अपनी प्रारंभिक अवधारणा स्थापित किये हैं। वे कॉफी हाऊस, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक समूहों, राजनीतिक पार्टियों के क्षेत्रीय कार्यालयों तथा साहित्यिक पत्रिकाओं को लोक-विमर्श का उदाहरण मानते हैं। वस्तुतः ये वे साधन तथा स्थान हैं जहाँ संप्रेषण और तर्क की व्यवस्थायें विवेकपूर्ण एवं निष्पक्ष व्यवहार द्वारा

लोक-विमर्श को गतिशील करती है।

महाभारत में भी लोकविमर्श का अच्छा उदाहरण दृष्टिगत होता है। उस समय आज की तरह समाचारपत्र-पत्रिकायें नहीं थीं। रेडियो, टेलीविजन तथा सोशल मीडिया भी नहीं था। परन्तु लोग जहाँ कहीं भी चौराहों और सभाओं में इकट्ठे होते थे लोक विमर्श करते थे।

दृष्टान्त- महाराज पाण्डु के देहावसान पश्चात पाण्डवों को लेकर ऋषि-मुनियों का महाराज धृतराष्ट्र एवं भीष्म के पास पहुँचने पर जनभावना की अभिव्यक्ति

महाराज पाण्डु के मृत्यु के पश्चात वन के तपस्वी मुनियों ने महारानी कुन्ती सहित पांचों पांडु (युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल एवं सहदेव) सहित स्वर्गीय महाराज पाण्डु एवं उनकी धर्मपत्नी माद्री के शरीर की अस्थियाँ लेकर हस्तिनापुर पहुँचे और उसे पितामह भीष्म एवं महाराज धृतराष्ट्र को सौंपते हुए कहा-

पृथां च शरणं प्राप्तां पाण्डवांश्च यशस्विनः।
यथावदनुगृहण्न्तु धर्मो ह्येष सनातनः।
इमे तयाः शरीरे द्वे पुत्राश्चेमे तयोर्वराः।
क्रियाभिरनुगृह्यन्तां सह मात्रा परंपताः।[1]

शरण में आयी हुई कुन्ती तथा यशस्वी पाण्डवों को आप लोग यथोचित रूप से अपनाकर अनुगृहीत करें; क्योंकि यही सनातन धर्म है। ये पाण्डु और माद्री दोनों के शरीरों की अस्थियाँ हैं और ये ही उनके श्रेष्ठ पुत्र हैं, जो शत्रुओं को संतप्त करने की शक्ति रखते हैं। आप माद्री और पाण्डु की श्राद्ध-क्रिया करने के साथ ही माता सहित इन पुत्रों को भी अनुगृहीत करें।

यह दृश्य देखकर नगर के सभी नर-नारी बाहर निकल गये। सभी कौरव एवं शिष्ट वार्णाश्रमी प्रसन्नचित्त होकर आपस में चर्चा करने लगे।

आहुः केचिन्न तस्यैते तस्यैत इति चापरे।
यदा चिरमृतः पाण्डुः कथं तस्येति चापरे।
स्वागतं सर्वथा दिष्टया पाण्डोः पश्याम संततिम्।
उच्यतां स्वागतमिति वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः।

तस्मिन्नुपरते शब्दे दिशः सर्वा निनादयन्।
अन्तर्हितानां भूतानां निःस्वनस्तुमुलोऽभवत्।

कोई कहते, 'ये पाण्डु के पुत्र नहीं हैं। दूसरे कहते, अजी! ये उन्हीं के हैं। कुछ लोग कहते, जब पाण्डु को मरे इतने दिन हो गये, तब ये उनके पुत्र कैसे हो सकते हैं? फिर सब लोग कहने लगे, हम तो सर्वथा इनका स्वागत करते हैं। हमारे लिये बड़े सौभाग्य की बात है कि आज हम महाराज पाण्डु की संतान को अपनी आँखों से देख रहे हैं। फिर तो सब ओर से स्वागत बोलने वालों की ही बातें सुनायी देने लगीं। दर्शकों का वह तुमुल शब्द बन्द होने पर सम्पूर्ण दिशाओं को प्रतिध्वनित करती हुई अदृश्य भूतों-देवताओं की यह सम्मिलित आवाज (आकाशवाणी) गूंज उठी- 'ये पाण्डव ही हैं।'

दृष्टान्त- शस्त्र परीक्षण के पश्चात जनता का युधिष्ठिर को राज्य प्राप्ति योग्य बताना

पाण्डवों एवं कौरवों का शस्त्र परीक्षण हो चुका था। धर्मराज युधिष्ठिर युवराज घोषित किये जा चुके थे। उन्हें सर्वगुणसम्पन्न देखकर हस्तिनापुर नगर के निवासी भरी सभाओं में उनके गुणों की प्रशंसा करते थे और पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को राज्य प्राप्ति के योग बताते थे। वे कहते थे-

प्रज्ञाचक्षुरचक्षुष्टवाद धृतराष्ट्रो जनेश्वरः
राज्यं न प्राप्तवान, पूर्वं स कथं नृपतिर्यवेत्।।
तथा शान्तनवो भीष्मः सत्यसधौ महाव्रतः।
ते वयं पाण्डवज्येष्ठं तरुणं वृद्धशीलिनम्।
अभिषिंचयाम साध्वद्य सत्यकारुण्यवेदिनम्।।
स हि भीष्मं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च धर्मवित्।
सुपुत्रं विविधैर्भोगैर्योजयिष्यति पूजयन्।

अर्थात प्रजाचक्षु महाराज धृतराष्ट्र नेत्रहीन होने के कारण पहले ही राज्य न पा सके, तब वे कैसे राजा हो सकते हैं। महान व्रत का पालन करने वाले शान्तनुनंदन भीष्म तो सत्यप्रतिज्ञ हैं। वे पहले ही राज्य ठुकरा चुके हैं। अतः अब उसे कदापि ग्रहण नहीं करेंगे। पाण्डवों के बड़े भाई युधिष्ठिर यद्यपि

अभी तरुण हैं तो भी उनका शील स्वभाव वृद्धों के समान है। वे सत्यवादी दयालु और वेदवेत्ता हैं। अतः अब हम लोग उन्हीं का विधिपूर्वक राज्याभिषेक करें। महाराज युधिष्ठिर बड़े धर्मज्ञ हैं। वे शान्तनुनंदन भीष्म तथा पुत्रों सहित धृतराष्ट्र का आदर करते हुए उन्हें नाना प्रकार के भोगों से सम्पन्न रखेंगे।

पाण्डव जब वारणावत जाने लगे तो उन्होंने अपनी माता एवं हस्तिनापुर की प्रजा से विदा ली। उस समय महात्मा विदुर एवं हस्तिनापुर के पुरवासी शोक से कातर हो पाण्डव के पीछे चलने लगे और वे आपस में इस प्रकार विमर्श करने लगे।

विषमं पश्यते राजा सर्वथा स सुमन्दधीः।
कौरव्यो धृतराष्ट्रस्तु न च धर्मं प्रपश्यति।[4]

'अत्यन्त मन्दबुद्धि कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र पाण्डवों को सर्वथा विषम दृष्टि से देखते हैं। धर्म की उनकी दृष्टि नहीं है।

न हि पापमपापात्मा रोचयिष्यति पाण्डवः।
भीमो वा बलिनां श्रेष्ठः कौन्तेयो वा धनंजयः।[5]

'निष्पाप अन्तःकरण वाले पाण्डु कुमार युधिष्ठिर, बलवानों में श्रेष्ठ भीमसेन अथवा कुन्तीनन्दन अर्जुन कभी पाप से प्रीति नहीं करेंगे।'

कुत एव महात्मानौ माद्रीपुत्रौ करिष्यतः।
तान् राज्यं पितृतः प्राप्तान् धृतराष्ट्रो न मृष्यते।[6]

'फिर महात्मा दोनों माद्रीकुमार कैसे पाप कर सकेंगे। पाण्डवों को अपने पिता से जो राज्य प्राप्त हुआ था, धृतराष्ट्र उसे सहन नहीं कर रहे हैं।'

अधर्म्यमिदमत्यन्तं कथं भीष्मोऽनुमन्यते।
विवास्यमानानस्थाने नगरे योऽभिमन्यते।[7]

'इस अत्यन्त अधर्मयुक्त कार्य के लिए भीष्म जी कैसे अनुमति दे रहे हैं? पाण्डवों को अनुचित रूप से यहाँ से निकलकर जो रहने योग्य स्थान नहीं, उस वारणावत नगर में भेजा जा रहा है! फिर भी भीष्म जी चुपचाप क्यों इसे मान लेते हैं?'

पितवे हि नृपोऽस्माकमभूच्छांतनवः पुरा।
विचित्रवीर्यो राजर्षिः पाण्डुश्च कुरुनन्दनः।[8]

'पहले शंतनुकुमार राजर्षि विचित्रवीर्य तथा कुरुकुल को आनन्द देने वाले महाराज पाण्डु हमारे राजा थे। केवल राजा ही नहीं, वे पिता के समान हमारा पालन-पोषण करते थे।'

स तस्मिन् पुरुषव्याघ्रे देवभावं गते सति।
राजपुत्रानिमान् बालान् धृतराष्ट्रो न मृष्यते।[9]

'नरश्रेष्ठ पाण्डु जब देवभाव (स्वर्ग) को प्राप्त हो गये हैं, तब उनके इस छोटे-छोटे राजकुमारों का भार धृतराष्ट्र नहीं सहन कर पा रहे हैं।'

वयमेतदनिच्छन्तः सर्व एव पुरोत्तमात्।
गृहान् विहाय गच्छामो यत्र गन्ता युधिष्ठिरः।[10]

अर्थात हम लोग यह नहीं चाहते, इसलिये हम सब घर-द्वार छोड़कर इस उत्तम नगरी से वहीं चलेंगे, जहाँ युधिष्ठिर जा रहे हैं।

जनता के इस लोक विमर्श की गुप्तचरों द्वारा सूचना प्राप्त करने पर दुर्योधन ने पाण्डवों को शकुनि की सलाह लेकर वरणावत लाक्षागृह में जलाकर मार डालने का असफल षड्यंत्र रचा। लाक्षागृह में आग लग गई। पाण्डव सकुशल बचकर निकल गये। लाक्षागृह में भोजन के लिये आई भीलनी अपने पाँच पुत्रों सहित जलकर राख हो गई। पुरोचन भी जलकर समाप्त हो गया। आम लोगों को पाण्डवों के भागने की जानकारी नहीं हो पाई। लोग-लोक विमर्श करते हुये कहने लगे-

दुर्योधन प्रयुक्तेन पापेनाकृत बुद्धिना
गृहमालविनाशाय कारितं दाहितं च तत्।।
अहो धिग् धृतराष्ट्रस्य बुद्धिर्ना तिसमंजसा।
यः शुचीन् पाण्डुदायादान् दाहयामास शत्रुवत्।।[11]

अर्थात अहो! पुरोचन का अन्तःकरण अपने वश में नहीं था। उस पापी ने दुर्योधन की आज्ञा से अपने ही विनाश के लिये इस घर को बनाया और जला भी दिया। अहो! धिक्कार है, धृतराष्ट्र की बुद्धि बहुत बिगड़ गई है जिसने शुद्ध हृदय वाले पाण्डुपुत्रों को आग में जला दिया। सौभाग्य की बात है कि यह अत्यन्त खोटी बुद्धि वाला पापात्मा पुरोचन भी इस समय दग्ध हो गया है। जिसने बिना किसी अपराध के अपने ऊपर पूर्ण विश्वास करने वाले

नरश्रेष्ठ पाण्डवों को जला दिया। उपरोक्त वचन कहकर वरणावत के लोग विलाप करने लगे।

दृष्टान्त- द्रोपदी का पांचों पाण्डव से विवाह होने पर लोक विमर्श

द्रुपद सुता पांचाली ने स्वयंवर में अर्जुन का पति रूप में वरण किया था। किंतु परिस्थितियाँ ऐसी घटित हुईं कि उसका विवाह पांचों पाण्डव से हुआ। यह विवाह ईश्वरेच्छा की पूर्ति हेतु भाग्य द्वारा पूर्व निर्मित था। यह आम लोगों की समझ से परे था। एक पत्नी का कई पुरुषों के साथ विवाह होना, किसी भी दृष्टि से आम लोग उचित नहीं मानते थे। इसलिये द्रोपदी का पांचों पाण्डवों से विवाह होने पर लोग आपस में चर्चा करते थे- "यह कैसा विलक्षण विवाह! तो द्रोपदी कौन से पातिव्रत का पालन करेगी? पातिव्रत धर्म में तो स्त्री का एकनिष्ठ होना परम आवश्यक है। इस सिद्धांत का तो उल्लंघन हो गया! कुरु-कुल की स्त्रियाँ परस्पर हास-परिहास करती लोट-पोट हो जाती। पाण्डव भार्या पांचाली के लिए कुलटा शब्द का प्रयोग करती। पुरुष वर्ग चुटकियाँ लेता- पाण्डव भी क्या पुरुष हुए। पांचों में केवल एक पत्नी! एक से अधिक स्त्री ही उन्हें कहीं उपलब्ध न हुई! जो अग्रज की पत्नी और भ्रातृजाय- जैसे उच्च पद पर हो, वही अनुज की पत्नी। पाण्डुकुल में नीति और अनीति में भेद न रहा! सदाचार और कदाचार में विभेद कैसे हो सकेगा। पाण्डुकुल में धर्म-अधर्म, उचित-अनुचित का अन्तर ही मिट गया। वे सब के सब पातकी हैं। निश्चित रूप से द्रुपदसुता तो नरकगामिनी होगी। कुरु-पुरुष इस कचोट को न भुला पाते कि पाण्डव लाक्षागृह का अग्निदाह विफल कर जीवित रह गये और परम विदुषी एवं सुन्दरी पांचाली को बल के आधार पर विजय कर ले गये।"[12]

दृष्टान्त- पाण्डवों का वनगमन

द्युतक्रीड़ा में पाण्डव पराजित होने के पश्चात जब वन जाने लगे उस समय नगर के सभी निवासी दुःख से आतुर हो उन्हें देखने के लिये महलों, मकान की छतों, समस्त गोपुरों और वृक्षों पर चढ़ गये। वहाँ से वे सभी लोग उदास होकर वनगमन के दृश्य को देखने लगे। वे सभी आपस में चर्चा करने लगे-

यं यान्तमनुयाति स्म चतुरंगबलं महत्।
तमेव कृष्णया सार्धमनुयान्ति स्म पाण्डवाः।
चत्वारो भ्रातरश्चैव पुरोधाश्च विशाम्पतिम्।[13]

(अर्थात अहो! यात्रा करते समय जिनके पीछे विशाल चतुरंगिणी सेना चलती थी आज वे ही राजा युधिष्ठिर इस प्रकार जा रहे हैं और उनके पीछे केवल द्रोपदी के साथ चार बड़े भाई, पाण्डव और पुरोहित चल रहे हैं।)

या न शक्या पुरा द्रष्टु भूतैराकाशगैरपि।
तामद्य कृष्णां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः।[14]

(जिसे आज से पहले आकाशचारी प्राणी तक नहीं देख पाते थे उसी द्रुपद कुमारी कृष्णा को अब सड़क पर चलने वाले साधारण लोग भी देख रहे हैं।)

जिस सुकुमारी के अंगों में दिव्य अंगराग शोभायमान होता था जो लाल चन्दन का सेवन करती थी, अब वन में सर्दी-गर्मी और वर्षा लगने से उसकी अंगकान्ति शीघ्र ही फीकी पड़ जायेगी। कुन्ती देवी बड़े भारी धैर्य का आश्रय लेकर अपने पुत्रों और पुत्रवधू से संवाद करती हैं अन्यथा आज वे इस दशा में बात भी नहीं कर पाती। माता अपने गुणहीन पुत्र का भी दुःख नहीं देख पाती। फिर ऐसे पुत्र जिसके सदाचार से समस्त भूमण्डल वशीभूत हो जाता है, इस प्रकार कोई दुःख आये तो उसकी माता कैसे देख सकती है। दया, धैर्य, कोमलता, शील, इन्द्रिय संयम और मनोनिग्रह इन छह गुणों से सुशोभित युधिष्ठिर को आज दुःखी अवस्था में वनगमन करते देख हम सब प्रजा को पीड़ा हो रही है।

जिस प्रकार गर्मी में जलाशय का पानी घट जाने से जलचर जीव जन्तु व्यथित हो उठते हैं एवं जड़ कट जाने से फल और फूलों से युक्त वृक्ष सूखने लगते हैं। उसी प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर की पीड़ा से सारा संसार पीड़ित हो रहा है। महा तेजस्वी धर्मराज युधिष्ठिर मनुष्यों के मूल हैं। जगत के अन्य दूसरे लोग उन्हीं की शाखा, पत्र, पुष्प और फल हैं। आज हम सभी लोग अपने भाई, बन्धुओं, पुत्रों एवं परिवार के अन्य सदस्यों को साथ लेकर उन्हीं के पीछे चले जिधर वे जा रहे हैं। आज हम अपने खेत, घर-बार, बाग-बगीचे छोड़कर

महाराज युधिष्ठिर के साथ चल दें और उन्हीं के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझें।

इतना ही नहीं इस लोक विमर्श में लोग एक-दूसरे से यहाँ तक कह रहे थे कि-

समुन्दधृतनिधानानि परिध्वस्ताजिराणि च।
उपात्तधनधान्यानि द्वतसाराणि सर्वशः।।
रजसाप्यवकीर्णानि परित्यक्तानि दैवतैः।
भूषलैः परिधावाद्भिरु द्विलैरावृत्तानि च।।
अपेतोन्दक घूमानि हीनसम्मार्जनानि च।
प्रणष्टवलिकर्मेज्यामन्त्रहोमजपानि च।
दुष्कालेनेव भानानि भिन्नभाजनवन्ति च।
अस्मत्यक्तानि वेश्मानि सौबलः प्रतिपद्यताम्।।[15]

अर्थात हम अपने घरों की गड़ी हुई निधि निकाल लें। आंगन की फर्श खोद डालें। सारा धन-धान्य साथ ले लें। सारी आवश्यक वस्तुयें हटा लें। इनमें चारों ओर धूल भर जाय। देवता इन घरों को छोड़कर भाग जांय। चूहे बिल से बाहर निकलकर इनमें चारों ओर दौड़ लगाने लगे। इनमें कभी आग जले, न पानी रहे, न झाड़ू ही लगे। यहाँ बलिवैश्वदेव, यज्ञ, मंत्रपाठ, होम और जप वन्द हो जाये। मानो बड़ा भारी आकाश पड़ गया हो, इस प्रकार ये सारे घर ढ़ह जायें। इनमें टूटे बर्तन बिखरे पड़े हों और हम सदा के लिये इन्हें छोड़ दें। ऐसी दशा में इन घरों पर कपटी सुबलि पुत्र शकुनि आकर अधिकार कर ले। हम सब लोग जहाँ पाण्डव जा रहे हैं वहीं उनके साथ चलें।

वन में हम लोगों के भय से सांप अपने विष छोड़कर भाग जाये। मृग और पक्षी जंगलों को छोड़कर भाग जाये। हाथी और सिंह भी वहाँ से दूर चले जायें। हम लोग, साग-पात अन्न और फल का उपयोग करने वाले हैं। अएतव हम लोग वन में महाराज युधिष्ठिर एवं उनके भाइयों सहित सुखपूर्वक रहेंगे।

इधर हस्तिनापुर की सभी नारियाँ भी धृतराष्ट्र पुत्रों की निन्दा करने लगीं। वे द्यूतसभा में द्रोपदी के वस्त्र सीधे जाने से अप्रसन्न थीं।

दृष्टान्त- पाण्डव का वनवास जाते समय जनता का लोक विमर्श

जब पाण्डव बनवास (द्वैतवन) हेतु जाने लगे तब चौपालों पर आमजन आपस में विमर्श करते हुए कहते थे-

धिग् धार्तराष्ट्र सुन्तशंसबुद्धिं
धिक् सौबलं पापमतिं च कर्णम्।
अनर्थमिच्छन्ति नरेन्द्र पापा
ये धर्मनित्यस्य सतस्तवैवम्।[16]

अर्थात क्रूरबुद्धि धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन को धिक्कार है। सुबलपुत्र शकुनि तथा पापपूर्ण विचार रखने वाले कर्ण को भी धिक्कार है, जो पापी सदा धर्म में तत्पर रहने वाले पाण्डुपुत्रों का इस प्रकार अनर्थ करना चाहते हैं।

स्वयं निवेश्याप्रतिमं महात्मा
पुरं महादेवपुरप्रकाशनम्।
शतक्रतुप्रस्थममेयकर्मा
हित्वा प्रयातः क्व न धर्मराजः।।[17]

अर्थात जिन महात्मा ने स्वयं ही पुरुषार्थ करके महादेव जी के नगर कैलाश की-सी सुषमा वाले अनुपम इन्द्रप्रस्थ नामक नगर को बसाया था, वे अचिन्यतर्मा धर्मराज युधिष्ठिर अपनी उस पुरी को छोड़कर अब कहाँ जा रहे हैं।

उपरोक्त दोनों दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि लोक-विमर्श में दो से अधिक व्यक्ति चर्चा करते हैं। चर्चा के मुद्दे सामान्यतया समसामयिक होते हैं; परन्तु यह आवश्यक नहीं है। लोक-विमर्श में भाग लेने वाले व्यक्ति अपने विचारों को खुलकर रखते हैं। विचारों की अभिव्यक्ति में वे आपस में विवाद भी करते हैं। किसी एक व्यक्ति के विचार से अन्य व्यक्तियों का सहमत होना आवश्यक नहीं है। एक प्रकार से लोक-विमर्श जनसंचार के सहमति एवं असहमति के प्रतिरूप पर आधारित होते हैं। लोक विमर्श में असहमति का प्रतिरूप भूलता व्यवस्था विरोधी दृष्टिकोण को सामने लाता है। उपरोक्त दोनों उदाहरणों से इस तथ्य की पुष्टि होती है। वरणावत में लाक्षागृह में आग लगाकर पाण्डवों को काल के गाल में डालने की दुर्योधन की खतरनाक प्रवृत्ति को जनता उचित

नहीं मानती। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण से भी अस्पष्ट है कि पाण्डवों का द्यूतक्रीड़ा में पराजित होने पर वनवास के लिये प्रस्थान भी जनता की दृष्टि में किसी भी प्रकार से उचित नहीं है। आम जनता में उपरोक्त दोनों बातों पर सहमति थी।

जब पाण्डव हस्तिनापुर से बाहर निकले तो वे उत्तराभिमुख होकर यात्रा प्रारंभ किये। इन्द्रसेन आदि अनेक लोग स्त्रियों को रथ पर बैठाकर उनके पीछे-पीछे चले। इस समाचार को सुनकर हस्तिनापुर के निवासी शोक से पीड़ित हो गये और वे निर्भीक होकर भीष्म, विदुर, आचार्य द्रोण एवं कृपाचार्य की निंदा करते हुए एक-दूसरे से मिलकर इस प्रकार बोले-

नेदमस्ति कुलं सर्वं न वयं न च नो गृहाः।
यत्र दुर्योधनः पापः सौबलेनाभिपालितः।
कर्णदुःशासनाभ्यां च राज्यमेतच्चिकीर्षति।[19]

अहो! हमारा यह समस्त कुल, हम तथा हमारे घर-द्वार अब सुरक्षित नहीं हैं; क्योंकि यहाँ पापात्मा दुर्योधन सुबलपुत्र शकुनि से पालित हो कर्ण और दुःशासन की सम्मति से इस राज्य का शासन करना चाहता है।

न तत् कुलं न चाचारो न धर्मोऽर्थः कुतः सुखम्।
यत्र पापसहायोऽयं पापो राज्यं चिकीर्षति।[20]

जहाँ पापियों की ही सहायता से यह पापाचारी राज्य करना चाहता है वहाँ हम लोगों के कुल, आचार, धर्म और अर्थ भी नहीं रह सकते। फिर सुख तो रह ही कैसे सकता है।

दुर्योधनो गुरुद्वेषी त्यक्ताचारसुहृज्जनः।
अर्थलुब्धोऽभिमानी च नीचः प्रकृतिनिर्घृणः।[21]

दुर्योधन गुरुजनों से द्वेष रखने वाला है। उसने सदाचार और पाण्डवों जैसे सुहृदों को त्याग दिया है। वह अर्थलोलुप, अभिमानी, नीच और स्वभावतः ही निष्ठुर है।

नेयमास्ति मही कृत्स्ना यत्र दुर्योधनो नृपः।
साधु गच्छामहे सर्वे यत्र गच्छन्ति पाण्डवाः।।[22]

जहाँ दुर्योधन राजा है, वहाँ की यह सारी पृथ्वी नहीं के बराबर है,

अतः यही ठीक होगा कि हम सब लोग वहीं चलें जहाँ पाण्डव जा रहे हैं।

सानुक्रोशा महात्मानो विजितेन्द्रियशत्रवः।
ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च धर्माचारपरायणाः।।[23]

अर्थात पाण्डवगण, दयालु, महात्मा, जितेन्द्रिय, शत्रु विजयी, लज्जाशील, यशस्वी, धर्मात्मा तथा सदाचारपरायण हैं।

दृष्टान्त- काशीराज की कन्या के स्वयंवर में पितामह भीष्म का प्रवेश

काशीराज अपनी कन्या अम्बे, अम्बिका, अम्बालिका का विवाह करने के लिए स्वयंवर का आयोजन किये थे। स्वयंवर सभा में पहुँचे हुये राजाओं का परिचय दिया जा रहा था। उसी समय शांतनु सुत भीष्म जो वयोवृद्ध हो गये थे वहाँ अकेले पहुँचे। उन्हें देखते ही सभी सुन्दरियाँ ये बूढ़े हैं, ये बूढ़े हैं, ऐसा कहती हुई वहां से भाग गईं। इस घटना को देखकर वहाँ बैठे हुए नीच स्वभाव के राजा भी आपस में भीष्म की हँसी उड़ाते हुये कहने लगे-

वृद्धः परमधर्मात्मा वलीपलितधारणः।
किं कारणमिहायातो निर्लज्जो भरतर्षभः।
मिथ्याप्रतिज्ञो लोकेषु किं वदिष्यति भारत।
ब्रह्मचारीति भीष्मो हि वृथैव प्रथितो भुवि।
इत्येवं प्रब्रुवन्तस्ते हसन्ति स्म नृपाधमाः।[24]

अर्थात वहाँ जो नीच स्वभाव के नरेश एकत्र थे, वे आपस में ये बातें कहते हुये उनकी हंसी उड़ाने लगे- 'भरतवंशियों में श्रेष्ठ भीष्म तो बड़े धर्मात्मा सुने जाते थे। ये बढ़े हो गये हैं, शरीर में झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, सिर के बाल सफेद हो चुके हैं; फिर क्या कारण है कि वहाँ आये हैं? ये तो बड़े निर्लज्ज जान पड़ते हैं। अपनी प्रतिज्ञा झूठी करके ये लोगों में क्या कहेंगे- कैसे मुँह दिखायेंगे? भूमण्डल में व्यर्थ ही यह बात फैल गयी है कि भीष्म जी ब्रह्मचारी हैं।'

दृष्टान्त- भीष्म जी के धर्मपूर्ण शासन के समय कुरुक्षेत्र में लोक विमर्श

विचित्रवीर्य के देहावसान के पश्चात धृतराष्ट्र, पाण्डु एवं विदुर के जन्म के पश्चात भीष्म जी के निर्देशन में कुरुक्षेत्र का शासन चलता था। उनके शासन के समय कुरुक्षेत्र की बहुत उन्नति हुई। चारों तरफ चर्चा होने लगी-

दान दो और अतिथियों को भोजन कराओ। *दीयताम् भुज्यताम् चेति वाचो अऽश्रूयन्त सर्वशः।*[25]

भीष्म जी ने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का पुत्र की भांति पालन-पोषण किया। पाण्डु धनुर्विद्या में सबसे बढ़-चढ़कर हुए। धृतराष्ट्र शारीरिक बल में बहुत बढ़कर थे तो विदुर धर्म, नीति एवं अध्यात्म शास्त्र एवं वेदों के तत्वज्ञ थे। महाराज शान्तनु के वंश का पुनरोद्धार हुए देखकर नगरवासी कहते थे-

वीरसूनां काशिसुते देशानां कुरुजाङ्गलम्।
सर्वधर्मविदां भीष्मः पुराणां गजसाहवयम्।
धृतराष्ट्रस्त्वचक्षुष्ट्वाद् राज्यं न प्रत्यपद्यत।
पारसवत्वाद् विदुरो राजा पाण्डुर्बभूव ह।।[26]

'वीर पुत्रों को जन्म देने वाली स्त्रियों में काशीराज की दोनों पुत्रियाँ सबसे श्रेष्ठ हैं, देशों में कुरुजांगल देश सबसे उत्तम है, सम्पूर्ण धर्मज्ञों में भीष्म जी का स्थान सबसे ऊँचा है तथा नगरों में हस्तिनापुर सर्वोत्तम है। धृतराष्ट्र अंधे होने के कारण और विदुर जी पारशव (शूद्रा के गर्भ से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न) होने से राज्य न पा सके; अतः सबसे छोटे पाण्डु ही राजा हुए।'

दृष्टान्त- पाण्डव के शस्त्र परीक्षण के समय जन विमर्श

महाभारत के आदि पर्व में इस बात का उल्लेख किया गया है कि जब पाण्डव और कौरवों का अस्त्र-शस्त्र कौशल का परीक्षण हो रहा था, उस समय वहाँ उपस्थित नागरिकों में दो गुट बन गये थे-

ही वीर कुरुराजेति ही भीम इति जल्पताम्।
पुरुषाणां सुविपुलाः प्रणादाः सहसोत्थिताः।[27]

कुछ कहते, 'अहो! वीर कुरुराज कैसा अद्‌भुत पराक्रम दिखा रहे हैं।' दूसरे बोल उठते, 'वाह! भीमसेन तो गजब का हाथ मारते हैं।' इस तरह की बातें करने वाले लोगों की भारी आवाजें वहाँ सहसा सब ओर गूँजने लगीं।

एष कुन्तीसुतः श्रीमानेष मध्यमपाण्डवः।
एष पुत्रो महेनद्रस्य कुरुणामेव रक्षिता।
एषोऽस्त्रविदुषां श्रेष्ठ एष धर्मभृतां वरः।

एष शीलवतां चापि शीलज्ञाननिधिः परः।[28]

अर्थात ये कुन्ती के तेजस्वी पुत्र हैं। ये ही पाण्डु के मझले बेटे हैं। ये देवराज इन्द्र की संतान हैं। ये ही कुरुवंश के रक्षक हैं। अस्त्र-विद्या के विद्वानों में ये सबसे उत्तम हैं। ये धर्मात्माओं और शीलवान में श्रेष्ठ हैं। शील और ज्ञान की तो ये सर्वोत्तम निधि हैं।

सन्दर्भ

1. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 125, श्लोक संख्या 32
2. महाभारत, आदि पर्व (अनुक्रमणिका पर्व), अध्याय 1, श्लोक संख्या 119-121
3. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृह पर्व) अध्याय 140, श्लोक संख्या 25-28
4. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृह पर्व), अध्याय 144, श्लोक संख्या 7
5. वही, श्लोक संख्या 8
6. वही, श्लोक संख्या 9
7. वही, श्लोक संख्या 10
8. वही, श्लोक संख्या 11
9. वही, श्लोक संख्या 12
10. वही, श्लोक संख्या 13
11. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृह पर्व) वही, अध्याय 147, श्लोक संख्या 14-15
12. महाभारती, लेखक चित्रा चतुर्वेदी 'कार्त्तिका', भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं. 48
13. सभा पर्व (अनुद्यीत पर्व), अध्याय 79, पृ. 1061
14. वही
15. वही, 1063
16. महाभारत, वन पर्व (अर्जुनाभिगमन पर्व), अध्याय 23, श्लोक संख्या 10
17. वही, श्लोक संख्या 11
18. वही
19. महाभारत, वन पर्व (अरण्य पर्व), अध्याय 1, श्लोक संख्या 13-14

20. वही श्लोक संख्या 15
21. वही श्लोक संख्या 16
22. वही श्लोक संख्या 17
23. वही श्लोक संख्या 18
24. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व) अध्याय 102, श्लोक संख्या 8-9
25. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व) अध्याय 108, श्लोक संख्या 16
26. वही, श्लोक संख्या 24-25
27. वही, अध्याय 134, श्लोक संख्या 2
28. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व) अध्याय 134

अध्याय 12

आकाशवाणी

वह बात जो ईश्वर की ओर से कही हुई और आकाश से सुनाई पड़ने वाली मानी जाए, आकाशवाणी कहलाती है। इसे देववाणी भी कहते हैं। महाभारत में आकाशवाणी संचार का एक अद्‌भुत एवं अलौकिक माध्यम रहा है। यह अलौकिक शक्तियों द्वारा जैविक शक्तियों के लिये प्रेषित संदेशों को पहुँचाने का माध्यम है। महाभारत में इस प्रकार के संचार का अनेकों स्थानों पर उल्लेख मिलता है। इससे प्राप्त संदेश जैविक शक्तियों के लिये अत्यन्त ही प्रभावी होते हैं।

आकाशवाणी द्वारा सामान्यतया एकमार्गीय संचार होता है किन्तु कुछ ऐसे भी उद्धरण महाभारत में हैं जिसमें द्विमार्गी संचार हुआ है। आकाशवाणी द्वारा अलौकिक शक्ति संदेशों को गन्तव्य स्थल (लौकिक स्थल) तक सीधे पहुँचती है। वह लौकिक शक्ति सन्देश को ग्रहण कर उसके अनुसार अपना व्यवहार करने लगती है। लौकिक शक्तियों द्वारा किसी प्रकार की प्रतिपुष्टि नहीं होती।

महाभारत में इस प्रकार के संचार को समझाने के लिये निम्नलिखित प्रमुख दृष्टांत महत्वपूर्ण हैं-

दृष्टान्त- शकुन्तला का अपने पुत्र भरत को लेकर महाराज दुष्यन्त के पास जाकर युवराज पद पर अभिषिक्त करने हेतु निवेदन करना

महाराज दुष्यन्त से कण्व ऋषि के आश्रम में निवास करने वाली कण्वकन्या शकुन्तला के गर्भ से भरत नामक पुत्र पैदा हुआ। उस समय देवताओं सहित इन्द्र ने आकर कहा-

शकुन्तले तव सुतश्चक्रवर्ती भविष्यति।
बलं तेजश्च रूपं च न समं भुवि केनचित्।
आहर्ता वाजिमेधस्य शतसंख्यस्य पौरवः।।
अनेकानि सहस्राणि राजसूयादिभिर्मखैः।

स्वार्थं ब्राह्मणसात् कृत्वा दक्षिणाममितां ददात् ।।[1]

"शकुन्तले! तुम्हारा यह पुत्र चक्रवर्ती सम्राट होगा। पृथ्वी पर कोई भी इसके बल, तेज और रूप की समानता नहीं कर सकता।"

इसके पूर्व राजा दुष्यन्त ने महर्षि कण्व के आश्रम में शकुन्तला से विधिपूर्वक पाणिग्रहण करके उसके साथ सहवास किया था फिर उसे विश्वास दिलाकर वहाँ से विदा हुये। जाते समय उन्होंने शकुन्तला से कहा-

प्रेषयिष्ये तवार्थाय वाहिनीं चतुरगिङ्गीम् ।

तया त्वानाययिष्यामि निवासं स्वं शुचिस्मिते ।।[2]

"पवित्र मुस्कान वाली सुन्दरी मैं तुम्हारे लिये चतुरंगिणी सेना भेजूंगा और उसके साथ तुम्हें राजभवन बुलवाऊँगा।" परन्तु लौटने के बाद वे भूल गये। इधर शकुन्तला प्रतिक्षा करती रही। जब बालक 12 वर्ष का हो गया तब तक महाराज दुष्यन्त ने शकुन्तला की कोई खोज खबर नहीं ली। इधर चिंतामग्न शकुन्तला की दयनीय दशा हो रही थी। उसके खुले हुये लम्बे केश लटक रहे थे। वस्त्र मैले हो गये थे। तब महर्षि कण्व ने उस बालक के लिए विद्या का चिन्तन किया। इससे उस बालक के हृदय में समस्त शास्त्रों और सम्पूर्ण वेदों का ज्ञान प्रकाशित हो गया। एक दिन महर्षि कण्व ने उसके लोकोत्तर कर्म को देखकर शकुन्तला से कहा- "अब इसके युवराज पद पर अभिषिक्त होने का समय आया है।" मेरी कल्याणमयी पुत्री मेरा यह वचन सुनो- 'पतिव्रता स्त्रियों के लिये यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है, इसीलिये बता रहा हूँ- "सती स्त्रियों के लिये सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि वे मन, वाणी, शरीर और चेष्टाओं द्वारा निरंतर पति की सेवा करती रहें। मैंने पहले भी इसके लिये तुम्हें आदेश दिया है। तुम अपने इस व्रत का पालन करो। इस पतिव्रतोचित्त आचार, व्यवहार से ही विशिष्ट शोभा प्राप्त कर सकोगी। इसीलिये तुम्हें पुरुनन्दन दुष्यन्त के पास जाना चाहिये। वे स्वयं नहीं आ रहे हैं। ऐसा सोचकर तुमने बहुत सा समय उनकी सेवा से दूर रहकर बिता दिया। अब तुम स्वयं जाकर राजा दुष्यन्त की आराधना अपने हित के लिये करो।" वहाँ दुष्यन्त कुमार को युवराज पद पर प्रतिष्ठित देख तुम्हें बड़ी प्रसन्नता होगी। महर्षि की बात सुनकर भरत अपनी माता शकुन्तला के साथ अपने

पिता महाराज दुष्यन्त के पास पहुँचा। शकुन्तला ने अपने पुत्र-पिता का परिचय कराया। दोनों ने महाराज को प्रणाम किया। तब महाराज दुष्यन्त बोले- "सुन्दरी! यहाँ तुम्हारे आगमन का क्या उद्देश्य है, बताओ। विशेषतः उस दशा में जबकि तुम पुत्र के साथ आयी हो, मैं तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध करूँगा।" तब शकुन्तला ने महाराज से कहा- "राजन्! इसे आप युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिये। महाराज यह आपका पुत्र आपके द्वारा मेरे गर्भ से पैदा हुआ है। पुरुषोत्तम आपने इसके लिये मेरे साथ जो शर्त कर रखी है उसका पालन कीजिये।" महाराज दुष्यन्त शकुन्तला के साथ ऐसा व्यवहार किया जैसा वह पूर्णतः अपरिचित हों। उन्होंने वैवाहिक सम्बन्ध होने से इंकार कर दिया। राजा दुष्यन्त के ऐसा कहने पर शकुन्तला लज्जित हो बेहोश-सी हो गई। अमर्ष से उसकी आँखें लाल हो गई। वह भरत को महाराज का पुत्र होने का अनेक तर्क प्रस्तुत करते हुए उसके प्रति महाराज के दायित्वों का बोध कराने का अथक प्रयास करती रही। परन्तु महाराज दुष्यन्त किसी भी प्रकार से सन्तुष्ट नहीं हुये। शकुन्तला के तर्क बड़े प्रभावी थे। फिर भी दुष्यन्त उसे मानने को तैयार नहीं हुये। जब शकुन्तला निराश होकर वापस चलने को तैयार हुई तो उसी समय ऋत्विज, पुरोहित, आचार्य और मंत्रियों से घिरे हुए दुष्यन्त को सम्बोधित करते हुए आकाशवाणी हुई-

भस्त्रा माता पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः
मरस्व पुत्रं दुष्यन्त भावामंस्थाः शकुन्तलाम्
सर्वेभ्यो ह्यङ्गमङ्गेभ्यः साक्षादुत्पद्यते सुतः।
आत्मा चैष सुतो नाम तथैव तव पौरव।।
आहितं दृयात्मनाऽऽत्मानं परिरक्ष इमं सुलभ्।
अनन्यां स्वां प्रतीक्षस्व भावमंस्थाः शकुन्तलाम्।
स्त्रियः पवित्रमतुलमेतद् दुष्यन्त धर्मतः
मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षिहि।।
रतौधाः पुत्र उन्नयति नरदेव यमक्षयात्।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला।
जाया जनयते पुत्रमात्मनोऽङ्गं द्विधा कृतम्।[1]

अर्थात दुष्यन्त! माता तो केवल माथी (धौंकनी) के समान है। पुत्र पिता का ही होता है, वह उसी का स्वरूप है- इस न्याय से पिता ही पुत्र रूप में उत्पन्न होता है, वह उसी का स्वरूप है- इस न्याय से पिता ही पुत्र रूप में उत्पन्न होता है, अतः दुष्यन्त! तुम पुत्र का पालन करो। शकुन्तला का अनादर मत करो। पौरव! पुत्र साक्षात अपना ही शरीर है। वह पिता के सम्पूर्ण अंगों से उत्पन्न होता है। वास्तव में वह पुत्र नाम से प्रसिद्ध अपना आत्मा ही है। ऐसा ही यह तुम्हारा पुत्र भी है। अपने द्वारा ही गर्भ में स्थापित किये हुये आत्मस्वरूप इस पुत्र की तुम रक्षा करो। शकुन्तला तुम्हारे प्रत अन्याय अनुराग रखने वाली धर्मपत्नी है। इसे इसी दृष्टि से देखो। इसका अनादर मत करो। दुष्यन्त स्त्रियाँ अनुपम पवित्र वस्तु है। यह धर्मतः स्वीकार किया गया है। प्रत्येक मास में इनके जो रजःस्राव होता है, वह इनके सारे दोषों को दूर कर देता है। नरदेव! वीर्य का आघात करने वाला पिता ही पुत्र बनता है और वह यमलोक से अपने पितृगण का उद्धार करता है। तुमने ही इस गर्भ का आघात किया था। शकुन्तला सत्य कहती है। जाया (पत्नी) दो भागों में विभक्त हुये पति के अपने ही शरीर को पुत्र के रूप में उत्पन्न करती है।"

आगे पुनः आकाशवाणी हुई-

तस्माद् भरस्व दुष्यन्त पुत्रं शाकुन्तलं नृप।
अभूतिरेषा यत् त्यक्त्वा जीवेज्जीवन्तमात्मजम्।[4]

"इसलिये राजा दुष्यन्त! तुम शकुन्तला से उत्पन्न हुये अपने पुत्र का पालन-पोषण करो। अपने जीवित पुत्र को त्यागकर जीवन धारण करना बड़े दुर्भाग्य की बात है।"

आकाशवाणी द्वारा प्राप्त सन्देश महाराज दुष्यन्त को व्यवहार में पूर्णतः बदल दिया और उन्होंने तत्काल हर्ष और आनन्द में मग्न होकर अपने पुत्र को ग्रहण कर लिया। इतना ही नहीं, एक पिता को जो-जो कार्य पुत्र के लिये करना चाहिए सब शास्त्र के अनुसार सम्पादित करवाया और भारत का मस्तक सूँघकर उसे गले से लगाया। तदनंतर अपनी पत्नी शकुन्तला का भी उन्होंने आदर सत्कार किया। तत्पश्चात महाराज दुष्यन्त ने अपने पुत्र भरत को युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया।

दृष्टान्त- व्युषिताश्व के मृत शरीर से भद्रा को पुत्र प्राप्ति

प्राचीन समय में व्युषिताश्व नामक एक अत्यन्त धर्मात्मा राजा था। राजा कक्षीवान की पुत्री भद्रा उनकी धर्मपत्नी थी। पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे को बहुत प्यार करते थे। पत्नी के प्रति अत्यन्त कामासक्त होने के कारण राजा व्युषिताश्व राजायक्ष्मा के शिकार हो गये। परिणामस्वरूप राजा व्युषिताश्व की मृत्यु हो गई। तब तक राजा व्युषिताश्व को कोई सन्तान न थी। राजा की मृत्यु होने पर उनकी पत्नी भद्रा यह कहकर अत्यन्त विलाप करने लगी जो कोई भी विधवा स्त्री के बिना जीवन धारण करती है, वह निरन्तर दुःखी रहने के कारण वास्तव में जीती नहीं अपितु मृततुल्या है। अतः राजन आप प्रसन्न होइये और मुझे भी अपने साथ ले चलिये। इस प्रकार विलाप करती हुई वह राजा के शव का आलिंगन करके बार-बार विलाप करने लगी तब आकाशवाणी हुई-

उत्तिष्ठ भद्रे गच्छ त्वं ददानीह वरं तव।
जनयिष्याम्यपत्यानि त्वय्यहं चारूहासिनि।।
आत्मकीये वरारोहे शयनीये चतुर्दशीम्।
अष्टमीं वा ऋतुस्नाता संविशेथा मया सह।।[5]

अर्थात भद्रे! उठो और जाओ, इस समय मैं तुम्हें वर देता हूँ। चारूहासिनि मैं तुम्हारे गर्भ से कई पुत्रों को जन्म दूँगा। तुम ऋतुस्नाता होने पर चतुर्दशी या अष्टमी की रात में अपनी शैय्या पर मेरे इस शव के साथ सो जाना।"

आकाशवाणी द्वारा प्राप्त सन्देश का अक्षरशः पालन करने पर महारानी भद्रा को उस शव के द्वारा सात पुत्र प्राप्त हुये।

दृष्टान्त- पाण्डवों का जन्म एवं आकाशवाणी

(1) जब युधिष्ठिर का जन्म हुआ तो उस समय भी आकाशवाणी हुई-

एष धर्मभृताम् श्रेष्ठो भविष्यति नरोत्तमः।
विक्रान्तः सत्यवाक् त्वेव राजा पृथव्यां भविष्यति।।
युधिष्ठिर इति ख्यातः पाण्डोः प्रथमजः सुतः।
भविता प्रथितो राजा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।।[6]

अर्थात यह श्रेष्ठ पुरुष धर्मात्माओं में श्रेष्ठ होगा और इस पृथ्वी पर

पराक्रमी एवं सत्यवादी राजा होगा। पाण्डु का यह प्रथम पुत्र युधिष्ठिर नाम से विख्यात हो, तीनों लोकों में प्रसिद्धि एवं ख्याति प्राप्त करेगा; यह यशस्वी, तेजस्वी तथा सदाचारी होगा।

(2) जब कुन्ती ने वायुदेव से महापराक्रमी भीम का जन्म हुआ तब भी आकाशवाणी हुई-

सर्वेषां बलिनां श्रेष्ठो जातोऽयामिति भारत।[7]

'यह कुमार समस्त बलवानों में श्रेष्ठ है।'

(3) इसी प्रकार कुन्ती को जब इन्द्रदेव की कृपा से महान तेजस्वी अर्जुन का जन्म हुआ तब आकाशवाणी ने उच्च स्वर में जब कुन्ती .... में थी तो कुन्ती को सम्बोधित करते हुए कहा-

कार्तवीर्य समः कुन्ति शिवतुल्य पराक्रमः।
एष शक्र इवाज्य्यो यशस्ते प्रथयिष्यति।।
अदित्या विष्णुना प्रीतियर्द्यथामूदमिवर्धिता।
तथा विष्णु समः प्रीतिं वर्धायिष्यति तेऽर्जुनः।।[8]

अर्थात कुन्तिभोज कुमारी! यह बालक कार्तवीर्य अर्जुन के समान भगवान शिव के समान पराक्रमी और देवराज इन्द्र के समान अजेय होकर तुम्हारे यश का विस्तार करेगा। जैसे भगवान विष्णु ने वामन रूप में प्रकट होकर देवमाता अदिति के हर्ष को बढ़ाया था, उसी प्रकार यह विष्णुतुल्य अर्जुन तुम्हारी प्रसन्नता को बढ़ायेगा।

एष महान वशे कृत्वा कुरुंश्च सह सौमकैः।
चेदिकाशिकरुषांश्च कुरुलक्ष्मीं वहिष्यति।।[9]

'तुम्हारा यह वीर पुत्र भद्र, कुरू, सोमक, चेद्रि, काशि तथा करुष नामक देशों को वश में करके कुरुवंश की लक्ष्मी का पालन करेगा।'

(गत्वोत्तरदिशं वीरो विजित्य युधि पार्थिवान्
धनरत्नौधममितमानयिष्यति पाण्डवः।।)
एतस्य भुजवीर्येण खाण्डवे हव्यवाहनः।
भेदषा सर्वभूतानां तृप्तिं यास्यति वै पराम्।।[10]

वीर अर्जुन उत्तर दिशा में जाकर वहाँ के राजाओं को युद्ध में जीतकर

असंख्य धनरत्नों की राशि ले आयेगा। इसके बाहुबल से खाण्डव वन में अग्निदेव समस्त प्राणियों के भेद का आस्वादन करके पूर्ण तृप्ति लाभ करेंगे।

ग्रामणीश्च महीपालानेष जित्वा महाबलः।
भ्रातिभिः सहितो वीरस्त्रीन् मेधानाहरिष्यति।।[11]

अर्थात यह महाबली श्रेष्ठ वीर बालक समस्त क्षत्रिय समूह का नायक होगा और युद्ध में भूमिपालों को जीतकर भाइयों के साथ तीन अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान करेगा।

जामदग्न्यसमः कुन्ति विष्णुतुल्य पराक्रमः।
एष वीर्य वतां श्रेष्ठो भविष्यति महायशाः।।[12]

अर्थात कुन्ति! यह परशुराम के समान वीर योद्धा, भगवान विष्णु के समान पराक्रमी, बलवानों में श्रेष्ठ और महान यशस्वी होगा।

येष युद्धे महादेवं तोषयिष्यति शंकरम्।
अस्त्रं पाशुपतं नाम तस्मात् तुष्टादवाप्स्यति।।
निवातकवचना नाम दैत्या विबुधविद्विषः।
शक्राज्ञया महाबाहुस्तान् वधिष्यति ते सुतः।।[13]

अर्थात यह युद्ध में भगवान शंकर को सन्तुष्ट करेगा और सन्तुष्ट हुए उन महेश्वर से पाशुपत नामक अस्त्र प्राप्त करेगा। निवातकवच नामक दैत्य देवताओं से सदा द्वेष रखते हैं। तुम्हारा यह महाबाहु पुत्र इन्द्र की आज्ञा से उन सब दैत्यों का संहार कर डालेगा।

तथा दिव्यानि चास्त्राणि निखिलेनाहरिष्यति।
विप्रणष्टां श्रियं चायमाहर्ता पुरुषर्षभः।।[14]

अर्थात पुरुषों में श्रेष्ठ यह अर्जुन सम्पूर्ण दिव्यास्त्रों का पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त करेगा और अपनी खोई हुई सम्पत्ति को पुनः वापस ले आयेगा।

यह आकाशवाणी उच्च स्वर में हुई थी जिससे इसे कुन्ती के अतिरिक्त शतश्रृंग निवासी तपस्वी मुनियों तथा विमानों पर स्थित इन्द्र आदि देव समूहों ने भी सुना। इसे सुनकर वे अत्यन्त हर्षित हुए। ऐसा उल्लेख महाभारत में है। इस प्रकार आकाशवाणी द्वारा सन्देशों की पहुँच केवल एक व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रहती है वरन यह समूह या जनसंचार के रूप में भी

हो सकती है। यह किसी परिस्थिति में होता है उस पर निर्भर करता है।

राजा पांडु के तीन पुत्र कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुये। नकुल और सहदेव की उत्पत्ति महारानी माद्री के गर्भ से हुई थी। महारानी माद्री को ये दोनों पुत्र जुड़वे रूप में उत्पन्न हुये थे। उस समय भी आकाशवाणी ने कहा-

सत्वरूपगुणोपेतौ भवतोऽत्याश्विनाविति।

मासतस्तेजसात्यर्थं रूपद्रविणसम्पदा।।[15]

अर्थात ये दोनों बालक अश्विनी कुमारों से बढ़कर बुद्धि रूप और गुणों से सम्पन्न होंगे। अपने तेज तथा बढ़ी-चढ़ी रूप सम्पत्ति के द्वारा ये दोनों सदा प्रकाशित रहेंगे।

दृष्टान्त- खाण्डव वन दाह के समय इन्द्र को सम्बोधित करते हुए आकाशवाणी

खाण्डव वन को जलते हुये जब भगवान इन्द्र नहीं बुझा पाये, उनका सारा प्रयास असफल हो गया। इधर भगवान कृष्ण और अर्जुन वन में सहस्त्रों पिशाचों, पक्षियों, नागों तथा पशुओं का वध करते हुये विचर रहे थे। वहाँ सब दानव एकत्र हो गये। परन्तु उनमें से कोई ऐसा नहीं था जो नर-नारायण अर्थात कृष्ण और अर्जुन को जीत सके। देवता लोग भी आग को बुझा नहीं सके और पीठ दिखाकर चल दिये। देवताओं के वापस लौट जाने पर आकाशवाणी हुई जो इन्द्र को सम्बोधित कर रही थी।

न ते सखा संनिहित स्तक्षको भुजगोत्तमः।

दाहकाले खाण्डवस्य कुरुक्षेत्रं गतो ह्यसौ।

न च शक्यौ युधा जेतुं कथंचिदपि वासव।

वासुदेवार्जुनावेतौ निबोध वननान्मय

नरनारायणावेतौ पूर्वदेवौ दिवि श्रुतौ।।

भवानप्यामिजानाति यद्वीर्यौ तत्पराक्रमौ

नैतौ शक्यौ दुराधर्षौ विजेतुमजितौ युधि।।[16]

वासव तुम्हारे सखा नागप्रवर तक्षक इस समय यहाँ नहीं हैं। वे खाण्डव दाह के समय कुरुक्षेत्र चले गये थे। भगवान वासुदेव तथा अर्जुन को किसी प्रकार युद्ध से जीता नहीं जा सकता। मेरे कहने से तुम इस बात को

समझ लो। ये दोनों पहले के देवता नर और नारायण हैं। देव लोक में भी इनकी ख्याति है। इनका बल और पराक्रम कैसा है, यह तुम भी जानते हो। ये अपराजित और दुघर्ष वीर हैं। सम्पूर्ण लोकों में किसी के द्वारा भी जीते नहीं जा सकते।

अपि सर्वेषु लोकेषु पुराणावृषिसत्तमौ
पूजनीयतभावेतावपि सर्वैः सुरासुरैः ।।[17]

ये दोनों पुरातन ऋषि श्रेष्ठ नर-नारायण सम्पूर्ण देवताओं, असुरों, यक्षों, राक्षसों, गन्धर्वों, मनुष्यों, किन्नरों तथा नागों के लिये भी परम पूज्यनीय हैं।

यक्षराक्षसगन्धर्वनरकिन्नरपन्नगैः
तस्मादितः सुरैः सार्धं गन्तुमर्हसि वासव।
दिष्टं चाप्यनुपश्यैतत् खाण्डवस्य विनाशनम् ।।
इति वाक्यमुपश्रुत्य तथ्यमित्यमरेश्वरः।
क्रोधामर्षो समुत्सृज्य सम्प्रतस्थे दिवं तदा।[18]

अतः इन्द्र तुम्हें देवताओं के साथ यहाँ से चले जाना ही उचित है। खाण्डववन के इस विनाश को तुम प्रारब्ध का ही कार्य समझो।

आकाशवाणी से प्राप्त सन्देशों को अत्यन्त ही प्रभावी माना जाता था। उसका ग्रहिताओं पर तुरन्त प्रभाव पड़ता था। उपरोक्त दृष्टांत में आकाशवाणी का ही प्रभाव था कि इन्द्र क्रोध और अमर्ष का त्याग कर तत्काल स्वर्गलोक को वापस चले गये।

दृष्टान्त कंस द्वारा विवाहोपश्चात वसुदेव-देवकी को विदा करते समय हुई आकाशवाणी

मथुरा नरेश कंस अत्यन्त प्रसन्न होकर वसुदेव के साथ अपनी चचेरी बहन देवकी का विवाह कर दिया जो उसके चाचा देवक की पुत्री थी। जब रथ पर बैठकर देवकी विदा होने लगी तब राजा कंस भी उसे पहुँचाने के लिये वसुदेव जी के पास उस रथ पर बैठ गया। उसी समय आकाशवाणी में किसी देवदूत की आकाशवाणी सुनाई देने लगी।

यामेतां वाहमनोऽध कंसौद्वहसि देवकीम्।

अस्या यश्चाष्टमो गर्भः स ते मृत्युर्भविष्यति।।[19]

अर्थात कंस आज तू जिस देवकी को रथ पर बैठाकर लिये जा रहा है उसका आठवाँ गर्भ तेरी मृत्यु का कारण होगा।

सोऽवतीर्य ततो राजा खड्गमुद्धृत्य निर्मलम्।

इयेष तस्या मूर्धानं छेत्तुं परमदुर्मतिः।[20]

आकाशवाणी द्वारा प्राप्त संदेश इतना प्रभावशाली था कि कंस ने तुरंत म्यान से तलवार निकालकर देवकी का सिर काट लेने का उद्यत हो गया।

दृष्टान्त शिशुपाल के जन्म के समय आकाशवाणी (द्विमार्गी संचार का उदाहरण)

चेदिराज दमघोष के कुल में जब शिशुपाल का जन्म हुआ तो उस समय उसके तीन आँखें और चार भुजायें थीं। वह रोने की जगह गदहे के रेंगने की तरह जोर-जोर से गर्जन करने लगा। इससे उसके माता-पिता एवं अन्य सुहृद उसे त्यागने का विचार करने लगे। उस समय आकाशवाणी हुई-

एष ते नृपते पुत्रः श्रीमान् जातो बालाधिकः।

तस्मादस्मान्त भेतव्यभव्यग्रः पाहि वै शिशुम्।।

न च वै तस्य मृत्युर्षै न कालः प्रत्युपास्थितः।

मृत्युर्हन्तास्य शस्त्रेण स चोत्पन्नो नराधिप।।[21]

अर्थात राजन तुम्हारा यह पुत्र श्री सम्पन्न एवं महाबली है अतः तुम्हें इससे डरना नहीं चाहिये। तुम शांत चित्त होकर इस शिशु का पालन करो। नरेश्वर अभी इसकी मृत्यु नहीं आयी है और न काल ही उपस्थित हुआ है जो इसकी मृत्यु का कारण है तथा जो शस्त्र द्वारा इसका वध करेगा वह अत्यन्त अन्यत्र उत्पन्न हो चुका है।

आकाशवाणी द्वारा उपरोक्त संदेश सुनकर माता महादेवी श्रृतश्रवा ने कहा-

येनदमीरितं वाक्यं ममैतं तनयं प्रति।

प्रांजलिस्तं नमस्यामि ब्रवीतु स पुनर्वचः।

याथातथ्येन भगवान् देवो वा यदि वेतरः।

श्रोतुमिच्छामि पुत्रस्य कोऽस्य मृत्युर्भविष्यति।।[22]

अर्थात "मेरे इस पुत्र के विषय में जिन्होंने यह बात कही है, उन्हें मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करती हूँ। चाहे वे कोई देवता हो अथवा अन्य कोई प्राणी। वे फिर मेरे प्रश्न का उत्तर दें। मैं यह यथार्थ रूप से सुनना चाहती हूँ कि मेरे इस पुत्र की मृत्यु में कौन निमित्त बनेगा?"

तब पुनः आकाशवाणी द्वारा उत्तर मिला-

अन्तर्भूतं ततो भूतमुवाचेदं पुनर्वचः।
यस्योत्सङ्गे गृहीतस्य भुजावभ्यधिकावुभौ।।
पतिष्यतः क्षितितले पंचशीर्षाविवोरगौ।
तृतीयमेतद् बालस्य ललाटस्थं तु लोचनम्।
निमज्जिष्यति यं दृष्ट्वा सोऽस्य मृत्युर्भविष्यति।[23]

"जिसके द्वारा गोद में लिये जाने पर पांच सिर वाले दो सर्पों की भांति इसकी पांचों ऊंगलियों से युक्त दो अधिक भुजायें पृथ्वी पर गिर जायेगी और जिसे देखकर इस बालक का ललाटवर्ती तीसरा नेत्र भी ललाट में लीन हो जायेगा वही इसकी मृत्यु में निमित्त बनेगा।"

उपरोक्त आकाशवाणी द्वारा द्विमार्गीय संचार प्रक्रिया का बहुत अच्छा उदाहरण मिलता है।

यद्यपि आज भारत में आल इंडिया रेडियो को आकाशवाणी शब्द से सम्बोधित करते हैं। यह आकाशवाणी शब्द संभवतः भारतीय धर्मशास्त्रों में प्रयुक्त आकाशवाणी को ध्यान में रखकर प्रचलन में आया है। परन्तु आल इंडिया रेडियो में रेडियो एक उपकरण है जिसके माध्यम से जनसामान्य तक सन्देशों-सूचनाओं एवं अन्य कार्यक्रमों का प्रसारण होता है। इसका श्रोता जनसामान्य होता है परन्तु महाभारत में प्रयुक्त आकाशवाणी पारलौकिक शक्तियों तक अपना सन्देश जनसामान्य तक नहीं बल्कि एक लक्षित समूह तक प्रेषित करती रही हैं। महाभारत के आकाशवाणी लक्षित समूह (श्रोता समूह) और सम्प्रेषक के बीच सीधे संवाद होने का विवरण मिलता है। इसमें किसी उपकरण का विवरण महाभारत में वर्णित नहीं है।

संदर्भ

1. महाभारत, आदि पर्व (संभव पर्व), अध्याय 74, पृ. 260
2. वही, अध्याय 73, श्लोक संख्या 21
3. वही, अध्याय 74, श्लोक संख्या 110 एवं 111
4. वही, श्लोक संख्या 113
5. वही, अध्याय 120, श्लोक संख्या 33-34
6. वही, अध्याय 122, श्लोक संख्या 8-9
7. वही, श्लोक संख्या 15
8. वही, श्लोक संख्या 38-39
9. वही, श्लोक संख्या 40
10. वही, श्लोक संख्या 41
11. वही, श्लोक संख्या 42
12. वही, श्लोक संख्या 43
13. वही, श्लोक संख्या 44-45
14. वही, श्लोक संख्या 46
15. वही, अध्याय 123, श्लोक संख्या 18
16. महाभारत, आदि पर्व (मयदर्शन पर्व) अध्याय 227, श्लोक संख्या 16-19
17. वही, श्लोक संख्या 20
18. वही, श्लोक संख्या 21-22
19. महाभारीत, आदि पर्व, अध्याय 227
20. महाभारत, सभापर्व (जरासंध पर्व), अध्याय 22, पृ. 837
21. महाभारत, सभा पर्व (शिशुपाल वध पर्व), अध्याय 43, श्लोक संख्या 4 एवं 5
22. वही, श्लोक संख्या 7 एवं 8
23. वही, श्लोक संख्या 9 एवं 10

अध्याय 13

महर्षि नारद का कल्याणकारी संचार

महर्षि नारद शास्त्र ज्ञान एवं चरित्र बल से युक्त, अभिमान रहित, अप्रीति, क्रोध, चपलता, भय से रहित हैं। धर्म एवं दया करने में बड़े शूरवीर हैं। वे अध्यात्म शास्त्र के तत्वज्ञ विद्वान, क्षमाशील, शक्तिमान, जितेन्द्रिय, सरल तथा सत्यवादी हैं। इसलिये उनकी सर्वत्र पूजा होती है। वे खुले दिल से सबका कल्याण करते हैं। उनके मन में लेशमात्र भी पाप नहीं है। दूसरों का अनर्थ देखकर उन्हें प्रसन्नता नहीं होती; इसलिये उनका सर्वत्र सम्मान है-

कल्याणं कुरुते बाढ़ं पापमस्मिन विद्यते।
न प्रीयते परानर्थैस्तमात् सर्वत्र पूजितः।[1]

वे लोगों की अनेक प्रकार की चित्तवृत्ति को समझते हैं फिर भी किसी की निन्दा नहीं करते। किसका संसर्ग कैसा है? इसके ज्ञान में वे बड़े निपुण हैं वे किसी शास्त्र में दोष नहीं देखते। अपनी नीति के अनुसार जीवन-यापन करते हैं। समय को कभी व्यर्थ नहीं गंवाते और मन को वश में रखते हैं। वे सर्वत्र सम्मान रखने वाले हैं। वेदों, उपनिषदों, श्रुतियों तथा इतिहास पुराण की कथाओं द्वारा प्रस्तुत विषयों को समझाने और सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। वे सहनशील तो हैं ही कभी किसी की अवज्ञा नहीं करते। वे सर्वत्र समभाव रखते हैं, इसलिये उनका न कोई प्रिय है और न किसी तरह अप्रिय ही है। वे मनोनुकूल बोलते हैं। इसलिये उनका सर्वत्र आदर है-

समत्वाच्च प्रियोनास्ति नाप्रियंजय कथंचन।
मनोनुकूलवादी च तस्मात् सर्वत्र पूजितः।।[2]

उपरोक्त के अतिरिक्त नारद जी की कुछ और विशेषतायें हैं- वे किसी के गुप्त रहस्य काके कभी प्रकट नहीं करते इसीलिये दूसरे लोग उन्हें अपने कल्याणकारी कार्यों में लगाये रखते हैं। वे दूसरों की भलाई के लिये सदैव उद्यत रहते हैं। उनकी बुद्धि स्थिर और मन आसक्ति रहित है। वे कभी आत्म प्रशंसा नहीं करते, किसी के प्रति ईर्ष्या नहीं रखते। सदैव मृदु वचन

बोलते हैं। वे न्याय के विद्वान, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष इन छहों अंगों के पण्डितों में शिरोमणि, संयोगनानात्व, समवाय के ज्ञान विशारद, प्रगल्भ वक्ता, मेधावी स्मरण शक्ति सम्पन्न, वाक्य के गुण दोष को जानने वाले वृहस्पति जैसे वक्ता के साथ भी उत्तर प्रत्युत्तर करने में समर्थ, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को जानने वाले, सांख्य और योग के मर्मज्ञ, देवताओं और असुरों में भी वैराग्य उत्पन्न करने के इच्छुक, शत्रुपक्ष के बलाबल का अनुमान से निश्चय करके शत्रुपक्ष के मंत्रियों आदि को फोड़ने के लिये धन आदि बांटने के उपयुक्त अवसर का ज्ञान रखने वाले, सन्धि, विग्रह, द्वैधीभाव, युद्ध और संगीत की कला में कुशल, क्रोध रहित हैं। इसीलिये वे एक महान एवं लोक कल्याणकारी सम्प्रेषक हैं। देवर्षि की उपाधि से लोग उन्हें सम्मानित करते हैं। नारद का संचार सदैव लोकहित में होता था। उनके संचार को हम महाभारत में वर्णित कुछ दृष्टान्तों के आधार पर कर रहे हैं-

दृष्टान्त- देवर्षि नारद का पाण्डवों में फूट न हो इसके लिये कुछ नियम बनाने हेतु प्रेरित करना-

महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से पाण्डव खाण्डवप्रस्थ में राज्य बनाकर विहार करने लगे। एक दिन सभी पाण्डव राजोचित सिंहासन पर बैठे थे कि देवर्षि नारद का आगमन हुआ। महाराज युधिष्ठिर स्वयं ही विधिपूर्वक उन्हें अर्ध्य निवेदन किया जिससे देवर्षि बड़े प्रसन्न हुये। उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर को बैठने का आदेश दिया तथा द्रोपदी को सन्देश भेज दिया कि भगवान नारद पधारे हैं। यह सुनते ही द्रोपदी वहाँ आ गईं। वह देवर्षि के चरणों में प्रणाम करके खड़ी हो गई। तदनंतर देवर्षि नारद ने द्रोपदी को नाना प्रकार के आशीर्वाद देकर कहा- 'देवी! अब तुम बाहर जाओ।' कृष्ण के चले जाने पर देवर्षि ने एकान्त में धर्मराज युधिष्ठिर सहित अन्य पाण्डवों से कहा-

पांचाली भवतोमेका धर्मपत्नी यशस्विनी।
यथा वो नात्र भेदः स्यात् तथा नीतिर्विधीयताम्।[1]

अर्थात पाण्डवों! यशस्विनी पांचाली तुम सब लोगों की एक ही धर्मपत्नी है। अतः तुम लोग ऐसी नीति बना लो जिससे तुम लोगों में कभी भी फूट न हो। अपनी बात को मजबूती प्रदान करने के लिये उन्होंने सुन्द-उपसुन्द

नामक राक्षस का वृत्तांत सुनाया। वे दोनों राक्षस परस्पर संगठित एवं एकमत रहते थे तथापि तिलोत्तमा के लिये कुपित हो एक-दूसरे को मार डाला था। अतः आप लोग भी द्रोपदी के लिये नियम बना लें, ताकि तुम लोगों में फूट न पड़े। तुम्हारा कल्याण हो।

यथा वो नात्र भेदः स्यात् सर्वेषां द्रोपदीकृते।
तथा कुरुत भद्रं वो मम चेत् प्रियमिच्छथ।।[4]

तब पाण्डवों ने देवर्षि के सामने ही नियम बनाया जो इस प्रकार है-

(एकैकस्य गृहे कृष्णा वसेद् वर्षम कल्मषा)
द्रौपद्या नः सहासीनान्योन्यं याद्रेमिदर्शयेत्।
स नो द्वादश वर्षाणि ब्रह्मचारी वने बसेत्।[5]

(अर्थात हम में से प्रत्येक घर में पाप रहित द्रोपदी एक-एक वर्ष निवास करे। द्रोपदी के साथ एकान्त में बैठे हुए हममें से एक भाई को यदि दूसरा देख ले तो, वह बारह वर्षों तक ब्रह्मचर्यपूर्वक वन में निवास करे।

देवर्षि नारद द्वारा इस कल्याण्कारी नियम के कारण ही पाण्डवों में आपस में कभी फूट नहीं पड़ी।

दृष्टान्त- राजा अश्वपति को सावित्री के पति की आयु बताना।

राजा अश्वपति अपनी पुत्री सावित्री को वर (पति) की खोज करने के लिए भेज दिये थे। उनके पास देवर्षि नारद बैठे हुए थे। वे देवर्षि नारद से बातचीत कर रहे थे कि सावित्री पति का वरण कर आ गई। देवर्षि को पिता के साथ बैठे देखकर उसने दोनों के चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया। नारद ने पूछा- “आपकी यह पुत्री कहाँ गई थी और कहाँ से आ रही है। अब तो युवती हो गई है। इसका विवाह क्यों नहीं कर देते हैं?”

राजा अश्वपति ने कहा- “देवर्षे! मैंने इसे इसी कार्य से भेजा था। इसने अपने लिए पति का वरण किया है। आप इसी के मुख से उसके बारे में सुनिये।”

सावित्री ने कहा- “पिताजी शास्वदेश में एक राजा द्युमत्सेन राज्य करते थे। जो अंधे हो गये हैं। उनका पुत्र बाल्यावस्था में था कि एक अन्य राजा ने उन पर आक्रमण कर उनके राज्य को हड़प लिया है। वे महाराज वन में

जाकर महान तपस्या करते हैं। उनके एक पुत्र सत्यवान हैं। मैंने मन ही मन उसी का वरण किया है।"

यह सुनकर महर्षि नारद ने कहा-

"अहो वत महत् पापं सावित्र्या नृपते कृतम्।
अजानन्त्या यदनया गुणवान् सत्यवान् वृतः।।
सत्यं वदतस्य पिता सत्यं माता प्रभाषते।
तथास्य ब्राह्मणाश्चक्रुनीमैतत् सत्यवानिति।।"[6]

(अर्थात "अहो! यह बड़े खेद की बात है। राजन् सावित्री ने बिना जाने ही अपना बड़ा अनिष्ट किया है जो कि इसने सत्यवान को गुणवान समझकर वरण कर लिया है। इस राजकुमार के पिता सदा सत्य बोलते हैं। इनकी माता भी सत्य भाषण करती हैं। इसीलिये ब्राह्मणों ने इसका नाम सत्यवान रख दिया।")

राजा बृहदाश्व ने पूछा- "देवर्षे! इस समय पितृभक्त राजकुमार सत्यवान, तेजस्वी, बुद्धिमान, क्षमावान और शूरवीर तो है न?"

नारद ने कहा- "वह राजकुमार सूर्य के समान तेजस्वी, वृहस्पति के समान बुद्धिमान, इन्द्र के समान वीर तथा पृथ्वी के समान क्षमाशील है। वह दानी, रन्तिदेव के समान सुन्दर, सत्यवादी, ब्राह्मणभक्त, उदार चंद्रमा के समान प्रियदर्शन है। वह सर्वगुण सम्पन्न है। परन्तु उसमें एक दोष है वह यह है कि-

एक एवास्य दोषो हि गुणानाक्रम्य तिष्ठति।
स च दोषः प्रयत्नेन न शम्यमतिवर्तितुम्।।
एकोदोषोऽस्ति नान्योऽस्य सोऽद्यप्रभृति सत्यवान।
संवत्सेरण क्षीणायुर्देहन्यासं करिष्यति।।[7]

(अर्थात! दोष तो एक ही है जो उसके सभी गुणों को दबाकर स्थिर है। उस दोष को प्रयत्न करके भी हटाया नहीं जा सकता। आज से लेकर एक वर्ष पूर्ण होने तक सत्यवान की आयु पूर्ण हो जाएगी और वह शरीर त्याग देगा। केवल यही दोष उसमें है। दूसरा नहीं।)

तब राजा अश्वपति ने सावित्री को बुलाकर कहा- "शोभने! तू दूसरी यात्रा कर किसी अन्य पुरुष का वरण कर ले। नारदजी कह रहे हैं कि सत्यवान

की आयु केवल एक वर्ष ही है। उसके बाद वह शरीर त्याग देगा।"

सावित्री ने कहा- "पिताजी! कन्या एक ही बार दी जाती है। श्रेष्ठ दाता 'मैं दूंगा' ऐसा कहकर केवल एक ही बार वचनदान करता है। मैंने एक बार उन्हें अपना पति वरण कर लिया, वे दीर्घायु हों या अल्पायु। गुणवान हों या गुणहीन। मैं उसके अतिरिक्त अब किसी अन्य पुरुष का वरण नहीं करूंगी।"

तदनंतर नारद ने देखा कि सावित्री की बुद्धि स्थिर है। वह दृढ़ प्रतिज्ञ है। इसे किसी भी प्रकार धर्म मार्ग से हटाया नहीं जा सकता। सत्यवान में जो गुण हैं वह किसी अन्य पुरुष में नहीं है। तब उन्होंने राजा अश्वपति से कहा- सावित्री की दृढ़ इच्छा देखकर मुझे ठीक लगता है कि उसकी शादी सत्यवान के साथ कर देना उचित है। राजा ने देवर्षि नारद की बात स्वीकार करते हुए सावित्री का सत्यवान के साथ विवाह कर दिया।

दृष्टान्त- मातलि के पुत्री हेतु वर खोजना।

महर्षि नारद वरुण देव से मिलने के लिए नागलोक के मार्ग से जा रहे थे। रास्ते में अकस्मात उनकी भेंट मातलि (इन्द्र का सारथी) से हो गई। देवर्षि नारद ने मातलि से पूछा- "देवसारथे! तुम कहाँ जाने को उद्यत हुये हो। तुम्हारी यह यात्रा निजी है या देवेन्द्र के आदेश से हुई है।" मातलि ने देवर्षि नारद से यात्रा का उद्देश्य बताया। "मैं अपनी पुत्री गुणकेशी के लिए वर खोजने के लिए अपनी पत्नी सुधर्मा से सलाह करके नागलोक में जा रहा हूँ।" तब देवर्षि ने कहा- "मातले मैं भी वरुण देव का दर्शन करने के लिए वहीं जा रहा हूँ। वहाँ मैं तुम्हें सब वस्तुओं का परिचय करवा दूँगा। वहाँ हम दोनों किसी योग्य वर को देखकर उसे पसन्द कर लेंगे। देवर्षि नारद पाताल लोक में निवास करने वाले सभी प्राणियों को जानते थे। उन्होंने सबका परिचय मातलि से करवाया। वहाँ उन्हें कोई वर पसन्द नहीं आया। फिर वे दोनों पाताल लोक के भीतर हिरण्यपुर नामक नगर में गये। हिरण्यपुर बहुत ही सुन्दर सजा हुआ नगर था। वहाँ भी कोई वर मातलि को पसन्द नहीं आया। तब वे वरुण लोक गये। वहाँ भी देवर्षि नारद ने मातलि को सब कुछ दिखाया और बताया तथा कहा कि "यदि यहाँ भी कोई वर पसन्द न हो तो हम लोग अन्यत्र चलें। अब हम तुम्हें

ऐसे स्थान पर ले चलूँगा जहाँ तुम्हें कोई न कोई वर अवश्य मिल जाएगा।"

तत्पश्चात देवर्षि नारद और इन्द्र सारथी मातति रसातल पहुँचे। वहाँ पहुंचकर देवर्षि नारद ने कहा-

इदं रसातलं नाम सप्तमं पृथिवीतलम्।
यत्रास्ते सुरभिर्याता गवाममृतसम्भवा।।[1]

(अर्थात मातले! यह पृथ्वी का सातवाँ तल है जिसका नाम रसातल है। यहाँ से उत्पन्न गोमाता सुरभि निवास करती हैं।)

फिर देवर्षि नारद ने मातलि के साथ भोगवती जाकर कहा- "मातले यह नगरी देवराज इन्द्र की सर्वश्रेष्ठ नगरी अमरावती के समान सुन्दर है। यहाँ सुख-समृद्धि है। यहाँ भगवान शेषनाग स्थित हैं जो अपने तपोबल से सारी पृथ्वी को सदा धारण किये रहते हैं। यहाँ सुरसा के पुत्र नागगण शोक-सन्ताप से रहित होकर निवास करते हैं। यहाँ सभी प्रकार के नाग सहस्त्रों की संख्या में रहते हैं। इनमें से किसी के शरीर में मणि का, किसी के शरीर में स्वास्तिक तथा किसी के शरीर में चक्र एवं किसी के शरीर में कमण्डल का चिह्न है। वहाँ उन्होंने विभिन्न प्रकार के नागों जिसमें कौरव्य, आर्यक, वासुकि, कर्कोटक, नहुष आदि का परिचय कराया और कहा- 'मातले पश्च यद्यत्र कश्चित् ते रोचते वरः' अर्थात मातले! यदि यहाँ कोई वर पसन्द हो तो देखो।

तब मातलि स्थिरतापूर्वक एक नाग का निरीक्षण करके प्रसन्न से हो उठे और उन्होंने देवर्षि नारद से पूछा-

स्थितो य एष पुरतः कौरव्यस्यार्यकस्य तु।
द्युतिमान् दर्शनीयश्च कस्यैष कुलनन्दनः।।[1]

(यह जो कौरव्य और आर्यक के आगे कान्तिमान और दर्शनीय नागकुमार खड़ा है किसके कुल को आनन्दित करने वाला है।)

कः पिता जननी चास्य कतमस्यैव योगिनः।
वंशस्य कस्यैष महान् केतुभूत इवस्थितः।।

वही, श्लोक संख्या 21

इसके माता-पिता कौन है? यह किस नाग का पौत्र है तथा किसके वंश की महान ध्वज के समान शोक्त पा रहा है।

प्राणिधानेन धैर्येण रूपेण वयसा च मे।
मनः प्रविष्टो देवर्षे गुणकेश्याः पतिवरः।।

वही, श्लोक संख्या 21

देवर्षे! यह अपनी एकाग्रता, धैर्य, रूप तथा तरुण अवस्था के कारण मेरे मन में समा गया है। यही गुणकेशी का श्रेष्ठ वर होने के योग्य है।

तब महर्षि नारद ने कहा- "मातलि! यह नागराज सुमुक है। जो ऐरावत कुल में उत्पन्न हुआ है। यह आर्यक का पौत्र तथा वामन का दौहित्र है। इसके पिता नागराज चिकुर थे जिन्हें गरुण ने कुछ दिन पूर्व अपना ग्रास बना लिया है। तदनंतर मातलि ने अपनी कन्या का विवाह भगवान इन्द्र के आशीर्वाद से कर दिया।

दृष्टान्त- दुर्योधन को महर्षि नारद का समझाना।

महाभारत युद्ध रोकने के लिए दुर्योधन के सभी सुहृदों ने उसे समझाने का प्रयास किया। महर्षि नारद ने भी उसे समझाने का यथोचित प्रयास किया। उन्होंने दुर्योधन से कहा- "कुरुनंदन! मैं देखता हूँ कि तुम्हें अपने सुहृदों को सुनने की विशेष आवश्यकता है। अतः तुम्हें किसी एक बात का दुराग्रह नहीं करना चाहिए। आग्रह का परिणाम बड़ा भयंकर होता है। उन्होंने अनेक ऐतिहासिक दृष्टान्त देकर उसे समझाने का प्रयास किया।

श्रोतव्यं हितकामनां सुहृदां हितमिच्छताम्।
न कर्तव्यो हि निर्बन्धो निर्बन्धो हि क्षमोदयः।।
तस्मात् त्वमपि गान्धारे मानं क्रोधं न वर्जय।
संधत्स्व पाण्डवैर्वीर संरम्मं त्यज पार्थिव।।

उद्योग पर्व (भगवद्यान पर्व), अध्याय 123, श्लोक 20-21

अर्थात् राजन! तुम्हें तुम्हारे हित की इच्छा रखने वाले सुहृदों की बात अवश्य सुननी चाहिये और माननी चाहिये। दुराग्रह कभी नहीं करना चाहिये क्योंकि वह विनाश के पथ पर ले जाने वाला है। अतः गान्धारी नन्दन! तुम अभिमान और क्रोध को त्याग दो। तुम पाण्डवों से संधि कर लो और क्रोध के आवेश को सदा के लिये छोड़ दो।

दुर्योधन! तुम असत्य आचरण को न अपनाओ, अन्यथा शक्तिशाली

पाण्डवों के साथ युद्ध ठानकर तुम बड़े भारी संकट में पड़ जाओगे। नरश्रेष्ठ! जो मनुष्य दान देता है, कर्म करता है, तपस्या में प्रवृत्त रहता है, होम यज्ञ आदि का अनुष्ठान करता है उसका न तो नाश होता है और न ही उसमें कोई कमी आती है। कर्ता स्वयं ही अपने शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है। अन्त में उन्होंने कहा-

इदं महाख्यानमनुत्तमं हितं
बहुश्रुतानां गतरोषरागिणाम्।
समीक्ष्य लोके बहुधा प्रधारितं
त्रिवर्ग दृष्टिः पृथिवीमुपाश्नुते।।

वही, श्लोक 123

अर्थात् यह महत्वपूर्ण उपाख्यान उन महापुरुषों का है जो अनेक शास्त्रों के ज्ञाता तथा रोष और राग से रहित थे। यह सबके लिये परम उत्तम और हितकर है। लोक में इस पर नाना प्रकार से विचार करके निश्चित किये हुये सिद्धांत को अपनाकर त्रिवर्ग- धर्म, अर्थ और काम पर दृष्टि रखने वाला पुरुष इस पृथ्वी का उपभोग करता है।

दृष्टान्त- राजा अकम्पन को पुत्रशोक होने पर महर्षि नारद का शोक निवारण हेतु संवाद-

सतयुग में अकम्पन नाम से एक प्रसिद्ध राजा थे। उनके एक पुत्र था जिसका नाम हरि था। वह बल में भगवान नारायण के समान था। अस्त्रविद्या में पारंगत, मेधावी श्री सम्पन्न तथा इन्द्र के समान पराक्रमी था। युद्ध में वह शत्रुओं द्वारा मार दिया गया। राजा अकम्पन को बहुत शोक हुआ। वे उसी शोक में दिन-रात रहने लगे। यह जानकर देवर्षि नारद उनके पास आये। राजा अकम्पन ने देवर्षि नारद से कहा- "देवर्षे! मेरा पुत्र इन्द्र और भगवान विष्णु के समान तेजस्वी एवं महाबलशाली था परन्तु युद्ध में शत्रुओं ने एक साथ मिलकर उसका वध कर डाला। भगवान! यह मृत्यु क्या है? इसका वीर्य, बल और पौरुष कैसा है?"

देवर्षि नारद ने कहा- "आदि सृष्टि के समय पितामह ब्रह्मा ने जब प्रजावर्ग की सृष्टि की थी उस समय संहार की कोई व्यवस्था न थी। अतः इस

सम्पूर्ण जगत को प्राणियों से परिपूर्ण एवं मृत्युरहित देख ब्रह्माजी चिंतित हो उठे। बहुत सोचने-विचारने के बाद भी उन्हें प्राणियों के संहार का कोई उपाय ज्ञात न हो सका। तब क्रोधवश उन्होंने अग्नि की उत्पत्ति की जिससे पृथ्वी पर चारों तरफ अग्नि की लपटें उठकर सम्पूर्ण जगत को दग्ध करने लगी। तदनंतर भगवान रूद्र ब्रह्मा जी की शरण में गये। ब्रह्मा जी ने कहा- "अपने अभीष्ठ मनोरथ को पूर्ण करने वाले पुत्र! तुम मेरे मानसिक संकल्प से उत्पन्न हुये हो। मैं तुम्हारी कौन-सी कामना पूर्ण करूँ? तुम जो चाहते हो बताओ।" तब भगवान रूद्र ने कहा- "प्रभो! आपने ही सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की है। आप की सारी प्रजायें यहाँ दग्ध हो रही हैं। इससे मेरे हृदय में करुणा भर आई है। अतः प्रभो आप अपनी प्रजा पर कृपा दृष्टि करके प्रसन्न होइये।" तब ब्रह्मा जी ने कहा- "रूद्र! मेरी यह इच्छा नहीं है कि इस प्रकार इस जगत का संहार हो। वसुधा के हित के लिये ही मेरे मन में क्रोध का आवेश हुआ। इस पृथ्वी देवी ने पीड़ित होकर मुझे जगत के संहार के लिये प्रेरित किया था। यह सती साध्वी देवी महान मार से दबी हुई थी।"

तब भगवान रूद्र ने कहा- "प्रभो! आप जगत का संहार बन्द कीजिये। आप की ही कृपा से यह जगत भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीन रूपों में विभक्त हो जाये। भगवन! यह चराचर जगत नष्ट न हो जाय, आदिदेव आपने मुझे सम्पूर्ण जगत में लोकसृष्टा के पद पर नियुक्त किया है। अतः मैं इस जगत को विनाश से बचाने के लिये आपसे अनुरोध कर रहा हूँ।"

यह सुनकर भगवान ब्रह्माजी ने पुनः अपनी अंतरात्मा में ही उस क्रोध (तेज) को धारण कर लिया। तब उन्होंने अग्नि का उपसंहार करके मनुष्यों के लिये प्रवृत्ति (कर्म) और निवृत्ति (ज्ञान) मार्गों का उपदेश दिया। ब्रह्माजी के उस क्रोधाग्नि का उपसंहार करते समय सम्पूर्ण इन्द्रियों से एक नारी प्रकट हुई जो काल और लाल रंग की थी। वह तपाये हुये सोने के कुण्डल से सुशोभित थी। उसकी जिह्वा, मुख और नेत्र पीले तथा लाल रंग के थे। वह इन्द्रियों से निकलकर दक्षिण दिशा में खड़ी हुई और देवताओं की तरफ देखकर मन्द-मन्द मुस्कराने लगी।

ब्रह्माजी ने उस नारी को बुलाकर उसे बारम्बार सरन्त्वना देते हुए

मधुर वाणी में 'मृत्यो' कहकर पुकारा और कहा- "मृत्यो इति महिपाल जहि चेमाः प्रजा इति' अर्थात इन समस्त प्रजाओं का संहार कर। देवी तू संहार बुद्धि से मेरे रोष द्वारा प्रकट हुई है, इसलिये मूर्ख और पंडित सभी प्रजाओं का संहार करती रह। मेरे आज्ञा से तुझे यह कार्य करना होगा। इससे तू कल्याण प्राप्त करेगी।" इस प्रकार मृत्यु की उत्पत्ति का दृष्टान्त देवर्षि नारद ने अकम्पन को बताया। उन्होंने यह भी कहा कि "वही मृत्यु अन्तकाल आने पर काम और क्रोध का परित्याग करके अनासक्त भाव से प्राणियों का अपहरण करती है। सब प्राणी स्वयं ही अपने आप को मारते हैं। मृत्यु हाथ में डंडा लेकर इनका वध नहीं करती। अतः धीर पुरुष मृत्यु को ब्रह्माजी का निश्चित किया हुआ विधान समझकर मरे हुये प्राणियों के लिये कभी शोक नहीं करते। इस प्रकार ब्रह्माजी की बनाई हुई सारी सृष्टि ही मृत्यु के वशीभूत जानकर तुम अपने पुत्र के मर जाने से प्राप्त हो जाने वाले शोक का शीघ्र परित्याग कर दो।

आत्मानं वै प्राणिनो ध्नन्ति सर्वे
नैतान मृत्युर्दण्डपाणिर्हिनास्ति।
तस्मान मृतान नानुशोचन्ति धीरा
मृत्युं ज्ञात्वा निश्चयं ब्रह्मसृष्टम्।
इत्थं सृष्टिं देवक्लृपा विदित्वा
पुत्रान्नष्टाच्छोकमाशु त्यजस्व।।[10]

तदनंतर राजा अकम्पन ने देवर्षि नारद से कहा- "देवर्षि मेरा शोक अब दूर हो गया।" तदनन्तर महर्षि नारद नन्दन वन की तरफ प्रस्थान कर गये।

दृष्टान्त- पुत्र शोक संतृप्त सृंजय को नारद जी की मरुत का चरित्र सुनाना-

महाराज शैब्य के पुत्र राजा सृंजय ने पुत्र की इच्छा से पवित्र हो पूरी शक्ति लगाकर बड़े यत्न से भोजन, पीने योग्य पदार्थ तथा वस्त्र आदि देकर ब्राह्मणों की आराधना की। एक दिन उन सभी श्रेष्ठ तपस्वी ब्राह्मणों ने देवर्षि नारद जी से कहा- "देवर्षे! आप इन श्रेष्ठ राजा सृंजय को अभीष्ट पुत्र प्रदान कीजिये।" ब्राह्मणों के ऐसा कहने पर देवर्षि नारद ने 'तथास्तु' कहकर ब्राह्मणों

का अनुरोध स्वीकार कर लिया। फिर वे राजा सृंजय ने इस प्रकार बोले- 'राजन! ये ब्राह्मण लोग तुम्हारे लिये अभीष्ट पुत्र प्राप्त करना चाहते हैं। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हें जैसा पुत्र चाहिये वैसा वर माँगो।" देवर्षि के ऐसा कहने पर राजा सृंजय ने हाथ जोड़कर उनसे एक सद्‌गुण सम्पन्न, यशस्वी, कीर्तिमान, तेजस्वी तथा शत्रुदमन पुत्र मांगा और कहा- "मुने! मैं ऐसे पुत्र की याचना करता हूँ जिसका मल, मूत्र, थूक और पसीना सब कुछ आपके कृपा प्रसार से सुवर्णमय हो जाये।" नारद जी ने कहा- "ऐसा ही होगा।" तदनंतर राजा को मनोवांछित पुत्र प्राप्त हुआ। देवर्षि की कृपा से वह सोने की खान निकला। रोते समय उसकी आँखों से सुवर्णमय आँसू गिरता था। इसलिये उस पुत्र का नाम सुवर्णष्ठीवी प्रसिद्ध हुआ। महर्षि के वरदान से यह पुत्र अनन्त धनराशि की वृद्धि करने लगा। राजा ने घर, परकोटे, दुर्ग एवं ब्राह्मणों के निवासस्थता सब कुछ सोने का बनवा लिया। उनके घर की सारी वस्तुयें सोने की हो गईं। तदनंतर लुटेरों ने राजा के इस वैभव की बात सुनकर उनके यहाँ लूटपाट आरंभ कर दी। अंत में उन लुटेरों ने राजा के पुत्र का अपहरण कर लिया और विवेकशून्य उन लुटेरों ने राजा के उस पुत्र को वन में ले जाकर मार डाला और उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके देखा। परन्तु उन्हें थोड़ा सा भी सोना दिखाई नहीं दिया। उसके प्राण शून्य होते ही उसके वरदायी वैभव नष्ट हो गये। उस समय वे विचार शून्य एवं मूर्ख लुटेरे आपस में ही एक-दूसरे का वध करके नष्ट हो गये और भयानक नर्क में पड़ गये। इधर अपने पुत्र के मरने से राजा सृंजय अत्यन्त दुःख से आतुर हो नाना प्रकार से विलाप करने लगे। राजा का विलाप सुनकर देवर्षि नारद वहाँ आये और उन्होंने राजा सृंजय से शोक त्याग करने के लिए इस प्रकार कहा-

त्यज शोकं महाराज वैकल्व्यं त्यज बुद्धिमन्।
न मृतः सोचते जीवेन्मुह्यतो वा जनाधिप।।[11]

(अर्थात महाराज शोक का त्याग करो। बुद्धिमान नरेश व्याकुलता छाड़ो। जनेश्वर कोई कितना ही शोक क्यों न करे या दुःख से मूर्च्छित क्यों न हो जाये, इससे मरा हुआ मनुष्य जीवित नहीं हो सकता।)

त्यं मोहं नृपश्रेष्ठ न हि मुहयान्ति त्वद्विधाः।

धीरो भव महाराज ज्ञानवृद्धोऽसि मे मतः।।[12]

अर्थात नृपश्रेष्ठ मोह त्याग दो। तुम्हारे जैसे पुरुष मोहित नहीं होते। महाराज धैर्य धारण करो। मैं तुम्हें ज्ञान में बढ़-चढ़कर मानता हूँ। देवर्षि ने महाराज सृजन को समझाते हुए कहा- जिसके घर में हम जैसे ब्रह्मवादी मुनि निवास करते हैं वह तुम भी यहाँ एक दिन भोगों से अतृप्त रहकर ही मर जाओगे। तत्पश्चात देवर्षि नारद ने राजा सृंजय को सोलह राजाओं- राजा मरुत, राजा सुहोत्र, राजा पोरव, राजा शिबि की दानशीलता तथा भगवान राम, राजा भगीरथ, राजा दिलीप का उत्कर्ष, राजा मानधाता की राजा गय का चरित्र, राजा रतिदेव की महत्ता, राजा भरत का चरित्र, राजा पृथु एवं परशुराम जी का चरित्र सुनाकर कहा-

त्वया चतुर्मदतरः पुत्रात् पुण्यतरस्तव।
अयज्वानमदाक्षिण्यं मा पुत्र मनुतप्यथा।।
एते चतुर्भद्रतरास्त्वया भद्रशताधिकाः।
मृता नरवर श्रेष्ठ मख्यिन्ति च सृंजय।।[13]

राजा सृंजय चारों कल्याणकारी गुणों में वे तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्र से अधिक पुण्यात्मा हैं। अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान दक्षिणा से रहित अपने पुत्र के लिये शोक न करो। नरश्रेष्ठ संजय अब तक जिन लोगों का वर्णन किया गया है ये चतुर्विध कल्याणकारी गुणों में तो तुमसे बढ़कर थे ही, तुम्हारी अपेक्षा उनमें सैंकड़ों मंगलकारी गुण अधिक भी थे। तदापि वे मर गये और जो विद्वान हैं वे भी मरेंगे ही।

तदनंतर राजा सृंजय ने देवर्षि नारद से कहा- "देवर्षि यज्ञ करने और दक्षिणा देने वाले प्राचीन राजर्षियों का यह उपाख्यान सुनकर मेरा शोक दूर हो गया। जैसे सूर्य का तेज सारा अंधकार हर लेता है, अब मैं पाप और व्यधा में से शून्य हो गया हूँ। बताइये अब मैं आपकी किस आज्ञा का पालन करूँ?

देवर्षि नारद ने कहा- "राजन! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम्हारा शोक दूर हो गया। तुम्हारी जो इच्छा हो, यहाँ मुझसे माँग लो, तुम्हारी वह सारी अभिलासित वस्तु तुम्हें प्राप्त हो जायेगी।"

दिष्ट्यापहततशोकस्त्वं वृणीष्वेह यदिच्छसि।

तत् तत् प्रपस्यसे सर्वं न मृषावादिनो वयम्।[14]

सृंजय ने कहा- "यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं। इतने से ही मैं पूर्ण संतुष्ट हूँ। जिस पर आप प्रसन्न हों, उसे इस जगत में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।" तब देवर्षि नारद ने कहा-

मृतं ददाति ते पुत्रं दस्युमिर्निहितं वृथा।
उद्धृत्य नरकात् कष्टात् पशुवत् प्रोक्षितं यथा।[15]

(अर्थात राजन लुटेरों ने तुम्हारे पुत्र को प्रोक्षित पशु की भांति व्यर्थ ही मार डाला है। तुम्हारे इस मरे हुए पुत्र को मैं कष्टप्रद नरक से निकालकर तुम्हें पुनः वापस दे रहा हूँ। देवर्षि नारद जी के इतना कहते ही राजा सृंजय का वह पुत्र वहाँ प्रकट हो गया। उसे ऋषि ने प्रसन्न होकर राजा को दे दिया था। वह देखने में कुबेर के पुत्र के समान प्रतीत होता था। इस प्रकार देवर्षि नारद से सृंजय का परम कल्याण किया।)

दृष्टान्त- कुटुम्बीजनों से व्यवहार के बारे में श्रीकृष्ण-नारद संवाद

एक बार भगवान श्रीकृष्ण ने देवर्षि नारद से कहा- "देवर्षे! मैं अपनी प्रभुता प्रकाशित करके जाति भाइयों, कुटुम्बीजनों को अपना दास नहीं बनाना चाहता। मुझे जो भोग प्राप्त होते हैं उसका आधा भाग ही अपने उपभोग में लाता हूँ। शेष भाग कुटुम्बजनों के लिए छोड़ देता हूँ और उनकी कड़वी बातों को भी सुनकर क्षमा कर देता हूँ। पर वे मेरे प्रति कटुवचन ही बोलते रहते हैं जो मेरे हृदय को सदैव जलाता एवं मथता रहता है। मेरे बड़े भाई बलराम जी में असीम बल है। वे उसी में मस्त रहते हैं। छोटे भाई गद अत्यन्त सुकुमार है। बेटा प्रद्युम्न अपने रूप सौंदर्य के अभिमान में ही मतवाला बना रहता है। इस प्रकार इन सहायकों के होते हुए भी मैं असहाय हूँ। देवर्षे! अन्धक वंश में और भी बहुत से ऐसे वीर हैं जो महान सौभाग्यशाली बलवान एवं दुःसह पराक्रमी हैं। ऐसे ही वृष्णिवंश में भी हैं। ये वीर जिसके पक्ष में न हों उसका जीवित रहना असंभव है और जिसके पक्ष में चले जायें वह सारा समुदाय ही विजयी हो जाये। परन्तु आहुक और अक्रूर आपस में बैर रखकर मुझे इस प्रकार असहाय भर दिया है कि मैं किसी एक का पक्ष नहीं ले सकता हूँ। आहुक और अक्रूर दोनों ही जिसके स्वजन हों उसके लिये इससे बढ़कर दुःखी की बात और क्या

हो सकती है। ये दोनों जिसके सुहृद हों उसके लिये भी इससे बढ़कर दुःख और क्या हो सकता है। जैसे दो जुआरियों की एक ही माता एक की जीत चाहती है तो दूसरे की पराजय नहीं चाहती। उसी प्रकार मैं भी इन दोनों की हदों में से एक की विजय की कामना चाहता हूँ तो दूसरे की पराजय नहीं चाहता।

देवर्षे! ऐसी दशा में मैं दोनों पक्षों का हित चाहने के कारण दोनों ओर से कष्ट पाता हूँ। ऐसी स्थिति में मेरा तथा मेरे जाति भाइयों का जैसे हित संभव हो वह उपाय मुझे बताने की कृपा करें।"

देवर्षि नारद ने कहा-

आपदो विविधाः कृष्ण वाह्याश्चाम्यन्तराश्च ह।
प्रादुर्भवन्ति वार्ष्णेय स्वकृतजा यदि वान्यतः।[16]

"बृष्णिनंदन श्रीकृष्ण! आपत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं। एक बाह्य और दूसरी आभ्यन्तर। ये दोनों ही स्वकृत और परकृत दो प्रकार की होती हैं। जो आपत्तियाँ स्वतः अपने ही करतूतों से आती हैं वे स्वकृत हैं और जिन्हें लाने में दूसरे लोग निमित्त बनते हैं वे परकृत हैं। ये दोनों भी दो-दो प्रकार की होती हैं।

अक्रूर और आहुक से उत्पन्न हुई यह कष्टदायिनी आपत्ति जो आप को प्राप्त हुई है, आभ्यन्तर है और अपनी ही करतूतों से प्रकट हुई हैं। आपने जो नाम गिनाये हैं वे सभी आप के ही वंश के हैं। आपने स्वयं जिस ऐश्वर्य को प्राप्त किया है, उसे किसी प्रयोजनवश या स्वेच्छा से अथवा कटुवचन से डरकर दूसरे को दे दिया। इस समय उग्रसेन को दिया हुआ वह ऐश्वर्य दृढ़मूल हो चुका है। उनके साथ जाति के लोग भी सहायक हैं। अतः उगते हुए अन्न की भांति आप उस ऐश्वर्य को वापस नहीं ले सकते। इसी प्रकार अक्रूर उग्रसेन के अधिकार में गये राज्य को भी भाई-बन्धुओं में फूट पड़ने के कारण वापस नहीं ले सकते। बड़े प्रयत्न से दुष्कर कर्म करने पर वह वापस हो सकता है परन्तु इसमें धन का बहुत अपव्यय एवं असंख्य मनुष्यों का विनाश होगा। अतएव आप ऐसे कोमल अस्त्र से जो लोहे का बना हुआ न होने पर भी हृदय को छेद डालने में समर्थ है परिमार्जन एवं अनुमार्जन करके उन सबकी जीभ उखाड़ लें- उन्हें मूक बना दें (जिससे फिर कलह का आरम्भ न हो।)

तदनंतर भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- "मुने! बिना लोहे के बने हुए उस कोमल शस्त्र में कैसे जानूँ, जिसके द्वारा परिमार्जन और अनुमार्जन करके इन सबकी जिह्वा को उखाड़ लूँ।"

अनायसं मुने शस्त्रं मृदु विद्याभहं कथम्।
येनैषा मुहरे जिह्वां परिमृज्यानुभृष्य च।[17]

देवर्षि नारद ने कहा-

शक्त्यान्नदानं सततं तितिक्षार्जुवमार्दवम्।
यथार्हप्रतिपूजा च शस्त्रमेतदनायसनम्।[18]

श्रीकृष्ण! अपनी शक्ति के अनुसार सदा अन्नदान करना, सहनशीलता, सरलता, कोमलता तथा यथायोग्य पूजन (आदर-सत्कार) करना- यही बिना लोहे का बना हुआ शस्त्र है।

ज्ञातीनां वक्तुकामानां कटुकानि लघूनि च।
गिरा त्वं हृदयं वाचं शमयस्व मनांसि च।[19]

जब सजातीय बन्धु आपके प्रति कड़वी तथा ओछी बातें कहना चाहें, उस समय आप मधुर वचन बोलकर उनके हृदय, वाणी तथा मन को शान्त कर दें।

भेदाद् विनाशः संघानां संघमुख्योऽसि केशव।
यथा त्वां प्राप्य नोत्सीदेदयं संघस्तथा कुरु।[20]

केशव! आप इस यादव संघ के मुखिया हैं। यदि इसमें फूट हो गयी तो इस समूचे संघ का विनाश हो जाएगा, अतः आप ऐसा करें जिससे आपको पाकर इस संघ का, इस यादव गणतंत्र का राज्य का मूलोच्छेद न हो जाये।

नान्यत्र बुद्धिक्षान्तिभ्यां नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्।
नान्यत्र धनसंत्यागाद् गणः प्राज्ञेऽवतिष्ठते।[21]

बुद्धि, क्षमा और इन्द्रिय-निग्रह के बिना तथा धन वैभव का त्याग किये बिना कोई गण अथवा संघ किसी बुद्धिमान पुरुष की आज्ञा के अधीन नहीं रहता है।

आयत्यां च तदात्वे न च ते तेऽस्त्यविदितं प्रभो।
षाड्गुण्यस्य विधानने यात्रायानविधौ तथा।[22]

प्रभो! संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय- इन छहों गुणों के यथासमय प्रयोग से तथा शत्रु पर चढ़ाई करने के लिये यात्रा करने पर वर्तमान या भविष्य में क्या परिणाम निकलेगा? यह सब आपसे छिपा नहीं है।

अशोकं शोकनाशार्थं शास्त्रं शान्तिकरं शिवम्।
निशम्य लभते बुद्धिं तां लब्ध्वा सुखमेधते।[23]

नारद जी कहते हैं कि शुकदेव! शास्त्र शोक को दूर करने वाला, शान्तिकारक और कल्याणमय है। जो अपने शोक का नाश करने के लिए शास्त्र का श्रवण करता है, वह उत्तम बुद्धि पाकर सुखी हो जाता है।

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढ माविशन्ति न पण्डितम्।[24]

शोक के सहस्रों और भय के सैंकड़ों स्थान हें, जो प्रतिदिन मूढ़ पुरुषों पर ही अपना प्रभाव डालते हैं, विद्वान पर नहीं।

तस्मादनिष्टनाशार्थमितिहासं निबोध मे।
तिष्ठते चेद् वशे बुद्धिर्लभते शोकनाशनम्।[25]

इसलिये अपने अनिष्ट का नाश करने के लिए मेरा यह उपदेश सुनो- यदि बुद्धि अपने वश में रहे तो सदा के लिये शोक का नाश हो जाता है।

अनिष्टसम्प्रयोगाच्च विप्रयोगात् प्रियस्य च।
मनुष्या मानसैर्दुःखैर्युज्यन्ते स्वल्पबुद्धयः।[26]

मन्दबुद्धि मनुष्य ही अप्रिय वस्तु की प्राप्ति और प्रिय वस्तु का वियोग होने पर मन-ही-मन दुखी होते हैं।

द्रव्येषु समतीतेषु ये गुणास्तान् न चिन्तयेत्।
न तानाद्रियमाणस्य स्नेहबन्धः प्रमुच्यते।[27]

जो वस्तु भूतकाल के गर्भ में छिप गयी (नष्ट हो गयी), उसके गुणों का चिन्तन करता है, उसका उसके प्रति आसक्ति का बन्धन नहीं छूटता है।

दोषदर्शी भवेत् तत्र यत्र रागः प्रवर्तते।
अनिष्टवर्धितं पश्येत् तथा क्षिप्रं विरज्यते।[28]

जहाँ चित्त की आसक्ति बढ़ने लगे, वहीं दोष दृष्टि करनी चाहिये और उसे अनिष्ट को बढ़ाने वाला समझना चाहिये। ऐसा करने पर उससे शीघ्र

ही वैराग्य हो जाता है।

नार्थो न धर्मो न यशो योऽतीतमनुशोचति।
अप्यभावेन युज्येत तच्चास्य न निवर्तते।[29]

जो बीती बात के लिए शोक करता है, उसे न तो अर्थ की प्राप्ति होती है न धर्म की और न यश की ही प्राप्ति होती है। वह उसके अभाव का अनुभव करके केवल दुःख ही उठाता है। उससे अभाव दूर नहीं होता।

गुणैर्भूतानि युज्यन्ते वियुज्यन्ते तथैव च।
सर्वाणि नैतदेकस्य शोकस्थानं हि विद्यते।[30]

सभी प्राणियों को उत्तम पदार्थों से संयोग और वियोग प्राप्त होते रहते हैं। किसी एक पर ही यह शोक का अवसर आता हो, ऐसी बात नहीं है।

मूर्त वा यदि वा नष्टं योऽतीतमनुशोचति।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते।[31]

जो मनुष्य भूतकाल में मरे हुए किसी व्यक्ति के लिए अथवा नष्ट हुई किसी वस्तु के लिए निरन्तर शोक करता है, वह एक दुःख से दूसरे दुःख को प्राप्त होता है। इस प्रकार उसे दो अनर्थ भोगने पड़ते हैं।

नाश्रु कुर्वन्ति ये बुद्ध्या दृष्टवा लोकेषु संततिम्।
सम्यक् प्रपश्यतः सर्वे नाश्रुकर्मोपपद्यते।[32]

जो मनुष्य संसार में अपनी संतान की मृत्यु हुई देखकर भी अश्रुपात नहीं करते, वे ही धीर हैं। सभी वस्तुओं पर समीचीन भाव से दृष्टिपात या विचार करने पर किसी का भी आंसू बहाना युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता है।

दुःखोपघाते शारीरे मानसे चाप्युपस्थिते।
यस्मिन् न शक्यते कर्तुं यत्नस्तन्नानुचिन्तयेत्।[33]

यदि कोई शारीरिक या मानसिक दुःख उपस्थित हो जाय और उसे दूर करने के लिए कोई यत्न किया जा सके अथवा किया हुआ यत्न काम न दे सके तो उसके लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

दुःख दूर करने की सबसे अच्छी दवा यही है कि उसका बार-बार चिन्तन न किया जाये। चिन्तन करने से वह घटता नहीं, बल्कि बढ़ता ही जाता है।

इसलिये मानसिक दुःख को बुद्धि के द्वारा विचार से और शारीरिक कष्ट को औषध-सेवन द्वारा नष्ट करना चाहिये। शास्त्रज्ञान के प्रभाव से ही ऐसा होना सम्भव है। दुःख पड़ने पर बालकों की तरह रोना उचित नहीं है।

अनित्यं

रूप, यौवन, जीवन, धन संग्रह, आरोग्य तथा प्रियजनों का सहवास- ये सब अनित्य हैं। विद्वान् पुरुष को इनमें आसक्त नहीं होना चाहिए।

सारे देश पर आये हुये संकट के लिये किसी एक व्यक्ति को शोक करना उचित नहीं है। यदि उस संकट को टालने का कोई उपाय दिखलायी दे तो शोक छोड़कर उसे ही करना चाहिये।

इसमें संदेह नहीं कि जीवन में सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक होता है। किंतु सभी को मोहवश विषयों के प्रति अनुराग होता है और मृत्यु अप्रिय लगती है।

जो मनुष्य सुख और दुःख दोनों की ही चिन्ता छोड़ देता है, वह अक्षय ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। विद्वान पुरुष उसके लिए शोक नहीं करते।

धन खर्च करते समय बड़ा दुख होता है। उसकी रक्षा में भी सुख नहीं है और उसकी प्राप्ति भी बड़े कष्ट से होती है, अतः धन को प्रत्येक अवस्था में दुःखदायक समझकर उसके नष्ट होने पर चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

मनुष्य धन का संग्रह करते-करते पहले की अपेक्षा ऊँची धन-सम्पन्न स्थिति को प्राप्त होकर भी कभी तृप्त नहीं होते। वे और अधिक की आशा लिये हुए ही मन जाते हैं। किंतु विद्वान पुरुष सदा संतुष्ट रहते हैं। (वे धन की तृष्णा में नहीं पड़ते।)

संग्रह का अन्त है विनाश। ऊँचे चढ़ने का अन्त है नीचे गिरना। संयोग का अन्त है वियोग और जीवन का अन्त है मरण।

तृष्णा का कभी अन्त नहीं होता। संतोष ही परम सुख है, अतः पण्डितजन इस लोक में संतोष को ही उत्तम धन समझते हैं।

आयु निरन्तर बीती जा रही है। वह पल भर भी ठहरती नहीं है। जब अपना शरीर ही अनित्य है, तब इस संसार की किस वस्तु को नित्य समझा जाये।

जो मनुष्य सब प्राणियों के भीतर मन से परे परमात्मा की स्थिति जानकर उन्हीं का चिन्तन करते हैं, वे संसार-यात्रा समाप्त होने पर परम पद का साक्षात्कार करते हुए शोक के परे हो जाते हैं।

जैसे जंगल में नयी-नयी घास की खोज में विचरते हुए अतृप्त पशु को सहसा व्याघ्र आकर दबोच लेता है, उसी प्रकार भोगों की खोज में लगे हुए अतृप्त मनुष्य को मृत्यु उठा ले जाती है।

तथापि सबको दुःख से छूटने का उपाय अवश्य सोचना चाहिये। जो शोक छोड़कर साधन आरम्भ करता है और किसी व्यसन में आसक्त नहीं होता, वह निश्चय ही दुःखों से मुक्त हो जाता है।

धनी हो या निर्धन, सबको उपभोग काल में ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और उत्तम गन्ध आदि विषयों में किंचित सुख की प्राप्ति होती है, उपभोग के पश्चात नहीं।

प्राणियों के एक-दूसरे से संयोग होने के पहले कोई दुःख नहीं रहता। जब संयोग के बाद वियोग होता है तभी सबको दुःख हुआ करता है। अतः अपने स्वरूप में स्थित विवेकी पुरुष को किसी के वियोग में कभी भी शोक नहीं करना चाहिये।

मनुष्य को चाहिये कि वह धैर्य के द्वारा शिश्न और उदर की, नेत्र के द्वारा हाथ और पैर की, मन के द्वारा आँख और कान की तथा सद्विधा के द्वारा मन और वाणी की रक्षा करे।

प्रणयं

जो पूजनीय तथा अन्य मनुष्यों में आसक्ति को हटाकर विनीत भाव से विचरण करता है, वही सुखी और वही विद्वान है। जो अध्यात्म विद्या में अनुरक्त, कामनाशून्य तथा भोगासक्ति से दूर है, जो अकेला ही विचरण करता है, वह सुखी होता है।

दृष्टान्त- नारदमुनि का गालव को श्रेय का उपदेश देना

एक समय महर्षि गालव के आश्रम पर देवर्षि नारद पधारे। गालव मुनि ने महर्षि नारद से कहा- "मुने! शास्त्रों में बहुत से कर्तव्य कर्म बताये गये हैं, उनमें अमुक कर्म के इस प्रकार करने से ज्ञान मार्ग में प्रवृत्ति हो सकती है,

इसका विशेष रूप से हमें निश्चय नहीं हो पाता, अतः हमारे लिए जो कर्तव्य हो और जिसका निर्धारण हम न कर पाते हों उसे आज ही हमें बताने की कृपा करें। भगवान सभी आश्रमों वाले पृथक-पृथक आचार्य का दर्शन कराते हैं तथा 'यह श्रेष्ठ है', 'यह श्रेष्ठ है' ऐसा उपदेश देते हुए वे अपने-अपने सिद्धांतों की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं और अन्य मनुष्यों की बुद्धि में उसे बैठा देते हैं। यदि शास्त्र एक होता तो श्रेय प्राप्ति का उपाय भी एक ही होने के कारण स्पष्ट रूप से समझ में आ जाता। परन्तु बहुत से शास्त्रों ने नाना प्रकार से वर्णन करके श्रेय को गूढ़ बना दिया है। इसलिये मुझे श्रेय का रूप संशयुक्त प्रतीत होता। मुझे आप इस गूढ़ विषय पर मुझे उपदेश दें।

देवर्षि नारद ने कहा- "तात! आश्रम चार हैं, शास्त्रों में उनकी पृथक-पृथक व्यवस्था की गई है। उन आश्रमों के धर्म भी पृथक-पृथक हैं जो अच्छी प्रकार कल्याणकारी साधन होता है वह सर्वथा संशय रहित होता है। सुहृदों पर अनुग्रह करना, शत्रु भाव रखने वालों को दण्ड देना, धर्म, अर्थ और काम का संग्रह करना ये सब श्रेय हैं। पराक्रम से दूर रहना, पुण्य कर्म में लगे रहना तथा सदाचार का ठीक-ठीक पालन करना यह संशय रहित कल्याण का मार्ग है। सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति अच्छा बर्ताव करना, व्यवहार में सरल होना तथा झूठे वचन बोलना भी कल्याण का मार्ग है। सत्य बोलना, श्रेयस्कर तो है परन्तु सत्य को यथार्थ रूप से जानना कठिन है। देवर्षि नारद की दृष्टि में सत्य वही है जिसमें प्राणियों का हित हो। जिस कल्याण की इच्छा हो उसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन विषयों को अधिक सेवन नहीं करना चाहिए। दूसरे की निंदा करना तथा अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अपनी जो उत्कृष्टता है उसे गुणों द्वारा सिद्ध करना चाहिए। आत्मप्रशंसा नहीं करना चाहिए। जैसे फूलों की पवित्र एवं मनोरम सुगंध बिना कुछ बोले ही महक उठती है, निर्मल सूर्य अपनी प्रशंसा किये बिना ही सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है वह आत्म प्रशंसा नहीं करता। किंतु अपने यश से जगमगाता रहता है। विद्वान पुरुष गुफा में रहने पर भी प्रसिद्धि पा जाता है। लोग उसका सम्मान करते हैं। अन्त में महर्षि नारद ने मालव से कहा-

मार्दव सर्वभूतेषु व्यवहारेषु चार्जवम्।
वाक् चैव मधुरा प्रोक्ता श्रेय एतद संशयम्।[34]

अर्थात सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति कोमलता का बर्ताव करना, व्यवहार में सरल होना तथा मीठे वचन बोलना यह कल्याण का संदेह रहित मार्ग है।

दृष्टान्त- शुकदेव जी को नारद का कल्याणकारी उपदेश

एक बार शुकदेव जी के आश्रम में देवर्षि नारद पधारे। उनका यथोचित सत्कार करने के बाद शुकदेव जी ने कहा- "देवर्षि! इस लोक में जो परम कल्याण का साधन हो, उसी का मुझे उपदेश देने की कृपा करें।

'आस्मिलोके हितं यत्स्यात् त्येन मां योक्तुमर्हासि।' तब देवर्षि नारद ने शुकदेव जी से इस प्रकार कहा- वत्स इस संदर्भ में मैं तुम्हें भगवान सनत्कुमार द्वारा ऋषियों को दिये गये उपदेश की चर्चा कर रहा हूँ। इसे ध्यान देकर सुनो-

नास्तिविद्या समं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।
नास्ति राजसमं दुखं नास्ति त्यागसमं सुखम्।।[35]

अर्थात विद्या के समान कोई नेत्र नहीं है। सत्य के समान कोई तप नहीं है। राग के समान कोई दुःख नहीं है और त्याग के सदृश कोई सुख नहीं है।

निवृत्तिः कर्मणः पापात् सततं पुण्यशीलता।
सद्वृत्तिः सुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम्।

अर्थात पापकर्म से दूर रहना, सदा पुण्यकर्मों का अनुष्ठान करना, श्रेष्ठ पुरुषों के से बर्ताव और सदाचार का पालन करना यही कल्याण का साधन है।

सर्वोपायात् तु कामस्य क्रोधस्य च विलिग्रहः।
कार्यः श्रेयोऽर्थिनी तौ हि श्रेयोधातार्थमुद्यतौ।

अर्थात जिसे कल्याण प्राप्ति की इच्छा हो, उसे सभी उपायों से काम और क्रोध को दबाना चाहिये, क्योंकि ये दोनों दोष हैं।

आनृशंस परोधर्मः क्षमा च परमं बलम्।
आत्मज्ञानं परमज्ञानं न तस्याद् विद्यते परम्।।

अर्थात क्रूर स्वभाव का परित्याग सबसे बड़ा धर्म है। क्षमा सबसे बड़ा बल है। आत्मा का ज्ञान ही सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है और सत्य से बढ़कर तो कुछ है ही नहीं।

इन्द्रियौरिन्द्रियार्थान् यश्चरत्यात्मवशैरिह।
असज्जमानः शान्ताद्यत्मा निर्विकारः समाहितः।।
आत्मभूतैरतद्भूतः सह चैव विनैव च।
स विमुक्तः परम् श्रेयो नचिरेणाधितिष्ठति।।

अर्थात जो अपने वश में की हुई इन्द्रियों के द्वारा यहाँ अनासक्त भाव से विषयों का अनुभव करता है, जिसका चित्त शान्त, निर्विकार और एकाग्र है तथा जो आत्मस्वरूप प्रतीत होने वाले देह और इन्द्रियाँ हैं, उनके साथ रहकर भी उनसे तद्रूप न हो अलग सा ही रहता है, वह मुक्त है और उसे बहुत शीघ्र कल्याण की प्राप्ति होती है।

आदर्शनमूसंस्पशस्तथा सम्भाषणं सदा।
यस्य भूतैः सह गुने सश्रेयो विन्दतेपरम्।।

मुने जिसकी किसी प्राणी की ओर दृष्टि नहीं जाती, जो किसी का स्पर्श तथा किसी से बातचीत नहीं करता वह परमकल्याण को प्राप्त होता है।

न हिस्दात् सर्वभूतानि मैत्रायणगतश्चरेत्।
नेदं जन्मसमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित्।।

किसी भी प्राणी की हिंसा न करें। सबसे प्रति मित्रभाव रखते हुए विचरे तथा यह मनुष्य जन्म पाकर किसी के साथ वैर न करें।

आकिंचन्यं सुसन्तोषो निराशीस्त्वमचापलम्।
एतदाहुः परं श्रेय आत्मज्ञस्य जितात्मनः।।

(जो आत्मतत्व का ज्ञाता तथा मन को वश में रखने वाला है, उसके लिये यही परम कल्याण का साधन बताया गया है कि वह किसी वस्तु का संग्रह न करे, सन्तोष रखे तथा कामना और चंचलता को त्याग दे।)

संदर्भ

1. भाग 2, पृ. 723
2. वही
3. आदि पर्व, विदुरा गमन राज्यलम्भ पर्व, अध्याय 207, श्लोक 8
4. आदि पर्व, श्लोक 27
5. आदि पर्व, अर्जुन वनवास पर्व, अध्याय 211, श्लोक 29
6. वनपर्व, अध्याय 294, श्लोक संख्या 11-12
7. वही, श्लोक 22-23
8. महाभारत, उद्योग पर्व, अध्याय 102, श्लोक 1
9. महाभारत, उद्योग पर्व, अध्याय 103, श्लोक 19
10. द्रोण पर्व (अभिमन्युवध पर्व), अध्याय 54, श्लोक 50
11. वही, अध्याय 55, पृष्ठ 195
12. वही
13. वही, अध्याय 70, श्लोक 24-25
14. वही अध्याय 71, श्लोक 6
15. वही, श्लोक 8
16. शान्ति पर्व, अध्याय 81, श्लोक 13
17. वही, श्लोक संख्या 20
18. महाभारत, शांति पर्व, राजधर्मानुशासन पर्व, अध्याय 81, श्लोक संख्या 21
19. महाभारत, शान्ति पर्व, राजधर्मानुशासन पर्व, अध्याय 81, श्लोक संख्या 22
20. महाभारत, शान्ति पर्व, राजधर्मानुशासन पर्व, अध्याय 81, श्लोक संख्या 25
21. महाभारत, शान्ति पर्व, राजधर्मानुशासन पर्व, अध्याय 81, श्लोक संख्या 26
22. महाभारत, शान्ति पर्व, राजधर्मानुशासन पर्व, अध्याय 81, श्लोक संख्या 28
23. महाभारत, शान्ति पर्व, राजधर्मानुशासन पर्व, अध्याय 81, श्लोक संख्या 29
24. वही, 30
25. वही, 31
26. वही, 32
27. वही, 33
28. वही, 34
29. वही, 35

30. वही, 36
31. वही, 37
32. वही, 38
33. वही, 39
34. भाग 5, पृ. 899
35. भाग 5, पृ. 1045

अध्याय 14

परम्परागत संचार

परम्परागत संचार के माध्यम भी परम्परागत संचार के वाहक होते हैं। आधुनिक समय में भी इनका उपयोग हो रहा है। महाभारत में प्रचलित परम्परागत माध्यमों में नृत्य, वाद्य, मेला, मूर्ति, संगोष्ठी आदि हैं। ये सब किसी विशेष अवसर जैसे किसी का जन्म, त्यौहार, विशिष्ट कृत्य आदि। महाभारत में जो प्रमुख संचार के परम्परागत साधन थे उनका उल्लेख इस प्रकार है।

1. मेला एवं उत्सव-

महाभारत के आदि पर्वों में मेला का उल्लेख किया गया है। दुर्योधन के षड्यंत्रपूर्वक पाण्डवों को वारणावत भेजते समय महाराज धृतराष्ट्र ने पाण्डवों से कहा-

अधीतानि च शास्त्राणि युष्मभिरिह कृत्स्नशः।
अस्त्राणि च तथा द्रोणाद् गौतमाश्च विशेषतः।।
इदमेवंगते ताताश्चिन्तयामि समन्ततः।
रक्षणे व्यवहारे च राज्यस्य सततं हिते।।
ममैते पुरुषा नित्यं कथयन्ति पुनः पुनः।
रमणीयतमं लोके नगरं वाराणावतम्।।1।।

अर्थात बेटो! तुम लोगों ने सम्पूर्ण शास्त्र पढ़ लिये। आचार्य द्रोण और कृप से अस्त्र शस्त्रों की भी विशेष रूप से शिक्षा प्राप्त कर ली। प्रिय पाण्डवों! ऐसी दशा में मै। एक बात सोच रहा हूँ। सब ओर से राज्य की रक्षा, राजकीय व्यवहारों की रक्षा तथा राज्य के निरन्तर हित-साधन में लगे रहने वाले मेरे ये मंत्री लोग प्रतिदिन बारंबार कहते हैं कि वारणावत नगर संसार में सबसे अधिक सुन्दर है।

ते ताता यदि मन्यध्वमुत्सवं वारणावते।
सगणाः सान्वयाश्चैव विहरध्वं यथामराः।।2।।

पुत्रों! यदि तुम लोग वारणावत नगर में उत्सव देखने जाना चाहो तो

अपने कुटुम्बियों और सेवक वर्ग के साथ वहाँ जाकर देवताओं की भाँति विहार करो।

तत्पश्चात धर्मराज युधिष्ठिर ने शांतनु नंदन भीष्म, महात्मा विदुर, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा महारानी गान्धारी देवी से मिलकर आशीर्वाद प्राप्त करने का अनुग्रह करते हुए बोले-

रमणीये जनाकीर्णे नगरे वारणावते।

समणास्तत्र यास्यामो धृतराष्ट्रस्य शासनात्।

अर्थात हम महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से रमणीय वारणावत नगर में, जहाँ बड़ा भारी मेला लग रहा है, परिवार सहित जाने वाले हैं।

2. गीत संगीत एवं नृत्य

महाभारत में अनेक अवसरों पर गीत-संगीत एवं नृत्य का विवरण प्राप्त होता है। ये गीत, संगीत एवं नृत्य कुछ विशेष अवसरों पर होते थे। जैसे- विशिष्ट पुरुषों के जन्म के समय गीत, संगीत का उल्लेख।

महाभारत के प्रधान ऐतिहासिक व्यक्ति पांडवनन्दन अर्जुन के जन्मकाल महोत्सव में देवताओं, गंधर्वों, अप्सराओं के आगमन का नामोल्लेख सहित विस्तारपूर्वक विवरण महाभारत में प्राप्त है। इस शुभ अवसर में गंधर्वों के साथ 'तुम्बरु' के मधुर गान का उल्लेख किया गया है-

'गंधर्वैः सहितः श्रीमान् प्रागायत च तुम्बुरुः।।3।।

इसी प्रसंग में भीमसेन, उग्रसेन, ऊर्णायु, अनघ, गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, युगप, तृणप, कार्ष्णि, नन्दि, चित्ररथ, शालिशिरा, पर्जन्य, कलि, नारद, ऋत्वा, वृहत्वा, वृहक, कराल, ब्रह्मचारी, बहुगुणी सुवर्ण, विश्वावसु, भूमन्य, सुचन्द्र, शरु तथा गीतमाधुर्य से सम्पन्न सुविख्यात 'हाहा' और 'हूहू' नामक गंधर्वों का उल्लेख मिलता है। वे सभी वहाँ पधारे और आभूषणों से विभूषित बड़े-बड़े नेत्रों वाली अप्सरायें भी हर्षोल्लास में भरकर नृत्य करने लगीं।

तथैवाप्सरसो दृष्टाः सर्वालंकार भूषिताः।

ननृतुर्वै महाभागा जागुश्चायतवो चनाः।।4।।

इस विवेचन में उल्लेखनीय है इतने गंधर्वों के नाम तथा 'तुम्बरु'

'हाहा', 'हूहू' का मधुर गायक के रूप में वर्णन। इसी प्रसंग में अनूचाना, अनवद्या, गुणमुख्या, गुणावरा, अद्रिका, सोमा, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, मरीचिका, शुचिका, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अम्बिका, लक्षणा, क्षेमा, देवी, रम्भा, मनोरमा, असिता, सुबाहु, सुप्रिया बपु, पुण्डरीका, सुगन्धा, सुरक्षा, प्रमाथिनी, काम्बा, शारद्वती अप्सराओं के नाम मिलते हैं। इनमें ग्यारह अप्सराओं मेनका, सहजन्या, कर्णिका, पुंजिकस्थला, ऋतुस्थला, घृताची, विश्वची, पूर्वचित्ति, उम्लोचा, प्रम्लोचा और उर्वशी को अप्सराओं में प्रधान बताया है। ये प्रधान अप्सरायें गीत गा रही थीं और अन्य नृत्य कर रही थीं। इन सब गंधर्वों का एकत्रित होने का प्रधान कारण यह है कि अर्जुन को देवराज इंद्र के अंश से उत्पन्न माना गया है और गंधर्व एवं अप्सराएँ इंद्र की सभा की गायक-गायिकायें नर्तकियाँ हैं।

शुकदेव जी के जन्म के समय नृत्य

व्यासपुत्र महायोगी शुकदेव जी के जन्म समय में भी गंधर्वों "विश्वावसु तुम्बरु 'हाहा-हूहू' के द्वारा गान करने एवं अप्सराओं के द्वारा नृत्य करने का उल्लेख है।

परीक्षित के जन्म के समय नृत्य एवं गायन

राजा परीक्षित के जन्म के समय हस्तिनापुर के नागरिकों ने अपने-अपने घरों को सजाया। सभी राजमार्ग फूलों से सजाये गये थे। नर्तकों एवं गायकों के शब्दों से नगर बहुत शोभायमान हो रहा था। हस्तिनापुर में समुद्र की जलराशि की गर्जना के समान कोलाहल हो रहा था।

शुशुभे तत्पुरं चापि समुद्रौधनिभस्वनम्।
नर्तकैश्चापि नृत्यअिर्गायकानां च निःस्वनैक।।5।।

अर्जुन पुत्र अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित के जन्मकाल में भी नर्तकों के द्वारा नृत्य एवं गायकों के द्वारा गान करने का उल्लेख है।

उपर्युक्त प्रसंगों से यह ज्ञात होता है कि उस समय पुत्र जन्मोत्सव जैसे मंगलकार्यों में नृत्य-गान के आयोजन की परम्परा थी। उसी परम्परानुकुल भारतीय समाज में आज भी संगीतायोजन किये जाते हैं। सामान्य परिवारों में स्त्रियाँ सोहर बधाई आदि मंगल गान गाकर इस परम्परा का निर्वाह करती है।

आज भी भारत में विवाहोत्सव के समय महिला संगीत की परम्परा विद्यमापन है। ऐसे विशिष्ट समय में गाने जाने वाले गीतों में प्रसंगानुकूल विषयों पर आधारित गीत ही गाये जाते रहे होंगे। ऐसा अनुमान मध्यकालीन तुलसी, सूरादि अष्टछाप के कवियों के द्वारा रचित पुत्रजन्मोत्सवादि वर्णित गीतों के आधार पर अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता। क्योंकि महर्षि व्यास के शिष्य, जैमिनि रचित 'जैमिनीयाश्चमेध' में कुश लव के जन्म समय में मुनिपत्नियों के द्वारा-

'गायन्ति गीतं हर्षेण सीतेयं सुषुवे यमौ'

'सखीरी सीता ने इस काल।

जन्म दिये जुड़वें दो लाल'।।6।।

इस प्रकार मंगल गान गाने का उल्लेख है। 'सखीरी। सीता ने' यह बधाई गीत है जो अक्षरशः श्लोक के अनुवाद रूप है। निष्कर्ष यही है कि इस प्रकार के सोहर आदि मांगलिक गीतों की परम्परा महाभारतकाल, रामायणकाल व उससे भी आगे वैदिक संस्कारों के प्रारंभिक काल तक पहुँच जाती है। उपर्युक्त गंधर्वों व अप्सराओं के द्वारा गाये गीत को हम लोकगीत तो नहीं कह सकते परंतु उनकी प्रसंगानुकूलता से इनकार नहीं किया जा सकता।

गंधर्वों अप्सराओं की उत्पत्ति

महाभारत आदि पर्व में भीमसेन आदि गंधर्वो की उत्पत्ति महर्षि कश्यप की पत्नी 'मुनि' के गर्भ से बतलायी गयी है। सिद्ध, पूर्ण, बर्हि, पूर्णायु, ब्रह्मचारी, रतिगुण, सुपर्ण, विश्वासुर, भानु और सुचन्द्र इन दस 'देवगंधर्वों' की उत्पत्ति कश्यप की ही दूसरी पत्नी 'प्राधा' के गर्भ से बतायी गयी है। प्राधा के ही गर्भ से अलम्बुषा, मिश्रकेशी, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अरुणा, रक्षिता, रम्भा, मनोरमा, केशी, सुबाहु, सुरता, सुरजा, सुप्रिया इन शुमलक्षणा अप्सराओं एवं अतिबाहु, हाहा, हूहू तथा तुम्बरु ये प्रसिद्ध गंधर्वों की उत्पत्ति बताई गई है। देवगंधर्व एवं सामान्य गंधर्व ये दो भेद गंधर्वों के इस आधार पर बनते हैं।

शवयात्रा में वाद्यों का वादन

उस काल में प्रसिद्ध पुरुषों एवं राजपुरुषों की शवयात्रा में भी अनेक प्रकार के वाद्यों का वादन किया जाता था। महाराज पांडु की शव यात्रा में

विविध वाद्यों के वादन का उल्लेख मिलता है।

'सर्ववादित्र' नादैश्च समलंचंक्रिरे ततः।' ।7।।

महात्मा भीष्म के महाप्रयाण के समय देवताओं के द्वारा दुंदुभियों का वादन एवं पुष्पवर्षा करने का उल्लेख प्राप्त होता है। चिता में आग लगाते समय सामगायकों के द्वारा सामगान करने का भी उल्लेख है।

''यजनं बहुशश्चाग्नौ जगुः सामानि सामगाः।।8।।''

प्रातः काल जागने के लिये गान व वादन-

द्वारिकापुरी में निवास करते समय अर्जुन को प्रातः काल मधुरगीत, वीणा की मधुरध्वनि, स्तुति और मंगल पाठ के द्वारा जगाये जाने का उल्लेख है।

प्रातःकाल श्रीकृष्ण व युधिष्ठिर के भवन में स्तुति एवं पुराणों के ज्ञाता मधुरकंठ वाले सुशिक्षित सूत, मागध वंदीजन गान के साथ वीणा शंख, मृदंग, पणव, वेणु आदि वाद्यों का वादन कर रहे थे, मानो उस महल का अट्टहास सब ओर फैल रहा हो। पांडवों की माता कुंती श्रीकृष्ण से विविध वाद्यों के मधुर वादन से पांडवों को जगाये जाने का उल्लेख करती है। इसी संदर्भ में वन्दी, मागध, सूत एवं स्त्रियों के द्वारा मधुर गीत गाये जाने का उल्लेख किया गया है। महात्मा विदुर के निवास स्थान में श्रीकृष्ण को प्रातः काल जागने के लिए सूत, मागधों के द्वारा गायन वादन किये जाने का उल्लेख है।

अन्यत्र भी इसी प्रकार के उल्लेख हैं, जिसकी उपयोगिता राजपुरुषों की दिनचर्या, सांगीतिक प्रफुल्लता से प्रारंभ किये जाने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इससे राजकार्य को सोत्साह सम्पन्न करने की प्रेरणा मिलती है।

राजसभा का सांगीतिक वातावरण

तत्कालीन राजसभाओं में गायकों, वादकों आदि को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था जिससे उनके द्वारा समय-समय पर गीत, वाद्य, नृत्य के कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते थे।

महाराज युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के अवसर पर वादकों के द्वारा वादन किये जाने का उल्लेख मिलता है। राजा के निवास स्थान नगर एवं दुर्ग में

सांगीतिक ध्वनि का गूँजते रहना शुभ माना गया है।

'सुप्रभं सानुनादं च सुप्रशस्त निवेशनम्।।9।।

राजा के पुरोहित के लिए यह आवश्यक माना गया है कि राजा को प्रिय लगने वाले कार्यों का यथोचित उपदेश दें। इस कार्य में गीत और वाद्य के यथोचित उपयोग का भी निर्देश है।

युधिष्ठिर की सभा में धनंजय सखा तुम्बरु गंधर्व नित्य विराजमान रहते थे। चित्र-सेन आदि सत्ताइस गंधर्व अपने आमात्य सहित एवं अप्सरायें, महात्मा युधिष्ठिर की उपासना करती थीं। गीत और वाद्यवादन में कुशल साम्य ताल विशारद तथा प्रमाण, लय और स्थान के लिये विशेष परिश्रम किये हुए मनस्वी किन्नर तुम्बरु की आज्ञा से वहाँ उपस्थित रहकर गंधर्वों के साथ दिव्यतान का गान करते हुए पांडवों तथा महर्षियों का मनोरंजन करते थे।

चित्रसेनः महामात्योगन्धर्वाप्सरस्तथा।।
गीतवादित्रकुशलाः साम्यताल विशारदाः
प्रमाणेऽथ लये स्थाने किन्नराः कृतनिश्रमाः।।
संचोदितास्तुम्बुरुणा गंधर्व सहितास्तदा।
गायन्ति दिव्यतानैस्ते यथान्यायं मनस्विनः।
पाण्डुपुत्रनृषींश्चैव रमयन्त उपासते।।10।।

उपर्युक्त पंक्तियों में साम्यताल, प्रमाण लय, स्थान, दिव्यतान, पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख है। इनका रामायण के प्रसंग में व अन्यत्र निबंधों में स्पष्टीकरण उपलब्ध है। इन शब्दों का सम्बन्ध 'गांधर्व' से है। अतः यह निर्विवाद प्रमाणित है कि महाभारत काल में गंधर्व का उपयोग मनोरंजन के लिये भी किया जाता रहा है।

महाराज युधिष्ठिर के पूछने पर देवर्षि नारद यम, कुबेर, इन्द्र, वरुण तथा पितामह ब्रह्माजी की सभाओं का वर्णन करते हैं। इन सभाओं में गंधर्वों और अप्सराओं के द्वारा स्तुति, मंगलगान, पराक्रम सूचक कर्मों का गान तथा नृत्य प्रस्तुत किये जाने का उल्लेख है। साम, स्तुति, गीत, विविध गाथायें तथा तर्कयुक्त भाष्य, नाटक के अनेक प्रकार, काव्य, कथा, आख्यायिका तथा कारिका ब्रह्माजी की सभा में मूर्तिमान होकर उपस्थित रहते थे। यह पितामह

की सभा की ही विशेषता थी। इनके अतिरिक्त चारों वेद, उपवेद, नक्षत्र, साममंत्र रथन्तरादि, आदित्य, वसु, पितृ, वेदांग, देवियाँ व प्रणव के सात प्रकार ये सभी मूर्तिमान होकर लोक पितामह की उपासना करते थे।

इन्द्र की सभा का वर्णन करते हुए देवर्षि नारद ने कहा-

तथैवाप्सरसो राजन! गन्धर्वाश्च मनोरमाः।
नृत्यवादित्रगीतैश्च हास्यैश्य विविधरैपि।
रमयन्ति स्म नृपते देवराजां शतक्रतुम।।11।।

(अर्थात राजन् इसी प्रकार मनोहर अप्सरायें तथा सुन्दर गंधर्व, नृत्य, वाद्य, गीत एवं नाना प्रकार के हास्यों द्वारा देवराज इन्द्र का मनोरंजन करते हैं।

मृत्युलोक के समान देवताओं की सभा में भी विशिष्ट व्यक्तियों के आगमन पर उनकी सम्मति से सम्मानार्थ गंधर्वों, अप्सराओं के द्वारा गान, वादन और नृत्य प्रस्तुत किया जाता था। महर्षि अष्टावक्र का धनपति कुबेर के गृह में इसी प्रकार के आतिथ्य का वर्णन है।

पांडवनंदन अर्जुन का इन्द्र लोक गमन के अवसर पर उनके सत्कार में गंधर्वों ने गाथागान तथा अप्सराओं ने नृत्य प्रस्तुत किया था, जिस नित्य में कटाक्ष, हावभाव एवं माधुर्य का मनोहारी समावेश था।

ऋषियों के आश्रम में संगीत- राजाओं की सभा में संगीत का प्रयोग तो सामान्य बात है, परन्तु महाभारत में ऐसे अनेक ऋषि आश्रमों का वर्णन मिलता है जिनमें संगीत की किसी न किसी विधा का प्रयोग अवश्य किया जाता रहा।

दानवों के गुरु शुक्राचार्य का आश्रम सांगीतिक वातावरण युक्त था। देवगुरु वृहस्पति के पुत्र कच शुक्राचार्य के आश्रम में अध्ययन काल में रहते हुए शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी को संतुष्ट रखने के लिए गायन, वादन और नर्तन किया करते थे। इस प्रकार वे देवयानी को सन्तुष्ट रखते थे। देवयानी भी नियमपूर्वक, व्रतधारण करने वाले कच के समीप रहकर गाती और स्नेहपूर्वक उनकी परिचर्या करती थी।

'गायन् नृत्यन् वादयंश्च देवयानीमतोषयत् ।।
देवयान्यपि तं विप्रं नियमव्रत धारणम् ।

गायन्ति च ललन्ती च रहः पर्यचरत तथा ।।12।।

आदिपर्व, पृ. 76

महर्षि कण्व के आश्रम में सामगान की मधुरध्वनि गूँजती रहती थी। राजा दुष्यंत जब कण्व के आश्रम मे प्रवेश करते हैं तब ऋग्वेदी ब्राह्मणों के द्वारा क्रमपूर्वक ऋचाओं का पाठ व सामवेदी महर्षियों के द्वारा 'भारुण्ड संज्ञक' का गान करने एवं अथर्ववेद की ध्वनि उन्हें सुनाई पड़ी। इस सन्दर्भ में 'पूगयज्ञिय' साम का गान का भी उल्लेख है। इससे यह पता चलता है कि उस काल तक सामगान की अनेक शाखायें विद्यमान थीं। कुछ लोकरंजन करने वाले लोगों की बातें भी महर्षि कण्व के आश्रम में सुनाई पड़ती थी।

कदलीवन में श्री हनुमान को आनंदित करने के लिए गंधर्वों, अप्सराओं के द्वारा श्री रामचरित गान करने का उल्लेख स्वयं श्रीहनुमान पांडुपुत्र भीमसेन से वार्तालाप में कहते हैं-

निष्पाप भीम! इस स्थान पर गन्धर्व और अप्सरायें वीरवर रघुनाथ जी के चरित्रों को गाकर मुझे आनन्दित करते रहते हैं।

तदिहाप्सरसस्तात् गन्धर्वाश्च सदानध।
तस्यवीरस्यचरितम् गायन्तो रमयन्तिमाम ।।13।।

वनपर्व अ 148/20

महर्षि उपमन्यु के आश्रम के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण महात्मा भीष्म से कहते हैं- नाना प्रकार के पुष्पों के परागपुंज से अनुरंजित तथा हाथियों के मदगंध के सुगन्ध से सुवासित मंद-मंद वायु के साथ दिव्यरमणियों के मधुर गीतों व किन्नरों के उदार गीतों तथा सामवेदियों के मंगलमय सामगान से उस वन प्रान्त का वातावरण संगीतमय हो गया था।

'दिव्यैस्त्रीगीत बहुलो मारुतोऽभिमुखो ववौ।।
गीतैस्तथा किन्नराणामुदारैः शुभैः स्वनैः सामगानां वीर।।14।।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि ऋषियों के आश्रम में संगीत के विविध रूपों की चर्चा व उपासना चलती रहती थी। दानवों के गुरु शुक्राचार्य के आश्रम में मनोरंजन के रूप में संगीत का उपयोग होता था। क्योंकि वृहस्पति पुत्र 'कच' और शुक्राचार्य पुत्री 'देवयानी' दोनों युवावस्था को

प्राप्त कर चुके थे। अतः उनका संगीत के द्वारा मनोरंजन करना अवस्थानुकूल तथा कलात्मक सुरुचि का परिचायक है। महर्षि कण्व के आश्रम में विभिन्न विद्याओं और वेदों के जानने वाले महर्षि निवास करते थे। अतः वहाँ वेदांग शिक्षा एवं सामगान के रूप में संगीत की आराधना चलती थी।

यज्ञों में प्रयुक्त संगीत के विविध रूप

तत्कालीन राजाओं के शौर्य प्रदर्शन एवं धर्म सम्पादन के लिए आयोजित अश्वमेघ राजसूय यज्ञों में संगीत के विभिन्न रूपों का प्रयोग आवश्यकतानुकूल किया जाता था। धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सामगान के लिए धनंजयगोत्रीय ब्राह्मणों में श्रेष्ठ 'सुसामा' को नियुक्त किया गया था। यज्ञ कार्य के बीच अवकाश-काल में लोगों के मनोरंजन के लिए नारद, तुम्बरु, विश्वावसु, चित्रसेनादि गीतकुशल गंधर्व गान करते हुए लोगों को मनोरंजन करते थे। वहाँ सहश्रोंभेरी, मृदंग मड्डुक, गोमुख, शृंग, वंशी एवं शंखों की ध्वनि सुनाई पड़ते थे।

नारदश्च जगौ तत्र तुम्बरुश्च महायुतिः।
विश्वावसुश्चित्रसेनस्तथान्ये गीतकोविदाः।
रमयन्ति स्म तान् सर्वान! यज्ञकर्मान्तरेष्वथ।।15।।

युधिष्ठिर के अश्वमेघयज्ञ में भी गंधर्वों, किन्नरों, अप्सराओं द्वारा प्रस्तुत गीत, नृत्य, वाद्य को 'संगीत' नाम से अभिहित किया गया है।

'गंधर्वगण संगीत : प्रनृत्तोऽप्सरसां गणैः।।16।।'

इस संदर्भ में गंधर्वों को गीतकोविद, गान निपुण, नृत्य विशारद जैसे महत्वपूर्ण शब्दों के द्वारा विभूषित किया गया है।

महाभारतकालीन शिक्षा में संगीत विषय का महत्व

महाभारत काल में शिक्षा के अंतर्गत संगीत के महत्व को प्रमाणित करने के लिए इतना ही पर्याप्त है कि उस काल के दो प्रधान महापुरुष श्रीकृष्ण और अर्जुन संगीत कला में पारंगत थे। राजपुरुषों, सामान्यजनों एवं ऋषियों तक संगीत ज्ञान से पूर्ण परिचित थे।

गीत, वाद्य, नृत्यादि विषयों को 'शिल्प' के अंतर्गत रखा जाता था तथा उसके द्वारा जीवकोपार्जन को शूद्र कर्म बताया गया है क्योंकि सेवाकार्य

शूद्रों का कर्म माना जाता रहा। परन्तु राजाओं के लिए कलाओं का ज्ञान आवश्यक भी कहा गया है।

वार्ता च कारुकर्माणि शिल्प नाट्यं तथैव च।
अहिंसकः शुभाचारो दैवतद्विजवन्दकः।।17।।

वार्ता (वाणिज्य), कारीगरी, शिल्प तथा नाट्य भी शूद्र का धर्म है। उसे अहिंसक, सदाचारी तथा ब्राह्मणभक्त होना चाहिए।

उस समय प्रत्येक वर्ण के लिए जीवकोपार्जन के कर्म निर्धारित थे। अतः दूसरे वर्ण के लिए निर्धारित कर्म को अपनाने का तात्पर्य होता था दूसरे के जीवकोपार्जन का अपहरण करना। इसीलिए कुलटा स्त्री से सम्बन्ध रखने वाला, चुगलखोर, नाचने वाला, राजसेवक तथा दूसरे विपरीतकर्मी ब्राह्मण 'शूद्रत्व' को प्राप्त कर लेता था। चिकित्सक, देवालय के पुजारी (वेतनभोगी पुजारी), पाखन्डी, सोमरस विक्रेता, गाने-बजाने, नाचने वाला व्यर्थ की बातें करने वाला पहलवानी करने वाला ब्राह्मण श्राद्ध में निमंत्रण पाने का अधिकारी नहीं माना जाता था। इतना होते हुए भी राजा के लिए गांधर्वशास्त्र तथा कलाओं का ज्ञान आवश्यक माना गया है।

परन्तु देवाराधना के लिए संगीत देवताओं की संतुष्टि का परम साधन है। जीवकोपार्जन के लिए संगीत का उपयोग त्रिवर्णों के लिये निंदित कार्य था परंतु गृहस्थाश्रम में फूलों की माला, नाना प्रकार के आभूषण, वस्त्र अंगारागादि, नृत्य-गीत-वाद्य की प्राप्ति को आश्रमधर्म बताया गया है अतः कलाओं का ज्ञान प्राप्त करना तथा उससे मनोरंजन गृहस्थाश्रम में उचित माना जाता है।

गाण्डीवधारी अर्जुन स्वर्गगमन के अवसर पर विभिन्न शस्त्रों के संचालन के साथ देवराज इद्र की आज्ञा से चित्रसेन गंधर्व से गंधर्वशास्त्र का भी ज्ञान प्राप्त करते थे। मनुष्य लोक में उस समय तक जो नही है, देवताओं की उस वाद्यकला का ज्ञान प्राप्त करने से तुम्हारा भला होगा, इस प्रकार देवराज की अर्जुन के लिए आज्ञा थी।

नृत्यंगीतं च कौन्तेय चित्रसेनादवाप्नुहि।।
वादित्रं देव विदितं नृलोके यन्नविद्यते।

तदर्जयस्व कौंतेय श्रेयो वै ते भविष्यति।
गीत वादित्र नृत्यानि भूय एवादिदेश ह ।।
सशिक्षितो नृत्यगुणाननेकान् वादित्रगीतार्थगुणांश्च सर्वान्।।18।।

यही नृत्यगीत की शिक्षा पांडवों के अज्ञातवास के समय अर्जुन के काम आयी। उस समय राजाओं के अन्तःपुर में राजकन्याओं व उनकी सखियों-दासियों को संगीत शिक्षा देने के लिए नृत्यशाला हुआ करती थी। उसी नृत्यशाला में वृहन्नला के रूप में गाण्डीवधारी अर्जुन ने उत्तरा को नृत्य-संगीत की शिक्षा दी थी। दिन में नृत्य-संगीत की शिक्षा की व्यवस्था होती थी और रात्रि में नृत्यशाला खाली रहती थी। भीमसने ने उसी नृत्यशाला में कीचक का वध किया था। इसका उल्लेख भीमसेन के द्वारा व द्रौपदी के द्वारा किया गया है।

'यैषानर्तनशालेह मत्स्यराजेन कारिता'।
'यदेतन्नर्तनागारं मत्स्यराजेन कारितम्'।।19।।

वृहन्नला के रूप में अर्जुन के द्वारा संगीत शिक्षा देने का उल्लेख भी मिलता है।

'स शिक्षयामास च गीतवादितं सुतां विराटस्य धनंजयः प्रभुः
सखीश्चतस्याः परिचारिकास्तथा प्रियश्च तासां सबभूव पाण्डवः।।20।।

स्वयं द्रौपदी युधिष्ठिर के दासियों के नृत्य गीत विशारद होने का उल्लेख श्रीकृष्ण पत्नी सत्यभामा से करती है। मालाओं व आभूषणों से विभूषित, सुंदर अंग कान्ति वाली वे दासियाँ चंदन मिश्रित जल से स्नान करती तथा चंदन का ही अंगराग लगतीं! मणि तथा कंचन के आभूषण धारण करतीं तथा नृत्य गीत में परम प्रवीण हैं।

'महार्हमाल्याभरणाः सुवर्णाश्चन्दनोक्षिताः।
मणीनूहेम च विभ्रत्यो नृत्यगीत विशारदाः।।21।।

हरिवंशपुराण, जिसे महाभारत का 'खिलभाग' (संग्रह भाग) कहा जाता है, में श्रीकृष्ण की पत्नियों, पुत्रों एवं अन्य यादववंशी पुरुषों, स्त्रियों को गीत, वाद्य, नृत्य, अभिनयादि कलाओं में निपुण बताया गया है।

सामान्य गोपों व गोपस्त्रियों की नृत्य वादन कुशलता का उल्लेख भी

महाभारत में मिलता है। दुर्योधन की घोषयात्रा के समय ये गोप गोपस्त्रियाँ उनके समक्ष नृत्य-गीत-वादन प्रस्तुत कर पुरस्कृत हुई थीं। स्त्रियों की संगीत निपुणता महाभारत एवं रामायण काल की विशिष्टता रही। यह विशेषता भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

संगीत

गांधर्वशास्त्र वेदांग 'शिक्षा' के अंतर्गत होने के कारण तत्कालीन शिक्षा का अनिवार्य अंग था इसलिये उस काल की स्त्रियाँ व पुरुष इस कला का ज्ञान रखते थे। यद्यपि यह जीवकोपार्जन का साधन सबके लिए नहीं था। सूत, मागध, बंदी, गायक, वादक, नर्तक ये संगीतजीवियों की अलग जाति व वर्ग थे। देवलोक में यह कार्य गंधर्व-अप्सरा-किन्नर-जाति के लोग करते थे।

भगवान शंकर का गांर्धव से विशेष सम्बन्ध

अन्यत्र दुर्लभ उल्लेखानुसार भगवान शंकर का सम्बन्ध महाभारत के अनुसार 'गांधर्वशास्त्र' से घनिष्ठ रूप से है।

शांतिपर्व के अनुसार महादेव के 1008 नामों में अनेक नाम गीत वाद्य तथा विभिन्न कलाओं से सम्बन्धित हैं। 'शिल्पिकः शिल्पिनां श्रेष्ठः सर्वशिल्प प्रवर्तकः' अर्थात् शिव सर्वश्रेष्ठ शिल्पी होने के साथ-साथ सम्पूर्ण शिल्पों (कलाओं) के प्रवर्तक भी हैं। वे गीत वाद्यतत्वज्ञ तथा गीतवाद्यप्रिय भी हैं। शिव की महिमा का ही गान सामगान करने वाले 'हायिहायिहुवाहायि' इन स्तोमाक्षरों के द्वारा करते हैं। शिव नर्तनशील व श्रृंगनामक मुखवाद्य के वादक हैं।

अनुशासन पर्व के अनुसार शिव सहस्रनाम में शिव नृत्यप्रिय, नित्यनर्तनशील, नर्तक व वेणुवादक, पणववादक, ताल देने वाले, सर्वतूर्यनिनादी (सभी वाद्यों के वादक), सभी वाद्यों के संग्राहक, तुम्बवीणा वादक, वंशीवाद्य रूप (शास्त्रों के अनुसार श्रीकृष्ण की वंशी शिव ही है), गान्धार स्वर रूप महागीतरूप, ताण्डवनृत्यकर्ता, कला-काष्ठा-लव-मात्रा मुहूर्त-क्षण (काल के विविध अंग रूप, जिनका ताल में प्रयोग है) रूप है। इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है कि इस सहस्रनाम के गायक स्वयं पितामह ब्रह्मा हैं। संगीतशास्त्रों में उल्लिखित शंकर स्तुति रूप गीतों के कर्ता भी ब्रह्मा

ही हैं। सप्तगीत 'कपालगीत व मरागों में गाये जाने वाले अनेक गीत शंकर स्तुति रूप ही हैं।

देवर्षि नारद व महर्षि गर्ग को गीत वाद्य नृत्यकला एवं 64 कलाओं का ज्ञान भगवान शंकर के वरदान से ही प्राप्त हुआ है।

नारद देवर्षि एवं गंधर्व रूप में

'नारद के सम्बन्ध में प्रायः यह भ्रम होता है कि वे देवर्षि नारद हैं या शास्त्रकार या गंधर्व। महाभारत में इस भ्रम का निराकरण उपलब्ध है। जिसके अनुसार गंधर्व नारद विशेष गायक आचार्य रहे हैं जिनका स्थान तुम्बरु, हाहा, हूहू जैसे प्रसिद्ध गायक गंधर्वों के समान है। देवर्षि नारद भगवान के परम भक्त त्रिकालदर्शी अनेक शास्त्रों के ज्ञाता एवं गांधर्व शास्त्र के भी ज्ञाता, वीणावादक एवं गायक रहे हैं। देवर्षि नारद ने भक्तिभाव से भगवान शंकर की आराधना की थी। इससे संतुष्ट होकर देवगुरु महादेवजी ने उन्हें यह वरदान दिया-

तेजसा तपसा कीर्त्या त्वत्समो न भविष्यति।
भीतेन वादितव्येन नित्यं मामनुयास्यसि।।22।।

(अर्थात देवर्षि तेज, तप तथा कीर्ति में कोई तुम्हारी समता करने वाला नहीं होगा। तुम गीत और वीणा वादन के द्वारा मेरा अनुसरण करोगे।)

इनकी गति अबाध है। ये सर्वत्र आ जा सकते हैं और एक स्थान पर अधिक समय तक नहीं रुकते।

महाभारत के अनुसार- कल्प के अंत में लुप्त हुए वेदों-इतिहासों को कल्पारम्भ में स्वयंभू ब्रह्मा के आदेश से तपस्या के द्वारा महर्षियों ने प्राप्त किया। वेदांगों का ज्ञान वृहस्पति को, नीतिशास्त्र का ज्ञान शुक्राचार्य को, नारद को गांधर्व वेद, भारद्वाज को धनुर्वेद, गार्ग्य को देवर्षिचरित्र तथा कृष्णात्रेय को चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान हुआ। नारद अनेक विद्याओं के साथ 'युद्ध गांधर्व सेवी' युद्ध विद्या और गांर्धवशास्त्र में निपुण कहे गये हैं।

महाभारत युद्ध के प्रथम दिन दोनों पक्षों के द्वारा क्रकच, नरसिंहे (गोविषाणिका) भेरी, मृदंग, मुरज, शंखादि वाद्यों के वादन से आकाश गूँजने लगा। सैनिकों में उत्साहवर्द्धन किये जाने वाले वाद्यों के वादकों की अलग

श्रेणी रहती होगी, जिनकी शिक्षा वर्तमान के सैनिक वादकों के समान पृथक रूप से दी जाती होगी।

आचार्य द्रोण का सेनापति के पद पर अभिषेक किये जाने के समय वाद्यों के घोष तथा शंखों की गम्भीर ध्वनि हुई। सूत, मागध, बंदीजनों के द्वारा स्तुतिगान एवं नर्तकियों के द्वारा नृत्य करने तथा ब्राह्मणों के द्वारा स्वस्तिवाचन एवं पुण्याहवाचन किया जाना वर्णित है।

किसी महानयोद्धा की मृत्यु हो जाने से मंगलवाद्यों शंख, भेरी, दुंदुभी, आडम्बर (तुरही) आदि का वादन तथा स्तुतिगान, मंगलगान के साथ ताल देते हुए वीणावादन बंद कर दिया जाता था। इस प्रकार का सन्नाटा अशुभ सूचक था। अर्जुन जब संसप्तकों से युद्ध करके अपने शिविर की ओर लौटे तब उन्हें अपने पक्ष की सन्नाटा अशुभ सूचक लगी।

युद्धारंभ से पूर्व दोनों पक्षों के पालनार्थ जो नियम निर्धारित किये गयें उनमें एक नियम यह भी था कि युद्ध में शंख, भेरी, मृदंगादि वाद्यों के बजाने वालों के ऊपर प्रहार न किया जाये।

उपर्युक्त विवेचित महाभारत के प्रसंगों के अध्ययन से यह विदित होता है कि युद्ध के अवसर पर सैनिकों में उत्साहवर्द्धन एवं वीरता की जागृति के लिए भयंकर नाद वाले भेरी, दुंदुभि, पणव, गोमुख, मृदंगादि वाद्यों का वादन किया जाता रहा। युद्ध का आवश्यक अंग होने के कारण युद्धानुकूल वादन की विशेष शिक्षा भी दी जाती रही। वेणु एवं वीणा जैसे मधुर कोमल ध्वनि वाले वाद्यों के वादन का प्रायः युद्धावसर में उल्लेख नहीं है। इसीलिए यह तर्क संगत है कि घोड़े हाथियों के भयंकर चिंघ्घाड एवं वीरों के भयंकर- नाद के डरावने अवसर पर कोमल प्रकृति के वाद्यों के वादन का कोई औचित्य नहीं है।

महाभारत में वाद्य

महाभारत में तत्, अवनद्ध, सुषिर, दुन्दुभि, भेरी, शंख और घन इन सभी प्रकार के वाद्यों के नाम प्राप्त होते हैं। तत वाद्यों में वीणा उस काल का प्रमुख वाद्य रही। मनु जी के अनुसार देवता, ब्राह्मण तथा अतिथियों की पूजा के लिए राजाओं के घर जिन-जिन वस्तुओं का होना अत्यन्त आवश्यक है, उनमें वीणा भी है। बकरी, बैल, चंदन, वीणा, दर्पण, मधु, घी, जल, तांबे के

पात्र, शंख, शालग्राम और गोरोचन ये सब वस्तुयें घर पर रखनी चाहिये। इस प्रकार वीणा एवं शंख वाद्य के रूप में प्रायः लोग अपने घरों में रखते थे।

तत्कालीन वीणा में सात तार रहने का उल्लेख महाभारत में है। 'सप्ततंत्री प्रथिता चैव वीणा' पक्षान्त में व्रत के पश्चात भोजन करने वाले अनशनधारी व्रती, साठ हजार वर्षों तक स्वर्ग में निवास करते हुए वीणा, वल्लकी एवं वेणु आदि वाद्यों के द्वारा जगाये जाते हैं। यह महर्षि अंगीरा का कथन है। अंगीरा के साथ वल्लकी नाम वीणा का ही एक प्रकार है। महाभारत में वल्लकी का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है। परन्तु उसके रूप का वर्णन कहीं नहीं मिलता।

पांचाल राजकुमारी द्रोपदी की मधुर वाणी युक्त संभाषण की तुलना गांधार स्वर से की गई मूर्च्छना युक्त आलाप से की गई है। कीचक से अपमानित होकर द्रोपदी द्वारा भीमसेन से बदला लेने की प्रार्थना करने के संदर्भ में 'गांधार युक्त मूर्च्छनालाप' का उल्लेख करुणा भाव का बोधक है। नाट्यशास्त्रानुसार गांधार स्वर का विनियोग करुणा रस में करने का विधान है।

सुषिर वाद्यों में 'शंख' एवं 'वेणु' का उल्लेख अनेक स्थानों में मिलता है। भगवान कृष्ण के पांचजन्य शंख से उद्भूत घोर नाद की तुलना रौद्र रस में प्रयुक्त ऋषभ स्वर से की गई है। श्रीकृष्ण अपने सारथी दारूख से कहते हैं- पांचजन्य शंख के ऋषभस्वरीय भयानक नाद को सुनते ही तुम मेरे पास पहुंच जाना। वेणु और वीणा के सम्मिलित वादन का उल्लेख मगध सूतादि के द्वारा गाये गये प्रातःकालीन गीतों के संदर्भ में मिलता है। युद्ध के अवसर पर बजाये जाने वाले भेरी, मृदंग, पणव, दर्दुर, क्रकच, दुंदुभि, गोमुखादि वाद्यों में भेरी, मृदंग पणव, दुर्दर व दुंदुभी, अवनद्धवाद्य एवं क्रकच (नरसिंहा), गोमुख, सुषिर वाद्य हैं।

रामायण के समान मृदंग और मुरज का एक ही स्थान में उल्लेख महाभारत में भी मिलता है जिससे इन दोनों की आकृति विभिन्नता परिलक्षित होती है। 'गोविषाणिका' गौ के श्रृंग की आकृति का यह कोई फूंक (सुषिर) वाद्य है। विषाण का अर्थ श्रृंग है। गोमुख भी सुषिर वाद्य है। संभवतः उसकी

आकृति गोमुख के समान रही होगी। भेरी भी अवनद्धवाद है। इसे नगारा या डंका कहते हैं। यह घड़े के समान वृहदाकार का चौड़े मुंह वाला चर्माच्छादित वाद्य है। मंदिरों में आरती के समय इसका वादन आज भी प्रचलित है। भेरी व दुंदुभी का अलग-अलग उल्लेख होने से दोनों पृथक वाद्य प्रतीत होते हैं। बड़ा नगाड़ा के आकार का एक चर्मवाद्य जिसके नीचे एक छिद्र होता है, उसमें तेल डाला जाता है। वह तेल मुख पर मढ़े चमड़े पर गिरता है। इस दुंदुभी वाद्य को चमड़े के ही बने डंडाकार दंड से बजाया जाता है- इसकी ध्वनि गंभीर और दूर से सुनाई देने वाली होती है। 'झल्लरी' नाट्यशास्त्र के अनुसार अवनद्ध वाद्य है। झल्लरी व पटह, मृदंग-दर्दुर-प्रणव के प्रत्यंग वाद्य हैं। नाट्यशास्त्र में अनेक अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख मिलता है जिनमें भेरी, पटह, झंझा, दुंदुभि व डिंडिम को विस्तार आधिक्य के कारण गंभीर ध्वनि का बताया है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि महाभारत काल में नृत्य, संगीत, गायन का बहुत महत्व था। विविध प्रकार के वाद्य यंत्रों का भी महाभारत में उल्लेख मिलता है। परम्परागत संचार के रूप में इनके अतिरिक्त मेला का भी उल्लेख महाभारत में मिलता है।

सन्दर्भ

1. महाभारत, आदि पर्व, अ, 42/श्लोक संख्या 7
2. वही, श्लोक संख्या 15
3. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व) 122/54
4. वही, 60
5. वही, आदि पर्व, संभव पर्व
6. भारतीय संगीत शास्त्र, तुलसीराम देवांगन, पृ. सं. 69
7. वही, पृ. सं. 70
8. वही, पृ. सं. 70
9. आदि पर्व अ, 86, श्लोक संख्या 9
10. महाभारत, सभा पर्व, अ 4, श्लोक संख्या 37-39
11. महाभारत, सभा पर्व, अ 7, श्लोक संख्या 24 एवं 25

12. महाभारत, आदि पर्व, अ, श्लोक संख्या 76
13. महाभारत, आदि पर्व, अ, श्लोक संख्या 70
14. वन पर्व, अ. 148
15. वही, वन पर्व
16. आश्वमेधिव पर्व, अ 88 व सभा पर्व अ 45
17. अनुशासन पर्व, अ 141
18. वन पर्व, अ 44, श्लोक संख्या 6-10
19. विराट पर्व, अ. 22/3-16
20. विराट पर्व, अ. 11/12-13
21. वन पर्व, अ. 233/47
22. वही, वन पर्व

अध्याय 15

संचार के प्रमुख सिद्धांत

सिद्धान्त शब्द अंग्रेजी के Theory शब्द का हिन्दी रूपान्तर है जिसकी उत्पत्ति ग्रीक भाषा के Theoria से हुई है। इसका अर्थ होता है ''समझने की दृष्टि से चिन्तन की अवस्था में प्राप्त मानसिक दृष्टि जो कि उस वस्तु के अस्तित्व एवं कारणों को प्रकट करती है।'' सिद्धान्तों का मूल्य या महत्त्व तथ्यों के आगे निकलने पर ही स्पष्ट होता है। इसका सम्बन्ध कुछ विशिष्ट घटनाओं से नहीं अपितु घटनाओं की सम्पूर्ण श्रेणियों से होता है।

उदाहरणार्थ यदि कोई व्यक्ति यह कहता है कि उसने वृक्ष से एक पत्ते को गिरते (मरते) हुए देखा है तो हम कह सकते हैं कि वह व्यक्ति एक तथ्य कहता है। यदि कोई यह कहता है कि उसने प्रायः पत्तों को झड़ते देखा है तो वह मात्र विशिष्ट घटनाओं से सम्बन्धित अनेक कथनों को एक साथ जोड़ता है जो कि वास्तव में एक जटिल तथ्य है, परन्तु यदि कोई व्यक्ति यह कहता है कि सभी पत्तों को अनिवार्यतः झड़ना ही है तो इसका अर्थ यह है कि वह एक तथ्य नहीं अपितु एक सिद्धान्त को प्रस्तुत कर रहा है क्योंकि वह जो कुछ पत्तों के बारे में कह रहा है जिसका उसने निरीक्षण नहीं किया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सिद्धान्त तथ्य से आगे निकल जाते हैं परन्तु सभी कथन जो तथ्यों से आगे निकल जाते हैं सिद्धान्त नहीं होते।'' इसका कारण यह है कि तथ्यों से आगे बढ़कर हम अनुमान करते हैं जिसे हम 'प्राक्कल्पना' कहते हैं।

प्राक्कल्पना सिद्धान्त नहीं होता क्योंकि प्राक्कल्पना तो विशिष्ट घटनाओं या घटनाओं के संयुक्तों से सम्बन्धित कोई भी ऐसा कल्पनात्मक विचार हो सकता है जिसके सत्यता का परीक्षण करना अभी शेष है। जब एक प्राक्कल्पना ही जाँच वास्तविक निरीक्षण-परीक्षण-वर्गीकरण के आधार पर करते हुए आवश्यक अवधारणाओं का निर्माण एवं सम्बन्धित तथ्यों की व्याख्या करके उसके आधार पर सम्पूर्ण घटना का आनुभाविक सामान्यीकरण

कर लिया जाता है तभी एक सिद्धान्त का प्रतिपादन सम्भव होता है।

परिभाषा

रावर्ट के मर्टन ने अपनी पुस्तक 'सोशियोलॉजी ऑफ टुडे' में सिद्धान्त की परिभाषा इस प्रकार लिखा है 'केवल उसी अवस्था में जबकि अवधारणायें एक योजना के रूप में अन्तःसम्बन्धित हो जाते हैं तभी एक सिद्धान्त पनपना प्रारम्भ हो जाता है।''

टालकाट पारसन्स ने सिद्धान्त को इस प्रकार परिभाषित किया है–

'सिद्धान्त कुछ ज्ञात तथ्यों से निकाले गये सामान्यीकरण से बनता है और वह इस अर्थ में कि ज्ञात तथ्य समूह का औचित्य, कौन से सामान्य कथन करेंगे।''

विशेषताएँ

प्रो. पी. लूमिस ने अपनी पुस्तक 'माडर्न सोशियोलॉजिक थ्योरी' में सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है–

1. सिद्धान्त अवधारणाओं का एक संयुक्तीकरण है।
2. एक से अधिक अवधारणाओं को एक साथ जोड़ देने से ही सिद्धान्त निर्मित नहीं हो जाता बल्कि सिद्धान्त निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि जुड़ने वाली अवधारणायें आपस में तर्कसंगत रूप से अन्तः सम्बन्धित हों।
3. इन अवधारणाओं का विकास एक वैज्ञानिक मनमाने ढंग से नहीं करता वरन् वास्तविक निरीक्षण, परीक्षण व सामान्यीकरण के आधार पर कुछ तर्क वाक्यों की सहायता से करता है।

महाभारत में संचार के प्रमुख सिद्धांत

संचार का रहस्यमय सिद्धांत

यह संचार का एक प्रकार से द्विचरणीय सिद्धांत है। इसके प्रथम चरण में ऐसी कोई बात (सन्देश) जो पूर्व में घटित हो चका है और उसे केवल कुछ लोग ही जानते हैं सभी लोग नहीं। जो जानने वाले हैं वे उस तथ्य को उजागर हमेशा नहीं करते क्योंकि वह बात गोपनीय रहती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस तथ्य (बात) पर एक प्रकार से गोपनीयता का आवरण

पड़ा रहता है। किसी विशेष अवसर पर जब इस तथ्य को किसी व्यक्ति के द्वारा प्रकट किया जाता है तो यह इसका दूसरा चरण होता है। अर्थात प्रथम चरण में तथ्यों को गोपनीय रखा जाता है और द्वितीय चरण में उसे प्रकट किया जाता है। महाभारत में ऐसे अनेकों दृष्टांत मिलते हैं। यहाँ हम कुछ प्रमुख दृष्टांतों का उल्लेख कर रहे हैं- प्रथम चरण में इसे गुप्त रखा जाता है इसीलिये इसे रहस्यमय संचार कहा जाता है।

दृष्टांत- द्रोपदी के विवाह हेतु भगवान व्यास का महाराज द्रुपद के समक्ष रहस्यों को उद्घाटित करना

अर्जुन ने जब महाराज द्रुपद नरेश की कन्या कृष्णा को स्वयंवर में जीत लिया तब वे उसके साथ कुम्हार की कुटिया में जहाँ वे सब ठहरे हुए थे अपने भाइयों के साथ प्रवेश किया। अत्यन्त प्रसन्न हो अर्जुन द्रोपदी के प्राप्ति की सूचना देते हुए माता कुन्ती से बोले- "माँ! हम लोग भिक्षा लाये हैं।" कुन्ती घर के अन्दर थी और वही अपने पुत्रों को देखे बिना ही बोली- "तुम सभी भाई मिलकर उसे पाओ।" तत्पश्चात द्रोपदी को देखकर कुन्ती ने कहा हाय मेरे मुँह से बड़ी अनुचित बात निकल गई। वह अधर्म के भय से चिन्तामग्न हो गई। मनोनुकूल पति की प्राप्ति से द्रोपदी के मन में बड़ी प्रसन्नता थी। कुन्ती द्रोपदी का हाथ पकड़कर युधिष्ठिर के पास गई और बोली-

"इयं तु कन्या द्रुपदस्य राज्ञः
तवानुजाम्यां भवि सन्निविष्टा।
यथोचितम् पुत्र भयानि चोक्तं,
सम्पेत्य भुप्रति नृप प्रमादात्।।[1]

अर्थात बेटा! यह राजा द्रुपद की कन्या द्रोपदी है। तुम्हारे छोटे भाई भीमसेन और अर्जुन ने इसे भिक्षा कहकर मुझे समर्पित किया और मैंने भी भूल से (भिक्षा ही समझकर) अनुरूप उत्तर दे दिया 'तुम सब लोग मिलकर इसे पाओ।"

मया कथं नानृतमुक्तमद्य भवेत कुरुणामृषभ ब्रवीहि।
पांचालराजस्य सुतामधर्मो न चोपवर्तेत न विभ्रमेच्च।[2]

कुरुश्रेष्ठ, बताओ, अब कैसे मेरी बात झूठी न हो? और क्या किया

जाय, जिससे इस पांचालराज-कुमारी कृष्णा को न तो पाप लगे और न नीच योनियों में ही भटकना पड़े।

"कुरुश्रेष्ठ! बताओ मेरी यह बात कैसे झूठी न हो? और क्या किया जाये? जिससे इस पांचालराज कुमारी कृष्णा को न तो पाप लगे और न नीच योनियों में ही भटकना पड़े।" तदनन्तर सभी पाण्डव महाराज द्रुपद के यहाँ गये। एक पत्नी के कैसे पाँच पति हो यह रहस्य का विषय बन गया। निर्णय नहीं हो पा रहा था। उसी समय भगवान व्यास अकस्मात वहाँ आ पहुँचे। युधिष्ठिर, द्रुपद, धृष्टद्युम्न सभी अपने-अपने तर्क प्रस्तुत कर रहे थे। तदनंतर राजन द्रुपद ने अत्यन्त मीठी वाणी में भगवान व्यास जी से पूछा- "भगवन्! एक ही स्त्री बहुत से पुरुषों की पत्नी कैसे हो सकती है?" व्यास जी ने सभी लोगों का विचार सुनने के पश्चात राजा द्रुपद से कहा- "पांचालराज इस विवाह में एक रहस्य है, जिसे मैं सबके सामने नहीं कहूँगा। तुम स्वयं एकान्त में चलकर मुझसे सुन लो। यह विवाह पूर्णतः सनातन धर्म के अनुकूल है।"

तत्रोपविष्टं पृथुदीर्घबाहुं ददर्श कृष्णः सहरौहिणेयः।

अजातशत्रुं परिवार्य तांश्चाप्युपोपविष्टांज्वलनप्रकाशान्।[3]

अर्थात वहाँ बलराम सहित श्रीकृष्ण ने मोटी और विशाल भुजाओं से सुशोभित अजातशत्रु युधिष्ठिर को चारों ओर से घेरकर बैठे हुए अग्नि के समान तेजस्वी अन्य चारों भाइयों को देखा।

तदनंतर व्यास जी अपने आसन से उठे और महाराज द्रुपद का हाथ पकड़कर राजभवन के भीतर चले गये। वहाँ उन्होंने महाराज द्रुपद को पाण्डवों और द्रोपदी के पूर्व जन्म की कथा सुनाकर दिव्य दृष्टि प्रदान किया जिससे महाराज द्रुपद पूर्व जन्म के दिव्य रूपों (पाण्डव एवं द्रोपदी) की झाँकी देखी। भगवान व्यास जी ने कहा- "पांचाल नरेश पूर्व काल की बात है, नैमिषारण्य क्षेत्र में देवता लोग यज्ञ कर रहे थे। उस यज्ञ की दीक्षा लेने के कारण यमराज ने मानव प्रजा की मृत्यु का काम बन्द कर रखा था। इस प्रकार सारी प्रजा .... होकर दिनों-दिन बढ़ने लगी। जब उनकी संख्या बहुत बढ़ गई तब चन्द्रमा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, साध्यगण, रुद्रगण, वसुगण दोनों अश्विनी कुमार तथा अन्य सभी देवता श्रृष्टिकर्ता प्रजापति ब्रह्मा के पास गये और उनसे बोले-

"भगवन्! मनुष्यों की संख्या बहुत बढ़ रही है। इससे हमें बड़ा भय लगता है। इससे हम लोग व्याकुल हो रहे हैं और आप की शरण में आये हैं।" पितामह ब्रह्मा जी ने कहा- "तुम्हें मनुष्यों से क्यों भय लगता है? जबकि तुम सभी लोग अमर हो।"

तब देवताओं ने कहा- "जो मरणशील थे वे अमर हो गये। अब हममें और उनमें कोई अन्तर नहीं रह गया। यह अन्तर समाप्त हो जाने से ही हमें घबराहट हो रही है। हमारी विशेषता बनी रहे। इसीलिये हम लोग आपकी शरण में आये हैं।" तब ब्रह्मा जी ने कहा- "सूर्यपुत्र यमराज यज्ञ के कार्य में लगे हैं। इसीलिये ये मनुष्य मर नहीं रहे हैं। जब वे यज्ञ का कार्य सम्पन्न कर इधर ध्यान देंगे तो मनुष्यों का अन्तकाल उपस्थित होगा।"

ब्रह्माजी की बात सुनकर वे वहाँ से चले गये जहाँ सब देवता यज्ञ कर रहे थे। एक दिन वे सभी देवता गंगा जी में स्नान करने के लिये गये और वहाँ तट पर बैठ गये। उसी समय उन्हें भगीरथी के जल में एक कमल बहता हुआ दिखाई दिया। उस कमल के पत्ते को लगाने के लिये शक्तिशाली इन्द्र गंगोत्री के पास गये। वहाँ उन्होंने अग्नि के समान तेजस्विनी स्त्री को देखा। वह जल के लिये आई थी और भगवती गंगा की धारा में रोती हुई खड़ी थी। उसके अश्रुकणों का एक-एक बूँद जो जल में गिरता था सुवर्णमय कमल बन जाता था। यह अद्भुत दृश्य देखकर वज्रधारी इन्द्र ने उस युवती के निकट जाकर पूछा- "भ्रदे! तुम कौन हो और किसलिये रोती हो? सच-सच बताओ।"

त्वं वेत्स्यसे मामिह यास्मि शक्र यदर्थं चाहं रोदिमि मन्दभाग्या।
आगच्छ राजन् पुरतो गमिष्ये द्रष्टासि तद् रोदिमि यत्कृतेऽहम्।[4]

युवती ने कहा- "देवराज इन्द्र! मैं एक भाग्यहीन अबला हूँ, कौन हूँ और किसलिये रो रही हूँ? यह सब तुम्हें ज्ञान हो जायेगा। तुम मेरे पीछे-पीछे आओ, मैं आगे-आगे चल रही हूँ। वहाँ चलकर स्वयं ही देख लोगे कि मैं किसलिये रोती हूँ।"

तदनंतर वह स्त्री जाने लगी उसके पीछे इन्द्र भी जाने लगे। गिरिराज हिमालय के शिखर पर पहुँचकर उन्होंने देखा- पास ही एक परम सुन्दर तरुण पुरुष सिद्धासन से बैठे हैं उनके साथ एक युवती भी है जो आपात में क्रीड़ा

विनोद कर रहे हैं। वे अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों से क्रीड़ा में तन्मय थे जिससे उनका ध्यान इधर नहीं गया। उन्हें इस प्रकार असावधान देख, देवराज इन्द्र ने कुपित होकर कहा- "महाराज यह सारा जगत मेरे अधिकार में है, मेरी आज्ञा के अधीन है, मैं इस जगत का ईश्वर हूँ।" इन्द्र के ऐसा कहने पर वे दिव्यपुरुष हँस पड़े और आँख उठाकर इन्द्र की तरफ देखा। उनकी दृष्टि पड़ते ही देवराज इन्द्र का शरीर स्तभिंत, वे ठूँठे काठ की भांति निश्चेष्ठ हो गये। जब उनकी यह क्रीड़ा समाप्त हो गई तब वे उस रोती हुई देवी से बोले- "इस इन्द्र को जहाँ मैं हूँ, वहीं मेरे समीप ले आओ जिससे फिर इसके भीतर अभिमान का प्रवेश न हो।" तदनंतर उस स्त्री ने ज्योंहि इन्द्र का स्पर्श किया, उनके सारे अंग शिथिल हो गये और वे पृथ्वी पर गिर पड़े। तब उग्र तेजस्वी भगवान रूद्र ने उनसे कहा- "इन्द्र फिर किसी प्रकार भी ऐसा घमंड न करना। तुममें अनंत बल और पराक्रम है अतः इस गुफा के दरवाजे पर लगे हुये महान पर्वतराज को हटा दो और इसी गुफा के भीतर घुस जाओ। जहाँ सूर्य के समान तेजस्वी तुम्हारे जैसे और भी इन्द्र रहते हैं।"

जब इन्द्र गुफा के द्वार से पर्वतराज को हटाकर अन्दर घुसे तो देखा वहाँ उनके समान चार और इन्द्र विराजमान हैं जो उन्हीं के समान तेजस्वी हैं। यह देखकर वे बहुत दुःखी हुये और सोचने लगे- "कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि मैं भी इन्हीं के समान महान दुर्दशा में पड़ जाऊँ।" तक भगवान रूद्र ने कुपित होकर इन्द्र से कहा- "शतक्रतो! तुमने मूर्खतावश पहले मेरा अपमान किया है इसलिये अब इस कन्दरा में प्रवेश करो।" तदनंतर इन्द्र ने हाथ जोड़कर भगवान रूद्र से कहा- "जगद्योने! आप ही समस्त जगत की उत्पत्ति करने वाले आदि पुरुष हैं।" तब भगवान रूद्र ने हँसते हुए कहा- "तुम्हारे जैसे शील स्वभाव वाले लोगों को यहाँ प्रसाद की प्राप्ति नहीं होती। ये लोग भी पहले तुम्हारे ही जैसे थे। अतः तुम भी इस कन्दरा में घुसकर शयन करो। वहाँ भविष्य में तुम लोग निश्चय ही ऐसे होने वाले हो- तुम सबको मनुष्य योनि में प्रवेश करना पड़ेगा। उस जन्म में तुम अनेक दुःसह कर्म करके बहुतों को मौत के घाट उतारकर पुनः अपने शुभ कर्मों द्वारा पहले से ही उपार्जित पुण्यात्माओं के निवास योग्य इन्द्रलोक में आ जाओगे। मैंने जो कुछ कहा है वह सब कुछ

तुम्हें करना होगा। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से नाना प्रकार के मार्ग तुम्हारे द्वारा सम्पन्न होंगे।"

तदनंतर पहले के चारों इन्द्र बोले- "भगवन हम आपकी आज्ञा के अनुसार देवलोक से मनुष्य लोक में जायेंगे जहाँ दुर्लभ मोक्ष का साधन भी सुलभ होगा। परन्तु वहाँ हमे धर्म, वायु, इन्द्र दोनों अश्विन कुमार- ये ही देवता माता के गर्भ में स्थापित करें। तदनंतर हम दिव्यास्त्रों द्वारा मानव वीरों से युद्ध करके पुनः इन्द्रलोक में चले आयेंगे।"

पूर्ववर्ती इन्द्रों का उपरोक्त वचन सुनकर बज्रधारी इन्द्र ने पुनः देवश्रेष्ठ महादेव जी से इस प्रकार कहा- "भगवन मैं अपने वीर्य से अपने ही अंशभूत पुरुष को देवताओं के कार्य के लिये समर्पित करूँगा।" विश्वमुक, भूतधामा, प्रतापी इन्द्र शिवि चौथे शान्ति और पाँचवे तेजस्वी उन पाँचों के नाम हैं। तदनंतर भगवान शिव ने उन सबको उनकी अभीष्ट कामना पूर्ण होने का वरदान दिया। साथ ही उस लोक माननीया स्त्री को, जो स्वर्गलोक की लक्ष्मी थी, मनुष्य लोक में उनकी पत्नी निश्चित की।

तब व्यास जी ने महाराज द्रुपद से कहा- "द्रुपद नरेश! उत्तरवर्ती हिमालय की गुफा में जो इन्द्र स्वरूप पुरुष बन्दी बनाकर रखे गये थे वे ही चारों पराक्रमी पाण्डव यहाँ विद्यमान हैं और साक्षात इन्द्र का जो अंशभूत पुरुष प्रकट होने वाला था वही पाण्डुपुत्र अर्जुन है। इस प्रकार ये पाण्डव प्रकट हुये हैं जो पूर्व में इन्द्र रह चुके हैं। आपकी पुत्री दिव्य स्वरूपा कृष्णा वही स्वर्गलोक की लक्ष्मी है जो पहले से ही इनकी पत्नी नियत हो चुकी है। महाराज यदि इस कार्य में देवताओं का सहयोग न होता तो तुम्हारे यज्ञकर्म द्वारा यज्ञवेदी से ऐसी दिव्य नारी कैसे प्रकट हो सकती थी जिसका रूप सूर्य और चन्द्रमा के समान प्रकाश बिखेर रहा है और जिसकी सुगंध एक कोस तक फैलती रहती है।

नरेन्द्र! मैं तुम्हें प्रसन्नतापूर्वक एक और अद्‌भुत वर के रूप में दिव्य दृष्टि देता हूँ इससे उत्पन्न होकर कुन्ती के पुत्रों को उनके पूर्वकालिक पुण्यमय दिव्य शरीरों से देखोगे। तदनंतर भगवान व्यास द्वारा प्राप्त दिव्य दृष्टि से महाराज द्रुपद ने पाण्डवों को पूर्व शरीर से सम्पन्न वास्तविक रूप में देखा। उन्होंने अपनी पुत्री को भी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी, अत्यन्त रूपवती रूप में देखा। यह

देख महाराज द्रुपद ने भगवान व्यास के चरण पकड़ लिये। तब व्यास जी प्रसन्न होकर द्रोपदी के सम्बन्ध में भी वृत्तांत कह सुनाया जो इस प्रकार है- "एक तपोवन में किसी महात्मा मुनि की कोई कन्या रहती थी। सती साध्वी एवं रूपवती होने पर भी उसे योग्य पति की प्राप्ति नहीं हुई। उसने कठोर तपस्या द्वारा भगवान शंकर को संतुष्ट किया; महादेव जी प्रसन्न हो साक्षात प्रकट होकर उस मुनि कन्या से बोले 'तुम मनोवांछित वर माँगो।" मुनि कन्या ने भगवान शंकर से बार-बार कहा- "मैं सर्वगुण सम्पन्न पति चाहती हूँ।" तब भगवान शंकर प्रसन्न होकर बोले- "भद्रे तुम्हारे पाँच पति होंगे।"

तदनंतर उसने महादेव जी को प्रसन्न करते हुए पुनः यह बात कही- "शंकर जी! मैं तो आपसे एक ही गुणवान पति प्राप्त करना चाहती हूँ।" तब शंकर भगवान ने कहा- "भ्रदे! तुमने 'पति दीजिये' इस वाक्य को पाँच बार दुहराया है इसलिये मैंने पहले जो कहा है, वैसा ही होगा। तुम्हारा कल्याण हो। किन्तु तुम्हें दूसरे शरीर में प्रवेश करने पर सब होगा।" महाराज द्रुपद आपकी पुत्री वही कन्या है। यह पाँच पुरुषों की ही पत्नी नियत की गई है। इसे स्वयं ब्रह्मा जी ने पाण्डवों की पत्नी होने के लिये रचा है। यह सब सुनकर तुम्हें जो अच्छा लगे, वह करो।"

जब तक महाराज द्रुपद इस रहस्य को नहीं जानते थे तब तक उन्होंने कृष्णा के लिये एक ही पति का प्रयत्न किया किन्तु भगवान व्यास द्वारा इस रहस्य को जान लेने पर उन्होंने विधाता द्वारा नियत विधान का पालन करना ही उचित समझा। इस प्रकार वे अपनी पुत्री का क्रमशः पाँचों पाण्डवों से विवाह कर दिया।

दृष्टांत- कर्ण द्वारा घटोत्कच्छ पर इन्द्र प्रदत्त अस्त्र का प्रयोग करना

अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण राधानन्दन कर्ण से सदैव बचाये रखते थे। वे कभी भी अर्जुन को कर्ण के सम्मुख खड़ा करने की इच्छा नहीं की। उन्हें इस रहस्य की जानकारी थी कि कर्ण का अमोघ शक्ति से अर्जुन की मृत्यु हो सकती है। अतएव उन्होंने कर्ण के पास युद्ध के लिये घटोत्कच को भेजा। यदि घटोत्कच, कर्ण को मार देता है तो पाण्डवों का बहुत बड़ा लाभ होगा और यदि कर्ण घटोत्कच को मार देता है तो इन्द्र द्वारा उसे प्रदान किया गया अमोघ अस्त्र

नष्ट हो जाने से उसकी शक्ति का नाश हो जायेगा। इसलिये उन्होंने घटोत्कच को कर्ण से मरवा दिया। श्रीकृष्ण इस बात को जानते थे कि दुःशासन, कर्ण, शकुनि और जयद्रथ ये दुर्योधन को आगे रखकर गुप्त मंत्रणा करते थे और कर्ण को सलाह देते थे कि

कर्ण कर्ण महेष्वास रणेऽमितपराक्रम।
नान्यस्य शक्तिरेषा ते मोक्तव्या जयतां वर।[5]

"रणभूमि में अनन्त पराक्रम प्रकट करने वाले विजयी वीरों में श्रेष्ठ महाधनुर्धर कर्ण! तुम इस अमोघ अस्त्र को महाधनुर्धर अर्जुन को छोड़कर किसी दूसरे पर मत छोड़ना।"

परंतु कर्ण ने घटोत्कच की वीरता को देखकर उस पर वह अमोध अस्त्र छोड़ दिया जिससे उसका वध हो गया।

भगवान श्रीकृष्ण ने घटोत्कच की मृत्यु के बाद इस रहस्य का उद्घाटन सात्यकि से करते हुए कहा।

तथेति च प्रतिज्ञातं कर्णेन शिनिपुङ्गव।
ह्यदि नित्यं च कर्णस्य वधो गाण्डीवधन्वनः।[6]

शिनिप्रवर! कर्ण ने वैसा ही करने की उनके सामने प्रतिज्ञा भी की थी। कर्ण के हृदय में नित्य-निरन्तर गाण्डीवधारी अर्जुन के वध का संकल्प उठता रहता था।

अहमेव तु राधेयं मोहयामि युधां वर।
ततो नावासृजच्छक्तिं पाण्डवे श्वेतवाहने।[7]

योद्धाओं में श्रेष्ठ सात्यके! परंतु मैं ही राधापुत्र कर्ण को मोहित किये रहता था; इसीलिये श्वेतवाहन अर्जुन पर उसने वह शक्ति नहीं छोड़ी।

फाल्गुनस्य हि सा मृत्युरिति चिन्तयतोऽनिशम्।
न निद्रा न च मे हर्षो मनसोऽस्ति युधां वर।[8]

वीरवर! वह शक्ति अर्जुन के लिए मृत्युस्वरूप है, इस चिन्ता में निरन्तर डूबे रहने के कारण न तो मुझे नींद आती थी और न मेरे मन में कभी हर्ष का उदय होता था।

घटोत्कचे व्यंसितां तु दृष्ट्वा तां शिनिपुङ्गव।

मृत्योरास्यान्तरान्मुक्तं पश्याम्यद्य धनंजयम्।[9]

शिनिवंशशिरोमणे! वह शक्ति घटोत्कच पर छोड़ दी गयी, यह देखकर आज मैं यह समझता हूँ कि अर्जुन मौत के मुख से निकल आये हैं।

न पिता न च मे माता न यूयं भ्रातरस्तथा।
न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा बीभत्सुराहवे।[10]

मुझे युद्ध में अर्जुन की रक्षा जितनी आवश्यक प्रतीत होती है, उतनी पिता, माता, तुम- जैसे भाइयों तथा अपने प्राणों की रक्षा भी नहीं प्रतीत होती।

त्रैलोक्यराज्याद् यत् किंचिद् भवेदन्यत् सुदुर्लभम्।
नेच्छेयं सात्वताहं तद् विना पार्थं धनंजयम्।[11]

सात्यके! तीनों लोकों के राज्य से भी बढ़कर यदि कोई अत्यन्त दुर्लभ वस्तु हो तो उसे भी मैं कुन्तीनंदन अर्जुन के बिना नहीं पाना चाहता।

दृष्टांत- शिखण्डिनी को पुरुषत्व प्राप्ति

महाराज द्रुपद के यहाँ शिखण्डी नाम से कन्या हुई जिसे उन्होंने पुत्र घोषित कर दिया था। जब वह बड़ी हुई तो महाराज ने उसकी शादी दशार्णराज की पुत्री से इसकी शादी कर दिया। शिखण्डी को सदैव पुरुषोन्वित संस्कार दिया गया था। भगवान शंकर ने उसे पुत्र होने की घोषणा की थी। शादी के पश्चात जब दशार्णराज की पुत्री द्रुपद के यहाँ आई तो उसने शिखण्डी को पुत्र नहीं बल्कि पुत्री क रूप में पाया। वह अपनी सखियों से इस रहस्य को बताई तो राजा दशार्णराज ने इसे धोखा समझा और उन्होंने द्रुपद के साथ युद्ध करने का निश्चय किया। तब महाराज द्रुपद ने देवताओं की पूजा किया। इधर शिखण्डिनी ने सोचा मेरे माता-पिता किस कारण दुःखी हैं। अतएव उसने प्राण त्यागने का विचार किया। वह घर छोड़कर वन में चली गई। वह वन यक्षराज स्थूणाकर्म के द्वारा सुरक्षित था। यक्ष के भय से साधारण लोग वहीं आते-जाते नहीं थे। उस वन में स्थूणाकर्ण का सुन्दर महल था। उस महल में प्रवेश कर शिवाण्डिनी अपने शरीर को तप द्वारा सुलाती रही। स्थूणाकर्ण ने उसे इस अवस्था में देखा तो उसके हृदय में कोमल भाव का उदय हुआ। फिर उसने शिखण्डिनी से पूछा- भद्रे तुम्हारा यह उपवास व्रत किसलिये है। अपना प्रयोजन शीघ्र बताओ। मैं उसे पूर्ण करूंगा। शिखण्डिनी ने कहा यह तुम्हारे

लिये असम्भव है। तब यक्ष ने बार-बार कहा- मैं तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण करूंगा। राजकुमारी मैं कुबेर का सेवक हूँ। मुझमें वर देने की शक्ति हैं तुम्हारी जो इच्छा हो बताओ। मैं तुम्हें अदेय वस्तु भी दे सकता हूँ। उसने पूरा रहस्य बता दिया और कहा तुमने मेरे कष्ट निवारण हेतु प्रतिज्ञा की है। मैं चाहती हूँ तुम्हारी कृपा से मैं एक श्रेष्ठ पुरुष हो जाऊँ। जब तक दशार्णनरेश हिरण्यवर्मा मेरे नगर पर आक्रमण नहीं कर रहे हैं तब तक कृपा करो। यक्षराज ने शिखण्डिनी को अपना पुरुषत्व दे दिया और उसका स्त्रीत्व ले लिया।

संचार के कूट भाषा का सिद्धांत

यह सिद्धांत भी रहस्यमय सिद्धांत से मिलता-जुलता है। यह रहस्यमय सिद्धांत की अगली कड़ी है। इस सिद्धांत के अनुसार भाषा में कुछ रहस्य छिपे हुये होते हैं। प्रायः द्विअर्थात्मक शब्दों का प्रयोग इस सिद्धांत में किया जाता है। इसका प्रकटीकरण समय पर कर दिया जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि वक्ता और श्रोता दोनों कूट की भाषा को समझें, दोनों कूट भाषाविद् हों। यदि दोनों में से एक भी कूट भाषा का जानकार नहीं है तो यह सिद्धांत असफल एवं निरर्थक हो जाता है। संचार की सफलता के लिये स्रोत और श्रोता दोनों को समान कूट भाषा की जानकारी होनी आवश्यक है। महाभारत में महात्मा विदुर एवं धर्मराज युधिष्ठिर कूट भाषा के विद्वान थे। इस सिद्धांत का वर्णन महाभारत के जतुगृह पर्व में स्पष्ट रूप से वर्णित है-

पाण्डव वारणावत यात्रा पर जा रहे थे। महात्मा विदुर को दुर्योधन के षड़यंत्र की जानकारी गुप्तचरों के माध्यम से हो गई थी। पाण्डवों को विदा करने के लिये हस्तिनापुर के बहुत से लोग उनके साथ गये। जब महाराज युधिष्ठिर के कहने पर वे सभी लोग वापस होने लगे तब महात्मा विदुर ने पाण्डव श्रेष्ठ युधिष्ठिर से म्लेच्छों की निरर्थक-सी प्रतीत होने वाली भाषा में कुछ रहस्यमय बातें बताईं।

कक्षघ्नः शिशिरघ्नश्च महाकक्षे बिलौकसः।
न दहेदिति चात्मानं यो रक्षति स जीवति।[12]

अर्थात! 'घास-फूस तथा सूखे वृक्षों वाले जंगल को जलाने और सर्दी को नष्ट कर देने वाली आग विशाल वन में फैल जाने पर भी बिल में रहने वाले

चूहे आदि जन्तुओं को नहीं जला सकती- यों समझकर जो अपनी रक्षा का उपाय करता है, वही जीवित रहता है।'

नाचक्षुर्वेत्ति पन्थानं नाचक्षुर्विदन्ते दिशः।
नाधृतिर्बुद्धिमाप्नोति बुध्यस्वैवं प्रबोधितः।[13]

अर्थात जिसके आंखें नहीं हैं, वह मार्ग नहीं जान पाता; अंधे को दिशाओं का ज्ञान नहीं होता और जो धैर्य खो देता है, उसे सद्बुद्धि नहीं प्राप्त होती। इस प्रकार मेरे समझाने पर तुम मेरी बात को भली-भाँति समझ लो।

अनाप्तैर्दत्तमादत्ते नरः शस्त्रमलोहजम्।
श्वाविच्छरणमासाद्य प्रमुच्येत हुताशनात्।[14]

'शत्रुओं के दिये हुए बिना लोहे के बने शस्त्र को जो मनुष्य ग्रहण कर लेता है वह साही के बिल में घुसकर आग से बच जाता है।

चरन् मार्गान् विजानाति नक्षत्रैर्विन्दते दिशः।
आत्मना चात्मनः पंच पीडयन् नानुपीडयते।[15]

अर्थात मनुष्य घूम-फिरकर रास्ते का पता लगा लेता है, नक्षत्रों से दिशाओं को समझ लेता है तथा जो अपनी पांचों इन्द्रियों का स्वयं ही दमन करता है, वह शत्रुओं से पीड़ित नहीं होता।

महाराज युधिष्ठिर भी म्लेच्छ भाषा के जानकार थे अतएव वे उस रहस्य को समझ गये। इस भाषा के अनभिज्ञ पुरुष को इसका अर्थ बोध नहीं हो पाता।

महात्मा विदुर ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण रहस्योद्गार कूटभाषा में किया-

1. जो शत्रु की नीति-शास्त्र का अनुसरण करने वाली बुद्धि को समझ लेता है, वह उसे समझ लेने पर कोई ऐसा उपाय करे जिससे वह शत्रुजनित संकट से बच सके।

2. एक ऐसा तीखा शस्त्र हो जो लोहे का तो बना नहीं है परन्तु शरीर को नष्ट कर देता है। जो उसे जानता है, ऐसे उस शस्त्र के आघात से बचने का उपाय जानने वाले पुरुष को शत्रु नहीं मार सकते।

3. घास-फूस तथा सूखे वृक्ष वाले जंगल को जलाने और सर्दी को नष्ट कर देने

वाली आग विशाल वन में फैल जाने पर बिल में रहने वाले चूहे आदि जन्तुओं को नहीं जला सकती। यो समझकर जो अपनी रक्षा का उपाय करता है वह जीवित रहता है।

4. जिसके आँखें नहीं हैं, वह मार्ग नहीं जान पाता; अंधे को दिशाओं का ज्ञान नहीं होता और जो धैर्य खो देता है, उसे सद्बुद्धि नहीं प्राप्त होती। इस प्रकार मेरे समझाने पर तुम मेरी बात को समझ लो।

5. शत्रुओं के दिये हुये विना लोहे के बने शस्त्र को जो मनुष्य ग्रहण कर लेता है, वह साही के बिल में घुसकर बच जाता है।

6. मनुष्य घूम-फिरकर रास्तों का पता लगा लेता है। नक्षत्रों से दिशाओं को समझ लेता है तथा जो अपनी पाँचों इन्द्रियों का स्वयं ही दमन करता है वह शत्रुओं से पीड़ित नहीं होता।

विदुर के उपरोक्त बातें कहने के उपरांत युधिष्ठिर ने कहा- "मैंने आपकी बात अच्छी तरह समझ ली। जब विदुर और भीष्म जी वापस लौट गये तब माता कुन्ती ने युधिष्ठिर से कहा- "बेटा! विदुर जी ने सब लोगों के बीच में जो अस्पष्ट-सी बात कही थी, उसे सुनकर तुमने बहुत अच्छा कहकर स्वीकार किया था, परन्तु हम लोग वह बात अभी तक समझ नहीं पा रहे हैं। यदि उसे हमारे जानने से कोई दोष न हो तो तुम्हारी व उनकी सारी बात-चीत का रहस्य मैं सुनना चाहती हूँ।"

तब युधिष्ठिर ने कहा- "विदुरजी ने मुझसे संकेत में कहा था- तुम जिस घर में ठहरोगे वहाँ आग का भय है। यह बात अच्छी तरह जान लेनी चाहिये। साथ ही वहाँ का कोई ऐसा मार्ग न हो जो तुमसे अपरिचित हो।"

संचार का हतोत्साहित करने का सिद्धांत

संचार का यह एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इस सिद्धांत में संचार का नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है। सम्प्रेषक, श्रोता को ऐसा सन्देश सुनाता है जिससे उसके अन्दर का उत्साह समाप्त हो जाय और श्रोता हतोत्साहित होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल न हो। वैसे तो महाभारत में इस सिद्धांत का अनेकों स्थलों पर चर्चा मिलती है परंतु यहाँ हम एक प्रमुख दृष्टान्त के द्वारा इसे स्पष्ट कर रहे हैं।

दृष्टान्त-

महाभारत का युद्ध हो रहा था। पितामह भीष्म मृत्युशय्या पर पड़े थे। आचार्य द्रोण स्वर्गवासी हो गये थे। कौरव सेना का सेनापति कर्ण को बनाया गया था। महाराज शल्य कर्ण के सारथी बने। कर्ण अति उत्साह से भरा हुआ था। उसने महाराज शल्य को आदेश दिया-

तस्मात् क्षिप्रं मद्रपदे प्रयाहि
रणे पांचालान् पाण्डवान् संजयांश्च।
तात वा हनिष्यामि समेत्य संख्ये
यास्यामि वा द्रोणपथा यमाय।।[16]

(अर्थात मद्रराज! तुम शीघ्र ही रणभूमि में पांचाल, पाण्डव तथा संजय वीरों की ओर रथ ले चलो। आज युद्धस्थल में उन सबके साथ भिड़कर या तो उन्हें ही मार डालूँगा या स्वयं ही द्रोणाचार्य के मार्ग से यमलोक चला जाऊँगा।)

शल्य! मैं उन शूरवीरों के बीच में नहीं जाऊँगा, ऐसा मुझे न समझो क्योंकि संग्राम से पीछे हटने पर मित्रद्रोह होगा और यह मित्रद्रोह मेरे लिये असहय है। यदि सबका संहार करने वाली मृत्यु सदा सावधान रहकर समरांगण में पाण्डुपुत्र अर्जुन की रक्षा करे तो रणक्षेत्र में उससे भी भिड़कर या तो मैं उसे मार डालूँगा या स्वयं ही भीष्म के सम्मुख यमलोक में चला जाऊँगा। युद्ध में यदि वरुण, कुबेर, यम तथा इन्द्र भी अपने गणों सहित एक साथ आकर यहाँ पाण्डु पुत्र अर्जुन की रक्षा करना चाहे तो भी मैं उन्हें सबके सहित जीत लूँगा।"

तब शल्य ने कर्ण से कहा-

विरम विरम कर्ण कत्थना दतिरभसोऽप्यतिवाचमुक्तवान्।
क्व च हि नरवरो धनंजयः क्व पुनरहो पुरुषाधमो भवान्।
यदुसदनमुपेन्द्रपालितं त्रिदशमिवामरराजरक्षितम्।
प्रसभमतिविलोड्य को हरेत् पुरुषवरावरजामृतेऽर्जुनात्।
त्रिभुवनविभुमीश्वरेश्वरं क इह पुमान् भवमाह्वयेद् युधि।
मृगवधकलहे ऋतुऽर्जुनात्। सुरपतिवीर्यसमप्रभावतः।[17]

"कर्ण! बस। अब बढ़चढ़कर बातें बनाना बंद करो। तुम अधिक जोश में आकर अपनी शक्ति से बहुत बड़ी बात कह गये। भला कहाँ नरश्रेष्ठ अर्जुन और वहाँ मनुष्यों में अधम तुम? बताओ तो सही अर्जुन के सिवा दूसरा कौन ऐसा वीर है, जो साक्षात् विष्णु भगवान से सुरक्षित यदुवंशियों की पुरी को जिसकी उपमा देवराज इन्द्र द्वारा पालित देवनगरी अमरावती से दी जाती है। बलपूर्वक मथकर भगवान श्रीकृष्ण की छोटी बहिन सुभद्रा का अपहरण कर सके। देवराज इन्द्र के समान बल और प्रभाव रखने वाले अर्जुन को छोड़कर इस संसार में दूसरा कौन ऐसा वीर पुरुष है, जो एक वन्य पशु को मारने के विषय में उठे हुए विवाद के अवसर पर ईश्वरों के भी ईश्वर त्रिलोकीनाथ भगवान शंकर को भी युद्ध के लिए ललकार सके।

कर्ण याद है वह घटना, जबकि कुरुजांगल प्रदेश में घोषयात्रा के समय गंधर्वों ने शत्रु बनाकर दुर्योधन का अपहरण कर लिया था। उस समय इन्हीं अर्जुन ने सूर्य किरणों के समान तेजस्वी उत्तमोत्तम वाणों द्वारा उन बहुसंख्यक शत्रुओं को मारकर धृतराष्ट्र पुत्र को बंधनमुक्त कराया था। उस युद्ध में तुम भाग गये थे।

विराट नगर के मोहरण के समय कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ने विशाल बल वाहन से सम्पन्न तुम सब लोगों को द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और भीष्म के सहित परास्त कर दिया था। उस समय तुमने अर्जुन को क्यों नहीं जीत लिया? सूतपुत्र! अब आज तुम्हारे वध के लिये पुनः यह दूसरा उत्तम युद्ध उपस्थित हुआ है। यदि तुम शत्रु के भय से भाग नहीं गये तो समरांगण में पहुँचकर अवश्य मारे जाओगे।"

इस प्रकार भद्रराज शल्य शत्रुओं की प्रशंसा से सम्बन्ध रखने वाली बहुत-सी कड़वी बातें सुनाने लगे, तब कौरव सेनापति कर्ण अत्यन्त क्रोध से जल उठा और बोला-

भवतु भवतु किं विकत्थसे
ननु मम तस्य हि युद्धमुत्तमम्।
यदि स जयति मामिहाहवे
तत इदमस्तु सुकत्थितं तव।।[18]

(अर्थात- रहने दो, रहने दो। क्यों बहुत बड़बड़ा रहे हो, अब तो मेरा और उनका युद्ध उपस्थित हो ही गया है। यदि अर्जुन यहाँ युद्ध में मुझे परास्त कर दे तो तुम्हारा यह बढ़-चढ़कर बातें करना ठीक और अच्छा समझा जायेगा।)

शल्य ने चुप होकर रथ आगे बढ़ाया। कर्ण अपने सैनिकों का उत्साह बढ़ाने की दृष्टि से कहने लगा- "जो मुझे आज अर्जुन को दिखा देगा मैं उसे बहुत सा धन, घोड़े, हाथी आदि बहुमूल्य वस्तुयें दूँगा। वह बहुत बढ़-चढ़कर बातें करने लगा था तो भद्रराज शल्य ने कहा-

मा सूतपुत्र दानेन सौवर्णं हस्तिषडगवम्।
प्रयच्छ पुरुषायाद्य द्रक्ष्यसि त्वं धनन्जयम्।।[19]

(अर्थात् सूतपुत्र! तुम किसी पुरुष को हाथी के समान हृष्ट-पुष्ट छह बैलों से जुता हुआ सोने का रथ न दो। आज अवश्य ही अर्जुन को देखोगे।)

तुम मूर्खता से ही कुबेर के धन को लुटा रहे हो। तुम जो श्रीकृष्ण एवं अर्जुन को मारना चाहते हो, वह मन्तव्य तो व्यर्थ ही है, क्योंकि हमने यह बात कभी नहीं सुनी है कि किसी गीदड़ ने युद्ध में दो सिंहों को मार गिराया हो। लगता है तुम्हारा कोई सौहार्द्र नहीं है जो तुम्हें जलती आग में गिरने से बचाये। लगता है तुम्हें काल ने पका दिया है।

सूत पुत्र जब सव्यसाची कुन्ती कुमार अपने हाथ में दिव्य धनुष लेकर पैने वाणों द्वारा तुम्हें रौंदने लगेंगे तब तुम्हें अपने किये पर पछतावा होगा। जो मूढ़ तुम सदा से ही गीदड़ हो और अर्जुन सदा से ही सिंह है। वीरों के प्रति द्वेष रखने के कारण ही तुम गीदड़ जैसे दिखाई देते हो।"

इस प्रकार सारथी मद्रनरेश सदा कर्ण को अर्जुन की तुलना में हीन बताते हुए उसे हतोत्साहित करते रहते थे। (शल्य ने युधिष्ठिर को ऐसा करने का वचन दिया था।) कर्ण भी शल्य की निंदा करने लगा। उन दोनों में निजी विवाद भी होने लगा। तब शल्य ने एक कौये और हंस का दृष्टांत सुनाकर उसे बुरी तरह से अपमानित किया ताकि वह हतोत्साहित हो जाये।

संकेत का सिद्धांत

संचार में कुछ शब्दों का स्पष्टीकरण आवश्यक होता है। भाषा को संचार में संकेत के रूप में भी देखा जाता है। संकेतों की भाषा भी होती है। संकेत में ध्वनि, प्रतिबिम्ब एवं अवधारणा विद्यमान होती है। किसी भाषा में शब्द समूह या बाह्य विद्यमान उद्देश्य या विचार को व्यक्त करते हैं। लक्ष्य का निर्धारण भी संकेत से ही हो जाता है। परन्तु संकेत का महत्व मानसिक अवधारणा की प्रक्रिया से भी होता है। संकेत का अभिप्राय उस सन्दर्भ पर निर्भर करता है जिस संदर्भ में यह सम्प्रेषित किया जाता है। एडमण्ड लीच ने कल्चर एंड कम्युनिकेशन में यह स्पष्ट किया है कि संकेत का अर्थ अकेले नहीं वरन् सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़ा हुआ होता है। संकेत अन्य संकेतों तथा प्रतीकों से जुड़कर एक ही स्थिति में भिन्न-भिन्न प्रकार की सूचनायें देता है। इस प्रकार इसके मर्म की ही भिन्नता नहीं होती, वरन् संकेतों की भी भिन्नता होती है। महाभारत में संकेत सिद्धांत का भली-भांति निरूपण किया गया है। इसे हम निम्नलिखित दृष्टांत से सुगमतापूर्वक समझ सकते हैं-

दृष्टांत- भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध में संकेत

महाभारत का युद्ध समापन की तरफ था। दुर्योधन और भीमसेन के बीच युद्ध समाप्त करने हेतु गदा युद्ध हो रहा था। दोनों पराक्रमी योद्धा एक-दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। जय-पराजय बड़ा मुश्किल दिखाई दे रहा था। तब अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा-

अनयोर्वीरयोयुद्धे को ज्यायान् भवतो मतः।
कस्या वा को गुणो भूयोनतर् वद जनार्दन।।[20]

(अर्थात जनार्दन! आपकी राय में इन दोनों वीरों में से इस युद्धस्थल में कौन बड़ा है? अथवा किसमें कौन-सा गुण अधिक है? यह मुझे बताइये।)

भगवान कृष्ण ने कहा- "अर्जुन! इन दोनों को शिक्षा तो एकसी मिली हुई है परन्तु भीमसेन बल में अधिक हैं और यह दुर्योधन उनकी अपेक्षा अभ्यास और प्रयत्न में बढ़चढ़कर है। यदि भीमसेन धर्मपूर्वक युद्ध करते रहे तो कदापि नहीं जीत पायेंगे और अन्यायपूर्वक युद्ध करने पर निश्चय ही दुर्योधन का वध कर डालेंगे।

धनंजय जुये के समय भीमसेन ने प्रतिज्ञा करते हुए दुर्योधन से यह कहा था कि- "मैं युद्ध में गदा मारकर तेरी दोनों जांघे तोड़ डालूँगा। अतः शत्रुसूदन भीमसेन अपनी उस प्रतिज्ञा का पालन करे और मायावी राजा दुर्योधन को माया से ही नष्ट कर डाले। यदि ये बल का सहारा लेकर न्यायपूर्वक प्रहार करेंगे, तब जीत नहीं पायेंगे। दुर्योधन युद्ध की कला जानता है, वीर है और एक निश्चय पर डटा हुआ है। इस विषय में भगवान कृष्ण ने शुक्राचार्य का कहा हुआ एक श्लोक सुनाया-

पुनरावर्तमानानां भग्नानां जीवितैषिणाम्।
मंव्यमरिशेषाणामेकायनगता हिते।।[21]

(अर्थात मरने से बचे हुए शत्रुगण यदि युद्ध में जान बचाने की इच्छा से भाग गये हों और पुनः युद्ध के लिये लौटने लगे हों तो उनसे डरते रहना चाहिए, क्योंकि वे एक निश्चय पर पहुँचे हुये होते हैं और उस समय वे मृत्यु से भी नहीं डरते।)

धनंजय जो जीवन की आशा छोड़कर साहसपूर्वक युद्ध में कूद पड़े हों, उनके सामने इन्द्र भी नहीं ठहर सकते। इस गदा युद्ध में दुर्योधन और भीमसेन दोनों खून से लथपथ हो गये थे। केशव की उक्त बातें सुनकर धनंजय ने भीमसेन के देखते हुए अपनी बायीं जांघ को ठोंका। इससे संकेत पाकर भीमसेन गदा द्वारा यमक तथा अन्य प्रकार के विचित्र मंडल दिखाते हुए विचरने लगे। अर्जुन ने जब संकेत किया तब कनखियों से देखकर दुर्योधन सहसा भीमसेन की ओर बढ़ा। रणभूमि में अपनी तरफ बढ़ते देखकर भीमसेन ने पैंतरा बदलते हुए दुर्योधन की जांघों पर बड़े वेग से गदा चलायी जिससे दुर्योधन की जांघें टूट गईं।

दृष्टांत- जरासंध वध में संकेत संचार

ततस्तु भगवान कृष्णो जरासंधजिघांसया।
भीमसेनं समालोक्य नलं जग्राह पाणिना।
द्विधा चिच्छेद वै तत् तु जरासंधवधं प्रति।[22]

जरासंध और भीमसेन में भयंकर युद्ध हो रहा था। भगवान श्रीकृष्ण भीमसेन की तरफ देखकर एक नरकट लेकर उसे दातौन की भांति दो टुकड़ों में

चीरकर फेंक दिया। यह जरासंध को मारने के लिये एक संकेत था।

भीम ने उस संकेत को समझ लिया और उन्होंने सौ बार घुमाकर जरासंध को धरती पर पटक दिया और अपने एक हाथ से उसका पैर पकड़कर और दूसरे पैर पर अपना पैर रखकर उसे दो खंडों में चीर डाला।

पुनः संधाय तु तदा जरासंधः प्रतापवान्।
भीमेन च समागम्य बाहुयुद्धं चकार ह।
तयो समभवद् युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्।
सर्वलोकक्षयकरं सर्वभूतद्यभयावहम्।
पुनः कृष्णस्तमिरिणं द्विधा विच्छिद्य माधवः।
व्यत्यस्य प्राक्षिपत् तत् तु जरासंधवधेप्सया।[23]

तब वे दोनों टुकड़े फिर से जुड़ गये और प्रतापी जरासंध भीमसेन से युद्ध करने लगा। तब भगवान श्रीकृष्ण ने पुनः एक नरकट लेकर पूर्व की ही भांति चीरकर उसके दो टुकड़े कर दिये और उन दोनों टुकड़ों को अलग-अलग दिशा में फेंक दिया। जरासंध वध के लिये यह दूसरा संकेत था।

भीमसेन इसे समझकर जरासंध के दो टुकड़े कर विपरीत दिशा में फेंक दिया। तदनंतर जरासंध का शरीर शव रूप में होकर मांस के लोदे-सा प्रतीत होने लगा और उसका देहावसान हो गया।

षड्यंत्र का सिद्धांत

जब संचार का उपयोग षड्यन्त्र के लिये किया जाता है तब यह सिद्धांत उपयोगी होता है। इस सिद्धांत से किसी घटना के वास्तविक तथ्य को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया जाता है ताकि लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके। महाभारत में इस सिद्धांत का प्रयोग भी मिलता है जिसे हम निम्नलिखित दृष्टान्त से सरलतापूर्वक समझ सकते हैं-

दृष्टान्त- आचार्य द्रोण का षड्यंत्रपूर्वक वध।

महाभारत के युद्ध में द्रोणाचार्य के बाणों से पीड़ित एवं भयभीत पाण्डवों को देखकर भगवान कृष्ण ने अर्जुन से इस प्रकार कहा- "पार्थ! ये द्रोणाचार्य सम्पूर्ण धनुर्धरों में श्रेष्ठ हैं जब तक इनके हाथ में धनुष रहेगा। तब तक इन्हें युद्ध में इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता भी किसी प्रकार जीत नहीं सकते।

जब ये हथियार डाल देंगे तभी मनुष्यों द्वारा मारे जा सकते हैं। अतः पाण्डवों! गुरु का वध करना उचित नहीं है। इस धर्म भावना को छोड़कर उन पर विजय पाने के लिये कोई यत्न करो जिससे द्रोणाचार्य तुम लोगों का वध न कर सकें। मेरा विश्वास है कि अश्वत्थामा के मारे जाने पर ये द्रोणाचार्य युद्ध नहीं कर सकते। कोई मनुष्य जाकर उनसे कहे कि 'अश्वत्थामा मारा गया।'

पार्थ को यह बात अच्छी नहीं लगी किन्तु अन्य लोगों ने इस युक्ति को पसन्द किया। धर्मराज युधिष्ठिर इस बात पर बड़ी मुश्किल से सहमत हुये।

ततो भीमो महाबाहुरनीके स्वे महागजम्।
जघान गदया राजन्नश्वत्थामानमित्युत।
परप्रमथनं घोरं मालवस्येन्द्रवर्मणः।
भीमसेनस्तु सव्रीडमुपेत्य द्रोणमाहवे।
अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह।[24]

तब महापराक्रमी भीमसेन अपनी ही सेना के एक हाथी जो मालवा नरेश इन्द्र वर्मा का था और जिसका नाम अश्वत्थामा था अपनी गदा से मार डाला। भीमसेन ने इस बात को आचार्य द्रोण से कह दिया कि 'अश्वत्थामा मारा गया।'

यह अप्रिय वचन सुनकर आचार्य द्रोण मन ही मन शोक से व्यथित हो गये। फिर उनके मन में सन्देह हुआ कि सम्भव है कि यह बात झूठी हो क्योंकि उन्हें अपने पुत्र अश्वत्थामा के बल एवं पराक्रम का पता था। उनके मन में बार-बार यह बात आती थी कि मेरा पुत्र तो शत्रुओं के लिये असह्य है। अतः तुरन्त ही उन्होंने अपने को संभाल लिया और धृष्टद्युम्न को मार डालने की इच्छा से उस पर टूट पड़े। वे सम्पूर्ण पांचाल सैनिकों का विनाश करने लगे। तब सभी ऋषि-मुनि एवं देवता वहाँ उपस्थित होकर द्रोणाचार्य से बोले-

त एनमब्रुवन् सर्वे द्रोणमाहवशोभिनम्।
अधर्मतः कृतं युद्धं समयो निधनस्य ते।
नयस्यायुधं रणे द्रोण समीक्षास्मानवस्थितान्।
नातः क्रूरतरं कर्म पुनः कर्तुमिहार्हसि।[25]

"द्रोण तुम हथियार नीचे डालकर यहाँ खड़े हुए लोगों की तरफ देखो। अब तक तुमने अधर्म से युद्ध किया है, अब तुम्हारी मृत्यु का समय आ गया है इसलिये ऐसा क्रूरतापूर्वक कर्म फिर मत करो।"

आचार्य द्रोण ऋषियों की बात सुनकर तथा भीमसेन के कथन पर विचार कर रणभूमि में धृष्टद्युम्न को सामने देखकर उदास हो गये। वे अपने पुत्र के मारे या नहीं मारे जाने का समाचार धर्मराज युधिष्ठिर से पूछा। उन्हें विश्वास था कि कुन्तीपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर झूठ नहीं बोलेंगे। वे इस पृथ्वी को पाण्डव रहित करने के लिए उद्दत थे। यह देख भगवान कृष्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा-

यद्यर्धदिवसं द्रोणो युध्यते मन्युमास्थितः।
सत्यं ब्रवीमि ते सेना विनाशं समुपैष्यति।
स भवांस्त्रातु नो द्रोणात् सत्याज्ज्यायोऽनृतं वचः।
अनृतं जीवितस्यार्थे वदन्न स्पृश्यतेऽनृतैः।[26]

राजन्! यदि क्रोध में भरे हुए द्रोणाचार्य आधे दिन भी युद्ध करते रहे तो तुम्हारी सेना का सर्वनाश हो जायेगा। अतः तुम द्रोण से हम लोगों को बचाओ। इस अवसर पर असत्य का भाषण सत्य से भी बढ़कर है। किसी की प्राणरक्षा के लिये यदि असत्य बोलना पड़े तो उस बोलने को झूठ का पाप नहीं लगता।"

तब भीमसेन ने कहा- "महाराज महामना द्रोण के वध का ऐसा उपाय सुनकर मैंने आपकी सेना में विचरने वाले अश्वत्थामा नामक विशाल गजराज को मार डाला और द्रोणाचार्य के पास जाकर कह दिया कि अश्वत्थामा मारा गया। अब युद्ध से निवृत्त हो जाइये। परन्तु इन पुरुष प्रवर द्रोण ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया है। अतः आप श्रीकृष्ण की बात मानकर द्रोणाचार्य से कह दीजिये 'अश्वत्थामा मारा गया।' आप के ऐसा कह देने से आचार्य जी युद्ध कदापि नहीं करेंगे।"

भीमसेन की बात सुनकर तथा कृष्ण के आदेश से युधिष्ठिर वह झूठी बात कहने को तैयार हो गये। एक तरफ वे असत्य के भय से डूबे हुये थे और दूसरी ओर विजय की प्राप्ति के लिये भी प्रयत्नशील थे। अतएव उन्होंने

'अश्वत्थामा मरो नरो वा कुंजरो' अर्थात 'अश्वत्थामा मारा गया' (उच्च स्वर में) और वह 'नर नहीं बल्कि हाथी' (धीमे स्वर में कही)। धर्मराज युधिष्ठिर के मुख से यह वचन सुनकर आचार्य द्रोण पुत्रशोक से संतप्त हो अपने जीवन से निराश हो गये। अपने पुत्र के मारे जाने के समाचार से महर्षियों के कथनानुसार वे पाण्डवों का अपराधी-सा मानने लगे। उनकी चेतना शक्ति लुप्त हो गई और वे पूर्ववत युद्ध न कर सके।

उधर धृष्टद्युम्न ने जब देखा कि आचार्य द्रोण बड़े उद्विग्न हैं और उनका चित्त शोक से व्याकुल है तब उन पर धावा बोल दिया। आचार्य ने भी भयंकर युद्ध किया किन्तु उनका उद्विग्न चित्त उन्हें बार-बार अपराध बोध कराता था और वे अस्त्र-शस्त्रों का त्याग कर दिये और अपने पुत्र अश्वत्थामा का बार-बार नाम लेकर पुकारने लगे। फिर सारे अस्त्र-शस्त्रों को रणभूमि में फेंककर वे रथ के पिछले भाग में जा बैठे। फिर वे सम्पूर्ण भूतों को अभयदान दे दिये और समाधि लगा ली। धृष्टद्युम्न को उन पर प्रहार करने का यह अच्छा अवसर प्रतीत हुआ। वह आचार्य द्रोण पर धावा बोलकर उन्हें मार डाला।

इस प्रकार इस दृष्टान्त से यह स्पष्ट है कि आचार्य द्रोण को गलत सूचना देकर उद्विग्न करने का षड्यन्त्र भगवान श्रीकृष्ण ने किया जिसके पात्र भीमसेन, युधिष्ठिर, धृष्टद्युम्न आदि महारथी भी बन गये थे। इस प्रकार षडयंत्रपूर्वक द्रोणाचार्य का वध किया गया।

षडयंत्र का भंडाफोड़ सिद्धांत

जब कुछ व्यक्ति मिलकर किसी विषय पर गुप्त रूप से षड्यंत्र करने की योजना बनाते हैं और किसी प्रकार उस षड्यंत्र का अन्य लोगों को पता चल जाता है तो इसे षड्यंत्र का भंडाफोड़ सिद्धांत कहते हैं। यह भण्डाफोड़ सामान्यतया घटना या कार्य के घटित होने के पूर्व ही हो जाता है। इससे कार्य या घटना के सम्पनन होने पर प्रतिपक्ष सावधान हो जाता है और वह योजना साकार नहीं हो पाती। इसे हम महाभारत के उद्योग पर्व उल्लिखित विवरण के आधार पर इस प्रकार समझ सकते हैं-

भगवान श्रीकृष्ण दूत बनकर पाण्डवों को राज्य देने के लिये महाराज धृतराष्ट्र की सभा में गये। उनसे बातचीत करने के बाद महाराज धृतराष्ट्र ने

विदुर से कहा- "विदुर तुम गन्धारी को बुलाकर ले आओ। मैं उसी के साथ इस दुर्बाद्धि दुर्योधन को समझा-बुझाकर राह पर लाने की चेष्टा करूँगा।" विदुर गान्धारी को बुलाकर ले आये। भगवान कृष्ण ने सभा में दुर्योधन को खूब फटकारा था। विदुर एवं भीष्म ने भी ऐसा ही किया था। दुर्योधन सभा से उठकर बाहर चला गया। गान्धारी ने महाराज धृतराष्ट्र से कहा- "महाराज! राज्य की कामना से आतुर अपने पुत्र को शीघ्र बुलवाइये। धर्म और अर्थ का लोप करने वाला कोई भी अशिष्ट पुरुष राज्य नहीं पा सकता, तथापि सर्वथा उद्दण्डता का परिचय देने वाले उस दुष्ट ने राज्य प्राप्त कर लिया है।" विदुर जी ने महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से दुर्योधन को सभा में बुला ले आये। गान्धारी ने दुर्योधन से कहा-

दुर्योधन यदाह त्वां पिता भरतसत्तम।
भीष्मो द्रोणः कृपः क्षत्ता सुहृदों कुरु तट् वचः।।[27]

(अर्थात मातश्रेष्ठ दुर्योधन तुम्हारे पिता, पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य और विदुर तुमसे जो कुछ कहते हैं, अपने इन सुहृदों की वह बात मान लो।)

माता गान्धारी के इस प्रकार के वचन का अनादर करते हुए दुर्योधन पुनः क्रोधपूर्वक वहाँ से उठकर अपने मंत्रियों के पास चला गया। तत्पश्चात वह अपने मामा शकुनि से गुप्त मंत्रणा कर कृष्ण को कैद करने की योजना बनाई। इस योजना को बनाने में कर्ण तथा दुःशासन भी थे। 'वे कहने लगे शीघ्रतापूर्वक प्रत्येक कार्य करने वाले श्रीकृष्ण, राजा धृतराष्ट्र और भीष्म के साथ मिलकर जब तक हमें कैद करें, उसके पूर्व ही हम लोग बलपूर्वक कृष्ण को बंदी बना लें। श्रीकृष्ण को कैद हुआ सुनकर पाण्डव दाँत तोड़े हुए सर्पों के समान अचेत और हतोत्साह हो जायेंगे। ये श्रीकृष्ण ही समस्त पाण्डवों के कल्याण साधक और रक्षा कवच हैं।

इसलिये हम यहीं शीघ्रतापूर्वक कार्य करने वाले केशव को राजा धृतराष्ट्र के चीखने-चिल्लाने पर भी कैद करके शत्रुओं के साथ युद्ध करें।

तस्माद् वयभिहैवनं केशवं क्षिप्रकारिणम्।
क्रोशतो धृतराष्ट्रस्य वद्ध्वा दोत्सामहे रिपून।।[28]

इधर महानवीर सात्यकि इशारे से ही दूसरों के मन की बात समझाने वाले थे। वे इन दुष्टों की दुष्टपूर्ण योजना को ताड़ गये और उसके प्रतिकार के लिये सभा से बाहर निकलकर कृतवर्मा से बोले-

अब्रवीत कृतवर्षां क्षिप्रं योजय वाहिनीम्।
व्यूटानीकः समाहारमुपतिष्ठस्य दंशितः।।[29]

(अर्थात तुम शीघ्र ही अपनी सेना को तैयार कर लो और स्वयं भी कवच धारण करके ब्यूहाकार खड़ी हुई सेना के साथ सभा भवन के द्वार पर डटे रहो।)

तब तक मैं शीघ्र ही कौरवों के इस षडयंत्र की सूचना भगवान कृष्ण को दे देता हूँ। उन्होंने सभा में प्रवेश किया और केशव से कौरवों के इस षड्यंत्र की सूचना दे दी और मुस्कराते हुए सभा में इस प्रकार कहा- "सभासदों! कुछ मूर्ख कौरव एक ऐसा नीच कर्म करना चाहते हैं जो धर्म, अर्थ और काम सभी दृष्टियों से साधु पुरुषों द्वारा निन्दित है। यद्यपि इस कार्य में उन्हें किसी प्रकार सफलता नहीं मिल सकती। क्रोध और लोभ के वशीभूत हो काम एवं रोष से तिरष्कृत होकर पापात्मा एवं मूढ़ मानव यहाँ आकर भारी बखेड़ा पैदा करना चाहते हैं। वे भगवान श्रीकृष्ण को कैद करना चाहते हैं।"

सात्यकि का यह वचन सुनकर विदुर जी ने कौरव सभा में धृतराष्ट्र से कहा- "परंतप नरेश जापन पड़ता है आप के सभी सर्वथा काल के अधीन हो गये हैं। सुनने में आया है कि वे संगटित होकर भगवान कृष्ण को कैद करना चाहते हैं।" तदनंतर महाराज धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को बुलाकर कहा-

त्वमिमं पुण्डरीकाक्षमप्रधृष्यं दुरासदम्।
पापैः सहायैः संहत्य निग्रहीतुं किलेच्छसि।।[30]

(सुनता हूँ तू अपने पापी सहायकों से मिलकर इन दुघर्ष एवं दुर्जेय वीर कमलनयन श्रीकृष्ण को कैद करना चाहता है।)

दुर्ग्राहयः पणिना वायुर्दुः स्पर्श पाणिना शशी।
दुर्धरा पृथिवी मूर्ध्ना दुग्राहयः केशवो बलात्।।[31]

(अर्थात् जैसे वायु को हाथ से पकड़ना दुष्कर है। चन्द्रमा को हाथ से स्पर्श करना कठिन है और पृथ्वी को सिर पर धारण करना असम्भव है उसी

प्रकार भगवान श्रीकृष्ण को बलपूर्वक पकड़ना दुष्कर है।)

दुर्योधन द्वारा भगवान कृष्ण को कैद करने की योजना भांडाफोड़ होने के कारण असफल हो गई और भगवान कृष्ण अपने विश्व रूप का कौरव सभा में दर्शन कराकर वहाँ से प्रस्थान कर गये।

एजेण्डा सेटिंग सिद्धांत

सम्पूर्ण महाभारत भगवान कृष्ण द्वारा निर्धारित एजेण्डा पर आधारित था। संचार के एजेण्डा सेटिंग सिद्धांत के हर रूप का प्रतिपादन महाभारत में मिलता है। डैनिक मैक्वेल और स्वेन विंढन ने इस सिद्धांत को मीडिया के लिये प्रयुक्त किया है। परन्तु यह सिद्धांत संचार के क्षेत्र में सृष्टि के आदि से ही मिलता है। यहाँ हम महाभारत से संदर्भित कुछ दृष्टान्तों के आधार पर इसे व्यक्त कर रहे हैं।

महाभारत के भीष्म पर्व (गीता के ग्यारहवें अध्याय) में भगवान श्रीकृष्ण ने इसे पूरी तरह स्पष्ट कर दिया है। कुरुक्षेत्र के मैदान में जब अर्जुन दोनों पक्षों की सेनाओं को देखकर अर्जुन शोक ग्रस्त हो गये और वाण सहित धनुष को त्यागकर रथ के पिछले भाग में बैठ गये। तब करुणा से व्याप्त और अश्रुपूरित नेत्र युक्त धनंजय को भगवान समझाने लगे। वे अर्जुन को हृदय की दुर्बलता को त्यागकर युद्ध करने हेतु विवश करने लगे। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को नित्यानित्य वस्तु के विवेचन, सांख्य योग, कर्मयोग एवं स्थिति प्रज्ञ की महिमा का प्रतिपादन करते हुये समझाने लगे। सगुण ईश्वर के प्रभाव, निष्काम कर्मयोग, ज्ञान की महिमा, आत्मोद्धार के लिये प्रेरणा, भक्ति योग, अध्यात्म आदि, जगत की उत्पत्ति आदि अन्यान्य विषयों का वर्णन करते हुये समझाते रहे। वे अर्जुन को अपने वास्तविक रूप के बारे में भी बतलाते हुये बोले- "हे अर्जुन! जो सब भूतों की उत्पत्ति का कारण है वह भी मैं ही हूँ क्योंकि ऐसा चर और अचर कोई भी भूत नहीं है जो मुझसे रहित हो। जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है उस-उसको तू मेरे तेज के अंश की ही अभिव्यक्त जान।"

तब अर्जुन ने कहा- "मुझ पर अनुग्रह करने के लिये आपने जो परम गोपनीय अध्यात्म विषयक वचन अर्थात उपदेश कहा उससे मेरा यह अज्ञान

नष्ट हो गया। अतएव हे पुरुषोत्तम! मैं आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज से युक्त रूप का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ। तब भगवान कृष्ण ने अपने नाना प्रकार के नाना रूपों वाले अलौकिक स्वरूप का दर्शन कराया। तब अर्जुन ने कहा- "मुझे बताइये कि आप उग्ररूप वाले कौन हैं। मैं आपको विशेष रूप से जानना चाहता हूँ।" तब भगवान कृष्ण ने कहा-

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतोऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योद्धाः।।[32]

(मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोकों को नष्ट करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। इसलिये जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित योद्धा लोग हैं। वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे। अर्थात तेरे युद्ध न करने पर भी इन सबका नाश हो जायेगा।)

तस्मात् त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्त मात्रं भवसव्यसाचिन्।।[33]

(अतएव तू उठ! यश प्राप्त कर और शत्रुओं को जीतकर धन्य-धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग। ये सब शूरवीर पहले ही से मेरे द्वारा मारे हुये हैं। हे सव्यसाचिन तू केवल निमित्त मात्र ही बन जा।)

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान।।[34]

(अर्थात द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह तथा जयद्रथ और कर्ण तथा अन्य भी बहुत से मेरे द्वारा मारे हुये शूरवीर योद्धाओं को तुम मार। भय मत कर। निःसंदेह तू युद्ध में वैरियों को जीतेगा। इसीलिये युद्ध कर।)

तब अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण के चतुर्भुज रूप को भी देखने का

अनुरोध किया। कृष्ण ने उन्हें अपना चतुर्भुज रूप भी दिखलाया और कहा-

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।।[35]

(अर्थात हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे लिये ही सम्पूर्ण कर्तव्यों का करने वाला है। मेरा परायण है, मेरा भक्त है, आसक्ति रहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियों में वैरभाव से रहित है- वह अन्यत्र भक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।)

उपरोक्त दृष्टांत से यह स्पष्ट है कि महाभारत का एजेंडा भगवान कृष्ण द्वारा पूर्व में ही निर्धारित कर लिया गया था। वे समय-समय अपनी अभिव्यक्ति से अन्य पात्रों को प्रकट करते हुए अपने एजेंडे के अनुरूप कार्य का परोक्ष रूप से संचालन कर रहे थे।

गुप्त रहस्य के उद्भाषण का सिद्धांत

कुछ गुप्त रहस्य इस प्रकार का होता है जिसका व्यक्ति समयानुसार उद्भाषण कर देता है। परन्तु कुछ रहस्य ऐसे होते हैं जिसे व्यक्ति गोपनीय ही रखता है। उसका उद्भाषण नहीं करता। जब किसी गुप्त रहस्य का उद्भाषण कर दिया जाता है तो इसे गुप्त रहस्य उद्भाषण का सिद्धांत कहते हैं। इसे हम एक दृष्टान्त द्वारा सरलता से समझ सकते हैं।

दृष्टान्त- कुन्ती का कर्ण के जन्म का गुप्त रहस्य व्यास जी को बतलाना

महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया। सभी बचे हुये लोग शोकातुर हो रहे थे। शोक से दुःखी गान्धारी ने महर्षि वेदव्यास से कहा- "भगवन्! आपके प्रसाद से ये महाराज, मैं और आपकी बहू कुन्ती ये सबके सब जैसे भी शोक रहित हो जायें, ऐसी कृपा कीजिये।" जब गांधारी ने इस प्रकार कहा तब ब्रत से दुर्बल मुखवाली कुन्ती ने गुप्त रूप से उत्पन्न हुये अपने तेजस्वी सूर्यपुत्र कर्ण का स्मरण किया। तब व्यास जी ने कुन्ती से कहा- "महाभागे! तुम्हें किसी कार्य के लिये कुछ कहने की इच्छा हो, तुम्हारे मन में यदि कोई बात उठी हो तो उसे कहो।" तब कुन्ती ने मस्तक झुकाकर भगवान व्यास को प्रणाम करते हुये प्राचीन गुप्त रहस्य प्रकट किया।

कुन्ती ने कहा- "भगवन्! आप मेरे लिये देवताओं से भी बढ़कर हैं। अतः आज मैं आपके सामने अपने जीवन का एक रहस्य प्रकट करती हूँ। एक समय की बात है परम क्रोधी तपस्वी ब्राह्मण दुर्वासा मेरे पिता के यहाँ भिक्षा के लिये आये थे। मैंने उन्हें अपने द्वारा की गई सेवाओं से सन्तुष्ट कर लिया। मैं शौचाचार का पालन करती हुई उनकी आराधना करती थी। वे वरदायक महामुनि मुझ पर बहुत प्रसन्न हुये और मुझसे बोले- "तुम्हें मेरा दिया हुआ वरदान अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। उनकी बात सुनकर मैंने शाप के भय से उन ब्रह्मर्षि से कहा- "भगवन्! ऐसा ही हो; तब वे ब्रह्मर्षि फिर मुझसे बोले- "भद्रे! तुम धर्म की जननी होओगी। शुभानने! तुम जिन देवताओं का आवाहन करोगी वे तुम्हारे वश में हो जायेंगे।" ऐसा कहकर वे ब्रह्मर्षि अन्तर्धान हो गये। उस समय मैं वहाँ आश्चर्य चकित हो गई। किसी भी तरह से उनकी बात मुझसे भूलती नहीं थी। एक दिन जब मै। अपने महल की छत पर खड़ी थी, उगते हुये सूर्य पर मेरी दृष्टि पड़ी। महर्षि दुर्वासा के वचनों का स्मरण करके मैं दिन-रात सूर्यदेव को चाहने लगी। उस समय मै। बाल स्वभाव से युक्त थी। सूर्यदेव के आगमन से किस दोष की प्राप्ति होगी। इसे मैं नहीं समझ सकी। इधर मेरे आवाहन करते ही भगवान सूर्यदेव मेरे पास आकर खड़े हो गये। वे अपनी दो शरीर बनाकर एक से आकाश में रहकर सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करने लगे और दूसरे से पृथ्वी पर मेरे पास आ गये। वे बोले- "देवी कुछ वर माँगो।" मैंने कहा- "भगवन्! कृपया यहाँ से चले जाइये।" तब उन्होंने मुझसे कहा- "मेरा आवाहन व्यर्थ नहीं हो सकता। तुम कोई न कोई वर माँग लो अन्यथा तुमको और ब्राह्मण ने तुम्हें वर दिया है उसको भी भस्म कर दूँगा।"

तमहं रक्षती विप्रं शापादनपकारिणम्।
पुत्रो मे त्वत्समो देव भवेदिति ततोऽब्रवम्।
ततो मां तेजसाऽऽविश्य मोहयित्वा च भानुमान्।
उवाच भविता पुत्रस्तवेत्यभ्यगमद् दिवम्।[36]

मैं उस निरपराध ब्राह्मण को श्राप से बचाती हुई बोली- "देव! मुझे आपके समान पुत्र हो।" इतना कहते ही वे अपने तेज से मेरे शरीर में प्रविष्ट हो गये। तत्पश्चात बोले- "तुम्हें एक तेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा।"

मैं इस वृत्तांत को पिताजी से छिपाये रखने के लिये महल के भीतर ही रहने लगी और जब बालक गुप्त रूप से उत्पन्न हुआ तो उसको पानी में बहा दिया। वही मेरा पुत्र कर्ण था। उस पुत्र के जन्म के बाद मैं भगवान सूर्य की कृपा से पुनः कन्या भाव को प्राप्त हो गई। जैसा उन महर्षि ने कहा था वैसा ही हुआ।"

स मया मूढया पुत्रो ज्ञायमानोऽप्युपेक्षितः।
तन्मां दहति विप्रर्षे यथा सुविदितं तव।[37]

"ब्रह्मर्षि! मुझ मूढ़ नारी ने अपने पुत्र को पहचान लिया तो भी उसकी उपेक्षा कर दी। यह भूल मुझे शोकाग्नि से दग्ध करती रहती है। आपको तो यह बात अच्छी तरह से ज्ञात ही है।

भगवन्! मेरा यह कार्य पाप हो या पुण्य मैंने इसे आपके सामने प्रकट कर दिया। तब महर्षि व्यास जी ने कहा- "बेटी तुमने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक है। ऐसी ही होनहार थी। इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है क्योंकि उस समय तुम कुमारी कन्या थी। देवता लोग अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यों से सम्पन्न होते हैं। अतः दूसरे के शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।"

गुप्त मंत्रणा का सिद्धांत

जब किसी समस्या या घटना पर निर्णय करने हेतु कुछ लोग (लघु समूह अथवा दो व्यक्ति) विचारों का आदान-प्रदान करते हुये मंत्रणा करते हैं और इस मंत्रणा को अन्य लोगों से छिपाये रखा जाता है तो इस प्रकार के लक्ष्य हेतु संचार की जो प्रक्रिया होती है उसे गुप्त मंत्रणा का सिद्धांत कहा जाता है। महाभारत में ऐसा वर्णन अनेकों बार हुआ है। हम कुछ प्रमुख दृष्टांत द्वारा इसे स्पष्ट कर रहे हैं-

दृष्टांत- पाण्डव, श्रीकृष्ण की भीष्म से गुप्त मंत्रणा

महाभारत युद्ध के नौंवे दिन पितामह भीष्म के पराक्रम से व्याकुल होकर पाण्डव सैनिक हथियार डाल दिये। किसी में लड़ने का उत्साह नहीं रह गया। सारी सेना वाणों से क्षत-विक्षत होकर पीड़ित हो गई। कितने सैनिक युद्ध से विमुख होकर भागने लगे। तब राजा युधिष्ठिर ने महान बल एवं पराक्रम से सम्पन्न भीष्म को हम किसी प्रकार जीत नहीं सकेंगे। ऐसा विचार

कर अपने शिविर में चले गये। उनकी सेना भी शिविर में चली गई। पाण्डव भीष्म के बाणों से अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे। उन्हें भीष्म के पराक्रम को सोचकर तनिक भी शांति नहीं मिल रही थी। उधर पितामह भीष्म भी समर भूमि में सृंजयों एवं पाण्डवों को जीतकर अभिवन्दित होकर कौरव शिविर में चले गये। रात्रि हो गई। वृष्णवंशियों सहित सृंजय और पाण्डव गुप्त मंत्रणा हेतु एक साथ बैठे। सभी लोग अपने-अपने विचार व्यक्त करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भीष्म को कैसे मार सकेंगे और पृथ्वी पर विजय कैसे प्राप्त करेंगे। विचार-विमर्श के पश्चात राजा युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण की ओर देखकर कहा-

कृष्ण पश्य महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम्।
गजं नलवननीव विमृद्नन्तं बलं मम्।।[38]

"अर्थात श्रीकृष्ण देखिये भीष्म हमारी सेना का उसी प्रकार विनाश कर रहे हैं जैसे हाथी सरकण्डों के डंडों को रौंद डालते हैं। माधव समर भूमि में क्रोध में भरे हुये यमराज, बृजधारी इंद्र, पाशधारी वरुण अथवा गदाधारी कुबेर को भी जीता जा सकता है परन्तु इस महासमर में कुपित भीष्म को पराजित करना असंभव है। केशव यदि भाइयों सहित मुझ पर आपका अनुग्रह है तो मुझे स्वधर्मानुकूल कोई हितकारक सलाह दीजिये।"

तब भगवान कृष्ण ने युधिष्ठिर को सांत्वना देते हुए कहा-

धर्मपुत्र विषादं त्वं मा कृथाः सत्यसङ्गर।
यस्य ते भ्रातरः शूरा दुर्जया शत्रुसूदनाः।।[39]

(अथार्त धर्मपुत्र! धर्मप्रतिज्ञ कुंती कुमार विषाद न कीजिये। आपके भाई बड़े ही शूरवीर दुर्जय तथा शत्रुओं का संहार करने में समर्थ हैं। आप मुझे आज्ञा दीजिये मैं भी भीष्म से युद्ध करूँगा। मैं एकमात्र रथ की सहायता से बड़े-बड़े अस्त्रों का प्रहार करने वाले भीष्म को मार डालूँगा।)

तब युधिष्ठिर ने कहा- "माधव! मैं अपनी गुरुता का प्रभाव डालकर आपको असत्यवादी नहीं बना सकता। आप युद्ध किये बिना ही पूर्वोक्त सहायता करते रहिये। माधव मेरी भीष्म जी के साथ एक शर्त हो चुकी है। उन्होंने कहा है "मैं युद्ध में तुम्हारे हित के लिये सलाह दे सकता हूँ परन्तु

तुम्हारी ओर से किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा। युद्ध तो मैं केवल दुर्योधन के लिये ही करूँगा।"

अतः माधव! पितामह भीष्म जी मुझे राज्य और मत (हितकर सलाह) दोनों देंगे। इसलिये हम सब लोग पुनः आपके साथ पितामह भीष्म के पास चलकर उनके वध का उपाय पूछें। पूछने पर वे हमें सत्य और हितकर बात बतायेंगे। वे जैसा कहेंगे, युद्ध में मैं वैसा ही करूँगा।" हम लोग जब बचपन में पितृहीन हो गये थे तो उन्होंने ही हमारा भरण-पोषण किया है। वे हमारे पितामह हैं। वे हमारे लिये विजय और सलाह के भी दाता हो सकते हैं।" तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- "महामते राजेन्द्र! आपका कथन मुझे ठीक जान पड़ता है। देवव्रत भीष्म पुण्यात्मा पुरुष हैं। वे दृष्टिपात मात्र से ही सबको दग्ध कर सकते हैं। अतः उनके वध का उपाय पूछने के लिये हम अवश्य ही उनके पास चलें। आपके पूछने पर वे अवश्य ही सच्ची बात बतायेंगे। अतः हम सब लोग मिलकर कुरुकुल के पितामह से अभीष्ट प्रश्न पूछने के लिये साथ-साथ चलें। और भारत! चलकर उनसे हितकारक मंत्रणा पूछें। वे आपको ऐसी मंत्रणा देंगे कि हम लोग शत्रुओं के साथ युद्ध कर सकेंगे।

तदनंतर सभी लोग अपने अस्त्र-शस्त्र रखकर रात्रि में ही पितामह भीष्म के शिविर में गये। उनके साथ भगवान कृष्ण भी गये और उनको प्रणाम कर उनकी पूजा कर उनकी शरण ली। तब भीष्म जी ने उन सब लोगों से कहा- "वृष्णिनंदन आपका स्वागत है। धनंजय तुम्हारा भी स्वागत है। इसी प्रकार नकुल, सहदेव तथा भीमसेन का भी स्नेहलिंगन करते हुए बोले- आज मैं तुम सब लोगों की प्रसन्नता को बढ़ाने वाला कौन-सा कार्य करूँ। पुत्रों युद्ध के अतिरिक्त जो चाहो माँग लो, संकोच मत करो। तुम्हारी माँग अत्यन्त दुष्कर भी हो तो भी मैं उसे सब प्रकार से पूर्ण करूँगा।" तब धर्मराज युधिष्ठिर ने दीन हृदय से प्रेमपूर्वक कहा-

कथं जयेम सर्वज्ञ कथं राज्यं लमेमहि। अर्थात युद्ध में हमारी जीत कैसे हो? प्रभो हमारी प्रजा का जीवन संकट में न पड़े। यह कैसे संभव हो सकता है। कृपया यह सब मुझे बताइये। 'भवान् ही नो वध्योपायं ब्रवीतु स्वयमात्मनः' "अर्थात आप स्वयं ही हमें अपने वध का उपाय बताइये। वीर

समर भूमि में हम लोग आपका वेग कैसे सह सकते हैं? कुरुकुल के वृद्ध पितामह। आपमें कोई छोटा सा भी छिद्र दृष्टिगोचर नहीं होता है। आपने रणभूमि में वाणों की वर्षा करके भारी संहार मचा रखा है। रणक्षेत्र में मेरी विशाल सेना आपके द्वारा नष्ट हो चुकी है। पितामह हम लोग युद्ध में जिस प्रकार आपको जीत सकें, जिस प्रकार हमें विपुल राज्य की प्राप्ति हो सके और जिस प्रकार मेरी सेना भी सकुशल रह सके, वह सब उपाय मुझे बताइये।"

ततोऽब्रवीच्छान्तनवः पाण्डवान् पाण्डुपूर्वजः।
न कथंचन कौन्तेय मयि जीवति संयुगे।
जयो भवति सर्वज्ञ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।
निर्जिते मयि युद्धेन रणे जेष्यथ पाण्डवाः।
क्षिप्रे मयि प्रहरध्वं यदीच्छथ रणे जयम्।
अनुजानामि वः पार्थाः प्रहरध्वं यथासुखम्।
एवं हि सुकृतं मन्ये भवतां विदितो ह्यहम्।
हते मयि हतं सर्वं तस्मादेवं विधीयताम्।[40]

तब शांतनु नंदन पितामह भीष्म ने पाण्डवों से इस प्रकार कहा- "कुन्तीनंदन मेरे जीवित रहते युद्ध में तुम्हारी किसी प्रकार विजय नहीं हो सकती। यह सच्ची बात है जिसे मैं बता रहा हूँ। यदि युद्ध के द्वारा मैं किसी प्रकार जीत लिया जाऊँ तभी तुम लोग रणक्षेत्र में विजयी हो सकोगे। यदि युद्ध में विजय चाहते हो तो शीघ्र ही मुझ पर प्रहार करो। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। तुम सुखपूर्वक मेरे ऊपर प्रहार करो। मैं तुम्हारे लिये यह पुण्य की बात मानता हूँ तुम्हें मेरे इस प्रभाव का ज्ञान हो गया कि मेरे मारे जाने पर सारी कौरव सेना मरी हुई सी हो जायेगी। अतः तुम लोग मुझे ही मार डालो।"

तदनंतर युधिष्ठिर ने कहा- "पितामह! हम लोग युद्ध में दण्डधारी यमराज की भांति क्रोध से भरे हुये आपको जिस प्रकार जीत सकें, वैसा उपाय आप हमें बताइये। आपको तो समर भूमि में इंद्र आदि देवता भी नहीं जीत सकते। तब पितामह भीष्म ने कहा- "पाण्डु नंदन तुम्हारी बात सत्य है। जब तक मेरे हाथ में शस्त्र होगा, जब तक मैं श्रेष्ठ धनुष लेकर युद्ध के लिए सावधान एवं प्रयत्नशील रहूँगा, तब तक रणभूमि में इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता

और असुर ही नहीं जीत सकते। जब मैं शस्त्र डाल दूँ तभी मुझे महारथी मार सकते हैं। जिसने शस्त्र नीचे डाल दिया हो, जो गिर पड़ा हो, जो कवच और ध्वज से शून्य हो गया हो, जो भयभीत होकर भागता हो, अथवा 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कह रहा हो, जो स्त्री हो, स्त्रियों जैसा नाम रखता हो, विकल हो, जो अपने पिता का इकलौता पुत्र हो, अथवा जो नीच जाति का हो, ऐसे मनुष्य के साथ मुझे युद्ध करना अच्छा नहीं लगता है। जिसकी ध्वजा में कोई अमंगलसूचक चिह्न हो ऐसे पुरुष को देखकर मैं कभी उसके साथ युद्ध नहीं कर सकता।

राजन्! तुम्हारी सेना में द्रुपद पुत्र महारथी शिखंडी है वह समर भूमि में अमर्षशील, शौर्य सम्पन्न तथा युद्ध विजयी है वह पहले स्त्री था फिर पुरुष भाव को प्राप्त हुआ है। ये सारी बातें जैसे हुईं हैं उसी तुम लोग भलीभांति जानते हो। धनंजय रणभूमि में कवच धारण करके शिखंडी को आगे रखकर मुझ पर तीक्ष्ण बाणों द्वारा आक्रमण करें। शिखंडी की ध्वजा पर अमंगलसूचक चिह्न है तथा वह पहले स्त्री रहा है, इसीलिये मैं हाथ में बाण लिये रहने पर भी उसके ऊपर प्रहार नहीं करूँगा। कुन्ती कुमार इसी अवसर का लाभ लेकर पाण्डु पुत्र पार्थ मेरे ऊपर बाणों की वर्षा करें। पार्थ अथवा श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कोई ऐसा वीर नहीं है जो युद्ध में मुझे मार सके। इसीलिये यह पार्थश्रेष्ठ धनुष तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध में सावधानी के साथ प्रयत्नशील हो और शिखंडी को मेरे सामने खड़ा करके स्वयं बाणों द्वारा मुझे मार गिराये। इस प्रकार तुम्हारी विजय निश्चित हो जायेगी। कुन्तीनंदन! मैंने जैसा बताया है उसी नीति का प्रयोग करो। ऐसा करके तुम रणक्षेत्र में आये हुये सभी धृतराष्ट्र पुत्रों एवं उनके सैनिकों को मार सकते हो।"

यह सब जानकर पाण्डव भगवान श्रीकृष्ण सहित पितामह भीष्म को प्रणाम करके अपने शिविर में वापस चले गये।

पितामह भीष्म परलोक की दीक्षा ले चुके थे। उन्होंने जब उक्त बातें बताई तो अर्जुन दुख से संतृप्त एवं लज्जित होकर भगवान श्रीकृष्ण से बोले- "माधव! बचपन में खेलते समय मैंने धूल-धूसित शरीर से महामनस्वी पितामह को सदा दूषित किया है। मैं जब उनकी गोद में चढ़कर उन्हें तात कहकर पुकारता था, उस समय उस बाल्यावस्था में ही वे मुझसे इस प्रकार कहते थे-

भरतनन्दन! मैं तुम्हारा तात नहीं, तुम्हारे पिता का तात हूँ। वे ही पितामह मेरे द्वारा कैसे मारने योग्य हो सकते हैं। भले ही वे मेरी सेना का नाश कर डालें, मेरी विजय हो अथवा मृत्यु; परन्तु मैं उन महात्मा के साथ युद्ध नहीं करूँगा। माधव मेरे जैसा व्यक्ति हथियार डालकर बैठे हुए अपने वृद्ध पितामह पर प्रहार कैसे कर सकता है?"

तदनंतर भगवान कृष्ण बोले- "विजयी कुन्ती कुमार! तुम क्षत्रिय धर्म में स्थित हो। युद्ध में तुम पहले भीष्म के वध की प्रतिज्ञा करके अब उन्हें कैसे मारोगे? पार्थ! तुम युद्धदुर्भद क्षत्रिय प्रवर भीष्म को रथ से मार गिराओ। रणभूमि में शान्तनुसुत भीष्म को मारे बिना तुम्हारी विजय नहीं होगी। इस बात को देवताओं ने पहले ही देख रखा है। भीष्म इसी प्रकार यमलोक को जायेंगे। जिसे देवताओं ने देखा है वह उसी प्रकार होगा। दुधर्ष भीष्म मुँह फैलाये हुये काल के समान प्रतीत होते हैं। तुम्हारे सिवा अन्य कोई चाहे वे वज्रधारी इन्द्र ही क्यों न हो, उनके साथ युद्ध नहीं कर सकता। अर्जुन तुम स्थिर होकर भीष्म को मारो और मेरी यह बात सुनो जिसे वृहस्पति जी ने देवराज इन्द्र को बताया था। कोई बड़े से बड़े गुरुजन, वृद्ध और सर्वगुणसम्पन्न पुरुष ही क्यों न हो, यदि शस्त्र उठाकर अपना वध करने के लिये आ रहे हों तो उस आततायी को अवश्य मार डालना चाहिये। धनंजय यह क्षत्रियों का निश्चित सनातन धर्म है। उन्हें किसी के प्रति दोष दृष्टि न रखकर सदा युद्ध, प्रजा की रक्षा तथा यज्ञ करते रहना चाहिये।

तदनंतर अर्जुन ने कहा- "श्रीकृष्ण! शिखण्डी निश्चय ही भीष्म की मृत्यु का कारण होगा; क्योंकि भीष्म उस पांचाल राजकुमार को देखते ही सदा युद्ध से निवृत्त हो जाते हैं। अतः हम सब लोग उनके सामने शिखण्डी को खड़ा करके शस्त्र प्रहार रूप उपाय द्वारा गंगानंदन भीष्म को मार गिरायेंगे। यही मेरा विचार है। मैं बाणों द्वारा अन्य धनुर्धरों को रोकूँगा। शिखण्डी ही योद्धाओं में श्रेष्ठ भीष्म के साथ युद्ध करे। भीष्म का यह निश्चय है कि वे शिखण्डी को नहीं मारेंगे क्योंकि वह पहले कन्या रूप में उत्पन्न होकर बाद में पुरुष हुआ है।"

अर्जुन का उपरोक्त कथन सुनकर सभी पाण्डव हर्षित हुये। गुप्त

मंत्रणा द्वारा ऐसी योजना बनाकर पाण्डव मन ही मन संतुष्ट होकर भीष्म से विदा लेकर अपने शिविर में चले गये।

शुभाशुभ लक्षण का सिद्धांत

संचार का यह सिद्धांत लक्षण विज्ञान पर आधारित है। जब कोई व्यक्ति यात्रा करने को उद्दत होता है अथवा यात्रा करता है तो उसके मन्द-मन्द वायु पीछे से बह रही हो, सामने इन्द्रधनुष का उदय हो, बार-बार बादलों की छाया होती रहे और सूर्य की किरणों का भी प्रकाश फैलता रहे, गीध और कौवे जैसे पक्षी अनुकूल दिशा में आ जायें तो व्यक्ति को कार्य में सफलता मिलती है। उपरोक्त सभी लक्षय सफलता के सूचक हैं।

इसी प्रकार "बिना धुँए की अग्नि प्रज्ज्वलित हो, उसकी ज्वाला निर्मल हो, लपटें ऊपर की ओर उठ रही हों, अथवा अग्नि की शिखायें दाहिनी ओर जाती दिखाई देती हों तथा आहुतियों की पवित्र गंध प्रकट हो रही हो तो यह भी शुभ सूचक है।" शंखों की गम्भीर ध्वनि, रणभेदी की उच्च आवाज, इसी प्रकार प्रस्थान के समय भृंग, बायें या पीछे आ जायें तो भी यह शुभसूचक होता है। हंस, क्रौंच, शतपत्र, नीलकण्ठ आदि पक्षी मंगलसूचक ध्वनि निकाल रहे हों तो भी यह शुभ का प्रतीत होता है। यात्री के मन को प्रिय लगने वाले शब्द, स्पर्श और गन्ध सब ओर फैल रहे हों और उसके भीतर धैर्य का संचार हो रहा हो तो यह भी सफलता का प्रतीक है।

प्रतिज्ञा का सिद्धांत

जब किसी कार्य को करने के लिये व्यक्ति दृढ़ निश्चयी होकर उस कार्य का उद्घोष करता है तो इसे 'प्रतिज्ञा' कहा जाता है। यह एक प्रकार से कर्ता के आंतरिक बल पर आधारित होता है। यह सिद्धांत आत्मप्रेरित होता है और इसकी घोषणा सार्वजनिक रूप से की जाती है। इसे गुप्त नहीं रखा जाता है। महाभारत में ऐसे अनेकों दृष्टान्त मिलते हैं। वस्तुतः संचार का यह सिद्धांत एकमार्गी सिद्धांत है। कुछ प्रमुख दृष्टान्त इस प्रकार हैं-

दृष्टान्त- देवव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा

महाराज शांतनु एक दिन यमुना नदी के निकटवर्ती वन में गये। वहाँ उन्हें अवर्णनीय एवं उत्तम सुगंध का अनुभव हुआ। वे उसके उद्गम स्थल की

खोज करते हुए चारों तरफ विचरण करने लगे। विचरण करते हुए उन्होंने निषाद की एक कन्या देखी जो देवांगनाओं के समान रूपवती तथा श्याम नेत्रों वाली थी। उसे देखते ही राजा शान्तनु मोहित हो गये। वे धीवरपल्ली जाकर उसके पिता के समीप उसका वरण किये तथा निषाद राज से बोले- 'मैं अपने लिये तुम्हारी कन्या चाहता हूँ।' यह सुनकर निषादराज ने महाराज शान्तनु को उत्तर दिया-' जनेश्वर जब से इस कन्या का जन्म हुआ है तभी से मेरे मन में यह चिन्ता है कि इसका किसी श्रेष्ठ वर से विवाह करना चाहिये; किन्तु मेरी हृदय में एक अभिलाषा है इसे सुन लिजिये- ''पाप रहित नरेश! यदि इस कन्या को अपनी धर्मपत्नी बनाने के लिये आप मझसे माँग रहे हैं तो सत्य को सामने रखकर मेरी इच्छा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा कीजिये क्योंकि आप सत्यवादी है। राजन! मैं इस कन्या को एक शर्त के साथ आप को दूँगा। महाराज मेरी पुत्री को आपने अपनी पत्नी के रूप में ही चयनित किया है तो इसके मूल्य पर हस्तिनापुर का साम्राज्य ही चढ़ा है। मेरी पुत्री सत्यवती से जो सन्तान उत्पन्न होगी आप के पश्चात हस्तिनापुर का सिंहासन उसे ही प्राप्त होगा। युवराज देवव्रत को जो आप के एकमात्र पुत्र हैं मेरी पुत्री के पुत्र के हित में अपने अधिकार से वंचित होना पड़ेगा।'' राजा शान्तनु का माग्नि से जल रहे थे तो भी उनके मन में निषाद को वह वर देने की इच्छा नहीं हुई। काम की वेदना से उनका चित्त चंचल था। वे उस समय निषाद कन्या का ही चिन्तन करते हुए हस्तिनापुर लौट आये। वे निरन्तर चिन्तित रहने लगे। एक दिन देवव्रत उनके पास आये और बोले- ''पिताजी! आप का तो सब ओर से कुशल मंगल है। भूमण्डल के सभी नरेश आप की आज्ञा के अन्दर है, फिर किसलिये आप निरन्तर शोक और चिन्ता में डूबे रहते हैं। आप को कौन सा सा रोग लग गया है? यह मैं जानना चाहता हूँ जिससे मैं उसका प्रतिकार कर सकूँ।''

तदनन्तर महाराज शान्तनु ने कहा-''बेटा देवव्रत! तुम इस विशाल वंश में मेरे एक ही पुत्र हो। तुम भी सदा अस्त्र-शस्त्र के अभ्यास में लगे रहते हो तथा पुरूषार्थ के लिये सदैव उद्यत रहते हो। बेटा मैं इस जगत की अभित्यता को लेकर निरन्तर शोकग्रस्त एव चिन्तित रहता हूँ। गंगा नन्दन तुम पर यदि किसी दिन कोई तो उसी दिन हमारा यह वंश समाप्त हो जायेगा। यद्यपि तुम मेरे लिये

अकेले सौ पुत्रों के बराबर हो। मैं पुनः व्यर्थ विवाह नहीं करना चाहता किन्तु हमारी वंश परम्परा का लोप न हो, इसके लिये मुझे पुनः पत्नी की कामना हुई है। धर्मवेता कहते है कि एक पुत्र का होना सन्तान हीनता के तुल्य है। एक आँख और एक पुत्र नहीं के बराबर है। भारत! तुम शूरवीर हो। तुम कभी किसी की बात सहन नही कर सकते और सदा अस्त्र-शस्त्रों के अभ्यास में ही लगे रहते हो; अतएव युद्ध के सिवा और किसी कारण से कभी तुम्हारी मृत्यु की सम्भावना नहीं है। इसलिये मैं इस सोच में पड़ा हूँ कि किसी कारणवश यदि तुम शान्त हो गये तो वंश का क्या होगा? बेटा मेरे दुःख का यही कारण है।''

तदनन्तर देवव्रत ने पिता शान्तुन की बात पर विचार किया और महाराज शान्तुन के शोक का कारण पता करके अपने राज्य के बूढ़े क्षत्रियों के साथ घीवरपल्ली जाकर निषादराज से स्वयं अपने पिता के लिये कन्या माँगी। निषादराज ने देवव्रत का यथोचित सत्कार करके कहा-''याचकों में श्रेष्ठ राजकुमार! इस कन्या को देने में मैंने राज्य को ही शुल्क रखा है। इसके गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न हो, वही पिता के बाद राजा हो। महाराज शान्तनु के पुत्र आप ही अकेले सबकी रक्षा करने के लिये पर्याप्त हैं। भरतर्षभ! ऐसे मनोनुकूल और विवाह सम्बध को कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसके मन में सप्ताप न हो। यह कन्या एक आर्यपुरूष की सन्तान है जो गुणो मे आप लोगो के ही समान है और जिसके वीर्य से इस सुन्दरी सत्यवती का जन्म हुआ है। भारत! सत्यवती को महाराज शान्तनु पहले भी माँग चुके हैं किन्तु मैंने अस्वीकार कर दिया। युवराज मैं कन्या का पिता होने के कारण कुछ आप से भी कहूँगा ही। आप के यहाँ जो सम्बध हो रहा है उसमें केवल यही दोष विचारणीय है; इस बात को आप अच्छी तरह समझ लें।'' तत्पश्चात युवराज देवव्रत पिता के मनोरथ को पूर्ण करने के लिये सब क्षत्रियों के सुनते-सुनते इस प्रकार उत्तर दिया-

"इहं में व्रतमादत्स्व सत्यं सत्यवतां वर।
नैव चातो न वाजात ईदृशं वक्तुमुत्सहेव।।
एवमेतत् करिष्यामि यथात्वनुभाषसे।
योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति।।"[41]

(अर्थात सत्यवानों में श्रेष्ठ निषादराज! मेरी यह सच्ची प्रतिज्ञा सुनो और ग्रहण करो। ऐसी बात कह सकने वाला कोई मनुष्य न अब तक पैदा हुआ है और न आगे पैदा होगा। लो, तुम जो कुछ चाहते हो या कहते हो, वैसा ही करूँगा। इस सत्यवती के गर्भ से जो पुत्र पैदा होगा वही हमारा राजा बनेगा।'')

तब निषादराज ने कहा-''अमित तेजस्वी युवराज! आप ही महाराज शान्तनु की ओर से मालिक बनकर यहाँ आये हैं। धर्मामन् इस कन्या पर भी आप का पूरा अधिकार है। आप जिसे चाहे दे सकते है। आप सब कुछ करने में समर्थ हैं। परन्तु सौम्य इस विषय में मुझे कुछ और कहना है वह आवश्यक कार्य है; अतः आप मेरे इस कथन को सुनिये। शमुदमन! कन्याओं के प्रति स्नेह रखने वाले सगे सम्बधियों का जैसा स्वभाव होता है उसी से प्रेरित होकर मैं आप से कुछ निवेदन करूँगा।

सत्यधर्मपरायण युवराज! आप ने सत्यवती के हित के लिये इन राजाओं एवं क्षत्रियों के बीच में जो प्रतिज्ञा की है वह आप के ही योग्य है। महाबाहो वह टल नहीं सकती उसके विषय में मुझे कोई सन्देह नहीं है,परन्तु आप का जो पुत्र होगा, वह शायद इस प्रतिज्ञा पर दृढ़ न रहे, यही हमारे मन में बड़ा भारी संशय है।''

तदनन्तर युवराज देवव्रत ने अपने पिता महाराज शान्तनु का हित करने की इच्छा से यह कठोर प्रतिज्ञा की-

दाशराज निबोधेदं वचनं मे नरोत्तम।
(ऋषयो वाथवा देवा मूतान्यन्तर्हितानि च।
यानि यानीह श्रृण्वन्तु नास्ति वक्ता हि मत्समः।।
इदं वचनमादत्स्व सत्येन मम जल्पतः।)
श्रृण्वन्तो भमिपालानां यद् ब्रवीमि पितुः कृते।।[42]

(अर्थात नरश्रेष्ठ निषादराज! मेरी यह बात सुनो। जो-जो ऋषि देवता एवं अन्तरिक्ष के प्राणी यहाँ हो, वे सब भी सुन लें। मेरे समान वचन देने वाला दूसरा कोई नहीं है। निषाद! मैं सत्य कहता हूँ, पिता के हित के लिये सब भूमिपालों के सुनते हुए मैं जो कुछ कहता हूँ उसे समझो)

राज्यं तावत् पूर्वमेव मया त्यक्तं निराधिपाः।

अपत्यहेतोरपि च करिष्येऽद्य विनिश्चयम् ।।
अद्य प्रमृति ते दाश ब्रहमचर्य भविष्यति।
अपुत्रस्यापि मे लोका भविष्यन्त्यक्षया दिवि।।[43]

(अर्थात राजाओं राज्य तो मैने पहले ही छोड़ दिया है। अब सन्तान के लिये भी अटल निश्चय कर रहा हूँ। निषादराज! आज से मेरा आजीवन अखण्ड ब्रहमचर्य व्रत चलता रहेगा। मेरे पुत्र न होने पर भी स्वर्ग मे मुझे अक्षय लोक प्राप्त होंगे।)

(न हि जन्ममृत्युक्तं मम किंचिदिहानृतम्।
यावत् प्राजा घ्रियन्ते बै मम देहसमाश्रिताः।।
तावन्न जनयिष्यामि पित्रे कन्यां प्रयच्छ मे।।
उघ्वरेता भविष्यामि दाश सत्यं ब्रवीमि ते।)[44]

(अर्थात मैंने जन्म से लेकर अब तक कोई भी बात झूठ नहीं कही है। जब तक मेरे शरीर मे प्राण रहेंगे तब तक मैं सन्तान नहीं उत्पन्न करूँगा। तुम पिताजी के लिये अपनी कन्या दे दो। दाश! मैं राज्य तथा मैथुन का सर्वथा परित्याग करूँगा और ऊर्ध्वरेता(नैष्ठिक ब्रहमचारी) होकर रहूँगा। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।)

उस समय अन्तरिक्ष में अप्सरा, देवता तथा ऋषि गण पुष्पवर्षा करते हुये बोल उठे- यह भयंकर प्रतिज्ञा करने वाले राजकुमार भीष्म हैं। अर्थात भीष्म के नाम से इनकी ख्याति होगी।

तदनन्तर निषादराज ने अपनी कन्या देवव्रत को दे दी। देवव्रत ने पिता के मनोरथ को सिद्ध करने के लिये उस यशस्विनी निषाद कन्या को माता कहकर सम्बोधित करते हुए रथ पर बैठाकर हस्तिनापुर ले आये और उसे अपने पिता श्री महाराज शान्तनु को सौप दिया।

दृष्टान्त- द्यूतक्रीड़ा में पराजित होने पर वनगमन करते समय भीम, अर्जुन, नकुल सहदेव की शत्रुओं को मारने की भीषण प्रतिज्ञा-

द्यूतक्रीड़ा में धर्मराज युद्धिष्ठिर द्रोपदी को भी दाँव पर लगाकर पराजित हो चुके थे। दुर्योधन ने दुःशासन को भेजकर द्रोपदी को घसीटते हुए राजसभा में बुलाया। उसे अनेक प्रकार से अपमानित किया गया। भीमसेन का

तिरस्कार करते हुए दुर्योधन ने कर्ण को इशारे से बढावा देते हुए अपनी बाई जाँघ का वस्त्र हटाकर द्रोपदी की ओर मुस्कराते हुए देखा। इससे भीमसेन की क्रोध से आँख लाल हो गई। तब वे सभा में सभी लोगों के बीच बोले-

पितृमिः सह सालोक्यं मा स्म गच्छेद् बृकोदरः।
यद्येतमूहं गदया न भिन्धां ते महादेव।।[45]

(अर्थात दुर्योधन! यदि महासाभ में तेरी जाँघ को मैं अपनी गदा से न तोड़ डालूँ तो मुझ भीमसेन को अपने पूर्वजों के साथ उन्हीं के समान पुण्यलोकों की प्राप्ति न हो।)

और उन्होंने आगे पुनः प्रतिज्ञा की-

इदं मे वाक्यमादध्वं क्षत्रिया लोकवासिनः।
नोक्तापूर्वं नरैरन्यैर्न चान्यो यद् वदिष्यति।
यद्येतदेवमुक्त्वाहं न कुर्यां पृथिवीरश्वराः।
पितामहानां पूर्वेषां नाहं गतिमवाप्नुयाम्।
अस्य पापस्य दुर्बुद्धेर्भारतापसदस्य च।
न पिबेयं बलाद् वक्षो भित्त्वा चेद् रुधिरं युधि।[46]

देश-देशान्तर के निवासी क्षत्रियों! आप लोग मेरी इस बात पर ध्यान दें। ऐसी बात आज से पहले न तो किसी ने कही होगी और न दूसरा कोई कहेगा ही। भूमिपालों! यह खोटी बुद्धिवाला दुःशासन भरतवंश के लिये कलंक है। मैं युद्ध में बलपूर्वक इस पापी की छाती फाड़कर इसका रक्त पीऊँगा। यदि न पीऊँ अर्थात- अपनी कही हुई उस बात को पूरा न करूँ, तो मुझे अपने पूर्वज बाप-दादों की श्रेष्ठ गति न मिले।

दूसरी बार जब पुनः द्युतक्रीड़ा हुई तो महाराज युद्धिष्ठिर पुनः पराजित हो गये। द्यूतक्रीड़ा की शर्त के अनुसार पाण्डव मृगचर्म को उत्तरीय के वस्त्र के रूप में धारण करके वन को जाने लगे तब दुःशासन ने पाण्डवों को लक्ष्य करके कहा-

एते ही सर्वे कुरवः समेताः
क्षात्ता दान्ताः सुडविजोपपन्नाः।
एषां वृणीष्वैकतमं पतित्वे

न त्वां त्जेत कालविपर्ययोऽयम्।।[47]

अर्थात ये समस्त कौरव क्षमाशील, जितेन्द्रिय तथा उत्तम धन वैभव से सम्पन्न हैं। इन्हीं में से किसी को अपना पति चुन लो जिससे यह विपरीत काल निर्धनावस्था में तुम्हें सन्तप्त न करे।

यथाफलाः षण्ढतिला यथा चर्ममया मृगाः।
तथैव पाण्डवाः सर्वे यथा काकचवा अपि।।[48]

(अर्थात जैसे थोथे तिल बोने पर फल नहीं देते है, जैसे केवल चर्ममय मृग व्यर्थ हैं तथा जैसे काकयव (तन्दुलरहित वृणधान्य) निष्प्रयोजन होते हैं, उसी प्रकार समस्त पाण्डवो का जीवन निरर्थक हो गया है)

किं पाण्डवास्ते पतितानुपास्य
मोघः श्रमः षष्ठ तिलानुपास्य।
एवं नृशंसः पुरूषणि पार्था
नश्रावयद् धृतराष्ट्रस्य पुत्रः।।[49]

(अर्थात थोथे तिलों की भाँति इन पतित और नपुंसक पाण्डवो की सेवा करने से तुम्हे क्या लाभ होगा? व्यर्थ का परिश्रम ही तो उठाना पड़ेगा)

तब भीमसेन क्रोधित होकर कौरव सभा से निकलते हुए प्रतिज्ञा की-

अहं दुर्योधन हन्ता कर्ण हन्ता धनंजयः।
शकुनिं चाकितवं सहदेवो हनिष्यति।।[50]

(अर्थात मैं दुर्योधन का वध करूँगा, अर्जुन कर्ण का संहार करेगे और जुआरी शकुनि को सहदेव मार डालेंगे।)

इदं च मूयो दक्ष्यामि समामध्ये वृहद् वचः।
सत्यं देवाः करिष्यन्ति, यन्नो युद्धं भविष्यति।।
सुदोधनामिमं पापं हन्तास्मि गदया युधि।
शिरः पादेन चास्याहमधिष्ठास्यमि भूतले।।[51]

(साथ ही इस भरी सभा में मैं पुनः एक बहुत बड़ी बात कह रहा हूँ। मेरा यह विश्वास है कि देवता लोग मेरी यह बात सत्य कर दिखायेंगे। जब हम कौरव-पाण्डवों में युद्ध होगा उस समय इस पापी दुर्योधन को मैं गदा से मार गिराऊँगा तथा रणभूमि में पड़े हुये इस पापी के मस्तक को पैर से ठुकराऊँगा)

वाम्य शूरस्य चैवास्य परूषस्य दुरूत्मनः।
दुःशासनस्य रूधिरं पातास्मि मृगराण्डिव।।[52]

और यह जो केवल बात बनाने में बहादुर क्रूर स्वभाव वाला दुरात्मा दुःशासन है, इसकी छाती का खून उसी प्रकार पी लूँगा, जैसे सिंह किसी मृग का रक्तपान करता है।

तदनन्तर माण्डीवधारी अर्जुन ने कहा-''भीमसेन! साधु पुरूष किसी बात की पहले घोषणा नहीं करते। ढींढोरा नहीं पीटते जो करना होता है, समय आने पर करके दिखा देते हैं। आज से चौदहवें वर्ष जो होगा, वह सब लोग देख ही लेंगे बताने की कोई आवश्यकता नहीं। उन्होने आगे कहा ''अपने भाई का प्रिय करने की इच्छा से अर्जुन यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं युद्ध मे कर्ण और उसके अनुअगमियों को भी वाणो द्वारा मार डालूँगा। यदि मेरा सत्य विचलित हो जाय, तो हिमालय पर्वत अपने स्थान से हट जाय। सूर्य की प्रभा नष्ट हो जाय और चन्द्रमा से उसकी शीतलता दूर हो जाय।

अर्जुनः प्रतिजानीते भीमस्य प्रिय काम्यया।।
कर्णं कर्णानुगांश्चैव रणे हन्तामि हन्तामि पत्रिमिः।।
चलेहि हिमवान स्थानान्निष्प्रमः स्याद् दिवाकरः।
शैत्यं सोमात् प्रणश्येत मत्सत्यं विचलेद् यदि।।[53]

तदनन्तर माद्रीवन सहदेव ने अपनी विशाल भुजा ऊपर उठाकर शकुनि के वध की इच्छा से इस प्रकार कहा-

अक्षान् यान् मन्यसे मूढ़ गाधाराणां यशोहरः।
नैतेऽक्षा निशिता बाणस्त्वयैते समरे वृताः।।[54]

(अर्थात ओ गांधार निवासी क्षत्रिय कुल के कलंक शकुने! जिन्हे तू पासे समझ रहा है, वे पासे नही हैं उनके रूप मे तूने युद्ध में तीखे बाणों का वरण किया है।)

हन्तास्मि तरसा युद्धे त्वामेवेह सबाधवम्।
यदि स्थास्यसि संग्रामे क्षत्रधर्मेण सौबल।।[55]

(अर्थात सुबवकुमार! यदि तू क्षत्रिय धर्म के अनुसार संग्राम मे डटा रह जायेगा, तो मैं वेगपूर्वक तुझे तेरे वन्धु बान्धवों सहित अवश्य मार डालूँगा।)

तदनन्तर नकुल ने कहा-

सुतेयं यज्ञसेनस्य द्यूतेऽस्मिन् धृतराष्ट्रजैः।
यैर्वाचः श्राविताः रूक्षाः स्थितैदुर्योधन प्रिये।।
तान घार्तराष्ट्रान् दुर्वृन्तान भुमूर्षन कालनोदितान्।
गमयिष्यामि भूमिष्ठानहं वैवस्वतक्षयम्।।
निदेशाद् धर्मराजस्य द्रौपद्याः पदवीं चरन्।
निर्धार्तराष्ट्रां पृथिवीं कर्तास्मि नचिरादिव।।[56]

(अर्थात दुर्योधन के प्रिय साधन मे लगे हुये जिन धृतराष्ट्र पुत्रों ने इस द्यूतसभा में द्रुपदकुमारी कृष्णा को कठोर बाते सुनाई हैं, काल से प्रेरित हो मौत के मुँह में जाने की इच्छा रखने वाले उन दुराचारी बहुसंख्यक धृतराष्ट्र कुमारों को मैं यमलोक का अतिथि बना दूँगा। धर्मराज की आज्ञा से द्रोपदी का प्रिय करते हुये मैं सारी पृथ्वी को धृतराष्ट्र पुत्रों से सूनी कर दूँगा, इसमे अधिक देर नहीं है।) महाभारत युद्ध छिड़ने पर सभी पाण्डवों ने प्रतिज्ञा पूरी की।

दृष्टान्त- 3 अर्जुन की जयद्रथ को मारने के लिये शपथपूर्वक प्रतिज्ञा

महाभारत युद्ध में जब अभिमन्यु की मृत्यु हो गई। जब अभिमन्यु वध का दुर्दांत चित्रण महाराज युधिष्ठिर ने अर्जुन के समक्ष प्रस्तुत किया तो वे व्यथा से पीड़ित हो लम्बी साँस खींचते हुए 'हां पुत्र!' कहकर पृथ्वी पर गिर पड़े। जब उन्हें होश आया तो नेत्रों से आँसू बहने लगा। वे क्रोध से उन्मत्त होकर बोले-

सत्यं वः प्रतिजानामि श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम्।
न चेद् वाधमयाद् मीतो धार्तराष्ट्रान् प्रहास्यति।।
न चास्मान शरणं गच्छेत् कृष्ण वा पुरुषोत्तमम्।
भवन्तं वा महाराज श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम्।।[57]

(अर्थात मैं आप लोगों के सामने प्रतिज्ञा करके कहता हूँ। कल जयद्रथ को अवश्य मार डालूँगा। महाराज यदि वह मारे जाने के भय से डरकर धृतराष्ट्र पुत्रों को छोड़ नहीं देगा, मेरी पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की अथवा आप की शरण में नहीं आ जायेगा तो कल उसे अवश्य मार डालूँगा।)

यद्येतदेवम् संग्रामे न कुर्मां पुरुषर्षमाः।

मा स्म पुण्यकृता लोकान् प्राप्नुयां शूनसम्मतान्।।[58]

(पुरुष श्रेष्ठ वीरों! यदि संग्राम भूमि में ऐसा न कर सकूँ तो पुण्यात्मा पुरुषों के उन लोकों को, जो शूरवीरों को प्रिय हैं, न प्राप्त करूँ।)

उन्होंने उसी समय एक दूसरी प्रतिज्ञा भी की जो इस प्रकार है-

यद्यास्मिन्नहते पापे सूर्योऽस्तुमपयास्यति।
इहैव सम्प्रवेष्टाहं ज्वलितं जातवेदसम्।।[59]

अर्थात यदि इस पापी जयद्रथ के मारे जाने से पहले ही सूर्यदेव अस्ताचल को पहुँच जायेंगे तो मैं यही प्रज्ज्वलित अग्नि में प्रवेश कर जाऊंगा।

असुरसुरमनुष्याः पक्षिणो वारेगा वा
पितृरजनीचरा वा ब्रह्मदेवर्षयो वा।
चरमचरमपीदं यत्परं चापि तस्मात्।
तदपि ममरिपुं तं रक्षितुं नैव शक्ताः।।[60]

(अर्थात देवता, असुर, मनुष्य, पक्षी नाम, पितर निशाचर, ब्रह्मर्षि, देवर्षि यह चराचर जगत तथा इसके परे जो कुछ है, वह- ये सब मिलकर भी मेरे शत्रु जयद्रथ की रक्षा नहीं कर सकते।)

यदि विशति रसातलम् तद्ग्रयं
विजदपि देवपुरं दितेः पुरं वा।
तदपि शरशतैरहं प्रभाते
भृशममिमन्युरिपोः शिरोऽमिहर्ता।।[61]

अर्थात यदि जयद्रथ पाताल में घुस जाय या उससे भी आगे बढ़ जाय अथवा आकाश देवलोक या दैत्यों के नगर में छिप जाय तो भी कल मैं अपने सैंकड़ों बाणों से अभिमन्यु के उस घोर शत्रु का सिर अवश्य काट लूँगा।

अर्जुन ने भगवान कृष्ण के सहयोग से अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

दृष्टान्त- भगवान श्रीकृष्ण का महाभारत युद्ध में शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा

महाभारत युद्ध के लिए कौरव और पाण्डव दोनों अनेक राजाओं से सहायता माँगने के लिये प्रस्थान किया। कौरवों की तरफ से दुर्योधन और

पाण्डवों की तरफ से अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण के पास सहायता माँगने गये। भगवान श्रीकृष्ण उस समय सो रहे थे। दुर्योधन भगवान कृष्ण के शयनागार में पहले पहुँचा और सिरहाने की तरफ रखे हुए एक सिंहासन पर बैठ गया। तत्पश्चात अर्जुन ने भी शयनागार में प्रवेश किया। वे नम्रतापूर्वक हाथ जोड़े श्रीकृष्ण के पैरों की तरफ खड़े। भ्गवान श्रीकृष्ण ने जागने पर पहले अर्जुन को देखा। दोनों का आदर सत्कार कर कृष्ण ने आगमन का कारण पूछा। दुर्योधन ने कहा- माधव! पाण्डवों के साथ हमारा जो युद्ध होने वाला है उसमें आप मुझे सहायता दें। मैं पहले आया हूँ। कृष्ण ने कहा- आप पहले आये हैं परन्तु मैंने पहले अर्जुन को देखा है इसलिये मैं दोनों की सहायता करूँगा। आगे उन्होंने कहा- "मेरे पास दस करोड़ सैनिक हैं जो सबके सब मेरे जैसे ही बलिष्ठ एवं शरीर वाले हैं। उन सबकी 'नारायण' संज्ञा है। वे सभी युद्ध में डटकर लोहा लेने वाले हैं। एक तरफ वे दुर्घर्ष सैनिक युद्ध के लिये उद्यत रहेंगे। दूसरी ओर मैं अकेला रहूँगा; परन्तु मैं न तो युद्ध करूँगा और न कोई शस्त्र ही धारण करूँगा।

मत्संहननतुल्यानां गोपानामर्बुदं महत्।
नारायणा इति ख्याता सर्वेसंग्राम योधितः।।
ते वा युधि दुराधर्षा भवन्त्वेकस्य सैनिकाः।
अयुध्यमानः संग्रामे न्यस्तशस्त्रोऽहमेकतः।।[62]

कृष्ण की शस्त्र न धारण करने की प्रतिज्ञा को पितामह भीष्म ने तोड़वा दिया। महाभारत के तीसरे दिन के युद्ध में अर्जुन मानो दुविधा में थे। भीष्म पाण्डव सेना का नरसंहार कर रहे थे। कई महारथियों को उन्होंने मार गिराया। अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों को पितामह ने बाणों से आच्छादित कर दिया था। विवश होकर कृष्ण ने हाथ में सुदर्शन चक्र धारण कर पितामह भीष्म की तरफ दौड़े। इस प्रकार उनकी शस्त्र धारण न करने की प्रतिज्ञा टूट गई।

खेल सिद्धांत

विलियम स्टीफेंसन ने अपनी पुस्तक 'द प्ले थियरी ऑफ मास कम्युनिकेशन' में संचार माध्यमों के नकारात्मक सिद्धांत का खण्डन किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जनमाध्यम आम लोगों के बीच खेल अनुभवों की

भांति प्रभावी है। उन्होंने लिखा है कि 'लोग सूचना एवं ज्ञान को प्राप्त करने के लिये समाचारपत्र को पढ़ते हैं। इससे उन्हें आनंद की अनुभूति होती है कि जनमाध्यम आनंद को संचारित करते हैं। उनके अनुसार लोगों की आवश्यकता राष्ट्रीय संस्कृति से जुड़ी होती है तथा लोग इसी विषय में बात भी करते हैं। इस प्रकार जन माध्यम मुख्यतया दो उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। पहला उद्देश्य यह है कि किस प्रकार लोगों को अधिक मात्रा में आनन्द सम्प्रेषित किया जाये। दूसरा उद्देश्य है कि किस प्रकार व्यक्ति की स्वायत्तता तथा स्थिति की रक्षा सामाजिक नियंत्रण में हो।

स्टीफेंशन एक व्यवहारवादी समाज वैज्ञानिक थे। उन्होंने खेल सिद्धांत का निर्णय किया। उनके खेल का अभिप्राय कार्य से न होकर गतिविधि से है जिसमें श्रोता या पाठक की प्रसन्नता या आनन्द निहित है।

महाभारत में इस सिद्धांत का प्रतिपादन भगवान व्यास ने द्वापर युग में ही कर दिया था। इस प्रकार स्टीफेंसन का यह सिद्धांत कोई नई अवधारणा पर विकसित नहीं हुआ है। इसका आधार महाभारत में पूर्व में ही उल्लिखित है।

दृष्टान्त- धृतराष्ट्र को युद्ध का समाचार सुनने हेतु दिव्य दृष्टि की प्राप्ति।

महाभारत युद्ध प्रारम्भ होने वाला था। विचित्रनन्दन धृतराष्ट्र को युद्ध का समाचार देखने के लिए भगवान व्यास ने कहा- "राजन यदि संग्राम भूमि में तुम इन सबकी अवस्था देखना चाहो तो मैं तुम्हें दिव्य नेत्र प्रदान करूँ। फिर तुम यहीं से युद्ध का सारा दृश्य अपनी आँखों से देखो।"

धृतराष्ट्र ने कहा- ब्रह्मर्षि प्रवर मुझे अपने कुटुम्बीजनों का वध देखना अच्छा नहीं लगता; परन्तु आपके प्रभाव से इस युद्ध का सारा वृत्तांत सुन सकूँ ऐसी कृपा अवश्य कीजिये। तब व्यास जी ने सोचा महाराज धृतराष्ट्र युद्ध का दृश्य देखना तो नहीं चाहते परन्तु सुनना अवश्य चाहते हैं तब उन्होंने संजय को दिव्य दृष्टि का वर देते हुए कहा- "राजन! यह संजय आप को इस युद्ध का सब समाचार बताया करेगा। सम्पूर्ण संग्राम भूमि में कोई ऐसी बात नहीं होगी, जो इसके प्रत्यक्ष न हो।" राजन! यह संजय युद्ध का सम्पूर्ण वृत्तांत आपको

बतायेगा। भरतश्रेष्ठ! मैं इन कौरवों और पाण्डवों का कीर्त का तीनों लोकों में विस्तार करूंगा। तुम शोक न करो।"

तत्पश्चात महाराज धृतराष्ट्र से यह कहकर भगवान व्यास चले गये। धृतराष्ट्र उनके पूर्ववर्ती वचन को सुनकर कुछ काल तक सोच-विचार करते रहे। फिर उन्होंने संजय से कहा-

"बहूनि च शस्त्राणि प्रयुतान्यर्बुदानी च।
कोटयश्च लोकदीराणां समेताः कुरुजानेसे।।
देशानां च परीमाणं नाराणां च संजय।
श्रोतुमिच्छामि तत्वेन यत् यैत समागताः।।"[63]

(अर्थात संजय! कुरुक्षेत्र में इस जगत में कई हजार, लाख, करोड़ और अरबों वीर एकत्र हुए हैं। ये लोग जहाँ-जहाँ से आये हैं उन देशों और नगरों का परिमाण मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ।)

संजय ने कहा-

"यथाप्रज्ञं महाप्राज्ञ भौमान् वक्ष्यामि ते गुणान्।
शास्त्रचक्षुरवेक्षस्व नमस्ते भरतवर्ष।।"[64]

अर्थात राजन! मैं आपकी बुद्धि के अनुसार आपसे इस भूमि के गुणों का वर्णन करूंगा। भरतश्रेष्ठ आपको नमस्कार है। आप शास्त्रीय दृष्टि से इस विषय को देखिये और समझिये।

तत्पश्चात संजय महाराज धृतराष्ट्र को युद्ध के हर दिन का आँखों देखा हाल सुनाता था। आरम्भ में ही संजय ने महाराज धृतराष्ट्र को पंचमहाभूतों तथा सुदर्शन, दीप, मेरुगिरी, गंगा नदी, उत्तर कुरु, भद्राश्ववर्ष तथा माल्यवान के विषय में विस्तार से बताया। रमणक, हिरण्यक, श्रृंगवान पर्वत, ऐरावतवर्ष आदि के बारे में भी अवगत कराया। उसने कुश, क्रौंच तथा पुष्कर जैसे दीपों की भी चर्चा की। तदनंतर संजय ने युद्ध के वृत्तांत का वर्णन आरंभ किया।

इस सिद्धांत में इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि व्यक्ति समाचारपत्र में सर्वप्रथम वही समाचार पढ़ते हैं जिससे वे सम्बन्धित होते हैं या जिसके बारे में वे पूर्व से ही अवगत रहते हैं। महाराज धृतराष्ट्र भी संजय से

प्रायः ऐसे ही समाचारों का सुनना चाहते थे जिनमें उनके पुत्रों का उत्कष दिखाई देता था। अपनी सेना की पराजय और पाण्डव सेना की विजय पर वे शोक नन्दित हो जाते थे।

उपालम्भ का सिद्धांत

जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के अनुचित या अशिष्ट व्यवहार के कारण असन्तुष्ट होकर उसके अनुचित व्यवहार के लिये उसी व्यक्ति से कहते हुए अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करता है तो इसे उपालम्भ कहा जाता है। उपालम्भ की यह प्रक्रिया संचार में भावनाओं के आदान-प्रदान हेतु महत्वपूर्ण होती है। महाभारत में ऐसे अनेक दृष्टांत भरे पड़े हैं। महाभारत में कई स्थानों पर ऐसे दृष्टांत हैं जिसमें एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति के व्यवहार से असन्तुष्ट है तो कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ केवल एक व्यक्ति ही असन्तुष्ट होकर उपालम्भ कर रहा है।

दृष्टान्त- दुर्योधन का अश्वत्थामा एवं अश्वत्थामा का दुर्योधन से उपालम्भ करना

महाभारत युद्ध का तेरहवाँ दिन। दुर्योधन ने द्रोणपुत्र अश्वत्थामा से कहा-

आचार्यः पाण्डुपुत्रान वै पुत्रवत् परिरक्षति।
त्वमप्युपेक्षां कुरुवे तेषु नित्यं द्विजोत्तमः।।[65]

(अर्थात द्विजश्रेष्ठ! हमारे आचार्य तो अपने पुत्र की भाँति पाण्डवों की रक्षा करते हैं और तुम भी सदा उनकी उपेक्षा ही करते हो।) यह मेरा दुर्भाग्य ही है कि युद्ध में तुम्हारा पराक्रम भी मन्द पड़ गया है अथवा द्रोपदी का प्रिय करने के लिए ऐसा करते हो। यह मेरा दुर्भाग्य है कि मेरे पराजित न होने वाले भाई-बन्धु युद्ध में मारे जा रहे हैं। अश्वत्थामा ने दुर्योधन के इस वचन पर कहा- महाबाहो कौरव नन्दन तुम जैसा कहते हो वही ठीक है। पाण्डव मुझे तथा मेरे पिताजी को बहुत प्रिय हैं। इसी प्रकार उनको भी हम दोनों बहुत प्रिय हैं किन्तु युद्धस्थल में हमारा यह भाव नहीं रहता। तात! हम अपने प्राणों का मोह छोड़कर निर्भय होकर यथाशक्ति युद्ध करते हैं। नृपश्रेष्ठ मैं कर्ण, शल्य, कृप और कृतवर्मा पलक मारते-मारते पाण्डव सेना का संहार कर रहे हैं। यदि

युद्ध स्थल में हम लोग न रहे तो पाण्डव भी आधे निमेष में ही कौरव सेना का संहार कर सकते हैं। हम यथाशक्ति पाण्डवों से युद्ध करते हैं और वे भी हम लोगों से युद्ध करना चाहते हैं। भारत इस प्रकार हमारा तेज परस्पर एक-दूसरे से टकराकर शांत हो जाता है। पाण्डव शक्तिशाली हैं और वे फिर किसलिये तुम्हारी सेनाओं का संहार नहीं करेंगे। "कौरव नरेश तुम तो लोभी और छल-कपट की क्रिया जानते हो। सभी लोगों पर संदेह करने वाले और अभिमानी हो, इसलिये हम लोगों पर भी शक करते हो। मेरी मान्यता है कि तुम निंदित पापात्मा और पाप पुरुष हो। शूद्र नरेश तुम्हारा अंतःकरण पाप भावना से पूर्ण है। इसीलिये तुम मुझ पर तथा दूसरों पर संदेह करते हो।

त्वं तु लुब्धतको राजन निकृतिज्ञश्च कौरव।
सर्वौभिशंकी, मानी च ततोऽस्मानमिशेकसे।।
मन्ये त्वं कुत्सितोराजन पापात्मापापपूरुषः।
अन्यानपि स नः क्षुद्र शंकसे पापभावितः।।[66]

उपरोक्त वचन कहकर अश्वत्थामा ने आगे पुनः कहा- "कुरुनन्दन! मैं अभी जीवन का मोह छोड़कर तुम्हारे लिये पूरा प्रयत्न करके संग्राम भूमि में जा रहा हूँ। मैं पाण्डवों के साथ युद्ध करूँगा और उनके प्रमुख वीरों पर विजय प्राप्त करूँगा। आज पांचाल और सोमक योद्धा मेरे बाणों से दग्ध होकर गौओं के समान सब ओर भाग जायेंगे।" इस दृष्टान्त में दुर्योधन और अश्वत्थामा दोनों एक-दूसरे से असंतुष्ट हैं। दोनों एक-दूसरे के व्यवहार पर उपलम्भ कर रहे हैं।

दृष्टान्त- दुर्योधन का द्रोणाचार्य को उपालम्भ

गाण्डीवधारी अर्जुन जयद्रथ का वध करने की इच्छा से द्रोणाचार्य और कृतवर्मा का दुस्तर सेना ब्यूह भेदकर अन्दर घुस गये। अर्जुन द्वारा काम्बोजराजकुमार सुदक्षिण तथा श्रुतायुध मार दिये गये तब दुर्योधन द्रोणाचार्य के पास जाकर बोला-

स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्राणामासीद् ब्रह्मविद्यां कर।
नातिक्रमिष्यति द्रोणं जातु जीवं धनंजयः।।

योऽसो पार्थो व्यतिक्रान्तो मिषतस्ते महाद्युते।
सर्वं ध्याद्यातुरं मन्ये नेदमस्ति बलं मम्।।[67]

अर्थात ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ गुरुदेव! हमारे पक्ष के नरेशों को यह दृढ़ विश्वास था कि अर्जुन द्रोणाचार्य के जीते-जी उन्हें लांघकर सेना के भीतर नहीं घुस सकेंगे। परन्तु महातेजस्वी वीर! आप के देखते-देखते वह कुन्तीकुमार अर्जुन आप को लांघकर ब्यूह में घुस गया। इससे मैं अपनी इस सारी सेना को ब्याकुल और विनष्ट सी मानता हूँ। अब मेरी इस सेना का अस्तित्व नहीं रहेगा।

जानामि त्वं महामात्र पाण्डवानां हितरतम्।
तथा मुहयामि च ब्रह्मन कार्यवत्तां विचिन्तयन्।।
यथाशक्ति च ते ब्रह्मन् वर्तये वृत्तिमुत्तमाम्।
प्रीणामि च यथाशक्ति तच्च त्वं नावबुध्यसे।।[68]

अर्थात ब्राह्मन! मैं यह जानता हूँ कि आप पाण्डवों के हित में तत्पर रहने वाले हैं। इसीलिये आपने कार्य की गुरुता का विचार करके मोहित हो रहा हूँ। मैं यथााक्ति आप के लिए उत्तम जीविकावृत्ति की व्यवस्था करता रहता हूँ और अपनी शक्ति भर आपको प्रसन्न रखने की चेष्टा करता रहता हूँ; परन्तु इन सब बातों को आप याद नहीं रखते हैं।

अस्मान त्वं सदा भक्तनिच्छस्यमितविक्रम।
पाण्डवान् सततं प्रीणास्यस्मांकं विप्रिये रतान्।।
अस्मानेवोपजीवंस्त्वमस्माकं विप्रिये रतः।
न हययं त्वां विजानामि मधुदिग्धामिव क्षुरम्।।[69]

(अर्थात अमित पराक्रमी आचार्य! हम आपके चरणों में सदा भक्ति रखते हैं तो भी आप हमें नहीं चाहते हैं और जो सदा हम लोगों का अप्रिय करने में तत्पर रहते हैं, उन पाण्डवों को आप निरन्तर प्रसन्न रखते हैं। हमसे ही आप की जीविका चलती है तो भी आप हमारा ही अप्रिय करने में संलग्न रहते हैं। मैं नहीं जानता था कि आप शहद में डुबोये हुए शहद के समान हैं।)

गुप्त मंत्रणा

गुप्त मंत्रणा सुनने के पात्र

महाभारत के शांति पर्व में गुप्त मंत्रणा को सुनने के पात्र निम्नलिखित गुणों से युक्त व्यक्ति हो सकते हैं-

1. जो कुलीन हो, अपनी शक्ति को छिपावे नहीं।
2. जो उत्तम कुल और अपने ही देश में उत्पन्न हुए हों। बुद्धिमान, रूपवान, बहुज्ञ और निर्भय हो।
3. जो अच्छे कुल में उत्पन्न, शीलवान, इशारे समझने वाले, देशकाल के विधान को समझने वाले हों।
4. जिनका सदाचार नष्ट हुआ नहीं है।
5. जो उत्तम व्रत का पालन करने वाले हों, तथा श्रेष्ठ एवं सत्यवादी हों।
6. जिसके जीवन में कीर्ति की प्रधानता हो तथा जो अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहता हो।
7. जो कामना, भय, क्रोध अथवा लोभ से भी धर्म का उल्लंघन न करता हो
8. जो शुद्ध आचरण वाला, विद्वान तथा सब तरह के कार्यों में परीक्षा करने पर निर्दोष सिद्ध हुआ हो
9. जो ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न अपने और शत्रु पक्ष के लोगों की प्रकृति का पारखी हो।
10. जो संतोषी, सत्पुरुषों द्वारा सम्मानित, शूरवीर, पाप से घृणा करने वाला, गुप्त मंत्रणा को समझने वाला, समय की पहचान रखने वाला तथा शौर्य सम्पन्न हो।
11. जो लोगों को समझा-बुझाकर अपने वश में करने में निपुण हो।
12. जो विश्वसनीय एवं नीति शास्त्र का विशेषज्ञ हो।

गुप्त मंत्रणा सुनने के अपात्र

निम्नलिखित व्यक्ति गुप्त मंत्रणा सुनने के लिए अपात्र बताये गये हैं।

1. जो अनुरक्त हो, अन्यान्य गुणों से सम्पन्न हो और बुद्धिमान हो, किंतु सरल स्वभाव का न हो।

2. जिसका शत्रुओं के साथ सम्बन्ध हो तथा अपने राज्य के नागरिकों के प्रति जिसकी अधिक आदर बुद्धि न हो।

3. जो मूर्ख, अपवित्र, जड़, शत्रुसेवी, बढ़-चढ़कर बातें बनाने वाला तथा सुहृद न हो।

4. जिसके पिता को अधर्माचरण के कारण पहले ही अपमानपूर्वक पदच्युत किया गया हो।

5. जो थोड़े से भी अनुचित कार्य के कारण दंडित करके निर्धन कर दिया गया हो, वह सुहृद एवं अन्यान्य गुणों से सम्पन्न होने पर भी अपात्र ही होता है।

विशेष-

जहाँ गुप्त विचार किया जाता हो, वहाँ या उसके अगल-बगल आगे पीछे और ऊपर नीचे भी किसी तरह बौने, कूबड़े, लंगड़े, अंधे, गूंगे न हों। आज सूचना तकनीकी के विकास के परिणामस्वरूप लोग गोपनीय ढंग से कैमरे लगाकर गोपनीयता को भंग कर देते हैं। अतएव गुप्त मंत्रणा हेतु ऐसे स्थान का चयन करना चाहिए जो पूर्णतः सूनसान हो अथवा वहाँ किसी प्रकार की टेपिंग आदि की गुंजाइश न हो।

महाभारत के उद्योग पर्व में कहा गया है कि-

चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन,
वर्ज्यान्याहुः पण्डितस्तानि विधात्।
अल्पप्रज्ञैः सह मत्तं न कुर्या,
न्न दीर्घसूत्रै रमसैश्चारणैश्च।।[70]

अर्थात थोड़ी बुद्धि वाले, दीर्घसूत्री, जल्दबाज और स्तुति करने वाले लोगों के साथ गुप्त सलाह नहीं करनी चाहिए। ये चारों महाबली राजा के लिये त्यागने योग्य बताये गये हैं। विद्वान पुरुष ऐसे लोगों को पहचान लें।

आत्मप्रशंसा का सिद्धांत

संचार के इस सिद्धांत में सम्प्रेषक स्वयं अपनी ही प्रशंसा अन्य व्यक्ति के समक्ष प्रेषित करता है। इसमें वक्ता एक होता है परन्तु श्रोताओं की संख्या निश्चित नहीं होती। सामान्यतया श्रोता एक समूह में होते हैं। कभी-कभी यह समूह बड़ा होता है तो कभी छोटा। अन्तर्वैयक्तिक संचार में भी

कभी-कभी वक्ता अपने विचार को व्यक्त करता है। वस्तुतः आत्म प्रशंसा को श्रोता अच्छा नहीं मानते।

दृष्टान्त- दुर्योधन द्वारा आत्म प्रशंसा

महाराज धृतराष्ट्र से संजय ने कौरव-पाण्डव दोनों पक्षों के सेनाओं की शक्ति का तुलनात्मक वर्णन किया तो महाराज धृतराष्ट्र दोनों सेनाओं का गुण-दोष के आधार पर विश्लेषण करते हुये बोले- "दुर्योधन! पाण्डवों में देवी शक्ति, मानवीय शक्ति तथा तेज- इन तीनों दृष्टियों से उत्कृष्टता प्रतीत होती है। इसलिये मुझे उनकी तुलना में तुम्हारा पक्ष कमजोर प्रतीत हो रहा है। मैं यह अनुमान पर नहीं कर रहा हूँ बल्कि प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। तात्! मैं दिन-रात सोचते हुए नींद नहीं ले पा रहा हूँ। कौरवों के लिये यह विनाश का अवसर उपस्थित हुआ है। इससे बचने के लिए पाण्डवों से सन्धि के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है अतएव तुम सन्धि कर लो। समस्त देवता भी उनकी सहायता करेंगे।"

तदनन्तर दुर्योधन ने कहा- "नरश्रेष्ठ! आप जो यह मान रहे हैं कि देवता पाण्डवों की सहायता करेंगे यह ठीक नहीं है क्योंकि राग-द्वैष, ममता तथा द्रोह रूपी दोषों से रहित होने के कारण ही देवताओं को देवत्व प्राप्त है। देवता ऐसे कार्यों में प्रवृत्त नहीं होते। मुझमें भी दैव बल है। यदि मैं अभिमंत्रित कर दूँ तो सदा सम्पूर्ण लोगों को जलाकर भस्म कर डालने की इच्छा से प्रज्ज्वलित हुई आग भी सब ओर से सिमटकर बुझ जायेगी। मुझे भी देवताओं से अनुपम तेज प्राप्त हुआ है। राजन्! मैं सब लोगों के देखते-देखते विदीर्ण होती हुई पृथ्वी तथा टूटकर गिरते हुये पर्वत-शिखरों को भी मंत्रबल से अभिमंत्रित करके पहले की भांति स्थापित कर सकता हूँ। इस जगत में विनाश के लिये प्रकट हुई महान कोलाहलकारी भयंकर शिलावृष्टि अथवा आँधी को भी मैं समस्त प्राणियों पर दया करके सबके ऊपर रथ और पैदल सेनायें चल सकती हैं। एकमात्र मैं ही दैव तथा असुर शक्तियों को प्रकट करने में समर्थ हूँ। महाराज मेरे राज्य में रहने वाली प्रजाओं के लिये बादल प्रचुर जल बरसाता है जिनसे मैं द्वैष रखता हूँ उनकी रक्षाका साहस अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि, मरुदगणों सहित इन्द्र तथा धर्म में भी नहीं है। यदि ये लोग अनायास ही मेरे

शत्रुओं की रक्षा करने में समर्थ होते तो कुन्ती के पुत्र तेरह वर्षों तक कष्ट नहीं भोगते। पिताश्री! मैं जो बात मुँह से कह देता हूँ कि इसी प्रकार होगा, मेरा वह कथन पहले कभी भी मित्थ्या नहीं हुआ है। इसलिए लोग मुझे सत्यवादी कहते हैं।" अन्त में उसने कहा-

न हयहं श्लोघनो राजन् भूतपूर्व कदाचन्।
आश्वासनार्थं भवतः प्रोक्तं न श्लाघ्या नृप।।
पाण्डवाश्चैव मत्स्यांश्च पंचलान् केकयैः सह।
सात्यकिं वासुदेवं च श्रोतासि विजितानि भया।।
सरितः सागरं प्राप्य यथा नश्यन्ति सर्वशः।
तथैव ते विनगंक्ष्यन्ति मामासाद्य सहान्वयाः।।[71]

(अर्थात महाराज आज से पहले मैंने कभी भी आत्म प्रशंसा नहीं की है; क्योंकि मनुष्य जो अपनी प्रशंसा करता है वह अच्छे पुरुषों का कार्य नहीं है। आप किसी दिन सुनेंगे कि मैंने पाण्डवों को, मत्स्य देश के योद्धाओं को, केकयों सहित पांचालों को तथा सत्यकि और बसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण को जीत लिया है। जैसे नदियाँ समुद्र में मिलकर सब प्रकार से अपना अस्तित्व खो बैठती हैं, उसी प्रकार वे पाण्डव आदि योद्धा मेरे पास आने पर अपने कुल परिवार सहित नष्ट हो जायेंगे।)

परा बुद्धिः परं तेजो वीर्यं च परमं मम।
पराविद्या परोयोगो मम तेभ्यो विशिष्यते।।
पितामहश्च द्रोणश्च कृपः शल्यः शलस्तभा।
अस्त्रेषु यत् प्रजानन्ति सर्वं तन्मयि विद्यते।।[72]

अर्थात मेरी बुद्धि उत्तम है, तेज उत्कृष्ट है, बल पराक्रम महान है, विद्या बड़ी है तथा उद्योग भी सबसे बढ़कर है। ये सारी वस्तुयें पाण्डवों की अपेक्षा मुझमें अधिक हैं। पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, शल्य तथा शल- ये लोग अस्त्रविद्या के विषय में जो कुछ जानते हैं, वह सारा ज्ञान मुझमें विद्यमान है।

दृष्टान्त- कर्ण की आत्म प्रशंसा

कौरव सभा में महाराज धृतराष्ट्र अर्जुन के विषय में संजय से

बार-बार प्रश्न कर रहे थे। इसे देख कर्ण ने दुर्योधन को प्रसन्न करते हुए कहा-

मित्थ्या प्रतिज्ञाय मया यदस्त्रं
रामात् कृतं ब्रह्ममयं पुरस्तात्।
विज्ञाय तेनस्मि तदैवमुक्त
स्ते नान्तकाले प्रतिमास्यतीति।।[73]

(राजन्! मैंने पूर्व काल में झूठे ही अपने को ब्राह्मण बताकर परशुराम जी से जब ब्रह्मास्त्र की शिक्षा प्राप्त कर ली, तब उन्होंने मेरा यथार्थ परिचय जानकर मुझे इस प्रकार कहा- कर्ण! अन्त समय आने पर तुम्हें इस ब्रह्मास्त्र का स्मरण नहीं रहेगा।')

महापरधि हयपि यन्न तेन
महर्षिणां गुरुणा च शप्तः।
शक्तः प्रदग्धुं ध्यपि तिग्मतेजाः
ससागरामप्यवनिं महर्षिः।।[74]

(यद्यपि मेरे द्वारा उन महर्षि का महान अपराध हुआ था तथापि उन गुरुदेव ने जो मुझे शाप नहीं दिया यह उनका मेरे ऊपर बहुत बड़ा अनुग्रह हजै। अन्यथा वे प्रचण्ड तेजस्वी महामुनि समुद्र सहित सारी पृथ्वी को भी दग्ध कर सकते हैं।)

प्रसारितं दृयस्य मया मनोऽभू
च्छुश्रूयषा स्वेन च पौरुषेण।
तदास्मि चास्त्रं मय सावशेषं
तत्मात् समर्थोऽस्मि ममैष भारः।।[75]

(मैंने अपने पुरुषार्थ तथा सेवा सुश्रुषा से उनके मन को प्रसन्न कर लिया था। वह ब्रह्मास्त्र अब भी मेरे पास है। मेरी आयु अभी शेष है, अतः मैं पाण्डवों को जीतने में समर्थ हूँ। यह सारा भार मुझ पर छोड़ दिया जाये।)

"मुझे महर्षि परशुराम का आशीर्वाद प्राप्त है। वे महान धनर्धुर वीर एवं ऋषि थे। शस्त्र विद्या के प्रकाण्ड पंडित थे। उनके कृपा प्रसाद से मैं पलक मारते-मारते पांचाल, करुष तथा मत्स्यदेशीय योद्धाओं और कुन्तीकुमारों को पुत्र-पौत्रों सहित मारकर शस्त्र द्वारा जीते हुये पुण्य लोकों में जाऊँगा।

महाराज! पितामह भीष्म तथा आचार्य द्रोण एवं समस्त मुख्य-मुख्य भूपाल भी आप के समीप ही रहे। मैं अपनी प्रधान सेना के साथ जाकर अकेले ही सभी कुन्ती कुमारों एवं उनकी सेनाओं को मार डालूँगा। इसका सारा भार मुझ पर छोड़ दीजिये।"

कर्ण की इस प्रकार आत्म प्रशंसा को सुनकर पितामह भीष्म ने कहा- "कर्ण क्यों अपनी वीरता की डींग मार रहा है। जान पड़ता है काल ने तेरी बुद्धि को ग्रस लिया है। क्या तू नहीं जानता था कि युद्ध में तुझ प्रधान वीर के मारे जाने पर सारे धृतराष्ट्र पुत्र ही मृतप्राय हो जायेंगे? श्रीकृष्ण सहित अर्जुन ने खाण्डववन दाह के समय जो पराक्रम किया था, उसे सुनकर ही बान्धवों सहित मुझे अपने मन पर काबू पाना उचित था। देवेश्वर भगवान महेन्द्र ने जो तुझे शक्ति प्रदान की है वह भगवान कृष्ण के चलाये हुये चक्र से आहत होकर सभरभूमि में छिन्न-भिन्न हो जायेगी। तेरा सर्प मुख बाण कुंती नंदन अर्जुन के बाण समूहों से छिन्न-भिन्न हो जायेगा। वसुदवे नंदन भगवान श्रीकृष्ण एवं गांणीवधारी अर्जुन तुझसे भी प्रबल शत्रुओं का संहार कर सकते हैं।

तदनंतर कर्ण ने पुनः कहा-

असंशयं वृष्टिपतिर्यथोक्तं
स्तथा च भूमांश्च ततो महात्मा।
अहं यदुक्तं पुरुषं तु किंचित्
पितामहस्तस्य फलं श्रृणोतु।।[76]

इसमें सन्देह नहीं कि वृष्णिकुल के स्वामी महात्मा श्रीकृष्ण जैसा प्रभाव बताया गया है। उससे भी बढ़कर है। परंतु मेरे प्रति जो किंचित कटु वचन का प्रयोग किया गया है उसका परिणाम क्या होगा? यह पितामह भीष्म मुझसे सुन लें-

नयास्यामि शस्त्राणि न जातु संख्ये
पितामहो द्रक्ष्यति मां समायाम्।
त्वारी प्रशान्ते तु मम प्रभावं
द्रक्ष्यन्ति सर्वे भुवि भूमिपाला।।[77]

अर्थात मैं अपने अस्त्र-शस्त्र रख देता हूँ। आप कभी पितामह मुझे

इस सभा में अथवा युद्ध भूमि में नहीं देखेंगे। आपके शांत हो जाने पर ही समस्त भूपाल रणभूमि में मेरा प्रभाव देखेंगे।

आत्मघाती प्रतिज्ञा से बचाव का सिद्धांत

जब कोई व्यक्ति ऐसी प्रतिज्ञा करता है जिसे मूर्त रूप देना संभव नहीं होता, वह व्यक्ति किसी क्षणिक आवेश से ऐसी प्रतिज्ञा कर लेता है। किंतु जब वह पूर्ण होता संभव नहीं प्रतीत नहीं होता तो उसके विकल्प की खोज करने लगता है। विकल्प उस प्रतिज्ञा के भंग न होने का समाधान प्रस्तुत करना है। ताकि प्रतिज्ञाकर्ता आत्मघात करने से बच जाए। इस प्रकार यह सिद्धांत मुख्य रूप से कई चरणों में संपादित होता है।

1. प्रथम चरण- इसमें व्यक्ति प्रतिज्ञा करता है।
2. द्वितीय चरण- इस चरण में जब प्रतिज्ञा पूर्ण होने संभव नहीं दिखाई देता तो वह उसके विकल्प की खोज में लग जाता है।
3. तृतीय चरण- में विकल्प प्रस्तुत होने पर उसके अनुसार कार्य संपादित करता है।
4. यदि विकल्प नहीं मिलता है तो वह आत्मघाती कदम उठाता है।

महाभारत के कर्ण पर्व में एक ऐसा दृष्टांत मिलता है जिसके आधार पर इस सिद्धांत को समझा जा सकता है।

1. प्रथम चरण- गांडीवधारी अर्जुन अपने मन में प्रतिज्ञा किये थे कि-
'अन्यस्मै देहि गाण्डीवमिति मा चोऽमिचोदयेत्।' (अर्थात जो मुझसे कह दे कि तुम अपना गांडीव धनुष दूसरे को दे दो, उसका मैं सिर काट दूँगा।)
2. द्वितीय चरण- कर्ण के बाणों से घायल होकर धर्मराज युधिष्ठिर विश्राम कर रहे थे। भीम के निर्देश अनुसार भगवान कृष्ण और अर्जुन महाराज युधिष्ठिर को देखने के लिये गये। युधिष्ठिर ने अर्जुन को अनेक अपमानजनक वचन कहे। उन्होंने अर्जुन पर अनेक आक्षेप भी लगाये। यहाँ तक कह दिया कि-

"मासेऽपतिष्यः पंचमे त्वं सुकृच्छ्रे
न वा गर्भे आभविष्यः पृथायाः।
तत् ते श्रेयो राजपुत्राभविष्य
न्न चेत् संग्राममपादपयानं दुरात्मन्।।[78]

अर्थात दुरात्मा पुत्र यदि तुम पाँचवे महीने माता के गर्भ से गिर गये होते अथवा माता कुंती के अत्यंत कष्टदायक गर्भ में आते ही नहीं तो वह तुम्हारे लिये अच्छा होता क्योंकि उस दशा में तुम्हें युद्ध से भाग जाने का कलंक तो नहीं प्राप्त होता।

धिग्गाण्डीवं धिक् च ते बाहुवीर्य
मसंख्येयान वाणागणांश्च धिक् ते।
धिक् ते केतुं केसरिणः सुतस्य।
क्रशानुदत्तं च रथं धिक्ते।।[79]

(अर्थात 'धिक्कार है तुम्हारे इस गाण्डीव धनुष को। धिक्कार है तुम्हारी भुजाओं के पराक्रम को, धिक्कार है तुम्हारे इन असंख्य बाणों को, धिक्कार है हनुमान जी के द्वारा उपलक्षित तुम्हारी इस ध्वजा को तथा धिक्कार है अग्नि देव के दिये हुये इस रथ को।)

उन्होंने अर्जुन को इसके अतिरिक्त यह भी कहा-

राधेमयेतं यदि नाद्य शक्त
श्चरन्तमुग्रं प्रतिबाधनाय।
प्रयच्छान्यस्मै गाण्डीवमेतद्ध
त्वन्तो योऽस्त्रैरम्यधिको वा नरेन्द्रः।।[80]

अर्थात यदि तुम आज रणभूमि में विचरते हुए इस भयानक वीर राधा पुत्र कर्ण का सामना करने की शक्ति नहीं रखते तो, अब यह गांडीव धनुष दूसरे किसी ऐसे राजा को दे दो जो अस्त्र बल में तुमसे बढ़कर हो। युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर गांडीवधारी अर्जुन ने उन्हें मार डालने के लिये तलवार म्यान से निकाल ली। तब भगवान कृष्ण ने कहा- "पार्थ! यह क्या? तुमने तलवार कैसे उठा ली। धनंजय यहाँ तो कोई ऐसा दिखाई नहीं देता, जिसके साथ तुम्हें युद्ध करना हो। तब गांडीव धारी अर्जुन ने कहा-

अन्यस्मै देहि गाण्डीवमिति मां चोऽमिचोदयते।
मिन्धामहं तस्य शिर इत्युपांशवतं मम्।
तदुक्तं मम चानेन राज्ञात्रित पराक्रम।।
समक्षं तव गोविन्द न तत् क्षन्तुमिहोत्सहे।

तस्मादेनं वधिस्यामि राजानं धर्मभीरूकय्।।[81]

जो मुझसे यह कह दे कि तुम अपना गाण्डीव धनुष दूसरे को दे दो, तो उसका सिर मैं काट दूँगा; मैंने मन ही मन यह प्रतिज्ञा कर रखी है। अनन्त पराक्रमी गोविद! आप के सामने ही इन महाराज न मुझसे यह बात कही है। अतः मैं इन्हें क्षमा नहीं कर सकता। मैं अपनी प्रतिज्ञा पालन करने हेतु इनका वध करूँगा। तात आप इस अक्सर पर जो उचित समझते हैं बताइये क्योंकि आप भूत और भविष्य को जानते हैं जो आप कहेंगे मैं वही करूँगा।'

तत्पश्चात भगवान श्रीकृष्ण ने धिक्कार है, धिक्कार है ऐसा कहते हुये धनंजय से बोले- 'जो करने योग्य होने पर भी असाध्य हो तथा जो साध्य होने पर भी निषिद्ध हों ऐसे कर्मों से जो सम्बन्ध जोड़ता है वह पुरूषो में अधम माना जाता है। कुन्तीनक्न्दन तुम अपना हो अज्ञानवश धर्मज्ञ मानकर जो धर्म की रक्षा करने चले हो, उसमे प्राणिहिंसा का पाप है; यह बात तुम्हारे जैसे धर्मज्ञा की समझ मे नहीं आती है। नरश्रेष्ठ तुम गंवार दूसरे मनुष्यों के समान अपने भाई का वध कैसे करोगे? पार्थ तुमने नासमझ बालक के समान पहले कोई प्रतिज्ञा कर ली थी। इसीलिये तुम मूर्खतावश अधर्मयुक्त कार्य करने को तैयार हो गये हो। इस प्रकार भगवान कृष्ण ने अर्जुन को समझाया। जब अर्जुन की समझ में बात आ गई तब उन्होंने भगवान केशन से कहा-

श्रीकृष्ण! आप हमारे माता-पिता के तुल्य हैं। आप ही परम् मति और परम आश्रय हैं। तीनों लोकों में कहीं ऐसी कोई बात नहीं है जो आपको विदित न हो। अतः आप ही परम धर्म को यथार्थ रूप से जानते हैं। मैं अब बड़े भैया धर्मराज को वध योग्य नहीं मानता। मेरी इस मानसिक प्रतिज्ञा के विषय में आप ही कोई अनुग्रह बताइये जिससे भाई का वध किये बिना ही मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो जाये। उन्होंने पुनः कहा

जानासि दाशार्ह मम व्रतं त्वं
यो मां ब्रूयात कश्चन मानुषेण।
अन्यस्मै त्वं गाण्डिवं देहि पार्थ
त्वत्तोऽस्त्रैर्वा वीर्यतो वा विशिष्टः।
हन्यामहं केशव लं प्रसह्य

भीमोस्यात् तूबरकेति चोक्तः।
तन्मे राजा प्रौक्तवांस्ते समक्षं
धनुर्देहीत्यसकृद् वृष्णिवीर।।[82]

(अर्थात दशार्हकुलनंदन आप तो यह जानते ही हैं कि मेरा व्रत क्या है? मनुष्यों में जो कोई भी मुझसे यह कह दे कि पार्थ! तुम अपना गांडीव धनुष किसी दूसरे ऐसे पुरुष को दे दो जो अस्त्रों के ज्ञान अथवा बल में तुमसे बढ़कर हो, तो केशव मैं उसे बलपूर्वक मार डालूँ। इसी प्रकार भीमसेन को कोई मूँछ-दाढ़ी रहित कह दे तो वे उसे मार डालेंगे, कृष्णवीर! राजा युधिष्ठिर ने आपके सामने ही बारम्बार मुझसे कहा है अपना धनुष दूसरे को दे दो।)

इतना ही नहीं केशव! यदि मैं महाराज युधिष्ठिर को मार डालूँ तो इस जीव जगत में थोड़ी देर मैं जीवित नहीं रह सकता। यदि किसी तरह पाप से छूट जाऊँ तो धर्मराज के वध का चिंतन करके जी नहीं सकता। निश्चय ही इस समय मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया हूँ। अतः हे केशव-

यथा प्रतिज्ञा मम लोकबुद्धो
भवेत सत्या धर्ममृतां वरिष्ठ।
यथाजीवेत् पाण्डवोऽहं च कृष्णा
तथा बुद्धिं दातुमप्यर्हसि त्वम्।।[83]

(अर्थात धर्मात्माओं में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण! संसार के लोगों की समझ में जिस प्रकार मेरी प्रतिज्ञा सच्ची हो जाये और जिस प्रकार पांडु पुत्र राजा युधिष्ठिर और मैं दोनों जीवित रह सकें, वैसी कोई सलाह आप मुझे देने की कृपा करें।)

तदन्तर भगवान कृष्ण ने कहा-

राजा श्रान्तो विक्षतो दुःखितश्च
कर्जेन संख्ये निशितैर्वाणसंधैः।
यश्चानिशं सूत्रपुत्रेण वीर
श्रैर्मृशं तडितोऽयुध्यमानः।।[84]

पार्थ राजा युधिष्ठिर थक गये हैं। कर्ण के युद्धस्थल में अपने तीखे बाण समूहों द्वारा इन्हें क्षत-विक्षत कर दिया है, इसीलिये ये बहुत दुःखी हैं।

इतना ही नहीं, जब ये युद्ध नहीं कर रहे थे, उस समय भी सूत पुत्र ने इनके ऊपर निरंतर वाणों की वर्षा करके इन्हें अत्यन्त घायल कर दिया। वे महाराज अत्यन्त दुःखी हैं। दुःखी होने के कारण ही उन्होंने तुम्हारे प्रति रोषपूर्ण अनुचित बातें कहीं हैं। वे यह भी सोच रहे हैं कि यदि अर्जुन को क्रोध न दिलाया गया तो वे युद्ध में कर्ण को मार नहीं सकते। वे यह भी जानते हैं कि इस भू पर कर्ण को तुम्हारे सिवा कोई दूसरा मार नहीं सकता। इसीलिये वे महाराज वध्य नहीं है। इधर तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना है अतएव वे जिस प्रकार जीवित रहते हुए मरे के समान हो जांये वही उपाय बताता हूँ। उसे तुम करो-

यदा मानं लभते माननार्हं
स्तदा स वै जीवति जीवलोके।
यदावमानं लभते महात्तं
तदा जीवनमृत इत्युच्यते सः।।
सम्मानितः पार्थिवोऽयं सदैव
त्वया च भीमेन तथा यमाभ्याम्।
वृद्देश्च लोके पुरुषैश्च शूरै
स्तस्यापमानं कलया प्रयुङ्क्ष्व।।[85]

अर्थात इस जीव जगत में मानवीय पुरुष जब तक सम्मान पाता है तभी तक वह वास्तव में जीवित है। जब वह महान अपमान पाने लगता है तब वह जीते-जी मरा हुआ कहलाता है। तुमने, भीमसेन ने, नकुल-सहदेव ने तथा अन्य वृद्ध पुरुषों एवं शूरवीरों ने जगत में राजा युधिष्ठिर का सम्मान किया है, किंतु इस समय तुम उनका थोड़ा सा अपमान कर दो।

त्वमित्यत्रभवन्तं हि ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरम्।
त्वामित्युक्तो हि नहतो गुरुर्मवति भारत।।[86]

पार्थ! तुम युधिष्ठिर को सदा आप कहते आये हो। आज उन्हें 'तू' कह दो। भारत यदि किसी गुरुजन को 'तू' कह दिया जाए तो वह साधु पुरुषों की दृष्टि में उसका वध ही हो जाता है।

अर्जुन आज तुम धर्मराज युधिष्ठिर के प्रति ऐसा ही व्यवहार करो।

आज तुम उनके लिए इस समय अधर्मयुक्त वाक्य का ही प्रयोग करो। श्रुति का यह भाव है कि गुरु को तू कह देना बिना मरे ही मार देने के समान है। पार्थ तुम्हारे द्वारा इस अनुचित शब्द को सुनकर धर्मराज अपना वध हुआ ही समझेंगे। बाद में उनके चरणों को प्रणाम करते हुए उनसे अपने इस व्यवहार के लिए न्यायोचित वचन बोलते हुए क्षमा माँग लेना।

तृतीय चरण

तत्पश्चात अर्जुन ने भगवान केशव द्वारा बताये गये उपाय का पालन करते हुए महाराज युधिष्ठिर से कहा- "राजन! 'तू' तो स्वयं ही युद्ध से भागकर एक कोस दूर आ बैठा है। अतः तू मुझे न बोल, न बोल। हाँ भैया, भीमसेन को मेरी निंदा करने का अधिकार है जो कि समस्त संसार के प्रमुख वीरों के समान अकेले समरांगण में जूझ रहे हैं। वे रणभूमि में अत्यंत दुष्कर पराक्रम प्रकट कर रहे हैं। वे जैसा पराक्रम कर रहे हैं तू वैसा कर ही नहीं सकता। उनका पराक्रम इन्द्र के समान है। अतः भैया भीमसेन ही मेरी निंदा करने के अधिकारी हैं। तू मेरी निंदा नहीं कर सकता क्योंकि तू अपने पराक्रम से नहीं, हितैषी सुहृदों द्वारा सदा सुरक्षित रहता है। जो शत्रु पक्ष के महारथियों, गजराजों, घोड़ों और प्रधान-प्रधान पैदल योद्धाओं को भी रौंदकर दुर्योधन की सेना में घुस गये हैं। वे एकमात्र शत्रु दमन भीमसेन ही मुझे उलाहना देने के अधिकारी हैं।

राजन! नकुल ने समर भूमि में प्राणों का मोह छोड़कर सहर्ष आगे बढ़-बढ़कर बहुत से हाथी, घोड़े और शूरवीर योद्धाओं का वध किया है। युद्ध की अभिलाषा रखने वाला वह शत्रु दमन वीर भी मुझे उलाहना दे सकता है। सहदेव भी दुष्कर कर्म किया है। शत्रु सेना का गर्दन काटने वाला वह बलवान वीर निरंतर युद्ध में लगा रहता है। वह भी यहाँ आया था, किंतु कुछ भी न बोला। देख ले, मुझमें और उसमें कितना अंतर है?

धृष्टधुद्यम्न, सात्यकि, द्रोपदी के पुत्र यधामन्यु, उत्तम मौजा और शिखंडी ये सभी वीर युद्ध में उत्पन्न पीड़ा सहन करते आये हैं। अतः ये ही मुझे उपालभ्य दे सकते हैं, तू नहीं। महाराज धर्मराज! ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि श्रेष्ठ ब्राह्मणों का बल उनकी वाणी में होता है और क्षत्रिय का बल उनकी भुजाओं में। परन्तु तेरा बल केवल वाणी में है, तू निष्ठुर है, मैं जैसा बलवान हूँ, उसे तू

ही अच्छी तरह जानता है। मैं सदा स्त्री, पुत्र, जीवन और यह शरीर लगाकर तेरा प्रिय कार्य सिद्ध करने के लिए जमा रहता हूँ। फिर भी तू अपने वाग्वाणों द्वारा मुझे मार रहा है। तू द्रोपदी की शैया पर बैठा-बैठा मेरा अपमान न कर। मैंने तेरे लिये ही बहुत बड़े-बड़े महारथियों का संहार कर डाला है। और कर भी रहा हूँ। इसी से तू निष्ठुर हो गया है। मुझे तुझसे कभी भी कोई सुख मिला हो इसका स्मरण नहीं। युधिष्ठिर तेरा प्रिय करने के लिये सत्यप्रतिज्ञ भीष्म जी ने युद्ध में शिखंडी को अपनी मृत्यु बताया था। मेरे ही द्वारा सुरक्षित होकर उसने भीष्म जी को मारा है। मैं तेरे राज्य का अभिनंदन नहीं करता। क्योंकि तू अपना ही अहित करने के लिये जुयें में आसक्त है। स्वयं नीच पुरुषों द्वारा सेवित पाप कर्म करके अब तू हम लोगों के द्वारा शत्रु सेना रूपी समुद्र को पार करना चाहता है। सहदेव ने जुयें के दोष को तुझे बताया था तो भी तू उस पाप कर्म का त्याग नहीं कर सका जिसका परिणाम है कि हम लोग नरक तुल्य कष्ट में पड़े हुए हैं। तुझसे थोड़ा सा भी सुख मिला हो, हम नहीं जानते। क्योंकि तू जुँआ खेलने के दुर्व्यसन में पड़ा है। स्वयं दुव्यर्सन करके हमें कठोर बातें सुना रहा है। नरेन्द्र तू भाग्यहीन जुआरी है। तेरे ही कारण हमारे राज्य का नाश है अब तू अपने वाग्वाा से हमें पीड़ा देते हुए फिर कुपित मत कर।

तत्पश्चात अर्जुन ने पश्चाताप करते हूये फिर से तलवार खीच ली। कृष्ण ने पूछा पार्थ अब तुम क्यो तलवार निकाल रहे हो? तब अर्जन अत्यन्त दुःखी होकर उनसे इस प्रकार बाले- भगवन् मैंने जिसके द्वारा हठ पूर्वक भाई का अपमान रूप अहिकर कार्य कर डाला है अपने उस शरीर को ही अब नष्ट कर डालूँगा।

अहं हनिष्ये स्वशरीरमेव प्रसह्य येनाहितमाचरं वै।[87]

तब भगवान कृष्ण ने कहा-

विशम्य तत् पार्थवचोऽब्रवीदिदं
धनंजयं धर्ममृतां वरिष्ठः।।
राजानमेनं त्वामिहीद मुक्त्वा
किं कश्मलं प्राविशः पार्थधारेम्।
त्वं चात्मानं हन्तुमिच्छस्यरिघ्न

नेदं साधिः सेवितं वै किरीटिन्।।[88]

अर्थात अर्जुन का यह वचन सुनकर धर्मात्माओ मे श्रेष्ठ कृष्ण ने उनसे कहा- पार्थ राजा युद्धिष्ठिर को तू ऐसा कहकर शोक में क्यो डूब गये क्या तुम आत्मघात करना चाहते हो? पार्थ साधु पुरूष ऐसा कभी नही करते।

तत्पश्चात अर्जुन शस्त्र नीचे रखकर धर्मराज युद्धिष्ठिर से क्षमा याचना की। इस प्रकार अर्जुन आत्मघाती प्रतिज्ञा से बच गये।

उत्तेजित करने का सिद्धांत

जब संचार के द्वारा सम्प्रेषक, श्रोता को कोई कार्य करने के लिये उत्तेजित किया जाता है तो इस प्रकार के संचार सिद्धांत का प्रयोग किया जाता है। जो तत्व उत्तेजना पैदा करने वाले होते हैं उसे उत्तेजित तत्व कहते हैं। उत्तेजना व्यक्ति के अन्दर कभी-कभी बाहरी तत्वों से प्राप्त होती है तो कभी यह व्यक्ति के अन्दर स्वतः उत्पन्न होती है। इसे हम निम्नलिखित दृष्टान्त द्वारा सुगमता से समझ सकते हैं।

दृष्टान्त- दुर्योधन और कर्ण के अन्याय का याद दिलाकर कर्ण वध हेतु अर्जुन को कृष्ण का उत्तेजित करना

महाभारत युद्ध में सत्रहवें दिन भगवान श्रीकृष्ण ने कर्ण का वध करने के लिये कृत संकल्प होकर अर्जुन से कहा- "पार्थ! कौरव पक्ष के योद्धा बहुसंख्यक हाथी, घोड़ों से सम्पन्न थे परन्तु तुम जैसे वीर शत्रु को पाकर युद्ध के मुहाने पर नष्ट हो गये। तुम शत्रुओं के लिये दुर्जेय हो। अर्जुन तुम्हारे अन्दर इतनी शक्ति है कि तुम देवता, असुर तथा मनुष्यों सहित तीनों लोगों को रणभूमि में जीत सकते हो फिर कौरव सेना की तो बात ही क्या है? राजा भगदत्त को दूसरा कोई भी वीर तुम्हारे अतिरिक्त जीत नहीं सकता था। रणक्षेत्र में तुमसे सुरक्षित रहकर ही शिखण्डी और धृष्टघुम्न ने पितामह भीष्म एवं आचार्य द्रोण को मार गिराया। तुमने जयद्रथ का वध करते समय जो पराक्रम किया उसे अन्य कौन पुरुष कर सकता है। अर्जुन इस महाभारत युद्ध में कौरव सैनिकों में से अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कर्ण, शल्य और कृपाचार्य ये पांच प्रमुख महारथी मरने से बचे हुए हैं। इनका वध नहीं हो पाया है। नरश्रेष्ठ! तुम आज इन पाँचों महारथियों को मारकर शत्रुहीन हो, द्वीपों और नगरों सहित यह

सारी पृथ्वी महाराज युधिष्ठिर को दे दो। जैसे भगवान विष्णु के द्वारा दानवों के मारे जाने पर देवता प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार आज तुम्हारे द्वारा शत्रुओं का संहार हो जाने पर समस्त पांचाल आनन्दित हो उठे। यह तुम्हारे लिये पुण्य कर्म होगा। मैं तुम्हें इसके लिये आज्ञा देता हूँ। अतः इसमें कोई दोष नहीं है।

निष्पाप अर्जुन! रात्रि के समय पुत्रों सहित तुम्हारी माता कुन्ती को जला देने और तुम सब लोगों के साथ जुआ खेलने में जो दुर्योधन की प्रवृत्ति हुई थी, उन सब षडयंत्रों का मूल कारण यह कर्ण ही था। दुर्योधन को वह सदैव ही उनकी रक्षा करने का विश्वास दिलाता रहता है इसीलिये दुर्योधन को यह विश्वास है कि कर्ण महाराज पाण्डु के सभी पुत्रों एवं वसुदेव नन्दन कृष्ण को जीत लेगा। जब कर्ण में अभिमन्यु के सामने खड़ी होने की शक्ति नहीं रह गई थी वह युद्ध से मुँह मोड़ चुका था। उस समय उसके मन में भाग जाने की बात आ गई थी। वह अपने जीवन से निराश हो चुका था। अर्जुन मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि अभिमन्यु को जो छह महारथियों ने मिलकर निहत्था होने पर मार डाला उस समय मैंने अपनी आंखों से जो देखा वह सब मेरे अंगों को दग्ध किये देता है, उसमें भी दुरात्मा कर्ण का ही द्रोह काम कर रहा था। कर्ण ने भरी सभा में द्यूत क्रीड़ा के समय एक क्रूर मनुष्य की भांति द्रोपदी से कहा था-

विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः।
पतिम्न्यं पृथुश्रोणि वृणीष्व मृदुभाषिणी।
एषा त्वं धृतराष्ट्रस्य दासीभूता निवेशनम्।
प्रविशारालपक्ष्माक्षि न सन्ति पतयस्वत्।
न पाण्डवाः प्रमवन्ति तव कृष्णे कथंचन।[89]

(अर्थात कृष्णे पाण्डव तो नष्ट होकर सदा के लिये चले गये। पृथुश्रोणि! अब तू दूसरा वरण कर ले। मृदुभाषिणी! आज से तू राजा धृतराष्ट्र की दासी हुई। अतः राजमहल में प्रवेश कर। टेढ़ी बरौनियों वाली कृष्णे! पाण्डव अब तेरे पति नहीं रहे। वे तुझ पर अब किसी तरह कोई अधिकार नहीं रखते।)

दासभार्या च पांचालि स्वयं दासी च शोभते।

अद्य दुर्योधनो ध्येकः पृथिव्यां नृपति स्मृतः।
व्यक्तं खण्डतिला ह्येते निरये च निमाज्जिताः।
प्रेष्यवच्चाणि राजानमुणस्थास्यन्ति कौरवम्।[90]

(अर्थात सुन्दरी पांचाल कुमारी! अब तू दासों की भार्या और स्वयं भी दासी है। आज एकमात्र राजा दुर्योधन समस्त भूमण्डल के स्वामी मान लिये गये हैं। निश्चय ही ये पाण्डव थोथे तिलों के समान नपुंसक हैं और नरक में डूब गये हैं। आज से ये दासों के समान कौरव नरेश की सेवा में उपस्थित होंगे।

अर्जुन यह पापी दुरात्मा कर्ण तुम्हारे रहते हुये द्रोपदी को ऐसा कठोर वचन कहा था। अतः आज तुम अपने छोड़े हुये वाणों से उसके वचनों का उत्तर देते हुए सदैव के लिये शान्त कर दो। कर्ण के मरते ही दुर्योधन अपने जीवन और राज्य दोनों से निराश हो जायेगा। भारत जैसे प्राप्त हुये रोगों की चिकित्सा न की गई तो वह शरीर को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार यदि कर्ण की उपेक्षा की गई तो वह पाण्डवों, संजयां और पांचालों का नाश कर सकता है। युधिष्ठिर की सेना में मैं तुम्हारे सिवा दूसरे किसी को ऐसा नहीं देखता जो कर्ण का सामना कर सके। अतः पार्थ तुम कर्ण को मारकर कृतकृत्य, सफल मनोरथ एवं सुखी हो जाओ।

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने पार्थ को कर्ण वध करने हेतु उत्तेजित किया तब पार्थ कर्ण का वध करने हेतु उद्यत हुये और कर्ण का वध करने में सफलता अर्जित किये।

सन्दर्भ

1. *महाभारत, आदि पर्व, (स्वयंवर पर्व), अध्याय 190, श्लोक संख्या 4*
2. *महाभारत, आदि पर्व, (स्वयंवर पर्व), अध्याय 190, श्लोक संख्या 5*
3. *महाभारत, आदि पर्व, (स्वयंवर पर्व), अध्याय 190, श्लोक संख्या 19*
4. *महाभारत, आदि पर्व, (स्वयंवर पर्व), अध्याय 190, श्लोक संख्या 13*
5. *महाभारत, द्रोण पर्व, (घटोत्कच पर्व), अध्याय 182, श्लोक संख्या 36*
6. *महाभारत, द्रोण पर्व, (घटोत्कच पर्व), अध्याय 182, श्लोक संख्या 39*
7. *महाभारत, द्रोण पर्व, (घटोत्कच पर्व), अध्याय 182, श्लोक संख्या 40*

8. महाभारत, द्रोण पर्व, (घटोत्कच पर्व), अध्याय 182, श्लोक संख्या 41
9. महाभारत, द्रोण पर्व, (घटोत्कच पर्व), अध्याय 182, श्लोक संख्या 42
10. महाभारत, द्रोण पर्व, (घटोत्कच पर्व), अध्याय 182, श्लोक संख्या 43
11. महाभारत, द्रोण पर्व, (घटोत्कच पर्व), अध्याय 182, श्लोक संख्या 44
12. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृह पर्व), अध्याय 144, श्लोक 23
13. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृह पर्व), अध्याय 144, श्लोक 24
14. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृह पर्व), अध्याय 144, श्लोक 25
15. महाभारत, आदि पर्व (जतुगृह पर्व), अध्याय 144, श्लोक 26
16. महाभारत, कर्ण पर्व, अध्याय 37, श्लोक संख्या 23
17. महाभारत, कर्ण पर्व, अध्याय 37, श्लोक संख्या 33 से 35
18. वही, श्लोक संख्या 42
19. वही, अध्याय 49, श्लोक संख्या 1
20. महाभारत, शल्य पर्व (गदा पर्व) अध्याय 58, श्लोक संख्या 2
21. वही, श्लोक संख्या 15
22. महाभारत, सभापर्व, जरासंध पर्व, पृ. सं. 843
23. वही, पृ. संख्या 843
24. महाभारत, द्रोण पर्व, अध्याय 189, श्लोक संख्या 14-16
25. महाभारत, द्रोण पर्व, अध्याय 190, श्लोक संख्या 35-36
26. महाभारत, द्रोण पर्व, अध्याय 190, श्लोक संख्या 46-47
27. उद्योग पर्व, अध्याय 129, श्लोक संख्या 20
28. वही, अध्याय 30, श्लोक संख्या 8
29. वही, श्लोक संख्या 11
30. वही, श्लोक संख्या 36
31. वही, श्लोक संख्या 39
32. श्रीमदभागवतगीता, अध्याय 10, श्लोक 32
33. श्रीमदभगवतगीता, अध्याय 10, श्लोक 33
34. श्रीमदभगवतगीता, अध्याय 10, श्लोक 34
35. श्रीमदभगवतगीता, अध्याय 11, श्लोक 55

36. महाभारत, आश्रमवासिक पर्व (पुत्रदर्शनपर्व), अध्याय 30, श्लोक संख्या 13-14
37. वही, श्लोक संख्या 17
38. महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय 107, श्लोक 13
39. वही, श्लोक संख्या 26
40. महाभारत, भीष्म पर्व, भीष्म वध पर्व, अध्याय 107, श्लोक संख्या 70-72
41. आदि पर्व, अध्याय 100, भाग 1, श्लोक 86-87
42. महाभारत, आदि पर्व, भाग 1, अध्याय 100, श्लोक 94
43. वही, श्लोक 95-96
44. वही, पृ. 365
45. महाभारत, सभा पर्व, अध्याय 71, श्लोक 14
46. महाभारत, सभापर्व, अध्याय 68, श्लोक संख्या 51 से 53
47. वही, श्लोक संख्या 12
48. वही, श्लोक संख्या 13
49. वही, श्लोक संख्या 14
50. वही, श्लोक संख्या 26
51. वही, श्लोक संख्या 27-28
52. वही, श्लोक संख्या 29
53. वही, श्लोक संख्या 33-35
54. वही, श्लोक संख्या 39
55. वही, श्लोक संख्या 41
56. वही, श्लोक संख्या 43 से 45
57. द्रोण पर्व, अध्याय 73, श्लोक संख्या 20-21
58. वही, श्लोक संख्या 24
59. वही, श्लोक संख्या 48
60. वही, श्लोक संख्या 49
61. उद्योग पर्व, अध्याय 7, श्लोक संख्या 18-19
62. महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय 4, श्लोक संख्या 6-7

63. वही, श्लोक संख्या 9
64. महाभारत, द्रोण पर्व, अध्याय 158, श्लोक 86
65.
66. महाभारत, द्रोण पर्व, अध्याय 160, श्लोक 9
67. महाभारत, द्रोण पर्व, जयद्रथ वध पर्व, अध्याय 94, श्लोक संख्या 9-10
68. वही, श्लोक 11-12
69. वही, श्लोक 13-14
70. महाभारत, उद्योग पर्व, अध्याय 33, श्लोक 69
71. उद्योग पर्व, अध्याय 61, श्लोक 24-26
72. उद्योग पर्व, अध्याय 61, श्लोक 27-28
73. वही, अध्याय 62, श्लोक 2
74. वही, श्लोक 3
75. वही, श्लोक 4
76. वही, श्लोक 12
77. वही, श्लोक 13
78. कर्ण पर्व, अध्याय 68, श्लोक 29-30
79. वही, श्लोक 31
80. वही, श्लोक 27-27.5
81. वही, अध्याय 69, श्लोक संख्या 9 से 11
82. कर्ण पर्व, अध्याय 69, श्लोक 72-73
83. वही, 75
84. वही, 76
85. वही, 80-81
86. वही, 83
87. वही, अध्याय 70, श्लोक संख्या 25
88. वही, अध्याय 70, श्लोक संख्या 26
89. कर्ण पर्व, अध्याय 73, श्लोक 83-85
90. वही, श्लोक संख्या 86-87

अध्याय 16

सम्प्रेषण के प्रमुख साधन

शब्द संकेत और दृश्य सम्प्रेषण के स्थूल अंग हैं। सम्प्रेषण में इन्हीं साधनों का प्रयोग होता है। ये विचारों और भावनाओं की परिवर्तित शक्तियों के आधार हैं। सम्प्रेषण-प्रक्रिया को न तो हम देख सकते हैं और न इस पर मुख्य रूप से नियंत्रण ही कर सकते हैं। जब हम यथार्थ दृष्टि से सम्प्रेषण करना चाहते हैं तो ये शक्तियाँ आत्मा की धरातल पर उत्पन्न होती हैं और फिर मन पर उनकी छवियों का आकार बनाती हैं। सम्प्रेषण में कुछ कहना लिखना या दिखाना ही पर्याप्त नहीं है। यह सुनिश्चित करना भी आवश्यक है कि वह ग्रहणकर्ता की आत्मा के धरातल पर पहुँच रहा है या नहीं। सम्प्रेषण में एक व्यक्ति अपने विचारों को दूसरे तक पहुँचाना चाहता है। यदि सम्प्रेषक और ग्रहीता दोनों एक स्थान पर हैं तो अंतरवैयक्तिक संचार होता है किन्तु यदि ग्रहीता दूर है तो हम किसी न किसी साधन का प्रयोग संवाद को पहुँचाने के लिए करते हैं।

महाभारत द्वापर युग पर आधारित महाकाव्य है। उस युग में आज की तरह प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का आविष्कार नहीं हुआ था। आज संदेशों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक सम्प्रेषित करने के लिए दूत एवं गुप्तचर व्यवस्था प्रचलित थी। कुछ स्थानों पर पक्षियों के माध्यम से भी संदेशों के आदान-प्रदान का उल्लेख महाभारत में मिलता है जिसका उल्लेख अध्याय छह में किया गया है। इस अध्याय में हम संवाद प्रस्तुत करने के लिए दूत एवं चर की व्यवस्था पर प्रकाश डाल रहे हैं।

दूत व्यवस्था

प्राचीन काल में राष्ट्रों में पारस्परिक राजनयिक सम्बन्ध स्थापित करने का माध्यम दूत था। दूत द्वारा ही राजा सन्धि-वार्ता करते थे और उसी के द्वारा युद्ध के लिये चुनौती देते थे। जब एक राजा दूसरे राजा को किसी प्रकार का सन्देश भेजता था, अथवा उसको यज्ञादि के अवसर पर या युद्ध में

सहायता देने के लिये आमंत्रित करता था, तब यह सब कार्य दूत के माध्यम से ही सम्पन्न होते थे।

दैत्य परम्परा भारत में बहुत प्राचीन है। दूत का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है, वहाँ दूत शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है। ऋग्वेद में ऐसे अनेक स्थानों पर अग्नि को दूत माना गया है और उसे यज्ञ में देवों को बुलाने के लिये कहा गया है। भाषाविद् टीकाकारों का मत है कि इस शब्द के साथ चार वृत्ति (गुप्तचर कार्य) का अर्थ भी सन्निहित है। ऋग्वेद में उल्लेख है कि सरमा नामक देवदूती को वृहस्पति की गायों का हरण करने वाले पाणियो का स्थान तथा उनके धन का पता लगाने के लिये भेजा गया था और वह निश्चित स्थान तक पहुँच गई थी, परन्तु जब पणियों को इसका पता चला तो उन्होंने उसे बहन बनाकर कुछ गायें देने की बात कही, इस पर सरमा ने उन्हें सुझाव दिया कि वे गायों को छोड़कर और कहीं चले जायें।[1] कुछ टीकाकारों ने लिखा है कि सरमा एक कुतिया थी जो देवों के लिये गुप्तचरी करती थी और वे उसे देवदूती कहते थे। परन्तु शब्दों की समानार्थी परम्परा के अनुसार यह मानना ही उचित होगा कि सरमा गुप्तचर न होकर दूत थी क्योंकि यज्ञ के संदर्भ में अग्नि के लिये दूत शब्द का प्रयोग गुप्तचर के रूप में नहीं हुआ है। यदि यह मान लिया जाये कि सरमा एक कुतिया थी तो यह किस प्रकार से माना जा सकता है कि पणि उसे कुछ गायों का प्रलोभन देते, वे उसे मित्र बनाने के लिये केवल बहन जैसा सम्मान ही दे सकते थे क्योंकि कुतिया गायों को लेकर क्या करती? इस प्रकार यह स्वीकार करना ही उचित रहेगा कि सरमा देवों की दूत थी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वेद काल में भी दूत स्वाभिमानी तथा स्वदेश प्रेमी थे और शत्रु देश के दूतों को उत्कोच देकर अपनी ओर मिलाने का प्रयास भी किया जाता था। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद काल में भी दूतों का आदर होता था और उन्हें सम्मानित समझा जाता था तथा उनके प्रति शत्रु भी सद्व्यवहार करता था।

उत्तर वैदिक साहित्य में वर्णित पालागल भी दौत्य कार्य करता था।[2] महाकाव्य काल तक दूत व्यवस्था पर्याप्त उन्नत हो चुकी थी। रामायण में मिथिला और कोशल नरेश के दूतों का उल्लेख है, जो क्रमशः दशरथ और

केकय-राज्य के पास भेजे गये थे। इनके अतिरिक्त रामदूत अंगद और हनुमान का लंका में दूतचर्या का उल्लेख मिलता है। यह सर्वविदित एवं सर्वमान्य है कि अंगद ने राम के दूत के रूप में, रावण को राम का अन्तिम संदेश दिया था कि या तो सीता को वापस कर दो अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। मानस की चौपाई महाभारत में कौरवों की सभा में पाण्डवों द्वारा विदुर, संजय और भगवान को दूत बनाकर भेजने का वर्णन मिलता है। द्रुपद के पुरोहित कृष्ण पाण्डावों के दूत बनकर दुर्योधन की सभा में गये थे और उन्होंने पाण्डवों तथा कौरवों के बीच संधि कराने एवं युद्ध को टालने का प्रयास किया था।

दूत की परिभाषा

''दुनोति स्ववारेण यातव्यभिति दूतः''[3] अर्थात जो अपने आचरण से शत्रु को दुःखी करे, वह दूत है। भारतीय राजनीति में दूत को सर्वत्र इसी रूप में देखा गया है। प्रसिद्ध वेदभाष्यकार सायण ने भी दूत को ''परसैन्यवृतान्त ज्ञापनकुशालः[4] कहा है। मनु ने दूत की उपयोगिता बताते हुये लिखा है कि सन्धि और विग्रह दूत पर निर्भर करते हैं, वही शान्ति की स्थापना करता है और सुसंगठित राष्ट्रों में भेद डाल देता है। दूत वह कार्य करता है जिससे मनुष्यों(राष्ट्रों) में फूट पड़ जाती है।[5] मनु के शब्दों को स्पष्ट करते हुये कुल्लूक लिखत हैं कि परस्पर भिन्न राष्ट्रों में सन्धि स्थापना करने में दूत ही सक्षम होता है और सुसंगठित राष्ट्रों को तोड़ने में भी। परराष्ट्र में रहता हुआ दूत वह कार्य करता है जिससे सुसंगठित राष्ट्रों में फूट पड़े या न पड़े।[6] दूत का यह आचरण निश्चय ही राजा और राष्ट्र को दुःखदायी था। तभी तो राजा को शत्रुदूत का भेद जानने का परामर्श दिया गया है।

दूतस्य यद्रहस्यं च तद्देश्योभायवेतनेः।
तच्छीलेर्वा परिज्ञेय येन शत्रुः प्रसिध्यति।[7]

वस्तुतः दूत अतिप्राचीन काल से ही शत्रु का भेद जानने का सशक्त साधन रहा है। राजशास्त्रप्रणेताओं ने राजा को दूत के माध्यम से शत्रुराष्ट्र का रहस्य जानने की सलाह दी है। दूतेव नरेन्द्रस्तु कुर्यादरिविमर्शनम्।[8] ऋग्वेद में इन्द्र की दूती सरमा पणियों तक इन्द्र का सन्देश पहुँचाने के साथ-साथ उनके रहस्यों का भी पता लगाती है।[9] वहीं एक अन्य स्थल पर यम के दूत कपोत

आदि गुप्तचरी करते बताये गये हैं।[10] रामायण में भी सुग्रीव ने अपने दूत हनुमान को भिक्षु के रूप में प्रथमतः राम-लक्ष्मण के वनागमन का कारण ज्ञात करने के लिये ही भेजा था।[11] इसी प्रकार सीता की खोज के अवसर पर भी हनुमान ने गुप्तचरी के साथ-साथ दौत्यकर्म बड़ी सफलता के साथ निभाया था।

भद्रारेण महाबाहुः प्राकारममिपु प्लुवे।
निशि संका महासत्वो विवेश कपिकुंजर।
प्रविष्टः सत्वसम्पन्नो निशायां माहतात्मजः।
स महापथमास्थाय मुक्ता पुष्प विराजितम्।

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने दूत को चरस्थानीय माना है। चर प्रच्छन्न रूप में जो कार्य करता है वही कार्य दूत प्रकाश रूप में सम्पादित करता है। सभी आचार्य इस सन्दर्भ में एकमत हैं कि परराष्ट्र में रहता हुआ दूत वहाँ के सभी रहस्यों को जानने का प्रयास करे। 'दूत' की यह परिभाषा इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिया के उन शब्दों में अक्षरशः मिलती है जिनमें दूत को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के संरक्षण में आदरास्पद गुप्तचर बताया गया है।

लगभग यही बात 17वीं शताब्दी के प्रसिद्ध राजनितिज्ञ सर हेनरी वोट्टन ने भी कही थी कि "राजदूत ऐसा ईमानदार व्यक्ति है जो अपने देश के हित के लिए विदेश में झूठ बोलने के लिए भेजा जाता है।" चर और दूत में एक दूसरा अन्तर यह है कि दूत का कार्यक्षेत्र केवल परराष्ट्रों तक ही सीमित है जबकि चर राष्ट्र और परराष्ट्र दोनों में ही गुप्तचरी का कार्य करते हैं। परराष्ट्र में गुप्तचर स्वतन्त्र भी कार्य करते थे और दूत भी अपने अलग गुप्तचर रखता था।

महाभारत में महात्मा विदुर एवं भीष्म को कौरव-पाण्डव के बारे में सारी सूचनायें गुप्तचरों के माध्यम से ही प्राप्त होती थी। पाण्डवों के अज्ञातवास के समय दुर्योधन ने गुप्तचर भेजकर पाण्डवों का पता लगाने का प्रयास किया किन्तु असफल रहा।

दूत का महत्व

दूतों की महत्ता एवं आवश्यकता प्रत्येक काल एवं युग में रही है और वर्तमान समय में भी दूत किसी देश की राजव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने का एक प्रमुख अंग माने जाते हैं। प्रारम्भ में, भारत जैसे विशाल देश में छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्व था, जो कालान्तर में कुछ बड़े राज्यों और साम्राज्य में परिवर्तित हो गया। शान्ति और युद्ध दोनों ही काल में उनके बीच पारस्परिक सम्बन्धों के परिणामस्वरूप अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों का विकास प्रारम्भ हुआ। विदेशी आक्रमणों और आवागमन के कारण विदेशों से भारत का सम्बन्ध स्थापित हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विकास ने प्राचीन भारतीय -प्रशासन में दूत-पद को जन्म दिया जिसका सैद्धान्तिक रूप वैदिक युग में ही विद्यमान था। क्रमशः बदलती हुई परिस्थितियों से दूत-पद्धति का क्रमिक विकास और व्यावहारिक उपयोग प्रारम्भ हुआ, जो इंगित करता है कि प्राचीन भारतीय शासकों ने विभिन्न राज्यों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों के संदर्भ में पृथकृत्व के सिद्धान्त का अनुसरण नहीं किया था। दूत सन्धि-विग्रह के अवसर को जानने वाला होता है। इसीलिये दो देशों के बीच सम्बन्धों को सुधारने का प्रयास करता रहता है।

प्राचीन भारत में अन्तर्राज्यीय सम्बन्ध उच्च सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आधार पर स्थित थे। सामान्यतः विभिन्न राज्यों अथवा देशों के मध्य शत्रुता और मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनते और बिगड़ते रहते थे। प्रायः शासकों को यह सर्वाधिकार प्राप्त होता था कि वे दूसरे देशों या राज्यों से मैत्री या शत्रुतापूर्ण नीति निर्धारित करें। इन नीतियों के कुशल निर्धारण-कार्यान्वयन के लिये प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारकों ने मण्डल-सिद्धांत, जो वास्तव में शक्ति सन्तुलन का सिद्धांत था, का प्रतिपादन किया था। इसके साथ ही षड्गुण्य नीति-संधि, विग्रह, संश्रय, द्वैधीभाव, यान और आसन का सिद्धांत प्रस्तुत किया। कूटनीति और अन्तरराज्यीय सम्बन्धों के सफल संचालन हेतु नीति के चार उपायों- साम, दाम, भेद और दण्ड के प्रयोग का भी निर्देश दिया गया था। इन सभी सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप में कार्यान्वित करने के लिए दूत की उपयोगिता तथा उसकी भूमिका को स्वीकार

किया गया। महाभारत के उद्योग पर्व में दृष्टान्त है जिसमें इस बात का उल्लेख है कि पाण्डव वनवास से लौटने पर सर्वप्रथम महाराज द्रुपद के पुरोहित को दौत्य कर्म के लिये महाराज धृतराष्ट्र को भेजा। पाण्डवों को यह विश्वास था कि पुरोहित जी अपनी बातों से धृतराष्ट्र का मन निश्चय ही अपनी ओर फेर लेंगे-

भवांस्तु धर्मसंयुक्तं धृतराष्ट्रं बुवन वचः।
मनांसि तस्य योधानां ध्रुवमावर्तयिष्यति।

दूत का महत्व इसी से सिद्ध हो जाता है कि वैदिक वाङ्.मय में देवताओं के दूतों का भी उल्लेख मिलता है।[12] महाभारत काल में स्वयं श्रीकृष्ण ने दौत्य का कार्य किया था। जो व्यक्ति दूत बनाकर अन्य देश में भेजा जाता था, वह एक प्रमुख अधिकारी तो होता ही था, साथ ही देशभक्त, निर्भीक और कुशल भी होता था, कारण परराष्ट्र से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान अधिकांश दूत पर ही निर्भर था। राजा तथा राज्य की प्रतिष्ठा और कार्य-सफलता प्रायः दूत के व्यक्तित्व, वाकपटुता और कार्यकुशलता पर आश्रित थी। सामान्य परिस्थिति में अथवा युद्धादि के समय विभिन्न राजाओं के मध्य, बातचीत आरम्भ करने का मुख्य साधन दूत ही था। आज भी जब दो देशों के बीच सम्बन्धों में कटुता उत्पन्न होती है तो राजदूत उसे समाप्त करने का प्रयास करते हैं। कौटिल्य ने इसीलिये दूत को राजा का मुख कहा है,[13] तो कामन्दक ने उसका नेत्र,[14] सोमदेव और शुक्र उसे राज्य के मंत्रिमण्डल में स्थान देते हैं।[15] मनु अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में संधि-विग्रह दूत के ही अधीन मानते हैं।[16] दूत रूपी मुख के द्वारा राजा परराज्य में अपनी नीति को अभिव्यक्त करता है। महाभारतकार के अनुसार दूत स्वामी के कथनानुसार यथार्थ बात कहने वाला व्यक्ति होता है।[17] अतएव किसी भी आपत्ति में राजा को दूत की हत्या नहीं करनी चाहिये। दूत का वध करने वाला नरेश अपने मंत्रियों सहित नरक में गिरता है।

न तु हन्यान्नृपो जातु दूतं कस्याचिंदापदि।
दूतस्य हन्ता नियमाविशेत् सचिवैः सह।

अर्थात राजा कभी किसी आपत्ति में भी किसी के दूत की हत्या न

करे। दूत का वध करने वाला नरेश अपने मंत्रियों सहित नरक में गिरता है।
महाभारत, शान्ति पर्व, राजधर्मानुशासन पर्व, अध्याय 25, श्लोक संख्या 26

वास्तव में दूत एक विश्वसनीय संदेशवाहक का कार्य करते हुये राज्यों के मध्य सद्भावना स्थापित करता है। इसी कारण प्राचीन भारतवर्ष में दूत को वर्तमान समय में अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में प्राप्त प्रतिष्ठा से कहीं अधिक महत्वपूर्ण और प्रतिष्ठित व्यक्ति माना जाता था। आजकल जैसे दूत को 'पवित्र और अवध्य' मानते हैं, वैसे ही प्राचीन ग्रंथों में दूत का वध करना वर्जनीय माना गया है।[18] महाभारतकार का मत है कि दूत की हत्या करने वाला राजा अपने मंत्रियों सहित नरक में जाता है।[19] महाभारत प्रणेता ने दूत को कटुवचन कहना अथवा बन्दी बनाना भी वर्जित माना है।[20] वर्तमान समय में दूत का पद महत्वपूर्ण माना जाता है। आज भी राजदूत के रूप में योग्य, विद्वान एवं नीति निपुण व्यक्ति को ही पदस्थ किया जाता है। आज जिस प्रकार की राजनीति पूरे विश्व में चल रही है उसमें दूत का महत्व और भी बढ़ गया है। इसीलिये आज प्रायः हर देशों में एक-दूसरे देश के दूतावास बने हुए हैं। इन दूतावासों से देशों के आपसी सम्बन्धों को मजबूत बनाने में सहायता मिलती है।

दूत के गुण

महाभारत में दूत को सात गुणों से युक्त माना गया है-

कुलीनः शीलसम्पन्नो वाग्मी दक्षः प्रियंवदः।
यथोक्तवादी स्मृतिमान् दूतः स्यात् सप्तमिर्गुणैः।

सातों गुण इस प्रकार हैं-

1. दूत को कुलीन होना चाहिए।
2. दूत शीलवान होना चाहिए ताकि शांति से अपनी बात बता सके।
3. दूत का वाचाल होना भी आवश्यक है। वह अपने राज्य के बारे में समुचित जानकारी देते हुए यथोक्त बात विस्तार से विधिसम्मत बताये।
4. दूत को चतुर होना चाहिए। समय, काल और परिस्थिति के अनुसार आचरण करना चाहिए।
5. दूत को प्रिय वचन बोलना चाहिए ताकि वह दूसरे देश के राजा का दिल

जीत ले।

6. दूत संदेश को ज्यों का त्यों कह देना वाला होना चाहिए। वह अपने राज्य के बारे में जो चाहे कहे, लेकिन अपने राजा द्वारा दिये गये संदेश को ज्यों का त्यों उसको बताना आवश्यक होता है। इसमें वह अपने मन से जोड़-तोड़ कर नये वाक्य न बनाये।

7. दूत को स्मरण शक्ति से सम्पन्न होना चाहिए। अपने राजा द्वारा कही गई बात का उसे स्मरण रहना चाहिए।

अस्यव्धमक्लीबमदीर्घ सूत्रं
सानुकोशं श्लक्ष्यामहार्यमन्यैः।
अरोगजातीय मुदारवाक्यं
दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपम्मम्।

विदुर का विचार, प्रजागर पर्व, अध्याय 37, श्लोक 27, खण्ड 3, पृ. 147

दूत का वर्गीकरण

दूतों के वर्गीकरण से सम्बन्धित प्राचीनतम् उल्लेख यजुर्वेद में प्राप्त होता है। यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में दूत और प्रहित- ये शब्द साथ-साथ आये हैं। दूताय व प्रहिताय व।[21] सायण में उक्त स्थल की व्याख्या करते हुए दूत और प्रहित को क्रमशः 'परसैन्यवृतात्तज्ञापन कुशल' और 'स्वामिना प्रषितः पुरुषः प्रहितः' कहा गया है इससे स्पष्ट होता है कि शत्रु की सेना आदि का रहस्य जानने के लिये परराष्ट्र में नियुक्त व्यक्ति 'दूत' कहे जाते थे। किन्तु जो व्यक्ति राजा द्वारा किन्हीं विशिष्ट अवसरों पर सन्देश आदि पहुँचाने के लिये दूसरे राष्ट्र में भेजे जाते थे, उनकी संज्ञा 'प्रहित' थी।

किन्तु आगे चलकर यह व्यवस्था उलट गयी प्रतीत होती है, क्योंकि प्रायः सभी राजशास्त्रप्रणेताओं ने 'दूत' को राजा का मुख, यथोक्तवादी, दूसरे के लिये बोलने वाला परवश व्यक्ति कहा है।[22] जिससे उसका प्रमुखतया सन्देशवाहक होना ही सूचित होता है। लेकिन परराष्ट्र में सम्मान का पद ग्रहण करने के कारण अपनी स्थिति का लाभ उठाते हुये वह गुप्तचरी करता था- यह दूसरी बात है।[23] इस प्रकार परवर्तीकाल में वह निश्चित रूप से 'प्रहित' ही था। किन्तु सम्भव है कि दूत को गुप्तचरी आदि के कुछ विशेषाधिकार अपने

नियोक्ता की ओर से प्राप्त होते हों प्रहित को नहीं, किन्तु प्राचीन साहित्य में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

दूतों का प्रथम और सुस्पष्ट वर्गीकरण कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। वहाँ कौटिल्य ने दूतों के तीन प्रकार बताये हैं- निसृष्टार्थ, परिमितार्थ और शासनहार।[24] अग्निपुराण और कामन्दकीयनीतिसार के अनुसार भी दूतों के तीन ही प्रकार हैं- निसृष्टोर्थ, मितार्थ और शासनहारक। निसृष्टार्थो मिर्थारच तथा शासनहारकः। सामर्थ्यापादतों हीनो दूतस्य त्रिविधः। सामर्थ्यात्पादतों हीनों दूतस्तु त्रिविधः स्मृतः।[25] विज्ञानेश्वर के अनुसार निसृष्टार्थ, सन्दिष्टार्थ और शासनहार- ये दूतों के तीन प्रकार होते हैं। ते व त्रिविधा- निसृष्टिार्थत सन्दिष्टार्थ, शासनहराश्चेति।[26] सोमदेव कौटिल्य का ही अनुसरण करते हैं। स त्रिविधों निसृष्टार्थ परिमितार्थ शासनहरञ्चवेति।[27] किन्तु युक्तिकल्पतरू में राजर्षिभोज ने विमृष्टार्थ, मिताव्यी और सन्देशहारक- ये तीन प्रकार के दूत बताये हैं।

दूतास्त्रयों मा त्यगुणेः समैः पादार्थवार्जिते।
विमृष्टार्थः कार्य वशसाच्छासनं न करोति यः।
मितार्थः कार्यमावोक्तो न कुर्यादुरोत्तरम्।
यथोक्तवादी सन्देशहारको लेखहारकः।[28]

कौटिल्य का निसृष्टार्थ और भोज का विमृष्टार्थ शब्दार्थ की दृष्टि से एक न होते हुए भी प्रकृति की दृष्टि से 'एक' है। मितार्थ और परिमितार्थ तो समानार्थी शब्द हैं। विज्ञानेश्वर ने इसी को सन्दिष्टार्थ कहा है जो अपनी प्रकृति में मितार्थ से भिन्न नहीं है। शासन, शासनहारक और सन्देशहारक- तीनों में अर्थ और प्रकृति- दोनों ही की समानता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राचीन समय में दूतों की तीन श्रेणियाँ होती थीं जो निम्नलिखित हैं-

1. निसृष्टार्थ-

कौटिल्य के शब्दों में 'अमात्यसम्पदोपेतो निसृष्टार्थ'[29] निसृष्टार्थ दूत की परिभाषा है। 'अमात्यसम्पदोयेत' का अर्थ है- 'अमात्य के गुणों या अधिकारों से युक्त'। इस प्रकार 'निसृष्टार्थ' दूत वह दूत था जिसे अमात्योचित गुण होने के कारण ही अमात्य के अधिकार देकर नियुक्त किया जाता था।

किन्तु एच.एस.भाटिया 'अमात्यसम्पदोपेतः' को निसृष्टार्थ की परिभाषा मानने को तैयार नहीं हैं। उनके अनुसार 'अमात्यसम्पद' एक परिभाषिक शब्द है जिसकी व्याख्या आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में की है। इस प्रकार वह अमात्यसम्पद् शब्द से 'अमात्य के गुणों' का ही ग्रहण करते हैं। दूसरे यह शब्द अर्थशास्त्र में ही सर्वाध्यक्ष (अमात्यसम्पदोपेताः सर्वाध्यक्षाः शक्तितः नियोज्याः)[30] और लेखक (तस्मांदमा त्यसम्पदोपेतः सर्वसमर्थावदाशग्रन्थ श्र्वाविक्षरों लेखवाचनसमर्थो लेखकः स्मात्)[31] के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ मिलता है। अतः उनके अनुसार कौटिल्य के शब्दों को मुश्किल से ही दूतों की परिभाषा माना जा सकता है। वे इन शब्दों से दूतों की योग्यताओं का ही ग्रहण करने के पक्ष में हैं और उनका मत है कि तीन प्रकार के दूतों के लिये प्रयुक्त तीनों शब्द अर्थशास्त्र में अपरिभाषित ही रहे हैं।

प्रो. टी.बी. मुखर्जी ने अमात्यसम्पद् का अर्थ मंत्री का स्तर ही माना है। भारतीय परम्परा का प्रत्येक विद्यार्थी यह भलीभांति जानता है कि समग्र प्राचीन भारतीय राजनीति दर्शन में अधिकारों को योग्यता के साथ जोड़ दिया गया है। प्राचीन भारत में आज की भांति अधिकारों को योग्यता से पृथक नहीं देखा जाता था। अतः जिस व्यक्ति में अमात्योचित गुण हों, उसे दौत्य जैसे महत्वपूर्ण कार्य में नियुक्त किया जाता था। उसकी नियुक्ति करते समय उसे तद्गुणोचित अधिकार देना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कौटिल्य ने 'सर्वाध्यक्षाः' शब्द का प्रयोग किया है जो बहुवचनान्त है। इससे 'भिन्न-भिन्न विभागों के अध्यक्ष' अर्थ ही अभिप्रत हैं।

विभागाध्यक्ष अपने विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होता है, अतः उसे अमात्यसदृश गुणों और अपने विभागीय कार्य के संचालनार्थ अमात्यसदृश अधिकारों से युक्त होना ही चाहिए। इसी प्रकार लेखक विदेशों के भेजे जाने वाले सन्देशों को लिखने का काम करता था।[32] अतः उसका भी उक्त गुणों और अधिकारों से सम्पन्न होना अनुचित नहीं है। वस्तुतः कौटिल्य ने केवल मंत्रियों अथवा अमात्यों की विशिष्ट योग्यताओं का सविस्तार वर्णन किया है। अन्य सभी अधिकारियों में भी वे गुण होने ही चाहिए- यह कौटिल्य की स्पष्ट मान्यता है। हम यह नहीं कह सकते कि अधिकारियों के पीछे गुप्तचर लगे

रहते थे। अतः उन्हें उच्च अधिकार प्राप्त नहीं थे। कौटिल्य की समग्र नीति अविश्वास पर आधारित है। मंत्री, रानी, राजकुमार सभी के पीछे गुप्तचर लगाना कौटिल्य को अभीष्ट था।

उपयुक्त परिप्रेक्ष्य में 'अमात्यसम्पदोप्रेतः' को निसृष्टार्थ दूत की परिभाषा मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। पर राष्ट्र में भेजा गया 'दूत' राजा का मंत्री ही होता है। यह बात अनेक आचार्यों ने स्वीकार की है।

अना सन्नेठेवयेषु दूतों मन्त्री

देशान्तरस्थित कार्य दूतद्रारेण सिधति।

सस्माद् दूतो यथामन्त्री सत्वांह हि प्रसाध्येत।[33]

यह स्थिति सामान्य दूत की नहीं हो सकती। निश्चय ही निसृष्टार्थ कोटि के दूत के लिये यह कहा गया होगा- रामायण में सुग्रीव के दूत हनुमान को राम ने 'सचिव' कहा है। *सचिवो यं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्थ महात्मनः।*[34] जिससे उनका 'अमात्यसम्पदोप्रेत' होना स्वतः सिद्ध है। पाण्डवों के दूत ऐसे सर्वाधिकार सम्पन्न दूत थे, जिन्हें युधिष्ठिर ने यह अधिकार देकर भेजा था कि जो भी हमारे हित की बात हो उसे दुर्योधन से कहना। ययस्मद्धितं कृष्ण तत्वद्वाच्चः सुयोधनः।[35] सभी आचार्यों ने कृष्ण को निसृष्टार्थ दूत के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है।

अर्थशास्त्र के बाद अग्नि पुराण[36] और कामन्दकीयनीतिसार[37] में 'निसृष्टार्थ' शब्द का प्रयोग मिलता है। किन्तु वहाँ इसकी व्याख्या नहीं की गई है। सर्वप्रथम नीतिवाक्यामृत में इस शब्द की परिभाषा मिलती है। उसके अनुसार 'यत्कृतो स्वामिनः सन्धिविग्रहो प्रमास निसृष्टार्थः यथा कृष्णः पाडवानाम्'[38] अर्थात जिसके द्वारा किये गये सन्धि-विग्रह सम्बन्धी निर्णय राजा को मान्य होते हैं वह निसृष्टार्थ कहलाता है। उन्होंने पाण्डव दूत कृष्ण को इसके उदाहरण रूप में बताया है। विभिन्न आचार्यों ने निसृष्टार्थ दूत को इस प्रकार परिभाषित किया है।

(अ) जो सभी राज कार्यों को देश और काल के अनुरूप स्वयं ही करने में समर्थ है वे निसृष्टार्थ दूत कहे जाते हैं।

तत्र निसृष्टार्था राजकार्याणि देशकालोचितानि स्यमेव कर्तु क्षमाः।[39]

(ब) जो बिना बताये या सिखाये ही देशकाल के अनुरूप यथा योग्य दूसरे राजा के सामने कहा है, वह निसृष्टार्थ दूत होता है जैसे पाण्डवों के दूत श्रीकृष्ण।

तत्रयः अशिक्षितमेव देशकालोचितं यथायोग्यमन्यस्यागे
वदति स निसृष्टार्थः यथा पाण्डवानां दूतो वासुदेवः।[40]

(स) सभी गुणों और सामर्थ्य (अधिकारों) से युक्त दूत को निसृष्टार्थ दूत जानना चाहिए। पाण्डवों की तरफ से भगवान श्रीकृष्ण को संधि विग्रह सम्बन्धित समस्त अधिकार प्राप्त थे।

तत्र गुणसाकल्यं सामर्थ्यमस्य तदुपेतों निसृष्टार्थो वेदितयुक्तः।[41]

(द) निसृष्ट वह दूत होता है जिसके सन्धि विग्रह आदि प्रयोजन राजा द्वारा निश्चित नहीं है, जैसे युधिष्ठिर ने कृष्ण को यह कहकर भेजा था कि जो हमारे हित की बातें हों उन्हें दुर्योधन से कहना। सन्धि ही करनी है या विग्रह ही करना है। ऐसा नियंत्रण इस दूत पर नहीं होता।

निसृष्टः नियमरहितः अर्थः सन्धि विग्रहादिकः यस्य,
यथा युधिष्ठिरेण वासुदेव एवमुक्त्वा प्रेषित।
यक्षदस्मद्धितं कृष्ण तत्तद्धवाच्यः सुयोधनः।
अत्र सन्धिरेव कर्तव्यो विग्रहो वेति न नियमः।[42]

(य) जिसका वाक्य राजा के लिये अनीप्सित होने पर भी अन्यथा नहीं होता उसे नीतिज्ञ लोग निसृष्टार्थ दूत समझते हैं।

यद्वाक्यं ना नान्याथाभावि प्रभोर्थप्यनीप्सितम्।
निसृष्टार्थः स विज्ञेयो दूतो ना तिविवक्षणेः।[43]

भोजदेव से निसृष्टार्थ के स्थान पर 'विमृष्टार्थ' शब्द का प्रयोग किया है। उनकी 'विमृष्टार्थ' की परिभाषा के अनुसार विमृष्टार्थ दूत अमात्यगुणों से युक्त, आधे-अधूरे अधिकारों से रहित अर्थात पूर्ण अधिकारों से युक्त, किंतु जो राजा के कार्यों में संलग्न होने के कारण स्वयं शासन नहीं करता।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोचन से स्पष्ट है कि यद्यपि कौटिल्य और भोज के अतिरिक्त अन्य किसी आचार्य ने निसृष्टार्थ दूत के अमात्याधिकार से सम्पन्न होने की बात नहीं कही। यद्यपि उसके विशिष्ट अधिकार क्षेत्र को देखते हुए उसे 'अमात्य के अधिकारों से सम्पन्न' मानने में

कोई विपत्ति दिखाई नहीं देती। डॉ. पी.वी.काणे ने उसे मंत्री के अधिकार से युक्त आजकल के राजदूत के समान माना है। डॉ. अल्तेकर उसे मध्यस्थता के पूर्व अधिकारों से सम्पन्न मंत्री सदृश मानते हैं। डॉ. एच.एल.चटर्जी उसकी आधुनिक राजदूत से समानता करते हुए कहते हैं कि आज भी भारतीय गणतंत्र में राजदूत केन्द्रीय कैबिनेट के मंत्री के समान पद और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

2. परिमितार्थ-

जैसा कि इसके शब्दार्थ से स्पष्ट है कि इस श्रेणी के दूत के सन्धि विग्रहादि प्रयोजन परीमित अर्थात सीमित और नियंत्रित होते हैं।

मितार्थः मितः नियमितः निदिष्टः अर्थः सन्धि विशुहा दिवः वस्यसःत्व रिपु संसदि एवं व्यवहर्तव्य यथा विग्रहोभवति, इत्येव स्वामिता नियमिता मितार्थः।[44]

कौटिल्य के अनुसार वह अमात्योचित गुणों और अधिकारों के प्रथम श्रेणी के दूत (निसृष्टार्थ) से 1/4 कम होता है। *पादुगुणहीनः परिमितार्थ।*[45] वह राजा द्वारा कही हुई बात को ही परराष्ट्र में कहने का अधिकारी है, अपनी ओर से वह कुछ नहीं कह सकता।

यत्प्रोक्तं प्रभुणा वाक्यं तत्प्रमाणं वदेच्च यः।
परिमितार्थ इतिज्ञेयो दूतों ब्रवीति यः।[46]

विज्ञानेश्वर ने इसी को 'सन्दिष्टार्थ'[47] कहा है और इसकी परिभाषा 'उक्तमात्रं ये परस्मे निवेदयन्ति ते सन्दिष्टार्थः' अर्थात जो दूसरे राजा के लिये मात्र कही हुई बात (सन्देश) ही कहते हैं, दी है। डॉ. अल्तेकर भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि परिमिथार्थ राजा के निर्देशों का अतिक्रमण नहीं कर सकता।

3. शासनहर-

राजा का लिखित सन्देश, आदेश या प्रतिज्ञा 'शासन' कही जाती है। उसे परराष्ट्र तक पहुँचाने वाला व्यक्ति 'शासनहर' कहलाता था। ***शासनहरा स्तु राजलेखहारिणः।***[48] प्राचीन समय में ऐसे पत्रवाहकों या सन्देशवाहकों को भी राजनीतिशास्त्रियों ने दूत का दर्जा दे रखा था। ***प्रभुणालेखितं यच्द तत्परस्य निवेदयेत्। यः शासनहरः सौ पि दूतो ज्ञेर्यो नवान्वितेः।***[49] लेकिन दूतों की श्रेणी में यह सबसे छोटी कोटि का दूत था। कौटिल्य ने उसे प्रथम श्रेणी के

(निसृष्टार्थ) दूत के गुणों और अधिकारों में 'आधा' बताया है। *अर्धगुणहीनः शासनहरः ।*[50] भोज के अनुसार वह लेख के साथ-साथ मौखिक सन्देश भी ले जाता था। किन्तु उसे सन्देश का मात्र यथोक्त कथन करना होता था। *यथोक्तवादी सन्देशहारको लेखहारकः ।*[51]

दृष्टान्त- सहदेव के दूत के रूप में घटोत्कच का विभीषण के पास कर वसूलने हेतु जाना।

जब श्रीलंका नरेश महाराज विभीषण से कर वसूलने का समय आया तब सहदेव ने अपने भतीजे भीम पुत्र घटोत्कच्छ को जो राक्षस राज था का चिंतन किया। उनके चिंतन करते ही वह बड़े डील-डौल वाला विशालकाय राक्षस जो सभी प्रकार के आभूषणों से युक्त था, दिखाई दिया। घटोत्कच्छ माद्रीनन्दन सहदेव के पास आया और विनती भाव से हाथ जोड़कर कहा- 'किं कार्यमिति चाब्रवीत' अर्थात मेरे लिये क्या आज्ञा है। तब सहदेव ने उनसे कहा-

गच्छं लंका पुरीं वत्स करार्थ मम शासनात्।
तत्र दृष्टामहात्मानं राक्षसेन्द्रं विभीषणम्।।
रत्नानि राजसूयार्थं विविधानि बहूनि च।
उपादाय च सर्वाणि प्रत्यागच्छ महाबल।।[52]

अर्थात "वत्स तुम मेरी आज्ञा से कर लेने के लिए लंका पुरी में जाओ और वहाँ राक्षस राज महात्मा विभीषण से मिलकर राजसूय यज्ञ के लिए भांति-भांति के बहुत से रत्न प्राप्त करो। महाबली वीर उनकी ओर से भेंट में मिली हुई सब वस्तुयें लेकर शीघ्र यहाँ लौट आओ।"

माद्री सुत सहदेव ने उससे आगे कहा- "बेटा यदि विभीषण तुम्हें भेंट न दे तो उन्हें अपनी शक्ति का परिचय देते हुए इस प्रकार कहना- 'कुबेर के छोटे भाई लंकेश्वर! कुंती कुमार युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण के बाहुबल को देखकर भाइयों सहित राजसूय यज्ञ आरंभ किया है। आप इस समय इन बातों को अच्छी तरह जान लें। आपका कल्याण हो, अब मैं यहाँ से चला जाऊँगा।' इतना कहकर तुम शीघ्र लौट आना। अधिक विलंब मत करना।

घटोत्कच ने सहदेव से 'तथास्तु' कहकर लंका की तरफ प्रस्थान किया। वहाँ पहुंचकर विभीषण से मिला। विभीषण को देख घटोत्कच ने हाथ

जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। तब विभीषण ने उसका यथोचित सम्मान करके सांत्वनापूर्ण वचनों में कहा-

कस्य वंशे तु संजातः करमिच्छन् महीपतिः।
तस्यानुजान् समस्तांश्च पुरं देशं च तस्य वै।
त्वां च कार्यं च तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः।
विस्तरेण मम् ब्रूहि सर्वानेतान् पृथक-पृथक।।

अर्थात "जो महाराज मुझसे कर लेना चाहते हैं, वे किसके कुल में उत्पन्न हुये हैं। उनके समस्त भाइयों तथा ग्राम और देश का परिचय दो। मैं तुम्हारे विषय में भी जानना चाहता हूँ कि तुम जिस कार्य के लिये कर लेने आये हो, उस समस्त कार्य के विषय में भी मैं यथार्थ रूप से सुनना चाहता हूँ। तुम मेरी पूछी हुई बातों को विस्तारपूर्वक पृथक-पृथक बताओ।"

तदनंतर घटोत्कच ने विभीषण से कौरव वंश के पांडु पुत्रों के बारे में विस्तार से बताया तथा हस्तिनापुर के संदर्भ में जानकारी दी और कहा कि वहाँ का राज्य अजातशत्रु युधिष्ठिर ने महाराज धृतराष्ट्र को सौंपकर इन्द्रप्रस्थ में रहकर शासन करते हैं और राजसूय यज्ञ के लिए महाराज के अन्य भाई विभिन्न दिशाओं में कर संग्रह हेतु गये हैं। माद्रीनंदन सहदेव सम्पूर्ण राजाओं को जीतते हुये दक्षिण दिशा में बढ़ते चले आये हैं। उन्होंने बड़े संस्कारपूर्वक मुझे आपके पास 'कर' देने के लिए संदेश भेजा है। तब लंकाधीशपति महाराज विभीषण से प्रेमपूर्वक ही उनका शासन स्वीकार कर लिया। उन्होंने सहदेव के लिये हाथी की पीठ पर बिछाने योग्य विचित्र कम्बल, हाथीदाँत, स्वर्ण से बने पलंग दिये। इसके अतिरिक्त भी बहुत सी सामग्री भी विभीषण ने घटोत्कच्छ के द्वारा भेजा।

दृष्टांत- पाण्डवों के दूत के रूप में महाराज द्रुपद के पुरोहित का कौरवों के पास जाना।

पाण्डवों के वनवास की अवधि पूर्ण हो गई। पाण्डव पक्ष के सभी लोगों महाराज सत्याकि, महाराज द्रुपद, भगवान कृष्ण आदि को विश्वास हो गया कि दुर्योधन मधुर व्यवहार से राज्य वापस पाण्डवों को नहीं देगा। महाराज धृतराष्ट्र भी अपने पुत्र का ही अनुसरण करेंगे। भीष्म और द्रोणाचार्य जिनका

वंश तथा कर्ण और शकुनि मूर्खतावश दुर्योधन का ही साथ देंगे। फिर भी सभी लोगों ने सहमति बनाकर महाराज द्रुपद के पुरोहित को कौरवों के पास दूत के रूप में भेजा गया। वहाँ वे महाराज धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म तथा विदुर जी द्वारा सम्मानित किये गये। पुरोहित ने कौरव सभा में भाषण देते हुए कहा-

"आप सब लोग सनातन धर्म को जानते हैं। जानने पर भी स्वयं इसीलिये कुछ कह रहा हूँ कि अंत में आप लोगों के मुख से भी कुछ सुनने को मिले। महाराज धृतराष्ट्र तथा पांडु दोनों एक ही पिता के सुविख्यात पुत्र हैं। पैतृक संपत्ति में दोनों का समान अधिकार है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। धृतराष्ट्र के जो पुत्र हैं उन्होंने तो पैतृक धन प्राप्त कर लिया, परन्तु पाण्डवों को वह पैतृक सम्पत्ति क्यों प्राप्त न हो? धृतराष्ट्र ने सारा धन अपने अधिकार में कर लिया। इसीलिये पांडु पुत्रों को पैतृक धन नहीं मिला है। उसके बाद दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र पुत्रों ने प्राणान्तकारी उपायों द्वारा अनेक बार पाण्डवों को नष्ट करने का प्रयास किया, परन्तु इनकी आयु शेष थी, इसीलिये ये इन्हें यमलोक नहीं पहुँचा सके।

पाण्डवों ने अपने बाहूबल से नूतन राज्य की प्रतिष्ठा करके उसे बढ़ा लिया, परन्तु शकुनि सहित क्षूद्र धृतराष्ट्र पुत्रों ने जुये में छल-कपट का आश्रय ले उसका हरण कर लिया। परिणामस्वरूप वे पत्नी सहित 13 वर्षों तक वन में निवास करने को विवश हुये। वहाँ उन्हें नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़े। विराट नगर में भी इन महात्माओं को भयंकर कष्ट उठाना पड़ा है। अपने पूर्व के कष्टों को भुलाकर वे पाण्डव कौरवों के साथ मेल-जोल रखना चाहते हैं। दुर्योधन के आचार-व्यवहार को जानकर आप सुहृदों का यह कर्तव्य है कि दुर्योधन को समझावें।"

तत्पश्चात पुरोहित ने पाण्डवों एवं कौरवों के यहाँ एकत्रित सेना के बारे में भी चर्चा की और अंत में कहा- "आप लोग अपने धर्म और प्रतिज्ञा के अनुसार पाण्डवों को उनका आधा राज्य जो उन्हें मिलना ही चाहिए, दे दीजिये। कहीं ऐसा न हो कि यह अवसर आपके हाथ से निकल जाये।"

तदनंतर पितामह भीष्म ने पुरोहित का सत्कार करते हुये कहा- "आपने जितनी बातें कहीं हैं, वे सब सत्य हैं। इसमें संशय नहीं है। परन्तु

आपकी बातें बड़ी तीखी हैं। यह तीक्ष्णता संभवतः ब्राह्मण स्वभाव के कारण है। निःसंदेह पाण्डवों को वन में और यहाँ भी कष्ट उठाना पड़ा है। उन्हें धर्मतः अपनी सारी पैतृक सम्पत्ति पाने का अधिकार है। इसमें कोई संशय नहीं है।" भीष्म जी अपना विचार व्यक्त कर ही रहे थे कि कर्ण ने दुर्योधन की तरफ देखकर क्रोध से धृष्टतापूर्वक बोला।

न तत्राविदितं ब्रह्मांल्लोके भूतेन केनचित्।
पुनरुक्तेन किं तेन भाषितेन पुनः पुनः।[53]

'ब्रह्मन! इस लोक में जो घटना बीत चुकी है, वह किसी को अज्ञात नहीं है, उसको दोहराने से या बारंबार उस पर भाषण देने से क्या लाभ है?

दुर्योधनार्थे शकुनिर्द्यूते निर्जितवान् पुरा।
समयेन गतोऽरण्यं पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः।[54]

'पहले की बात है, शकुनि ने दुर्योधन के लिये पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर को द्यूत-क्रीड़ा में परास्त किया था और वे उस जूए की शर्त के अनुसार वन में गये थे।

अहंकार रहित, कायरताशून्य, शीघ्र काम पूरा करने वाला, दयाल शुद्ध हृदय, दूसरों के बहकावे में न आने वाला, निरोग और उदर वचन वाला इन आठ गुणों से युक्त व्यक्ति को दूत नियुक्त करना चाहिये।

इसी प्रकार महाभारत में अनेक स्थानों पर देवदूतों के माध्यम से संवाद वाहन का विवरण मिलता है जैसे भगवान श्रीकृष्ण का कौरवों के पास समझौता हेतु जाना, संजय का युधिष्ठिर को दुर्योधन का संदेश देना आदि।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद, 10/108
2. शतपथ ब्राह्मण : 5/3/1/11
3. काम. 13/1 पर उपाध्याय निरापेक्षानुसारणी टीका।
4. तैत्तरीय संहिता, 4/5/7 पर सायणभाष्य।
5. मनुस्मृति, अध्याय 7, श्लोक संख्या 65-66
6. मनुस्मृति, अ. 7/65-66 पर कुल्लूक भट्ट की टीका।

7. नीतिवाक्यामृतम् टीका।

8. मनुस्मृति अ. 17, श्लोक 68

9. ऋग्वेद, 10/108

10. ऋग्वेद, 4/165/10

11. रामायण, सुन्दरकाण्ड, अध्याय- 4, श्लोक 2-3

12. रामायण, सुन्दरकाण्ड, अध्याय 48

13. अर्थ. अधि. 1, अध्याय 16, वार्ता 16

14. कामसूत्र, सर्ग 16, श्लोक 52

15. नीतिवाक्यामृत, 13/1

16. मनुस्मृति, अध्याय 7, श्लोक 65

17. महाभारत, शान्ति पर्व, अध्याय 85, श्लोक 27, उद्योग पर्व, अ. 162, 39

18. महाभारत, शान्ति पर्व, अध्याय 85, श्लोक 26

19. महाभारत शान्ति पर्व, अध्याय 85, श्लोक 26

20. महाभारत, उद्योग पर्व, 162/39, 88/18

21. तैत्तरीय संहिता, 4/5/7

22. वही, दूतों की योग्यता शीर्षक

23. वही, दूतों के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व शीर्षक

24. अर्थशास्त्र, 2/11/15/1

25. अग्निपुराण, 241/8

26. याज्ञ. 1/328 पर मिताक्षर टीका

27. नीतिवाक्य, 13/3

28. युक्तिकल्पतरू : 21/75-76

29. अर्थशास्त्र, 1/11/15/1

30. अर्थशास्त्र, 2/25/9/1

31. अर्थशास्त्र, 2/25/10/2

32. अर्थशास्त्र, 2/26/10/1-2

33. नीतिवाक्यामृतम्: समुद्देश 13, श्लोक 1

34. रामायण, 2/114/47

35. महाभारत, 5/72/92
36. अग्निपुराण, 241/8
37. कामसूत्र सर्ग 13, श्लोक 3
38. नीतिवाक्यामृतम्, 13/3
39. याज्ञवल्क्य 1/323
40. कामसूत्र सर्ग 13, श्लोक 3
41. शंकराचार्य कृत जयमंगला टीका।
42. उपाध्यायनिरपेक्षानुसारिणी टीका।
43. नीतिवाक्यामृतम, 13/3 याज्ञवल्क्य टीका।
44. काम. 13/1 पर अपाध्यायनिपेक्षानुसारिरिणी टीका।
45. अर्थशास्त्र, 1/11/15/1
46. नीतिवाक्य 13/3
47. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/328
48. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/328
49. नीतिवाक्यामृतम् 13/13
50. अर्थशास्त्र, 1/11/15/1
51. युक्तिकल्पतरू 11/76
52. महाभारत, सभापर्व, पृ. 868
53. महाभारत, उद्योग पर्व, अध्याय 21, श्लोक संख्या 9
54. महाभारत, उद्योग पर्व, अध्याय 21, श्लोक संख्या 10

अध्याय 17

महाभारतकालीन संचार में नैतिक मूल्य

दुराचार दुर्विचेष्टा दुष्प्रज्ञाः प्रियसाहसा।
असंतस्त्विति विख्याताः संतश्चाचारलक्षणः।[1]

अर्थात जो दुराचारी, दुबुर्द्धि और दुःसाहस को प्रिय मानने वाले हैं वे दुष्टात्मा के नाम से विख्यात होते हैं। श्रेष्ठ पुरुष तो वही है जिसमें सदाचार देखा जाये। सदाचार ही उनका लक्षण है।

वस्तुतः नैतिकता उचित एवं अनुचित आचरण तथा कर्म से सम्बन्धित विज्ञान है। उचित कर्म वह है जो मानव को 'सत्यम्, शिवम सुन्दरम्' की प्राप्ति में सहायक हो तथा अनुचित कर्म वह जो असत्य, अशिव एवं असुन्दर की प्राप्ति कराता है। संचार की नैतिकता उसके सामान्य क्रिया-कलापों से किसी न किसी रूप से जुड़ा होता है। नैतिकी का विचार संस्कृति से संस्कृति में ही भिन्न नहीं है अपितु बदलते परिवेश में यह विचार भी बदलता रहता है। वस्तुतः नैतिकी का मूल्यांकन देश, काल एवं परिस्थिति के अनुरूप ही किया जाना चाहिए। क्योंकि नैतिकी सदैव देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है। अमेरिका में यू.एस.न्यूज एण्ड वर्ल्ड के द्वारा एक अध्ययन किया गया जिसके निष्कर्ष रूप में यह तथ्य सामने आया कि नैतिकता के बारे में उनके विचार भी समय-समय पर परिवर्तित होते गए।

दर्शन शास्त्रियों के अनुसार - 'नैतिकता सत्य का विज्ञान है।'[2] आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार- 'सही पथ पर किया गया कार्य नैतिकता कहलाता है। नैतिकता मानवीय लक्ष्यों और उन लक्ष्यों के साधनों के परीक्षण का विज्ञान है। किसी न किसी रूप में यह साधनों के नियंत्रण की कला भी है जिससे ये विशिष्ट मानवीय लक्ष्यों की पूरा कर सकें। नैतिकता सिर्फ व्यक्तिगत विचार है तथा नैतिक निर्णय भावनाओं का अर्थहीन प्रस्तुतिकरण है नैतिकता का विचार व्यक्तिगत प्रकृति का होता है और व्यक्ति की भावना को

प्रगट करता है। एक कार्य सापेक्षिक रूप से नैतिक है यदि वह न्याय की विचारधारा पर आधारित है। जिसका अभिप्राय सभी संबंधित लोगों के हितों की रक्षा करना है अथवा जो थ्योरी ऑफ यूटीअिलटेरियनिज्म पर निर्भर है।[3]

आचार ही धर्म को सफल बनाता है। आचार ही धन रूपी फल देता है। आचार से मनुष्य को धनरूपी सम्पत्ति प्राप्त होती है और आचार ही अशुभ लक्षणों का नाश कर देता है।

आचारः फलते धर्ममाचारः फलते धनम्।
आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम्।।[4]

जिससे परिणाम में प्राणियों का अत्यन्त हित होता हो, वह वास्तव में सत्य है। इसके विपरीत जिससे किसी का अहित होता हो या दूसरों के प्राण जाते हो वह देखने में सत्य होने पर भी वास्तव में असत्य एवं अधर्म है- इस प्रकार विचार कर देखिये धर्म की गति कितनी सूक्ष्म है।

यद् भूतहितमत्यन्तं तत् सत्यमिति धारणा।
विपर्ययकृतोऽधर्मः पष्य धर्मस्य सूक्ष्मताम्।।[5]

महाभारत में कर्तव्य और अकर्तव्य का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया गया है। यहाँ हम सभी पक्षों का उल्लेख न करके केवल संचार के नैतिक मूल्य की चर्चा कर रहे हैं। जो इस प्रकार है-

हितकारक एवं प्रियवाणी बोलना चाहिए-

कर्तव्य-अकर्तव्य के निर्णय के सभी अवसरों पर हितकारक और प्रिय वचन कहना चाहिये। यदि दोनों सम्भव न हो तो प्रिय वचन का त्याग करके भी जो हितकारक हो वही वचन कहना चाहिये।

समर्थनासु सर्वासु हितं च प्रियमेव च।
संवर्णयेत् तदेषस्य, प्रियादपि हितं भवेत्।।[6]

ऐसी किसी बात की चर्चा नहीं करनी चाहिये जो लोगों को अप्रिय एवं अहितकर प्रतीत होती हो, वरन जो लोगों के लिए हितकर एवं प्रिय हो वही वचन बोलना चाहिये।

झूठ नहीं बोलना चाहिए-

झूठ बोलने वाले मनुष्यों से लोग द्वेष रखने लगते हैं इसी प्रकार जो लोग अपने को पण्डित मान लेते हैं उनका भी लोग तिरस्कार कर देते हैं। यह बात धौम्य मुनि ने महाराज युधिष्ठिर से कही है-

असूयन्ति हि राजानो नराननृतवादिनः।
तदैव चावमन्यन्ते नरान् पण्डित मानितः।।[7]

किसी दूसरे व्यक्ति के सम्बन्ध में यदि कोई हास्यजनक वस्तु भी दिखाई दे तो अधिक, हर्ष नहीं प्रकट करना चाहिये। पागलों की तरह अट्टहास नहीं करना चाहिये। मन में प्रसन्नता होने पर भी मृदुल मुस्कान का ही प्रदर्शन करना चाहिये।

जो झूठ बोलने वाला है, उस मनुष्य को न इस लोक में सुख मिलता है और न परलोक में ही।

नायं लोकोऽस्ति न परो न पूर्वान् स तारयेत।
कुल एव गनिष्यांस्तु भृषावाद परायणः।।[8]

हमेशा सत्य वचन बोलना चाहिये। इसे अनेक उदाहरणों द्वारा महाभारत में प्रस्तुत किया गया है- संचार में सत्य की महिमा को उच्च कोटि का माना गया है।

सत्य बोलना चाहिए-

समस्त वेदों का अध्ययन और समस्त तीर्थों का स्नान भी सत्य वचन की समानता कर सकेगा इसमें सन्देह ही है-

सर्ववेदाधिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम्।
सत्यं व वचनं राजन् समं वा स्यान्न वा समम्।[9]

सत्य के समान कोई धर्म नहीं है। सत्य से उत्तम कुछ भी नहीं है और झूठ से बढ़कर तीव्रतर पाप इस जगत में दूसरा कोई नहीं है।

नास्ति सत्य समो धर्मो न सत्याद विद्यते परम्।
न हि तीव्रतरं किंचिदनृतादिह विद्यते।।[10]

सत्य परमब्रह्म परमात्मा का स्वरूप है। सत्य सबसे बड़ा नियम है।

अतः "महाराज! आप अपनी सत्य प्रतिज्ञा न छोड़िये। सत्य आपका जीवनसंगी हो।"

सत्यमेकाक्षरं ब्रह्म सत्यमेकाक्षरं तपः।
सत्यमेकाक्षरो यज्ञः सत्यमेकाक्षरं श्रुतम्।।[11]

अर्थात सत्य ही एकमात्र अविनाशी ब्रह्म है। सत्य ही एकमात्र अक्षय तप है। सत्य ही एकमात्र अविनाशी यज्ञ है। सत्य ही एकमात्र नाशरहित सनातन भेद है।

प्राणिनां जननं सत्यं सत्यं सन्ततिरेव च।
सत्येन वायुरम्येति सत्येन तपतो रविः।।[12]

सत्य प्राणियों को जन्म देने वाला है। सत्य ही सन्तति है। सत्य से ही वायु चलती है और सत्य से ही सूर्य तपता है। मनुष्य वाणी द्वारा जो कोई कर्म करता है उसका सारा फल वह वाणी द्वारा ही भोगता है और मन से जो कुछ कर्म करता है उसका फल यह जीवात्मा मन के साथ हुआ मन ही भोगता है।

वाचा तु यत् कर्म करोति किंचिद्
वाचैव सर्वं समुपाश्नुते तत्।।
मनस्तु यत् कर्म करोति किन्चि
न्मनःस्थ एवायमुपाश्नुते तत्।।[13]

महाभारत में ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं जहाँ असत्य बोलना हितकर होता है। इसे सत्य का अपवाद मान सकते हैं।

आपातकाल में सत्य काल में हितकारक वचन बोलना चाहिए

अपना या दूसरों का प्राण बचाने के लिये, गुरु के लिये, एकान्त में अपनी स्त्री के पास विनोद करते समय अथवा विवाह के प्रसंग में झूठ बोलने से पाप नहीं लगता-

प्राणत्राणेऽनृतं वाच्यमात्मनो वा परस्य च।
गुर्वर्थे स्त्रीषु चैव स्याद् विवाहकरणेषुच।।[14]

अवसर के अनुसार मिथ्या कथन भी अच्छा होता है

अवसर के अनुसार मिथ्या कथन को भी अच्छा माना गया है।

भगवान कृष्ण ने अर्जुन से इस प्रकार कहा है-

भवेत् सत्यभवक्तव्यं वक्तमत्यमन्ततं भवेत्।
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं चाप्यन्ततं भवेत्।।[15]

अर्थात जहाँ मिथ्या बोलने का परिणाम सत्य बोलने के समान मंगलकारक हो अथवा जहाँ सत्य बोलने का परिणाम असत्य भाषण के समान अनिष्टकारी हो वहाँ सत्य नहीं बोलना चाहिये। वहाँ असत्य बोलना ही उचित होगा।

विवाह में स्त्री प्रसंग के समय, किसी के प्राणों पर संकट आने पर सर्वस्व का अपहरण होते समय तथा ब्राह्मण की भलाई के लिये आवश्यकता हो तो असत्य बोलने से पाप नहीं लगता।

जो झूठी शपथ खाने पर भी लुटेरों के साथ बन्धन में पड़ने से छुटकारा पा सके, उसके लिये वहाँ असत्य बोलना ही ठीक है।

कड़वी बात समयानुकूल होने पर ही बोलना चाहिए अन्यथा नहीं।

कड़वी बात समयानुकूल होने पर ही बोलना चाहिये। जब गन्धर्वों ने राजा दुर्योधन को बन्दी बना लिया तब भीमसेन ने कहा-

अधर्म चारिणस्तस्य कौरव्यस्य दुरात्मनः।
ये शीलमनुवर्तन्ते ते पश्यन्ति पुराभवम्।।[16]

(अर्थात उस पापाचारी दुरात्मा कौरव के स्वभाव का जो लोग अनुसरण करते हैं वे भी अपनी पराजय देखते हैं।)

एवं ब्रुवाणं कौन्तेयं भीमसेनमपस्वरम्।
न कातः परुषस्यायमिति राजाम्यभाषत्।।[17]

अर्थात कुन्तीनंदन भीमसेन को इस प्रकार विकृत स्वर में बात करते देख युधिष्ठिर ने कहा- "भैया! यह कड़वी बातें कहने का समय नहीं है। ये लोग भय से पीड़ित होकर हमारे पास शरण लेने आये हैं। इस समय वे भारी संकट में पड़ गये हैं फिर तुम ऐसी कड़वी बात कैसे बोल रहे हो? दूसरे के द्वारा पराभव प्राप्त होने पर उसका सामना करने के लिये हम लोग एक सौ पाँच भाई हैं। आपस में विरोध होने पर ही हम पाँच भाई अलग हैं और वे सौ भाई। गन्धर्वों के द्वारा दुर्योधन को बलपूर्वक पकड़े जाने से और बाहरी पुरुष के द्वारा

कुरुकुल की स्त्रियों का अपहरण होने से हमारे कुरु का जो तिरस्कार हुआ है वह मृत्यु के समान है। इसलिये तुम लोग शीघ्र उठो और युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। तथा दुर्योधन को छुड़ा ले आओ। तदनंतर पाण्डवों ने ऐसा ही किया।

रहस्यमय बातों को समय पर ही उद्घाटित करना चाहिए

सुप्रसिद्ध संचारविद एवं समाज वैज्ञानिक इवान इलेच का मानना है कि प्रत्येक संचार कर्म का दो प्रकार का एजेण्डा होता है। एक को वे घोषित एजेण्डा कहते हैं और दूसरे को वे गुप्त एजेण्डा। अंततः गुप्त एजेंडा ही असली एजेंडा होता है। महाभारत में संचार कर्म के इन दोनों एजेंडों का अनेकों स्थलों पर उल्लेख मिलता है। यहाँ हम कुछ दृष्टान्त से इसे स्पष्ट कर रहे हैं-

महाभारत में इस संदर्भ में एक बहुत महत्वपूर्ण दृष्टान्त है। महर्षि कर्ण्व के आश्रम में महाराज दुष्यन्त का शकुन्तला से गान्धर्व विवाह हुआ। परिणामस्वरूप शकुन्तला गर्भवती हो गई और महाराज अपने राजभवन वापस चले गये। जब शकुन्तला को भरत नामक पुत्र प्राप्त हुआ तो महर्षि कर्ण्व के निर्देशानुसार शकुन्तला अपने पति महाराज दुष्यन्त के पास गई और उसके प्रति सम्मान का भाव प्रकट करते हुई बोली-

'अयं पुत्रस्त्वया राजन् यौवराज्येअभिषिच्यताम्।
त्वया ध्ययं सुतो राजन् मय्युत्पन्न सुरोपमः।
यथासमयमेतास्मिन् वर्तस्व पुरुषोत्तम।।'[18]

(अर्थात राजन यह आपका पुत्र है। इसे आप युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिये। महाराज! यह देवोपम कुमार आपके द्वारा मेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ है। इसके लिये आप ने मेरे साथ जो शर्त कर रखी है, उसका पालन कीजिये। महर्षि कण्व के आश्रम पर मेरे साथ आपने जो प्रतिज्ञा की थी उसका स्मरण कीजिये।)

तदनंतर महाराज दुष्यन्त ने कहा- "दुष्ट तपस्विनी! मुझे कुछ भी याद नहीं है। तुम्हारे साथ मेरा धर्म, काम अथवा अर्थ को लेकर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुआ है। इस बात का मुझे तनिक भी स्मरण नहीं है।" दुष्यन्त और शकुन्तला के बीच काफी वाद-विवाद हुआ। इस वाद-विवाद में शकुन्तला ने कहा- "राजन! एक हजार अश्वमेध यज्ञ एक ओर तथा

सत्यभाषण का पुण्य दूसरी ओर यदि तराजू पर रखा जाए तो हजार अश्वमेध यज्ञों की अपेक्षा सत्य का पलड़ा ही भारी होता है। सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन और समस्त तीर्थों का स्नान भी सत्य वचन की समानता कर सकेगा या नहीं इसमें सन्देह है। सत्य के समान कोई धर्म नहीं है और झूठ से बढ़कर इस जगत में तीव्रतर पाप दूसरा कोई नहीं है। राजन सत्य परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप है। सत्य सबसे बड़ा नियम है। अतः महाराज आप अपनी सत्य प्रतिज्ञा मत छोड़िये। सत्य आपका जीवनसंगी हो। यदि आपकी झूठ में आसक्ति है और मेरी बात पर श्रद्धा नहीं करते, तो मैं स्वयं ही चली जाती हूँ। आप जैसे के साथ रहना मुझे उचित नहीं है।"

तदनंतर आकाशवाणी हुई- "नरदेव वीर्य का आघात करने वाला ही पिता होता है, पुत्र बनता है और वह यमलोक से अपने पितृगण का उद्धार करता है। शकुन्तला सत्य कह रही है। इसलिये राजा तुम अपने पुत्र का पालन करो।" तब महाराज दुष्यन्त अपने गुप्त एजेण्डा से पर्दा हटाते हुए बोले- "मैं भी अपने इस पुत्र को इसी रूप में जानता हूँ। यदि केवल शकुन्तला के कहने से इसे ग्रहण कर लेता तो सब लोग इस पर सन्देह करते और यह बालक विशुद्ध नहीं माना जाता।" तदनंतर महाराज भरत मस्तक सूँघकर स्नेहपूर्वक उसे हृदय से लगाया और उसका समस्त संस्कार कर्म किया। उसने अपनी पत्नी शकुन्तला का भी यथोचित सत्कार किया और कहा- "देवी! मैंने तुम्हारे साथ जो विवाह सम्बन्ध स्थापित किया था, उसे साधारण जनता नहीं जानती थी। अतः तुम्हारी शुद्धि के लिये ही मैंने यह उपाय सोचा।"

सत्य बोलना चाहिए-

सत्य से बढ़कर दूसरा कोई ऐसा साधन नहीं है जो प्रजावर्ग में उसके प्रति विश्वास उत्पन्न करा सके। सत्य परायण राजा इहलोक और परलोक दोनों में सुख पाता है। महाराज दुष्यन्त ने अन्त में सत्य को स्वीकार किया।

मधुर वचन

आचार शास्त्र

अच्छे संचार के लिये सम्प्रेषक का मधुर वचन बोलना आवश्यक होता है। इस सन्दर्भ में महाभारत में एक दृष्टान्त है जिसे भीष्म जी ने महाराज

युधिष्ठिर को बतलाया है। एक बार इन्द्र ने वृहस्पति जी से पूछा-

किं स्विदेकपदं ब्रह्मन पुरुषः सम्यगाचरन्।
प्रमाणं सर्वभूतानां यशश्चैवाप्नुयान्महत्।।[19]

(अर्थात ब्राह्मन! वह कौन सी ऐसी एक वस्तु है जिसका नाम एक ही पद का है और जिसका भलीभाँति आचरण करने वाला पुरुष समस्त प्राणियों का प्रिय होकर यश प्राप्त करता है।)

वृहस्पति जी ने कहा-

सान्त्वमेकपदं शक्र पुरुषः सम्यगाचरन्।
प्रमाणं सर्वभूतानां यशश्चैवाप्नुयान्महत्।।[20]

अर्थात जिसका नाम एक ही पद का है, वह एकमात्र वस्तु है सान्त्वना (मधुर वचन बोलना) उसका भलीभांति आचरण करने वाला पुरुष समस्त प्राणियों का प्रिय होकर महान यश प्राप्त कर लेता है।

यही एक वस्तु सम्पूर्ण जगत् के लिये सुखदायक है। इसको आचरण में लाने वाला मनुष्य सदा समस्त प्राणियों का प्रिय होता है। मधुर वचन बोलने वाला मनुष्य लोगों की कोई वस्तु लेकर भी अपनी मधुर वाणी द्वारा इस सम्पूर्ण जगत को वश में कर लेता है।

दण्ड भी सान्त्वनापूर्ण वाणी द्वारा देना चाहिए

किसी को दण्ड देने की इच्छा रखने वाले राजा को भी उससे सान्त्वनापूर्ण मधुर वचन ही बोलना चाहिये। ऐसा करके वह अपना प्रयोजन तो सिद्ध कर ही लेता है उससे कोई मनुष्य उद्विग्न भी नहीं होता है।

धर्म और अधर्म का रहस्य समझाकर बोलना चाहिए

किसी समय धर्म ही अधर्म रूप हो जाता है और कहीं अधर्म रूप दीखने वाला कर्म ही धर्म बन जाता है। इसलिये विद्वान पुरुष को धर्म और अधर्म का रहस्य अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

अधर्मरूपो धर्मो हि कश्चिदस्ति नराधिप।
धर्मश्चाधर्मरूपोऽस्ति तच्च ज्ञेयं विपश्चिता।।[21]

देश एवं समाज हित में बोलना चाहिए-

वक्ता को सदैव देश एवं समाज के हित में बोलना चाहिये। हितकारक वचन सर्वश्रेष्ठ होता है। देवर्षि नारद जी ने शुकदेव जी को उपदेश देते हुए कहा है-

सत्य बोलना सबसे श्रेष्ठ है परन्तु सत्य से भी श्रेष्ठ है हितकारक वचन बोलना जिससे प्राणियों का अत्यन्त हित होता हो, वही मेरे विचार से सत्य है।

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद् भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं मतं मम्।।[22]

व्यर्थ नहीं बोलना चाहिए

व्यर्थ बोलने की अपेक्षा मौन रहना अच्छा है। यह वाणी की प्रथम विशेषता है। सत्य बोलना वाणी की दूसरी विशेषता है। प्रिय बोलना तीसरी विशेषता है। धर्मसम्मत बोलना यह वाणी की चौथी विशेषता है।

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः
सत्यं वदेत् व्याहृतं तद् द्वितीयम्।
धर्मं वहेद् व्याहृतं तृतीयम्
प्रियं वदेद् व्याहृतं व्तुर्थम्।।[23]

महाभारत में संचार कैसा होना चाहिये? इस विषय पर अनेक उद्धरण मिलते हैं। ब्रह्माजी हंस का वेश धारण कर घूम रहे थे तभी सभी साध्यगण उनसे मिले। उन्होंने साध्यगण को जो उपदेश दिया वह संचार का मार्गदर्शी सिद्धांत हो सकता है। संचारक को खूब हमेशा सोच-विचारकर ही वाणी का प्रयोग करना चाहिये क्योंकि 'वचन रूपी वाण जब मुँह से निकल पड़ते हैं, तब उनके द्वारा बींधा गया मनुष्य रात-दिन शोक में डूबा रहता है क्योंकि वे दूसरों के मर्म पर आघात पहुँचाते हैं।

इसलिये विद्वान पुरुष को किसी दूसरे पुरुष को वचनरूपी वाणों से बहुत अधिक चोट पहुँचाये तो भी उसे शान्त ही रहना चाहिये। जो दूसरों के क्रोध करने पर भी स्वयं बदले में प्रसन्न ही रहता है वह उसके पुण्य को ग्रहण कर लेता है।

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति।
भैराहतः शोचति राग्यहानि।
परस्य नामर्मसु ते परान्ति
तान पण्डितो नावसृजेत् परेषु।।
परंश्चेदेनभति वादवाणै
भृशं विध्येच्छम् एवेह कार्यः।
संरोष्यामाणः प्रतिहृष्यते यः
स आदत्ते सुकृतं वै परस्य।।[24]

संचार में निन्दा नहीं करनी चाहिये

अच्छे सम्प्रेषण में किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिये। इसके लिये महाभारत में एक बहुत ही अच्छा दृष्टान्त है-

एक बार विश्वामित्र के पुत्र अष्टक के अश्वमेघ यज्ञ में उसके तीन भाई प्रतर्दन, वसुमना और शिवि पधारे। यज्ञ की समाप्ति के बाद अष्टक अपने तीनों भाईयों के साथ रथ पर आरूढ़ हो स्वर्ग की ओर जा रहे थे। रास्ते में देवर्षि नारद भी मिल गये। तीनों ने उन्हें प्रणाम करके कहा- भगवन् आप भी रथ पर आ जाइये। तब नारद जी तथास्तु कहकर रथ पर बैठ गये। तब एक भाई ने कहा- 'भगवन्! मैं आपको प्रसन्न करके कुछ पूछना चाहता हूँ'। देवर्षि ने कहा- 'पूछो'! तब उसने इस प्रकार कहा- 'भगवन् हम सब लोग दीर्घायु तथा सर्वगुण सम्पन्न होने के कारण सदा प्रसन्न रहते हैं। हम चारों को दीर्घ काल तक उपभोग में आने वाले स्वर्ग में जाना है, किंतु वहाँ से सर्वप्रथम कौन भूतल पर उतरेगा?' देवर्षि ने कहा- 'सबसे पहले अष्टक उतरेगा। फिर उन तीनों भाईयों ने पूछा- यदि हम शेष तीनों भाई स्वर्ग में जायें तो सबसे पहले किसको उतरना पड़ेगा?'

देवर्षि ने उत्तर दिया- 'प्रतर्दन को।

तीनों भाइयों ने पूछा- इसमें क्या कारण है?

देवर्षि ने कहा- एक दिन में प्रतर्दन के घर ठहरा था। ये मुझे रथ से ले जा रहे थे। उस समय एक ब्राह्मण ने इनसे याचना की- आप मुझे एक अश्व दे दीजिये। तब उन्होंने उत्तर दिया- 'लौटने पर दे दूंगा।' ब्राह्मण ने कहा- 'नहीं,

तुरंत दे दीजिये।' 'अच्छा तो तुरंत ले लीजिये।' यों कहकर उन्होंने रथ के दाहिने पार्श्व का घोड़ा खोलकर उसे दे दिया। इतने में ही दूसरा ब्राह्मण आया। उसे भी घोड़े की आवश्यकता थी। जब उसने याचना की तब राजा ने पूर्ववत उससे भी यही कहा- 'लौटने पर दे दूँगा।' पर उसके आग्रह करने पर उन्होंने रथ के वामपार्श्व का एक घोड़ा दिया। फिर वे आगे बढ़े तदनंतर एक घोड़ा मांगने वाला दूसरा ब्राह्मण आया। उसने भी घोड़े को जल्दी ही मांगा। तब इन्होंने उसे बांये धुरे का बोझ ढोने वाला घोड़ा दे दिया।

जब वे कुछ आगे बढ़े तब एक ब्राह्मण पुनः घोड़ा लेने की इच्छा से आ पहुँचा। उसके माँगने पर इन्होंने कहा- "मैं शीघ्र ही अपने लक्ष्य तक पहुँचकर घोड़ा दे दूंगा।' ब्राह्मण बोला- 'मुझे तुरंत दीजिये।' तब इन्होंने ब्राह्मण को अश्व देकर स्वयं रथ का धुरा पकड़ लिया और कहा- 'ब्राह्मणों के लिये ऐसा करना उचित नहीं है।'

य एष ददाति चासूयति च तेन व्याहृतेन तथावतरेत
अथ दाम्यां यातव्यभिति कोऽपतरेत्।

अर्थात ये प्रतर्दन दान देते हैं और ब्राह्मण की निंदा भी करते हैं। अतः निंदायुक्त वचन बोलने के कारण पहले इन्हीं को स्वर्ग से उतरना पड़ेगा। उपरोक्त दृष्टान्त से स्पष्ट है कि संचार में दूसरों की निन्दा नहीं करनी चाहिये।

सन्दर्भ

1. महाभारत, शान्ति पर्व, अ. श्लोक संख्या
2. भारतीय नीति शास्त्र के सिद्धांत, ले. डा. भीकमलाल आत्रेय, पृ. 9
3. ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, यूनिवर्सिटी प्रेस, यू.के. वाल्यूम, 3, पृ. 132
4. महाभारत, उद्योग पर्व, अध्याय 113, श्लोक संख्या 15
5. महाभारत, भीष्म पर्व
6. महाभारत, भीष्म पर्व
7. महाभारत, भीष्म पर्व
8. महाभारत, भीष्म पर्व

9. महाभारत, आदि पर्व, अध्याय 74, श्लोक संख्या 104

10. वही, श्लोक संख्या 105

11. महाभारत, शान्ति पर्व, मोक्ष धर्म पर्व, अध्याय 199, श्लोक 64

12. महाभारत, शान्ति पर्व, मोक्ष धर्म पर्व, अध्याय 199, श्लोक 67

13. महाभारत, शान्तिपर्व (मोक्ष पर्व), अध्याय 201, श्लोक संख्या 22

14. महाभारत, शान्तिपर्व (राजधर्मानुशासनपर्व), अध्याय 34, श्लोक संख्या 25

15. महाभारत, शान्तिपर्व (राजधर्मानुशासनपर्व), अध्याय 109, श्लोक संख्या 5

16. महाभारत, वन पर्व, अ. 242, श्लोक संख्या 20

17. वही, श्लोक संख्या 22

18. महाभारत, आदि पर्व (सम्भव पर्व), अध्याय 74, श्लोक संख्या 16-17

19. महाभारत, शान्तिपर्व (राजधर्मानुशासनपर्व), अध्याय 84, श्लोक संख्या 2

20. महाभारत, शान्तिपर्व (राजधर्मानुशासनपर्व), अध्याय 84, श्लोक संख्या 3

21. वही, अध्याय 33, श्लोक संख्या 32

22. महाभारत, शान्तिपर्व (मोक्ष पर्व), अध्याय 339, श्लोक संख्या 13

23. महाभारत, शान्ति पर्व (मोक्ष पर्व), अध्याय 299, श्लोक संख्या 38

24. वही, श्लोक संख्या 9

अध्याय 18

उपसंहार

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज रचना में संचार का अविस्मरणीय योगदान है। यह व्यक्ति ही समाज ही नहीं वरन व्यक्ति को भी सार्थक बनाने में सहयोग करता है। वस्तुतः यह मनुष्य को प्रकृति द्वारा दिया गया वरदान है। यह विभिन्न प्रजातियों के विकास के शाश्वत क्रम का अंग है। महाभारत में संचार के सभी पक्षों को न केवल मौखिक, श्रुतिगत एवं दृश्यगत अपितु व्यापक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। संचार कला में ध्वनि एवं शरीर दोनों का प्रयोग होता है। शरीर मात्र ध्वनि का पूरक होता है। "बिना शब्दों एवं शरीर की हलचल के भी संदेश प्राप्त किया जा सकता है। ये दोनों अत्यन्त धीमी गति से कार्य करते हैं और ग्रहणकर्ता की बुद्धिमत्ता से आगे इनकी पहुँच नहीं हो पाती।"

मनुष्य द्वारा शब्दों का प्रकटीकरण अपने आप में स्वतंत्र क्रिया नहीं है प्रकट होने के पूर्व शब्द विचारों में या बुद्धि में आता है। मन की इच्छा बुद्धि को प्रेरित करती है। आत्मा से प्रेरित होकर मन बुद्धि के माध्यम से इसकी अभिव्यक्ति करता है। महाभारत के अनेक दृष्टान्त इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

महाभारत के आदि पर्व में भगवान व्यास ने कहा है-

धर्मे, चार्थे च कामे च मोक्षे च भारतर्षम।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।

अर्थात भारत श्रेष्ठ! धर्म, अधर्म, काम, मोक्ष के सम्बन्ध में जो बात इस ग्रंथ में है वही अन्यत्र भी है जो इसमें नहीं है वह कहीं भी नहीं है। उपरोक्त कथन में यह तथ्य निहित है कि यह महाग्रंथ मानव जीवन के विविध पक्षों पर पूर्णतः प्रकाश डालने में सक्षम है। हिंदू धर्म में पुरुषार्थ के अन्तर्गत धर्म अर्थ, काम, मोक्ष की अवधारणा विकसित हुई है। यही मानव जीवन का चरम लक्ष्य भी है। मानव जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष के लिये संचार की जितनी प्रणालियाँ

आवश्यक हैं; सबका उल्लेख हमें महाभारत में मिलता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महाभारत न केवल ऐतिहासिक एवं पौराणिक ग्रंथ है वरन यह एक उच्च कोटि का संचार शास्त्र भी है।

तत्कालीन समाज में संचार की प्रचलित हर विधाओं का इस ग्रंथ में विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है।

इस ग्रंथ के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में संचार के जो मूलभूत सिद्धांत अथवा प्रकार हैं वे सभी महाभारत में वर्णित है।

अब यह तथ्य पूर्णतः अप्रासंगिक है कि संचार के सभी प्रभावी सिद्धांत पाश्चात्य देशों में विकसित हुए हैं। वस्तुतः संचार की अवधारणा भारतीय समाज में सृष्टि के आरम्भ से ही अंकुरित होकर पल्लवित-पुष्पित होती रही। हमारे मनीषियों ने उसका व्यवहारिक उपयोग सृष्टि के आदिकाल से ही कर दिया था। पर इसे एक सतत प्रक्रिया मानते हुए इसका अलग से सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत नहीं किया।

इस ग्रंथ में दिव्य नगर एवं दुर्गों के निर्माण कौशल, युद्ध कौशल का वर्णन है ही। इसमें भिन्न-भिन्न भाषाओं और जातियों की जो विशेषतायें हैं लोक व्यवहार की सिद्धि के लिए आवश्यक जो कुछ भी है उन सबका इसमें प्रतिपादन किया गया है।

इस ग्रंथ के संदर्भ में तो स्वयं ब्रह्मा जी ने कहा है- "संसार के बड़े से बड़े कवि भी इस काव्य से बढ़कर कोई रचना नहीं कर सकेंगे।" इसमें भूत, भविष्य एवं वर्तमान तीनों कालों का निरूपण किया गया है।

महाभारत में विभिन्न प्रकार के तीर्थों का वर्णन मिलता है। कौन से तीर्थस्थल किस काल से अपना महत्व रखते हैं इसकी चर्चा की गई है।

इस अध्ययन में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि लेखन कला का विकास ही भारत में ही हुआ। पाश्चात्य चिंतकों का यह कथन कि भारत में प्राचीन ऋषि लेखन कला से अनभिज्ञ थे। पाश्चात्य विचारक तो यहाँ तक कहते हैं कि ईसा से 300-400 वर्ष पूर्व भारत में विकसित ब्राह्मी लिपि का मूल भारत के बाहर था। इस संदर्भ में डॉ. ओरफ्रीड व म्युएलर ने प्रतिपादित किया कि भारत को लेखन कला की शिक्षा द्वीपों से मिली। डॉ. डेविड डिरिंजर ने यह

अनुमान व्यक्त किया है कि ब्रह्मी की उत्पत्ति अरेबिक लिपि से हुआ है। मैक्समूलर ने 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' में लिखा है कि लिखने की कला भारत में ईसा से 400 वर्ष पूर्व आयी। भारतीय विद्वानों ने भी इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए पाश्चात्य विचारकों के मत का ही समर्थन किया है। उपरोक्त सभी धारणायें तथ्यहीन एवं काल्पनिक हैं। वस्तुतः सत्य तो यह है कि लिपि विज्ञान एवं वाक् विज्ञान की परंपरा भारत में पूर्व वैदिक काल से ही प्रचलित थी। सुप्रसिद्ध लिपि विशेषज्ञ अ.ब. वातासलकर ने अपने शोध में यह सिद्ध किया है कि भारतीय लिपि का उद्‌गम भारत में ही हुआ है। ध्वन्यात्मक आधार पर लेखन परम्परा वैदिक काल से ही विद्यमान थी।

महाभारत में यह तथ्य स्पष्ट है कि भगवान व्यास जब इसकी रचना का विचार कर रहे थे तब उनके सामने एक समस्या थी कि इसे लिखे कौन? तब उन्होंने ब्रह्मा जी की सलाह पर गणेश जी का स्मरण किया। गणेश जी के आने पर व्यास जी ने उनसे निवेदन किया कि आप भारत ग्रंथ के लेखक बने। गणेश जी ने भगवान व्यास के अनुरोध को स्वीकार कर महाभारत का लेखन किया। इससे यह स्पष्ट है कि कालगणना के आधार पर महाभारत की रचना लगभग पांच लाख वर्ष से भी अधिक पूर्व की है। अतएव पाश्चात्य विचारकों की यह धारणा कि भारत में लेखन कला का विकास ईसा पूर्व 300-400 ईस्वी में हुआ, नितांत भ्रामक एवं तथ्य रहित है। सच तो यह है कि महाभारत में वेद-पुराण, उपनिषद एवं मनुस्मृति का भी कई स्थानों पर उल्लेख है। इसका अर्थ यह हुआ कि ये ग्रंथ महाभारत के भी पूर्व के लिखे हुए हैं। इससे भी पाश्चात्य विचारकों की धारणा निर्मूल सिद्ध होती है।

महाभारत मानव एवं मानवेतर संचार शास्त्र का अनुपम ग्रंथ है। यह सम्पूर्ण श्रुतियों का समूह है। यह सम्प्रेषक और श्रोता या पाठक दोनों के लिए सर्वहितकारी है। संचार प्रक्रिया में इन्द्रियों एवं मन का उपयोग होता है। इन इन्द्रियों के द्वारा मनुष्य के जाने अथवा अनजाने में जो पाप हो जाता है, इसके श्रवण से वह नष्ट हो जाता है। महाभारत द्वापर युग की घटना पर आधारित महाकाव्य है। उस समय जनसंचार के अर्वाचीन साधन उपलब्ध नहीं थे। पर अर्वाचीन साधनों से भी शक्तिशाली साधन जनसंचार हेतु उपलब्ध थे जो

समकालीन संचार साधनों से अधिक प्रभावशाली थे। आकाशवाणी इसका उदाहरण है जिसके द्वारा देवता साक्षात अपना संदेश मनुष्यों तक पहुंचाते थे। महाभारत के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि इनमें मानव एवं मानवेतर संचार के अनेक प्रकार का उल्लेख किया गया है। ऊपरी संचार, निचली संचार, एकमार्गी संचार, द्विमार्गी संचार आदि। इन सभी प्रकार के संचारों को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में बाँटा गया है। शाब्दिक संचार एवं अशाब्दिक संचार। शाब्दिक संचार तो स्वयं यह ग्रन्ध ही है पर इस ग्रंथ में अशाब्दिक संचार के कई रूप दृष्टिगोचर होते हैं।

इन अशाब्दिक संकेतों के अतिरिक्त कुछ शाब्दिक संकेतों का भी महाभारत में उल्लेख है। जैसे कूटभाषा। इसके अतिरिक्त व्यक्ति अपने भाषायी शैली में जिस तरह से उतार-चढ़ाव करता है उससे झूठ पकड़ने में मदद मिलती है। जैसे द्रोणाचार्य के वध के समय धर्मराज युधिष्ठिर ने अश्वत्थामा के मरने का झूठा समाचार सुनाना।

भाषा की दृष्टि से सम्प्रेषण कला के रूपों पर विचार करें तो पायेंगे कि भाषा का सम्प्रेषण रूप मानवीय सभ्यता के विकास की दृष्टि से बहुत पुरानी घटना है। भाषा निश्चित तौर से सम्प्रेषण का परिष्कृत रूप है। पर मनुष्य के पास जब भाषा नहीं थी, तब भी वह सम्प्रेषण तो करता ही था। इस समय मनुष्य के पास ध्वनियों का व्यापक भंडार था। उसी में भाषा के मूल तत्व भी विद्यमान थे। इसीलिये यह कहा जा सकता है कि भाषा मनुष्य के पास उस समय भी थी जब वह पशु अवस्था में था।

महाभारत की भाषा संस्कृत है। यह विश्व की प्राचीनतम भाषा है। इसी भाषा में भगवान व्यास ने महाभारत की रचना की है। ऐसा माना जाता है कि भगवान शिव के डमरू से ही संस्कृत व्याकरण के चौदह सूत्रों की रचना हुई। महाभारत में वर्णित कई पात्रों के अनेक नामों का उल्लेख भी इसी ग्रंथ में मिलता है। इसका प्रमुख कारण मानव विषयक है। विषयों का ज्ञान बनाने की शक्ति केवल मनुष्य में है। विक्षेप या हाव-भाव सोच-समझकर पुनरावृत्ति करने की प्रवृत्ति की सामर्थ्य अकेले मनुष्य में ही दृष्टिगोचर होती है। भगवान वैश्म्पायन स्वरूप में ही इस अमूल्य निधि की रचना किये हैं। वे मानव के

अतिरिक्त अन्य प्राणियों के विक्षेप की भी पुनरावृत्ति किये हैं। तात्पर्य यह है कि इनमें विक्षेप करने की अधिक शक्ति है। अर्थात वे अनुकरण करने की विलक्षण शक्ति से सम्पन्न हैं। महाभारत में देवताओं के सहस्त्र नामों या एक से अधिक नामों की उत्पत्ति के पीछे भी यही कारण है।

सम्प्रेषण कला के क्षेत्र में नृत्य संगीत को भी प्रभावी माना गया है। महाभारत में इन कलाओं का भी विवरण मिलता है। वाद्य यंत्रों का विवरण भी इसी ग्रंथ में दृष्टिगत है। वृक्ष, जंगल, सरोवर, नदियाँ, बादल, आकाश-पाताल, स्वर्ग, नरग, मृत्यु लोक, राष्ट्र, राज्य, गांव, परिवार, विवाह, तीर्थ स्थल आदि का विवरण भी इसी ग्रंथ में प्रस्तुत है। लौकिक-पारलौकिक शक्तियों के बीच होने वाले संचार की विषय वस्तु भी इन्हीं पर अवलम्बित है। यश, देवता, दानव, किन्नर, अप्सरा, गंधर्व, राक्षस आदि की संचार प्रणाली का उल्लेख भी महाभारत में किया गया है। ये शक्तियाँ कभी प्रत्यक्ष रूप से तो कभी परोक्ष रूप से मनुष्यों के साथ संचार करते दिखाई देते हैं। सूर्य का कुन्ती से संवाद, कृष्ण का अर्जुन से संवाद, इन्द्र का अर्जुन से संवाद, दुष्यन्त शकुन्तला संवाद, यक्ष युधिष्ठिर संवाद आदि।

महाभारत का संचार शास्त्र आज पूरे मानव समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसमें जहाँ धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य पाप, पुण्य, अच्छे एवं बुरे कर्मों की चर्चा की गई है वहीं भाग्य एवं पुरुषार्थ के समन्वय पर भी बल दिया गया है। महाभारत एक प्रकार से प्रबंध शास्त्र भी है। प्रबंधन संचार के बिना सम्भव ही नहीं है। इसीलिये इसमें प्रबंधन में संचार की उपादेयता के लक्षण स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। राजा के कर्तव्य, राजा को अपने राज्य संचालन में किस प्रकार के व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिए, राजदूत कैसा होना चाहिए, मंत्री पद पर किस गुण से सम्पन्न व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए। सेनापति के गुण कैसे होना चाहिए इत्यादि विषयों पर विस्तृत चर्चा की गई है। राजा को मित्र-अमित्र की पहचान और उनके प्रति किये जाने वाले बर्ताव का स्पष्ट उल्लेख महाभारत में मिलता है। शांति पर्व में चार प्रकार के मित्रों की चर्चा की गई है-

चतुर्विधानि मित्राणि राज्ञां राजन् भवन्त्युत।

सहार्थो भजमानश्च सहजः कृत्रिमस्तथा।[1]

अर्थात राजा के सहायक या मित्र चार प्रकार के होते हैं ये हैं- 1. सहार्थ, 2. भजमान, 3. सहज, 4. कृत्रिम।

स्पष्टीकरण-

सहार्थ मित्र उसके कहते हैं जो किसी शर्त पर सहायता के लिए मित्रता करते हैं। भजमान जिसके साथ परम्परागत वंश सम्बन्ध से मित्रता हो, सहज जिनमें जन्म से ही साथ रहने अथवा घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाने से मित्रता हो उसे कहते हैं, कृत्रिम धन आदि देकर बनाये गये मित्र कृत्रिम होते हैं। इनमें भजमान और सहज श्रेष्ठ समझे जाते हैं।

उपरोक्त के अतिरिक्त एक अन्य पांचवा मित्र भी होता है जो धर्मात्मा पुरुष होता है। वह किसी एक का पक्षपाती नहीं होता और न तो दोनों पक्षों से वेतन लेकर कपटपूर्वक दोनों का मित्र बना रहता है। वह जिस तरह धर्म रहता है उसी ओर हो जाता है। महाभारत में महात्मा विदुर, भगवान व्यास एवं देवर्षि नारद ऐसे धर्मात्मा पुरुष रहे हैं जो सदैव धर्म अनुसार ही आचरण प्रकट करने का प्रयास करते रहे। पारिवारिक विग्रह की स्थिति में परिवार प्रमुख को कैसा व्यवहार करना चाहिए इस तथ्य को भी बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जन सामान्य को राजकीय मनुष्यों से सतर्क रहने के सम्बन्ध में भी इस महाग्रंथ में वर्णन किया गया है जो हर व्यक्ति के जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

महाभारत ललित एवं मंगलमय शब्द विन्यास से अलंकृत है तथा वैदिक, लौकिक या संस्कृत-प्राकृत संकेतों से सुशोभित है। अनुष्टुप-इन्द्रवज्रा आदि नाना प्रकार के छंद भी इसमें मिलते हैं। इसीलिये यह ग्रंथ विद्वानों को बहुत प्रिय है।

अलंकृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः।
छन्दोवृत्तैश्च विविधैरान्वितं विदुषा प्रियम्।[1]

इसमें वृद्धावस्था, मृत्यु, भय, रोग और पदार्थों के सत्यत्व और मिथ्यात्व का विशेष रूप से निश्चय किया गया है। इसमें विभिन्न वर्णों एवं आश्रमों के लक्षणों को भी स्पष्ट किया गया है। इस महाग्रंथ में चारों वर्णों के

कर्तव्यों का विधान, पुराणों का सम्पूर्ण मूल तत्व भी स्पष्ट रूप से वर्णित है।

भगवान कृष्ण ने गीता में कर्म, ज्ञान एवं भक्ति का विस्तृत विवेचन किया है। ये सभी विषय हमें स्वतंत्र रूप से बँटे हुए दृष्टिगत होते हैं। किंतु भगवान श्रीकृष्ण जब ज्ञान मार्ग का प्रतिपादन करते हैं तथा कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषुकदाचन का उपदेश देते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि कर्म, ज्ञान और भक्ति वास्तव में मूल रूप से एक ही है। इनको पृथक नहीं किया जा सकता। कर्म जीवन को जीवन्त बना देता है। ज्ञान से मानव जीवन समृद्ध होता है और भक्ति जीवन को एक पवित्र एवं सुदृढ़ स्वरूप प्रदान करती है। इस स्थिति में ये तीनों एक-दूसरे में समाकर एक हो जाते हैं।

समय के साथ-साथ आज सम्प्रेषण एवं उसके साधनों में निरंतर परिवर्तन होता जा रहा है। कम्प्यूटर और इंटरनेट ने इस परिवर्तनशील दिशा में सबको सक्रिय बना दिया है। समाचारपत्र-पत्रिकायें पाठकों को जागरूक बना रही हैं। रेडियो और टेलीविजन को मनुष्य की क्रियाशीलता को तीव्रतर बना रहे हैं। परिणामस्वरूप सम्प्रेषण जीवंत हो उठा है। निःसंदेह यह सब स्वागत योग्य है।

इस अध्ययन में यह तथ्य उभरकर आया है कि संचार के क्षेत्र में पदार्थ या विषय की अपेक्षा गति अधिक महत्वपूर्ण थी, है और रहेगी। सम्प्रेषणीय आदान-प्रदान में देश, काल, परिस्थितियाँ, वातावरण, संस्कृति, व्यक्तित्व एवं अन्य दार्शनिक तत्व आदि की अपनी-अपनी भूमिकायें होती हैं। ये सभी तत्व सदैव सक्रिय रहते हैं। इस पुस्तक में इन तत्वों के सक्रिय होने का यथोचित विवरण प्रस्तुत किया गया है। ये अभी तक आज भी संचार, कला को प्रभावित करते हैं। टेलीविजन पर दिखाये जाने वाले पार्श्व दृश्यों की भांति भगवान व्यास जी के द्वारा वर्णित किये गये हैं। टेलीविजन चैनलों पर दिखाये जाने वाले फ्लैश बैक की भांति अतीत में हुए घटनाक्रम का दृश्यांकन एवं प्रदर्शन महाभारत में भी वर्णित है। सूचना प्रौद्योगिकी के अर्वाचीन विकास ने संचार के साधनों में तीव्रगामी परिवर्तन अवश्य लाया है। किन्तु इसकी बुनियाद की नीव भी महाभारत काल क़ी ही है। आकाशवाणी के माध्यम से देवताओं का मृर्त्य लोक में सम्प्रेषित संदेश आज भी समझ से परे है। ऋषियों,

देवर्षियों को दिव्य दृष्टि प्रदान करने की शक्ति को आज भी विज्ञान पूर्णतः समझने में असमर्थ है। आकाश में होने वाले महाभारतकालीन संचार व्यवस्था भी आधुनिक अंतरिक्ष संचार का एक उत्कृष्टम स्वरूप था। पाताल एवं नागलोक में होने वाले संचार का रहस्य जानने में आज भी हमारा विज्ञान पूर्ण सफल नहीं हो पाया है। इन बिन्दुओं पर अन्वेषण करने की आवश्यकता बनी हुई है।

अब हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि हमें सूचना एवं प्रौद्योगिकी के विकास के लिए पाश्चात्य तकनीक पर ही अवलम्बित नहीं रहना चाहिए। हमारे प्राचीन धर्मग्रंथों में अनेक उत्कृष्ट तकनीक एवं सिद्धांत मौजूद हैं जिनका स्थूल एवं सूक्ष्म अध्ययन कर हम जीवन के हर क्षेत्र में प्रगति कर सकते हैं।

संचार मात्र कोई कला, शिल्प या शारीरिक श्रम का कार्य नहीं है। वरन यह एक धर्म है। अब प्रश्न उठता है धर्म कैसा? सामान्य भाषा में कहें तो यह एक जीवन की पद्धति है। एक सुविचारित, सुनियोजित जीवन-पद्धति, जो उसकी सम्पूर्ण नैतिकता और आचार संहिता को स्वीकार करते हुए स्वेच्छा से ग्रहण की गई है। इस अध्ययन में सम्प्रेषण में नैतिक मूल्यों की विस्तारपूर्वक विवेचना की गई है।

महाभारत ऋषियों द्वारा प्रशंसित पुरातन धर्मग्रंथ है। यह श्रवण करने योग्य सब ग्रंथों में श्रेष्ठ है। यह वेदों के समान पवित्र एवं उत्तम है। इसमें अर्थ एवं धर्म, काम एवं मोक्ष का विशद वर्णन है। अमित मेधावी व्यास जी ने इसे पुण्यमय धर्मशास्त्र, उत्तम अर्थशास्त्र तथा सर्वोत्तम मोक्षशास्त्र भी कहा है।

धर्मशास्त्रमिदं पुण्यमर्शिशास्त्रमिदं परम्।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना।[3]

महाभारत के सूत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें इस बात का उल्लेख किया गया है कि समय के विपरीत कुछ भी नहीं बोलना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति समय के विपरीत बोलता है तो वक्ता का अपमान ही होगा और उसकी बुद्धि की अवज्ञा ही होगी।

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन।

लभते बुद्धयवज्ञानमवमानं च भारत।[4]

इसी प्रकार यह भी वर्णित है कि मन को सदा प्रिय लगने वाला वचन बोलने वाला महापापी मनुष्य तो मिल सकता है किंतु हितकर होते हुए भी अप्रिय वचन को कहने और सुनने वाले दोनों दुर्लभ होते हैं। जो व्यक्ति धर्म में तत्पर रहकर प्रिय एवं अप्रिय का विचार छोड़कर अप्रिय होने पर भी हितकर वचन बोलता है वही महान है।

महाभारत में संचार शास्त्र का कुछ महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय पक्ष इस प्रकार है-

नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत।
ययास्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेदुषतीं पापलोक्याम्।[5]

किसी को मर्मभेदी बात न कहें, किसी से कठोर वचन न बोलें। नीच कर्म के द्वारा शत्रु को वश में करने की चेष्टा न करें। जिस बात से दूसरे को उद्वेग हो, जो जलन पैदा करने वाली और नरक की प्राप्ति कराने वाली हो, वैसे बात मुँह से कभी न निकालें।

समुच्चरन्त्यतिवादाश्च वक्त्राद् यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत परेषु।[6]

मुँह से कटु वचनरूपी बाण निकलते हैं, उनसे आहत हुआ मनुष्य रात-दिन शोक और चिन्ता में डूबा रहता है। वे दूसरे के मर्म पर ही आघात करते हैं, अतः विद्वान पुरुष को दूसरों के प्रति निष्ठुर वचनों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

सन्दर्भ

1. शान्ति पर्व, अध्याय 80, श्लोक 3
2. आदि पर्व, अध्याय 1, श्लोक 28
3. महाभारत, आदि पर्व, अंशावतरण पर्व, अध्याय 56, श्लोक 23
4. महाभारत, उद्योग पर्व, प्रजागर पर्व, अध्याय 39, श्लोक संख्या 2
5. महाभारत, सभापर्व, द्यूतपर्व, अध्याय 66, श्लोक संख्या 6
6. महाभारत, सभापर्व, द्यूतपर्व, अध्याय 66, श्लोक संख्या 7

संदर्भ सूची

1. महाभारत, श्री मन्महर्षि वेदव्यास प्रणीत, गीता प्रेस गोरखपुर
2. कामसूत्रम्- शिवदत्त शास्त्री, टीका सहित, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी
3. वाक्यपदीयम्- आचार्य वामदेव, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
4. श्रीमद्भागवत्- महर्षि व्यास, गीताप्रेस गोरखपुर
5. मनुस्मृति, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
6. ऋग्वेद, सुबोध भाष्य, दामोदर सातवलेकर
7. काव्य प्रकाश, आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
8. ध्वनि सिद्धांत तथा तुलनीय साहित्य चिन्तन, डॉ. बच्चूलाल अवस्थी, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी
9. प्रज्ञा प्रवाह, मुरली मनोहर जोशी, पराग प्रकाशन, दिल्ली 1991
10. वैशेषिक दर्शन- एक अध्ययन, श्री नारायण मिश्र, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
11. भारतीय दर्शन, डॉ. बद्रीनाथ सिंह, आशा प्रकाशन, वाराणसी
12. संचार के मूल सिद्धांत, ओम प्रकाश सिंह, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली
13. भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा, सुरेश सोनी, अर्चना प्रकाशन, 17, दीनदयाल परिसर, भोपाल
14. भागवत पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, चौबीसवां संस्करण।
15. मनुस्मृति, संस्कृति संस्थान, बरेली।
16. श्रीमद भागवत पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर।
17. सम्प्रेषण प्रतिरूप एवं सिद्धांत, डॉ. श्रीकांत सिंह
18. मानव संचार शास्त्र, डॉ. श्रीकांत सिंह
19. टेलीविजन पत्रकारिता, डॉ. श्रीकांत सिंह
20. रामायण एवं महाभारत में संचार दर्शन, डॉ. लोकनाथ, क्लासिकल पब्लिशिंस कम्पनी, नई दिल्ली

21. श्रीमद वाल्मीकि रामायण, अनुवादक परमहंस जगदीश्वरानंद सरस्वती, प्रकाशक- विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क दिल्ली।

22. भारतीय कला- वासुदेव शरण अग्रवाल- पृथिवी प्रकाशन वाराणसी

23. राजतरंगिनी- कलहण- बम्बई संस्कृत सीरीज बम्बई।

24. ध्वन्यलोक- आनन्द वर्धन-निर्णयसागर प्रेस बम्बई

25. नीतिसार- कामन्दन, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज मद्रास

26. अर्थशास्त्र- कौटिल्य- संपादक श्यामा शास्त्री, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज।

27. कामसूत्र- वात्स्यायन (जय मंगला टीका सहित) चौखम्बा वाराणसी।

28. तैत्तरीय संहिता- सायण की टीका सहित, बम्बई।

डॉ. श्रीकांत सिंह

जन्म- 4 अप्रैल, 1958

काशी, हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से भारतीय दर्शन एवं धर्मशास्त्र में एम.ए. एवं पीएच.डी. की। तत्पश्चात वहीं से बी.जे. एवं एम.जे. की उपाधि प्राप्त की। पत्रकारिता में भी पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त। भोपाल के बरकतउल्ला विश्वविद्यालय से विधि स्नातक। काशी-विद्यापीठ, वाराणसी, जे.एम.कालेज, मुरकुण्डा- हजारीबाग, जौनपुर के तिलकधारी महाविद्यालय में अध्यापन कार्य के बाद 1992 से माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल से जुड़े। उसी दौरान महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी से पत्रकारिता एवं जनसंचार में पीएच.डी. की उपाधि सन 2005 ई. में प्राप्त की। नवम्बर 2006 से मई 2007 तक कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय, रायपुर में प्रोफेसर।

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के इलेक्ट्रानिक मीडिया विभाग में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष पद पर कार्यरत। साथ ही कई समाचारपत्र-पत्रिकाओं में समसामयिक विषयों पर लेखन कार्य भी करते हैं। देश के अनेक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय की बोर्ड ऑफ स्टडीज के सदस्य एवं अतिथि व्याख्याता के रूप में जुड़े हैं। देश की प्रतिष्ठित शोध पत्रिका मीडिया मीमांसा एवं समागम के संपादक मंडल के सदस्य हैं, जनसंचार के सरोकारों पर केन्द्रित त्रैमासिक पत्रिका मीडिया विमर्श के संपादक एवं मीडिया नवचिंतन के संपादकीय मंडल के सदस्य हैं। जनसंचार से सम्बन्धित पांच पुस्तकें प्रकाशित।

राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार हेतु विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर परिचर्चा हेतु विशेषज्ञ के रूप में सहभागिता।

सम्प्रति 'महाभारत में संचार सूत्र' पर शोध कार्य।